१] सस्ती विविध पुस्तकमाला [पुस्तक ४
(सस्ती प्रदीपांक पुस्तकमाला)

यथार्थ आदर्श जीवन

लेखक
वाजपेयि मुरारि शर्मा काव्यतीर्थ

मूल्य ॥-) १९२६ [वार्षिक मूल्य ४)

हिन्दी-प्रेमियोंसे अनुरोध

इस मण्डलके स्थायी ग्राहक होनेके नियम पुस्तकके अन्तमें दिये हुए हैं। आप उन्हें एक बार अवश्य पढ़ लें और अपनी रुचिके अनुसार स्थायी ग्राहक होकर व अपने मित्रों-को बनाकर इस मण्डलकी पुस्तकोंके प्रचारमें सहायता पहुंचावें।

वर्ष १] सस्ती विविध पुस्तकमाला [पुस्तक ४

(सस्ती प्रकीर्णक पुस्तकमाला)

यथार्थ आदर्श जीवन

अर्थात्

विडम्बन जीवन, पाश्चात्य जीवन, प्राचीन व अर्वाचीन भारतीय जीवन, तुलनात्मक जीवन एवं अनुकरणीय जीवन—जीवन पञ्चकसे सम्पन्न।

लेखक—

वाजपेयि मुरारि शर्मा काव्यतीर्थ

प्रकाशक

सस्ता-साहित्य-प्रकाशक मण्डल

अजमेर

प्रथम बार] १९२६ [मूल्य ॥-)

प्रकाशक—
जीतमल लूणिया, मंत्री
सस्ता-साहित्य-प्रकाशक मण्डल,
अजमेर

लागत का व्योरा

कागज	२३४॥।)
छपाई	२७३)
बाइंडिंग	२७।)
लिखाई, व्यवस्था, विज्ञापन आदि खर्च	२९५)
कुल जोड़	८३०)

प्रतियां २०००

एक प्रति का मूल्य ।⁄)॥

मुद्रक—
रामकुमार भुवालका
"हनुमान प्रेस"
३, माधो सेठ लेन, कलकत्ता।

उपोद्घात

राष्ट्रभाषा हिन्दीकी सेवा करनेकी इच्छा रहनेके कारण यह पुस्तक राष्ट्रीय सेवाके नाते लिखी गयी है। इसमें पहला जीवन विडम्बन जीवन है जिसके द्वारा यह जनतापर व्यक्त किया गया है कि अर्वाचीन समयमें भारत अपनी आदर्श सभ्यताको भूलता जा रहा है और सम्भव है कि इस कारण अपनी सत्तातकको खो बैठे; क्योंकि वह जो पाश्चात्य सभ्यताकी नकल करता जा रहा है उसका प्रभाव दिन दूना रात चौगुना बढ़ रहा है। इस विडम्बन जीवनमें पड़कर लोग बेतरह दरिद्र हो रहे हैं, कर्जके मारे वे यद्यपि चूर रहा करते हैं तथापि पाश्चात्य फेशनपर बाल कटवाते हैं; मूछें बनवाते हैं, रोज़ दाढ़ी मूंड़ी जाती है; साबुनसे देरतक बदन मला जाता है, सुगन्धित सेंट लगायी जाती है; कपड़े एक रोज बीच देकर बदले जाते हैं; मादक वस्तुओंका सेवन खूब छूटकर होता है; व्यभिचार और झूठकी मात्रा बहुत बढ़ गयी है; जूते दस दस जोड़े रक्खे रहते हैं;मकानकी सजावटका क्या कहना है। तरह तरकी दर्जनों पोशाकें खूंटियोंपर लटका करती हैं; कुत्ते झुण्डके झुण्ड घूमा करते हैं; मोटरगाड़ी मौजूद है, साइकिल अलग है, और गाड़ियां भी मौजूद हैं। ऐसी दशामें बगैर नौकरोंके काम नहीं चलता इसलिये वे भी आधे दर्जन हैं। अलावे मेहतर, भंगी और झाड़कस भी हैं। ऐसी दशामें पांच चार सौ

रुपयोंकी आमदनी गायब सी हो जाती है और सब चीजें उधार आया करती हैं। कर्ज यहांतक बढ़ता है कि उन्हें जीवनमें आनन्द जान ही नहीं पड़ता; तिसपर भी वे अपने भारतीय सभ्यतावाले भाइयोंपर आक्षेपके बाण बरसाते हैं; उनपर घृणाकी दृष्टि रखते हैं! इससे देशकी अधोगति होगी। उन्हें उचित है कि पाश्चात्योंके गुणोंको ग्रहण करें और अपनी प्राचीन सभ्यता न भूलें; उसे जीवनमें स्थान दें; तभी तो भारतीय जीवनकी सत्ता बचेगी और ऋणसे मुक्त होंगे। दूसरे और तीसरे अर्थात् पाश्चात्य और भारतीय जीवनोंके लिखनेका यही अभिप्राय है।

जबतक दोका मुकाबला न हो तबतक तत्त्वका पता नहीं चलता। इस विचारसे ही तुलनात्मक जीवन लिखा गया है। इस जीवनमें पाश्चात्यों और भारतीयोंके जीवनकी तुलना की गयी है और तब निष्कर्ष निकाला गया है। दोनों जीवनोंमें कौनसा जीवन उत्तम है इसका पता इससे चलेगा।

पांचवां जीवन अनुकरणीय जीवन है। यह जीवनके अनुकरणीय होनेकी राह बताता है। जिन गुणोंका ग्रहणकर लोग आदर्श हुए हैं उनका इसमें अच्छी तरह समावेश हुआ है। यथार्थ अनुकरणीय जीवन किनका है सोभी भलीभांति वर्णित किया गया है। आशा है कि निज सभ्यताभ्रष्ट भारतीय इस जीवनको अंगीकार कर लाभान्वित होंगे; और तभी मैं अपनी राष्ट्रीय सेवा सफल मानूंगा।

—लेखक

समर्पण !

दीनबन्धो, इष्टदेव !

आज मैं सात्विक आनन्दसे प्लावित होकर, आनन्दाश्रुके साथ, आपके चरण-कमलोंपर राष्ट्रीय सेवाके नाते यथार्थ आदर्श जीवन' अर्थात् 'मुरारि-ग्रन्थ-मालाका प्रथम कुसुम किंवा प्रथम मुक्ताफल' भेंट रखता हूं ! मुझे पूर्ण आशा है कि आप इस तुच्छ भेंटको अपनावेंगे और मेरा उत्साह बढ़ाते रहेंगे, क्योंकि एक पुष्प अथवा मुक्ताफलसे माला तैयार होना असम्भव है।

आपका,
चरणपतित-दास—
मुरारि।

विषय-सूची।

—□*□—

ॐतत्सत्।

यथार्थ आदर्श जीवन

(१)

विडम्बन जीवन

यदि आधुनिक-शिक्षा-प्राप्त, नये रंगमें रंगे, पाश्चात्य रीति-नीतिको भारतीय कर्मक्षेत्रमें प्रधानतम स्थान देनेवाले किसी ऐसे व्यक्तिसे, जो अपनी चाल-ढाल निरे यूरोपीय ढंगकी रखता है—अर्थात् पैरोंमें बूट-जूता या स्लिपर, अधोवस्त्रके स्थानमें पेंट, पाजामा, या बंगाल-नुमा धोती, जिसकी चुननका लच्छा पैरों तक लटक रहा है और कमीजका निचला अंश जिसके भीतर आगया है, मोजोंके साथ साथ गिजर्वेर भी चढ़ा हुआ है, कमीजपर वेस्टकोट और उसपर कोट डाटकर गला भी नेक-टाइ (गलबन्ध) से सुसज्जित है, सरके बाल आगेसे पीछेको गावदुम और सुगन्धित सेंटसे सुगन्धित कर ऐलवर्ट फैशनपर संवारे हुए, दाढ़ी बिलकुल मुड़ी, मूंछें यातो नाममात्रको छोटी तितली-के समान या बिलकुल साफ, हाथमें चुरट, जेबमें रूमाल,आंखों-के ठीक सामने नाकपर सुनहली कमानीका चश्मा जिसका रवैया इन दिनों प्रायः सभी जगह नजर आता है, बायें हाथपर

रिस्टवाच और दाहिनेमें छड़ी, सरपर हैट या फेल्ट-कैप—पूछा जाय कि आदर्श जीवन किसे कहते हैं तो वह,पाश्चात्य सभ्यतामें सिरसे पैरतक रंगा रहनेके कारण, फौरन बिना विचारे कह उठेगा कि यथार्थ आदर्श जीवन यूरोप-निवासियों-का है; भारतीय लोग बिलकुल जंगलीपनसे भरे हुए हैं, इनका ढंगही निराला है ; विवेकको यह स्थान नहीं देते ; गन्दगीसे बचावका इन्हें बिलकुल ध्यान नहीं, गौओंके मलसे ये अपने घर लीपते हैं जिसकी बदबू सब जगह फैलती है, क्योंकि आखिरकार वह भी तो मैलाही है; अक्सर सनातनधर्मी लोग इसी मैलेकी मूर्ति बनाकर पूजातक करते हैं , इससे बढ़कर जहालत और असभ्यताकी सीमा क्या होगी ? ये नंगे रहा करते हैं; जो एक घृणास्पद दृश्य है। न इन्हें बैठने उठनेका सलीका है न बोलनेका। औरतोंको ये पर्देके अन्दर दासियां बनाकर रख छोड़ते हैं जिनके विकाशका मौका जिन्दगीमें आताही नहीं। वे बराबर दुःखके समुद्रमें डूबा करती हैं, इसलिये कि मजदूरोंसे भी बदतर वे सिवाय, सोने और खानेके, दिनरात खिदमतगारकी तरह अपने घरके आदमियोंकी खिदमत किया करती हैं। हा! उनके साथ इतना दुर्व्यवहार कि वे मनुष्यतासे वंचित की जायं। एक समय था कि जब ये औरतें जिन्दा जला दी जाती थीं जिस समय इनके पति मरा करते थे; और अब भी पतिके मरनेपर ब्राह्मण, क्षत्रिय और अधिकांश वैश्योंके घरकी औरतें बगैर ब्याह किये ही—यानी विधवा ही—ताजिन्दगी रह जाती हैं। इन

भारतीयोंमें एक कौम डोम और मेहतरोंकी है जिसे, गन्दी रहने-की वजहसे, हा ! कोई छूता तक नहीं, यानी हद दर्जेके निषिद्ध और त्याज्य उस कौमके लोग माने जाते हैं। कितने तो उनकी छाया तकसे बचते हैं और उसके पड़नेपर अपना वस्त्र फींचकर नहाते हैं। भला यह बर्ताव किस कामका ? क्या वे मनुष्य नहीं हैं ?

पाठकवृन्द ! सुनी आपने पाश्चात्य रंगमें रंगे हुओंको बातें जो रातदिन ऐयाशामें लिप्त रहते हैं ? अपने असली वेशको छोड़ नकली वेशको स्वीकार कर, पाश्चात्योंके गुणोंका अनुकरण तो किया नहीं। हां, योंही अपने देशवासियोंको घृणाकी नजरसे देखने लगे, उनके गुणोंमें भी अवगुण देखने लगे और अपने ही नकली जीवनको आदर्श मान औरोंपर आक्षेपके बाण बरसाने लगे। यदि उनकी आलोचना की जाय तो एक अच्छा प्रकाश दोनोंके जीवनपर पड़ जायगा और गुण तथा अवगुणकी ओर भी हठात् लोगोंका ध्यान चला जायगा।

केवल पाश्चात्योंकी वेश-भूषा, भाषा आदिमें नकल करनाही उत्तम बुद्धि, मनोहर प्रतिभा और शुद्ध विवेकका परिचायक नहीं है; बल्कि जितने गुणोंने उनमें स्थान पाया है उनका समावेश अपने जीवनमें करनाही किसी भी मनुष्यके लिये एक सच्ची सभ्यता है।

सहानुभूतिकी मात्रा पाश्चात्योंमें अधिकतम पायी जाती है जिसे देखनेवाला पग पगपर इनमें पा सकता है। एक दूसरेके

प्रति प्रतिष्ठा, सम्मान, समादरकी दृष्टि रखता है और यदि इनमें किसीने बाधा पहुंचायी तो उसकी पत्रों और छोटी पुस्तिकाओंके प्रकाशनसे व सभाओंके आह्वान द्वारा इतनी कड़ी आलोचना की जाती है कि पाश्चात्य मण्डलीमें उस बाधाके विरुद्ध एक भारी आन्दोलन खड़ा हो जाता है व घृणा प्रकट की जाती है जो उसे जड़से उखाड़ फेंकती है। इसका फल यह होता है कि सहानुभूति और समवेदनाका उक्त मण्डलीमें अटल राज्य बढ़ता जाता है और एक एक व्यक्ति उक्त गुणके कारण अपनेको इतना शक्तिशाली समझता है कि मानों वह सारे समाजका प्रतिनिधि बना हो।

सहानुभूति व समवेदना ही ऐसे गुण हैं जो एकतामें परिणत हो जाते हैं जिसके विना सङ्गठन होना विलकुल असम्भव है। विना एकताके एक व्यक्ति अपनी सारी जातिका प्रतिनिधि नहीं हो सकता, क्योंकि एकता ही सङ्घशक्ति और सङ्गठनका मूलमन्त्र है। इन सिद्धान्तोंके अनुसार ही पाश्चात्य मण्डलीमें एकता, सङ्गठन और सङ्घशक्तिका अटल राज्य है; और यही कारण है कि आज भूमण्डलके करीब करीब सभी भागोंमें इसका सिक्का जमा हुआ है एवं अपनी अलौकिक सङ्घशक्तिके द्वारा यह शत्रुओंके दबानेवाले पूरे साधनोंके साथ, निर्भय, निःशङ्क राज्य करती है। मनुष्योंके सामने सहानुभूति, समवेदना, एकता, सङ्गठन व सङ्घशक्तिके, एक नहीं अनेक, क्याही अनूठे आदर्श उक्त मण्डलीने रखे हैं जिनकी प्रशंसा जहांतक मुक्तकण्ठसे

की जाय थोड़ी है और जिसका प्रभाव वर्णनातीत है, यद्यपि यह आदर्श राजस व तामस छोड़कर सात्विक कदापि नहीं कहा जा सकता अतः सात्विक परिणामपर भी कदापि नहीं पहुंचा सकता।

आज भारतवर्षके लोगोंका रहन-सहन प्रायः पाश्चात्योंके समान देखा जाता है। पर शोकके साथ लिखना पड़ता है कि उनके गुणोंका ग्रहण तो बिलकुल नहीं, पर हां, नकल करनेकी चेष्टा पूर्ण रीतिसे की गई है; तदनुसार ही भारतीयोंपर रंग भी चढ़ रहा है कि प्रातः कालसे लेकर रात्रिमें शयनके समयतक नकल की हुई सारी बातें दिखलायी देती हैं, पर असलियतका नामतक नहीं है। वैसे रहन-सहनमें खर्चकी तो भरमार है पर आमदनी महज़ मामूली ढंगकी भी नहीं दिखायी देती। दिखायी भी कहांसे पड़े? अध्यवसायकी ओर किसीका ध्यान नहीं, कलाकौशलका अवलम्बन कोई करता नहीं, किसी एक भी आविष्कारके लिये कोई व्यक्ति निरन्तर कुछ दिनोंतक अटूट परिश्रम करता नहीं, न जितने आविष्कार हो चुके हैं उनके लिये गवेषणा करनेमें ही कोई जीजानसे प्रवृत्त होता है। हा! रात दिन नकल करनेमें ही, ऐयाशीके सिन्धुमें गोते लगानेमें ही क्या लोग अपना कर्त्तव्य पालन करना समझ बैठे हैं! कैसे शोककी बात है कि मादक द्रव्योंका सेवन लोग छूटकर किया करते हैं और अपने अमूल्य समयको नष्टकर अपनी सन्तानोंके सामने ऐसा निकृष्ट आदर्श रखते हैं जिसके द्वारा आनेवाली कई पीढ़ियां

अज्ञानान्धकार, विलासितासमुद्र और आलस्यगर्त्तमें पड़ उस दशाको प्राप्त होती हैं जिससे मनुष्यजाति पुरुषार्थको छोड़, पङ्गु बन, परतन्त्रताकी बेड़ी पहन जिन्दा ही मुर्दा हो जाती है और वह ज्ञानका सोता जो उसके मस्तिष्कमें प्रकृतिदेवीने बहाया है, हा! जम जाता है, जिसके द्वारा भूमण्डलके लोगोंको वह आश्चर्यान्वित कर सकती थी, काम पड़नेपर एक विस्तृत साम्राज्य-पर शासन कर सकती थी, जातीय महासभा अथवा राष्ट्रीय समितिमें अपनी जोशीली, उपदेशपूर्ण और भव्य वकृता द्वारा समग्र जातिको उन्नतिके मार्गपर ले जा सकती थी।

कितने शोककी बात है कि समयके महत्त्वको न जान, शिथिलता व आलस्यको अपने कार्य्योंमें स्थान दे पाश्चात्योंकी केवल नकल करनेहीमें आज अधिकांश भारतीय अपने कर्त्तव्य-की इतिश्री कर बैठते हैं! प्यारे भारतीयो! जरा इस कोरी पाश्चात्योंकी नकलपर ध्यान दें जिसे असलियतको छोड़ आपने अपनाया है, जिसका खाका लेखक यहांपर खींचकर आपके सन्मुख उपस्थित करता है। इसका एक मात्र मतलब यही है कि आपके ही ऊपर भावी सन्तानोंका समुज्ज्वल जीवन निर्भर है। यदि आप स्वयं चूकते चले गये, तो कौनसा आदर्श आप अपनी आगामी पीढ़ियोंके सन्मुख रक्खेंगे जिससे शीघ्र देशोद्धारकी आशा की जा सकती है? देश आज दिन जैसी गिरी अवस्थामें है, क्या उसे उठाना और उन्नत अवस्थापर पहुंचाना आप अपना कर्त्तव्य नहीं समझते हैं? यदि आप इस समय

चूके तो पाश्चात्य सभ्यताके पंजेमें जकड़े जाकर अपनी सत्ता तक खो बैठेंगे! इसी प्रकार भूमण्डलकी कितनी ही जातियां एक दूसरेकी सभ्यताको गले लगा संसारसे लुप्त हो गयी हैं जिनका आजदिन नामोनिशान तक संसारमें नहीं है! प्यारे! ऐसी स्थिति न आने दें, इसीमें आपकी प्रशंसा है, अन्यथा सभ्य जगतमें आप निन्दा व घृणाके पात्र होंगे।

अब ज़रा नकलके खाकेको खूब ध्यानसे देखिये ताकि आपको अपने जीवनका पता लगे कि यह कैसा जीवन है और उससे मनुष्यताका गला कहांतक घोंटा गया है और घोंटा जा रहा है, देशोन्नतिमें कहांतक बाधा पहुंच चुकी है और पहुंच रही है, कर्त्तव्य-क्षेत्र कहांतक संकीर्ण हो चुका है और हो रहा है।

वैयक्तिक नकलका चित्र आरंभमें ही बहुत ही संक्षिप्त रूपमें आपके सामने पेश है, पर हां, घरकी सजावटका उल्लेख किया जाता है और उसका प्रभाव जीवनपर जैसा पड़ता है उसका भी दिग्दर्शन कराया जाता है।

घरका आगेवाला भाग एक छोटेसे नजरबागसे बड़ा ही सुहावना दिखाई पड़ता है, जिसमें नाना प्रकारके फूलोंके वृक्ष खिल रहे हैं और गमले इस प्रकार सजाकर रक्खे गये हैं कि मानों किसीने गृहका उनके स्थापन द्वारा बड़ा ही मनोहर शृङ्गार किया हो, जिनके पुष्पोंसे वहांकी हरियाली आंखोंको बड़ी रोचक ज्ञान पड़ती है। आगे बढ़कर कई कुत्ते जो शरीरसे खूब मोटे ताजे हैं दिखाई पड़ते हैं, जिन्होंने सारे गृहको अपने पदार्पण द्वारा

पवित्र कर रक्खा है और घरके प्रत्येक व्यक्तिको गोदके शिशु बनकर खान-पान तकके संसर्गमें इतनी घनिष्ठता पायी है जिससे आत्मीयसे वे किसी प्रकार कम नहीं समझे जाते हैं। घरका हरएक कोना उनके पेशावसे परिमार्जित है। यह आदत उनकी स्वाभाविक है जिसे कोई भी छुड़ा नहीं सकता। घरका बीच-वाला भाग सहनके रूपमें है जिसके चारों ओर बरामदा है और किवाड़ भिलमिली व शीशेवाले दोहरे लगे हुए हैं। सहनके भीतर तरह तरहकी कुर्सियां जिनपर गद्दियां जड़ी हुई हैं और जो लेटने तकके काममें आ सकती हैं चारों ओर लगी हुई हैं। बीचमें टेबुल और कुछ बैठनेवाली कुर्सियां हैं। टेबुलपर गुल-दस्ते सजे हैं। एक तरफ मसहरीदार पलंग लगा हुआ है। दीवारोंमें यूरोपीय रमणियोंके अश्लील चित्र लगे हुए हैं जिन्हें देखकर ही व्यभिचारकी ओर प्रवृत्ति होना स्वभावसिद्ध है। सहनकी दीवारोंमें जो आलमारियां हैं उनमें ऐसी ऐसी अश्लील आख्यायिकायें हैं जिन्हें पढ़ते ही मनुष्य ऐयाशीके समुद्रमें डूबकर विलासी बन जाता है। कुछ आलमारियोंमें सिगार, सिगरेट और कड़ी मदिराकी बड़ी बोतलें परिपूर्ण रक्खी हुई हैं जिनका उपयोग अतिथि-सेवा और इन्द्रिय-तृप्तिके हेतु प्रतिदिन होता है। घर सुधासे धवल और रंगोंसे रंगा हुआ है। किवाड़ोंके साथ ही जालीके महरायनुमा परदे लगे हैं और कुछ लैंप भी अपने स्थानपर हैं। कपड़े टांगनेके लिये रैक हैं जिनपर कोट, पैंट, हैट दिखलायी देते हैं। जगह जगह सहनमें चटाई व दरी अथवा टाट

बिछा है और पैर पोंछनेकी चीज भी हर किवाड़ोंपर है। एक जगह गाने बजानेके सामान रक्खे हैं जिनमें हारमोनियम मुख्य है। तरह तरहके खिलौनोंसे भी यह सदन अपने ढंगका निराला ही जान पड़ता है।

इस घरके पिछले भागमें रसोई-घर, पाखाना और भङ्गीके रहनेके लिये एक कोठरी है। रसोई-घर इतना गन्दा है जिसे देखकर ही घृणा प्रकट होती है; क्योंकि वह कभी न लीपा जाता है न पोता। चारों ओर झोलसे भरा है और मकरोंके रहनेका एक विस्तृत स्थान है। कहीं राख है तो कहीं कोयला; कहीं भोजनार्थ काटे गये पक्षियोंके चंगुल हैं तो कहीं पर; कहीं रुधिरकी बून्दें हैं तो कहीं हड्डियां; कहीं चर्बी है तो कहीं खुर जिन्हें देख शवरालय सा रसोई-घर जान पड़ता है। थोड़े चीन व तामचीनके बर्तन भी हैं; अलुमीनियमके बर्तन भी हैं। पाखाना हिन्दुस्थानी नहीं बल्कि यूरोपीय ढंगका है जहां आइना, साबुन, ब्रश, कंघी इत्यादि रक्खे हुए हैं, जिसे नहाने और शृङ्गार करनेका स्थान कहा जाय, तो अत्युक्ति नहीं होगी। हां, मल-मूत्रके उत्सर्गके लिये गमले रक्खे हुए हैं जिन्हें भंगी फौरन धोकर साफ करके रख देता है ताकि बदबूका नाम न रहे।

प्यारे वाचकवृन्द! घरके चित्रसे आपको भलीभांति विदित हो गया होगा कि पाश्चात्य सभ्यतामें रंगे एक भारतीयने कैसे आदर्शको अपने जीवनका मुख्य लक्ष्य माना है। इस प्रकारके जीवनमें खर्चकी भरमार रहती है और तनख्वाह या आमदनी

खर्चसे आधी मुशकिलसे रहती है; ऐसी अवस्थामें मोदीकी दूकानसे उधार, कपड़ेकी दूकानसे उधार, परचूनकी दूकानोंसे उधार सभी आवश्यक वस्तुएं ली जाती हैं और जब तकाजा पहुंचता है तो कुछ देकर जान छुड़ाई जाती है। यही हाल है बावर्ची और भङ्गी तकके साथ कि उन लोगोंको भी रुपये हिसाब साफ कर नहीं दिये जाते। इसका मुख्य कारण यही है कि आमदसे बेशी खर्चका सामना करना पड़ता है, पर क्या एक भी यूरोपियन इस ढंगसे चलता है या इसे पसन्द करेगा? कदापि नहीं। वह तो अपनी आमदनीमेंसे कुछ न कुछ बचाता ही रहेगा, क्योंकि A penny saved a penny gained. वाली कहावत वह चरितार्थ करता है, अर्थात् एक छोटीसी बचत भी एक छोटासा लाभ है, इसे वह खूब जानता है, तभी तो प्रति मास कुछ न कुछ इकट्ठा करता जाता है। दोनोंके आदर्शमें खर्चके संबन्धमें फर्क इसलिये है कि नकल करनेवालेने अपनेको उस ढंगसे रखनेमें ही अपना फर्ज अदा किया है और यथार्थ यूरोपियनने आमदके अनुसार ही अपना खर्च कायम किया है; तो अब इन दोनों व्यक्तियोंके विचारमें जमीन आसमानका अन्तर है। एक फैशनका गुलाम है तो दूसरा आमदनी या व्यापारका मुख्य जमानेवाला है, एक दिवालिया है तो दूसरा महाजन है, एक नादेहंदा है तो दूसरा किसीकी एक पाई भी नहीं रखता। एकने यदि आमदका ख्याल न कर अनुकरण मात्र किसी तरह किया है, तो दूसरेने अपनी आमद कायम

कर उतना ही पैर पसारा है जितनी लंबी रजाई है; तभी तो एक खर्चसे तंग आकर चिन्ता-चक्रमें पड़ा रहता है और दूसरा खुशीके साथ खर्च करके कुछ जमा भी करता है।

थोड़ा भी यदि विचारसे काम लिया जाता तो नकल करनेवालेको खर्चसे इतना तंग न आना पड़ता। कुत्तोंकी जगह यदि एक गौ होती तो दूध, घी, दही, मलाई, मक्खन, खोआ इत्यादिसे थोड़े परिश्रममें सारे परिवारका हृदय परिपूर्ण रहता और उनकी खूराकके बदले यह बचा खाती, शायद कममें ही इसकी गुजर हो जाती और गोवर जलावनका अलग काम देता। जब आगे बच्चे बढ़ते तो बेचकर दाम मिलते या एक गौशाला ही खड़ी होती और जिनका पालन-पोषण चराईमात्रसे सम्पन्न होता है। यदि गृहिणी और परिवारकी स्त्रियां अपने हाथसे खानेकी चीजें तैयार कर लेतीं तो एक मामूली दाईसे काम चल जाता। भङ्गीकी कोई आवश्यकता नहीं थी यदि हिन्दुस्तानी पैखाना होता। हां, सफाईपर विशेष ध्यान चाहिये। इसी प्रकार मांस और कड़ी मदिराके सेवनकी जरा भी आवश्यकता नहीं थी; क्योंकि भारतीय अन्न, कन्द, फल, मूल एवं गोरस बहुत अपने देशमें पाते हैं, और मद्यकी बात तो सवालके बाहर है; क्योंकि अब तो यूरोप भी इसका जोरोंसे परित्याग करने लगा है। भारतसम्राट् पञ्चम जौर्जतकने अपने राजभवनमें इसकी पहुंचकी मुमानियत कर दी है और स्वयं एक वैष्णवके समान इस विषयमें रहते हैं। इस ढङ्गपर बहुत रुपये बच जाते, जिनसे उस परिवारको यथार्थ

आनन्द प्राप्त होता। साहबी वस्त्रोंकी जगह यदि भारतीय तरज़के कपड़े व्यवहारमें होते तो इस काममें भी खासी बचत हो सकती थी। ऐयाशोके सामान जो सदनके भीतर रक्खे हैं यदि उनकी जगह सादगीसे काम लिया गया होता तो भी व्ययका एक बड़ा हिस्सा कम हो जाता। यदि भारतीय रहन-सहनको वहां स्थान मिलता, तो जो परिवार आज कई कारणोंसे निरानन्द दिखाई देता है, वह सानन्द यथार्थ सुखका अनुभव करता होता। जरा सी नकलका ख्याल अगर दूर किया गया होता, तो आर्थिक अड़चनें इस प्रकार उस परिवारको न जकड़तीं और वह निश्चिन्त रहकर और और परिवारोंके लिये आदर्श रहता।

प्रिय वाचकवृन्द! जो आक्षेप एक नकल करनेवाले भारतीय द्वारा किये गये हैं उनका उत्तर विनीत भावसे देकर समझानेमें कोई हर्ज नहीं है; क्योंकि दो दलोंमें जब आक्षेप किया जाता है तो आक्षेपका उत्तर यदि एक दल दे तो दूसरा अवश्य अपने आक्षेपका उत्तर पाकर सन्तुष्ट हो जाता है। तात्पर्य्य यह है कि दोमेंसे एक दल अवश्य अन्धकारमें और दूसरा प्रकाशमें है; अन्यथा दोनों ही अन्धकार या प्रकाशमें रहें तो ऐसे आक्षेपोंका अभावसा रहे और लेशमात्र भी उनकी ओर किसीकी प्रवृत्तितर्क न रहे।

पहला आक्षेप भारतीयोंपर जंगलीपन, विवेकहीनता और गंदगीका है। सामाजिक और धार्मिक विचारोंके अनुसार भारतीय व्यवहार करते हैं;कौनसा जंगलीपन है सो प्रकट नहीं किया

गया। जिस विषयसे जो अभिज्ञ नहीं है वह उसमें कोरा है; यदि इसीका नाम जंगलीपन है, तो यह दोष संसारके सभी समाजोंमें पाया जा सकता है; अर्थात् सभी सब कुछ नहीं जानते। यही उत्तर विवेकहीनताके लिये दिया जाय तो उचित होगा। गंदगीके लिये भारतीय अपनी परिस्थितिके अनुसार बदनाम नहीं किये जा सकते, क्योंकि वे प्रायः प्रतिदिन स्नान करते और अक्सर अपने कपड़े साफ करते हैं। यदि परिस्थितिने उन्हें साबुन या सोडा न लेने दिया, क्योंकि वे दीन होते हैं तो पीली मिट्टी या सज्जीसे ही अपने वस्त्र प्रक्षालन कर डालते हैं। साहबी ढंगकी सफाईके लिये बहुत खर्चकी जरूरत है जिसके साथ मुकाबिला करना बेचारे दुःखी भारतीयोंके लिये बहुत कठिन नहीं बल्कि असम्भव है। हां, कला-कौशलोंकी उन्नति भारतवासी नहीं करते, इसका मुख्य कारण यह है कि उनके कला-कौशलोंके साहाय्यदाता व्यक्ति प्रायः लुप्तसे हैं; दूसरे शब्दोंमें, भारतीय कला-कौशलकी ओर भारतीयोंका सहायताके अभावसे झुकाव ही नहीं है। गोबरको विष्ठा कहकर—क्योंकि वह तो विष्ठा ही है—उसके गुणोंका जरा भी खयाल न करना क्या बुद्धिमत्ता है? कदापि नहीं, क्योंकि पूजा या समादर तो गुणोंकाही होता है, कुछ अवगुणोंका तो होता ही नहीं; फिर न मालूम गुणकी ओर गुणी होनेका दम भरनेवालोंका केवल पाश्चात्य सभ्यतामें ही रंगे रहनेके कारण, क्यों घृणापूर्ण बर्ताव है? यदि कस्तूरीपर सुगन्ध गुणके कारण एक समादरकी दृष्टि डाली जाती है, यद्यपि

उसकी उत्पत्ति मृगके अण्डकोशसे है, तो गोबरके गुणोंका ध्यान कर यदि इसका व्यवहार किया जाता है, तो इसमें जंगलीपन, गन्दगी या मूर्खता कैसी ? जिस समय मिट्टीकी दीवाल या आंगन तैयार किया जाता है और उनके कच्चे रहनेकी वजहसे कुछ गर्दा उड़ता है तो कहगिल करके सूखनेपर जो दरारें मालूम पड़ती हैं, उनमें जबतक गोबर कसकर लगाया नहीं जाता या आंगनमें जबतक उसका लेप नहीं होता, तबतक यथार्थ चिकनापन नहीं आता, न गर्देका दुःख ही दूर होता है; इसलिये इसका व्यवहार दीन भारतवासी करते हैं। खेतोंमें खादके काममें यह ऐसा गुणकारक है कि जिससे खेतोंकी कई गुनी शक्ति—उर्वरा शक्ति–बढ़ जाती है,जिनकी आजमाइश करते करते यह सिद्धान्तसा माना गया है कि गोबर उक्त शक्तिका अतिशय वर्द्धक है। अब रही उसकी मूर्त्तिकी पूजनकी बात, सो भारतीय जिससे जितना लाभ और सुख उठाते हैं, उसे उतनी ही आदर और पूजाकी निगाहसे देखते हैं। जबकि वे गोधनसे बढ़कर कुछ धन ही नहीं समझते, और लाभके सिवाय हानिका लेशतक जिससे सम्भव नहीं, तब ऐसी अवस्थामें,उसके प्रति पूज्य भावसे कृतज्ञता प्रकाश न करना ही बड़ी भारी भूल है और जबकि धार्मिक ग्रन्थोंतकमें इस गोजातिकी अपूर्व महिमा वर्णित है।

दूसरा आक्षेप यह है कि भारतीय नग्न रहा करते हैं। नग्नके दो अर्थ हैं। भारतीयोंके मतमें नग्न वही है जो अधोवस्त्र नहीं पहने हों; परन्तु पाश्चात्योंके मतमें उसे भी नग्न कहते हैं जो अधोवस्त्रके

अलावे ऊर्ध्ववस्त्र न पहने हों। इसका कारण यह है कि भारतीय जल-वायु पाश्चात्य देशोंकी जल-वायुकी अपेक्षा कहीं गरम है। ज्येष्ठके महीनेसे लेकर भाद्र, आश्विन पर्य्यन्त वेतरह गर्मी पड़ती है जिससे कि पाश्चात्य लोग भी भारतमें नग्न रहते हैं; तिसपर भी उनके बदनसे मांसादि गर्म भोजन करनेके कारण पसीना चला करता है। एक साहबने जिसे लेखकने कुछ समयतक हिन्दी पढ़ाई, अगस्तके महीनेसे अक्तूबरतक बराबर यह कहकर उलहना दिया—'It is very hot today! my life is in danger! I had no sleep last night at all!' उष्ण कटियन्धवाले देशोंमें यही हालत होती है जो प्राकृतिक है; इसीसे बदनपर कपड़ातक नहीं रक्खा जाता। ऐसा कोई पागल ही होगा जिसे लज्जा न होती हो और वह अधोवस्त्रतक न रखता हो; अतः नग्न रहनेका आक्षेप निर्मूल है।

तीसरा आक्षेप सलीकेकी बाबत है। वाचकवृन्द! यदि सलीका इन्हें न होता तो पाश्चात्योंको इनसे इतना आराम, सुख कदापि न मिलता और ये निःसीम घनिष्ठताके कारण पाश्चात्य रंगमें इतना रंगे न होते कि अपने रहन-सहनतकको एकदम बदल डालते। इससे जान पड़ता है कि सलीका है पर अभाग्यका छत्र लगा हुआ है।

चौथा आक्षेप औरतोंकी हालतपर किया गया है। पाठको! औरतोंकी बाबत आक्षेप ही मात्र है; तत्त्वका विवेचन ज़राभी नहीं किया गया। भारतीय विवाह-कार्य्यको एक परम पवित्र बन्धन

मानते हैं। इसीके अनुसार उनके माता पिता द्वारा यह कार्य्य सम्पन्न होता है। वर या कन्या—किसीको भी अपने विवाहके लिये मुंह खोलनेमें लज्जा होती है। यह कार्य इनके लिये नहीं है। कन्याके माता पिता वरको ढूंढ़कर वेदविधिके अनुसार अग्निको साक्षी दे उसे संकल्पकर वरके हाथमें उसका हाथ पकड़ा देते हैं; तबसे ही वह पतिव्रता हो पतिको देवता समझ उसकी जहांतक उससे हो सकता है सेवा किया करती है। प्राचीन समयमें यह पातिव्रत्य इतना बढ़ा था कि भारतीय स्त्रियां पतिके मर जानेपर शोकाग्निसे दग्ध हो नाममात्रके लिये उसकी चितापर जला करती थीं। लेखकको शोकके साथ लिखना पड़ता है कि जो पाश्चात्य सभ्यताका दम भरता है उसके ही देशमें १६२२-२३ ई०में एक २२ वर्षकी महिलाने १६ विवाह किये, सिर्फ इसलिये कि १६ पतियोंसे उसे रुपये और गहने मिले थे। पुलिसने शेषमें उस महिलापर व्यभिचारका मुकद्मा चलाया। क्या इससे भी बढ़कर घोर व्यभिचार हो सकता है? कदापि नहीं! यद्यपि आज भारतकी अत्यन्त गिरी अवस्था है, तथापि स्त्रियोंका पातिव्रत सम्बन्धी आदर्श इतना उन्नत है कि दुनियाके पर्देपर शायद ही कहीं वैसा दिखाई देता होगा। इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है! जो देश सावित्री, सती, सीताके पातिव्रत्यसे आज दिन भी परम गौरवान्वित है, जिस देशके इतिहासमें सुकन्याने, जो एक राज-कन्या थी, अपने वृद्ध पति च्यवन महर्षि-की अट सेवा की है, जहां आज दिन भी असंख्य पतिव्रतायें

दृष्टिगोचर हो रही हैं उस देशकी रमणियोंको इतनी छोटी दृष्टिसे देखना सभ्यताका परिचायक कभी नहीं हो सकता, क्योंकि यथार्थ सभ्यतामें गुणोंके ग्रहणका अंश कहीं अधिक रहता है।

पांचवां आक्षेप अछूत जातिके कायम करनेका है। पाचक-वृन्द! जिस फूटका बीज महाभारतके समय बोया गया था उसने अङ्कुरके रूपमें बढ़कर, शब्दवेधमें सिद्धहस्त दिल्लीश्वर पृथ्वीराज और कान्यकुब्जाधिपति जयचन्द्रके समयमें वृक्षका रूप धारण किया। शहाबुद्दीन महम्मद गोरीने आक्रमण कर इससे पूरा लाभ उठाया और तभीसे भारतकी राज्यलक्ष्मी विदेशियोंके हाथ आ लगी, एवं इसकी स्वतन्त्रताका सूर्य दीर्घ कालके लिये अस्त हो गया। जब विदेशियोंने अपना अधिकार इस देशपर जमा लिया उस समय यहांके लोगोंपर इतनी जबर्दस्ती की गयी कि भारतीयोंका अस्तित्व लुप्तप्राय होगा, यही सम्भावना होने लगी। यहांतक ही नहीं, बल्कि लोगोंसे शस्त्रके बलसे निषिद्ध और त्याज्य कर्म भी कराये जाने लगे। उसी समय जो जाति विड्वराहोंको पालकर उन्हें विष्ठा भोजन प्रत्येक गृहमें करा देती थी, उसीपर उसे उठानेका दबाव डाला गया और विड्-वराहोंका घरोंके पीछे छोटेसे मैदानोंमें जाना रोक, उसी जातिसे यह काम लिया जाने लगा। बस, अब क्या था, वह जाति महा निषिद्ध और अस्पृश्य समझी जाने लगी।

आजदिन भी जो लोग महा निषिद्ध काम करके अपनी

जीविका उपार्ज्जन करते हैं, यदि महात्मा योगेश्वर श्रीकृष्णचन्द्र-के बताये रास्तेपर चलें, तो अब भी उनका उद्धार हो सकता है, क्योंकि उन्होंने गीतामें स्पष्ट कहा है—

'उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥'

अर्थात् कोई भी व्यक्ति अपनेसे अपना उद्धार करे, अपनेको गिरावे नहीं, अपना आप ही बन्धु है और अपना आप ही शत्रु है।

शोकके साथ लिखना पड़ता है कि आजदिन इस देशमें व्यभिचारी, मद्यपी, चोर, डाकू, मिथ्यावादी, जुआरी, आलसी, भिखमंगे, हरामखोर और डाही, स्त्री-पुरुषोंकी संख्या कहीं अधिक है। यदि ये उक्त महात्माके बताये मार्गपर आकर अपने कुकर्मोंको छोड़ दें और नाना प्रकारके कला-कौशलोंपर पड़ें जिनके द्वारा अन्यान्य देश आजदिन धन-कुबेर हो रहे हैं, तो अपना ही नहीं, बल्कि अपने गिरे हुए देशका पूरा उद्धार कर सकते हैं और अपने कीर्त्ति-चन्द्रसे जगत्‌में प्रकाश फैला सकते हैं।

पाठकवृन्द! यूरोपीय रहन-सहनपर जबतक प्रकाश न डाला जाय तबतक आपलोगोंको कैसे ज्ञात होगा कि यूरोपीय लोग किस प्रकार परिश्रम कर अपने जीवनको नमूना बनाकर भूखण्डमें उच्च आकांक्षा रखते हैं। यूरोपमें सब जातियोंसे बढ़कर आजदिन अङ्गरेज जाति अपने आदर्श जीवनके कारण बहुत ही

उन्नत हो रही है। दुनियांके पर्देपर इसने जैसे जैसे काम करके इस समय दिखाये हैं इसका गौरव उनकी कष्ट सहिष्णुता—एक अलौकिक शक्ति—को है जिसके बिना किसी महान् प्रयत्नकी सफलता नहीं होती।

महात्मा ईसाकी मृत्युके अनन्तर, जिस समय ब्रिटेनके नामसे आजका इङ्गलेण्ड विख्यात था, इटालीके अन्तर्गत रोम देशके साम्राज्यका ही पश्चिमकी ओर दौरदौरा था। उक्त देशका एक वीर सेनापति जिसका नाम जुलियस सीजर था फ्रांस आदि और और देशोंको विजय करता हुआ नौका-समूह-पर चढ़कर ब्रिटेनमें पहुंचा और इन देशोंपर उसने अपना सिक्का ऐसा जमाया कि संसारमें रोम देशकी ही तूती बोलने लगी और पश्चिममें प्रायः और राज्य लुप्तप्राय हो गये थे। उस वीर सेनापतिकी कीर्त्ति-पिपासा इतनी बढ़ी कि स्पेन आदि देशोंपर भी उसने अपना अधिकार जमाया। यह सिद्धान्त है कि जिस देशका साम्राज्य फैलता है उसी देशका धर्म प्रधान-रूपसे शासित जनतामें स्थान पाता है और इसीका नाम धार्मिक क्रान्ति है। एवं तदनुसार ही रोमन कैथोलिक मूर्त्तिपूजक धर्म, जिसने रोम देशमें पूर्णतया प्रचार पाया था, इस विजित संसारमें व्याप्त हुआ। अब क्या था? अब तो इसी धर्मकी महिमा सर्वत्र दिखाई देने लगी और पाश्चात्य अथवा विजित संसार इसी धर्मसे दीक्षित हुआ। इसका प्रभाव राजा और प्रजा दोनोंपर पड़ा। इस धर्मके विधाता पोप लोग अपना प्रभाव फैलाने लगे

और वे ही सर्वमान्य हो गये। इन धर्मविधाताओंने यहांतक कहा कि जिसे भोगके साधन अपने साथ स्वर्ग ले जानेकी इच्छा हो वह व्यक्ति अपनी जिन्दगीमें मरणावस्थामें उन वस्तुओंको पोपके हवाले करे या अपनी इच्छा जाहिर करे और उसे एक मानपत्र-इस मजमूनका दे दिया जायगा कि अमुक व्यक्तिने इतने भोगके साधन महात्मा ईसाकी राहपर पोपकी सेवामें अर्पण किये हैं, और वह मानपत्र आसन्नमरण व्यक्तिकी समाधिमें उसके सिरहाने रख दिया जायगा, जिस प्रमाणके द्वारा वह व्यक्ति स्वर्गमें अपने साथ उन भोगके साधनोंको लेता जायगा। इस भांति पोपका दर्जा बड़ा ही पूज्य और शक्तिशाली होने लगा। जब कभी किसीपर दबाव डालना होता था तो वह पोपोंके द्वारा ही डाला जाता था।

यह एक प्राकृतिक नियम है कि अत्याचारी राज्यका शीघ्रही विनाश होता है; दूसरे शब्दोंमें, अत्याचार विनाशमें परिणत हो जाता है। इसका मुख्य कारण यह है कि अत्याचार करनेवाला अपनेको अवश्य अपराधी समझता है एवं अपराधी होनेके कारण उसके शरीरमें वर्त्तमान वे शक्तियां, जिनसे सात्त्विक भावोंका उद्गम होता है, नष्टप्राय हो जाती हैं। अब यथार्थ प्रसन्नता, जो सात्त्विक भावोंके उद्गमका फलस्वरूप है, एकदम लापता हो जाती है; इस प्रकार अत्याचारी आप ही अपनेको निर्बल समझने लगता है, पर क्रोधके वश उसे एकमात्र अत्याचारके और कुछ नहीं सूझता जिससे अत्याचार किये जानेवाले व्यक्तिकी

दशापर सभी तरस खाने लगते हैं और सबकी सहानुभूति और समवेदना उसी ओर प्रोत्साहित होती है।

वाचकवृन्द ! जब अपनी प्रबल स्वार्थ-साधनाके लिये रोमवासियोंने ब्रिटन लोगोंपर रोमाञ्चकारी अत्याचार किये उस समय इन लोगोंमें एकताका साम्राज्य था। शनैः शनैः रोमवासियोंकी इच्छा प्रभावशाली साम्राज्य-विस्तारकी ओर बढ़ती गई, और सैनिक बल, जो ब्रिटेनमें वर्त्तमान था, इधर उधर अन्य देशवासियोंको दबानेके लिये भेजा जाने लगा। बस, यही हेतु था कि ब्रिटेनमें रोमसाम्राज्यकी जड़ ढीली पड़ गयी। अब तो लुटेरे लोग बड़ी बड़ी लंबी नावें जिनमें ५० से १०० डांड़तक लगते थे, ले लेकर ब्रिटेनके किनारोंपर धावा करने लगे और रोमवासियोंकी चीजें, सामान, लड़के, लड़कियां और औरतों तकको, जहां कहीं पाते, ले जाने लगे और गुलामोंके बिकनेके बाजारों और हाटोंमें उनकी विक्रीतक होने लगी। इन लुटेरोंका अत्याचार यहांतक बढ़ा कि इन्हें दबानेके लिये जर्मनीसे जूट, सैक्सन और ऐंजिल्स लोग बुलाये गये। इन लोगोंने आक्रमणकारियोंसे तो युद्ध कर उन्हें दबाया, पर स्वयं ब्रिटेनमें बस गये और ब्रिटन लोगोंका वध कर उनकी जायदाद और स्त्रियोंपर कब्जा कर लिया। बचे बचाये ब्रिटन लोग वेलसकी ओर खदेड़े गये और आयर्लैंड तकमें जा बसे। अब ये विजेता लोग इङ्गलिशके नामसे प्रसिद्ध हुए और उन्होंने अपने पैर यहांतक फैलाये कि इनके नामसे ब्रिटेन इङ्गलैंड कहा जाने लगा।

यद्यपि साम्राज्यमें परिवर्त्तन हुए, पर धर्म एकमात्र रोमन कैथोलिक ही था। इसमें परिवर्त्तन न होनेका कारण यही है कि यह धर्म यूरोपमें सर्वत्र प्रचलित था और दूसरे धर्मकी वहां प्रवृत्तितक नहीं थी। अनन्तर कई शताब्दियोंके बाद, जर्मनीमें मार्टिन लूथर एक समाजका सुधार करनेवाला हुआ जिसने रोमन कैथोलिक मूर्त्तिपूजक धर्मके विरुद्ध अपने विचार प्रकट किये और उसी समयसे प्रोटेस्टेंट दल बढ़ने लगा। इस नवीन धर्मकी दिन दूनी, रात चौगुनी उन्नति देख साधारण मतावलंबी लोगोंके मनमें इसकी ओर घृणा प्रकट होने लगी।

राजा अष्टम हेनरीके समयमें प्रोटेस्टेंट मत निकास पाकर फैलने लगा। उक्त राजाकी आन्तरिक सहानुभूति इस नवीन धर्मके साथ थी, पर जाहिरा वे कैथोलिक मतके साथ ही थे। जब छठे एडवर्डके समयके बाद इनकी बड़ी बहन मेरीका राज्य-काल आया, जिनका विवाह स्पेनके राजकुमारके साथ हुआ जो इस नवीन धर्मका कट्टर शत्रु था, तो ऐसा जान पड़ा मानों नवीन धर्मकी जड़ ही काट डाली जायगी। कैथोलिक धर्मवालोंको प्रोत्साहित कर प्रोटेस्टेंट लोगोंका पीछा किया जाने लगा और ये लोग भागकर अपने बालबच्चोंके साथ नावोंपर समुद्रकी शरण लेने लगे। हा! ये अभागे जहां पकड़े जाते थे वहां जिन्दा जला दिये जाते थे। चाहे और कोई सबूत न मिले पर प्रोटेस्टेंट धर्मकी पुस्तिकाका मिलना ही किसी भी व्यक्तिके अपराधी होनेका पक्का प्रमाण था। उस समय कैथोलिक धर्मकी ओरसे जितना

अत्याचार किया जाता था उसकी सीमा नहीं थी। कालकोठरी जिसमें बन्द कर सूर्यके प्रकाशका दर्शनतक न करने देना और वायुके सेवनका लेशमात्र मौका न देना, एक मामूली बात थी।

मेरीके अनन्तर जब एलिजाबेथ महारानी हुईं, तब प्रोटेस्टेंट धर्म उनका शक्तिमान व साहाय्यकारी हस्तक्षेप पाकर द्वितीयाके चन्द्रमाके समान वृद्धिको प्राप्त हुआ। अंगरेज जातिने यथार्थ उन्नति इसी समयसे की है। इसके पहले ये लोग समुद्रके कुत्ते कहे जाते थे, मछलियां मारा करते थे, क्योंकि इन्हींके द्वारा ये अपना भोजन सम्पन्न करते थे और समुद्रके किनारे किनारे डाके डाला करते थे। ये लूटना और डाके डालना घृणित कर्म नहीं समझते थे, क्योंकि इनके मनमें ये कार्य वीरताके परिचायक थे।

फ्रूड साहबने 'सोलहवीं शताब्दीके सामुद्रिक मनुष्य' नामक पुस्तकमें ऊपर लिखी हुई बातोंका बड़ा ही विचित्र चित्र खींचा है, जिसे देखकर कैथोलिक धर्मके माननेवालोंकी उन्मत्तताने कहांतक सभ्यताकी सीमाका अतिक्रम किया—यह बात भलीभांति व्यक्त हो जाती है। उस समय ड्रेक और हौकीन्सने किस प्रकार साहस कर जलयात्रा की और स्पेन राज्यकी सम्पत्ति जो नौकापर लादकर वहां भेजी जाती थी, इन लोगोंने रास्तेहीमें लूट ली और महारानी एलिजाबेथने इन वीर पुरुषोंके कार्य्यका अनुमोदन किया, ये बातें भी उक्त पुस्तकमें सविस्तर दी हुई हैं। अफ्रिकामें नरबलिकी प्रथाके कारण

वहांके मनुष्योंने सार्वजनिक करुणाको अपनी दशापर आकृष्ट किया और इस पशुताके व्यवहारके कारण वे मनुष्य पशु समझे गये। तदनुसार, यदि उनसे खेतीका काम लिया जाय तो ये नरपशु बड़े कामके होंगे—ऐसे विचार यूरोपीय लोगोंके मनमें उठे और कार्य्यमें भी परिणत हुए।

संसारमें जब कहीं कुछ भी परिवर्त्तन होना होता है उस समय क्रान्ति उपस्थित हो जाती है; अर्थात् क्रान्तिसे ही परिवर्त्तनका युग आरम्भ होता है, चाहे वह क्रान्ति धार्मिक, सामाजिक अथवा आर्थिक ही हो। इस सिद्धान्तके अनुसार इंगलैण्डमें एक नवीन युगका आगमन हुआ। नवयुवक लोग वहांके नये रंगमें रंग गये, कलाकौशलकी ओर लोगोंकी तन, मनसे प्रवृत्ति हुई। सभ्यताकी चीजें दनादन बनने लगीं, व्यापार बढ़ने लगा, औपनिवेशिक राज्य दिन दूने रात चौगुने बढ़ने लगे, कष्टका स्थान सुखने पाया, प्रजातन्त्रकी फिर भी चल बनी, उन्नतिका शिखर प्रत्यक्ष हुआ, पर यथार्थ सात्त्विक आनन्द प्राप्त हुआ या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता।

जबतक कर्त्तव्य-बुद्धिका मस्तिष्कमें उत्थान नहीं होता तबतक कर्त्तव्यकी ओर जीवमात्रकी प्रवृत्ति नहीं होती। इस प्रवृत्तिने ही संसारके मध्यमें सरलताको कठिनताका उत्तराधिकारी बनाया है; अर्थात् जहां जहां कठिनता थी और उसका अनुभव कर लोग घबराते थे, वहां वहां कर्त्तव्यकी ओर प्रवृत्तिने उसके स्थानपर सरलताका राज्य स्थापित किया।

कर्त्तव्य-बुद्धि (Sense of duty.) ने अपनी ओर प्रवृत्ति कराकर भूखे जीवोंका भोजन सम्पादन किया, प्यासेको जल पीनेके उपाय बताये, गृहहीनको गृहके निर्माणका ढङ्ग बताया, जिसमें वह आनन्दके साथ अपना जीवन व्यतीत करे एवं और और आवश्यक वस्तुएं तैयार करनेके लिये प्रोत्साहन दिये जिनसे प्राचीन और अर्वाचीन समयकी अधिकांश वस्तुएं देखनेमें आती हैं और कितनी ही लुप्तप्राय हैं।

कर्त्तव्यकी ओर प्रवृत्ति करानेवाली कर्त्तव्य-बुद्धि मनुष्यमें उस समय उत्पन्न होती है जब उसे शारीरिक, सामाजिक व आर्थिक कार्य्य सम्पन्न करना अनिवार्य्य सा दीख पड़ता है। जबतक यह कार्य्य ऐच्छिक रहा करता है तबतक मनुष्य दिलो-जानसे कर्त्तव्यकी ओर प्रवृत्त नहीं होता। तब फलप्राप्तिका सुख उसे क्योंकर भोगनेको मिले।

शारीरिक कार्य्य सम्पन्न करनेके लिये संसारमें आयुर्वेदकी सृष्टि हुई है, जिसकी सहायतासे जीवनवृक्ष अंकुरसे पौधेके रूपमें विकास पाता हुआ अपने समयपर फल-पुष्पादि सम्पन्न हो कर्त्तव्य-बुद्धिकी ओर झुकता है और नाना प्रकारके उपकार, उदारता एवं सभ्यताके कार्य कर सांसारिक जीवोंको अपने उत्तमोत्तम फल-फूलोंका अकृत्रिम उपहार देता है। सामाजिक कार्य्य पूरे करनेके लिये वस्त्र, आभूषण आदि वस्तुएं धारण करना और भिन्न भिन्न सुविधाजनक तथा आराम देनेवाली चीजें तैयार करना जगतमें एक प्रथा सी हो गयी है। आर्थिक

कार्य्यके लिये ही विज्ञानकी उन्नति हुई है, जिसके द्वारा धूमशकट, धूमपोत, आकाशयान, टेलीफोन, बेतारके तार आदिकी उत्पत्ति हुई है जिनके द्वारा व्यापार करना, भिन्न भिन्न स्थानोंपर अधिकार जमाना, दूर देशकी यात्रा करना आदि अन्यान्य कार्य्योंका सम्पादन होता आता है।

यह कर्त्तव्य-बुद्धिका ही फल है कि जिस ओर अपने ध्यानको आप लगावेंगे उस ओर, यदि अध्यवसाय आपका ठीक ढंगपर जा रहा है, तो अवश्य, सफलता हाथ बढ़ाये आपको अपने मार्गपर ले जानेके लिये तैयार रहेगी। यदि इस सिद्धान्तको वाचकवृन्द! आप सिद्धान्त न मानें तो क्या दिखला सकते हैं कि दुनियाके पर्देपर, बगैर इस सिद्धान्तका आश्रय लिये किसी भी देशने उन्नति की है? इसीके अनुसार अङ्गरेज लोगोंने शनैः शनैः सब विभागोंकी उन्नति की है और यहांतक बढ़ गये हैं कि जिस ओर आप दृष्टि डालें उसी ओर इनका पराक्रमी हाथ दृष्टिगोचर होता है; अर्थात् ऐसा कोई भी विभाग नहीं जिसमें इन्होंने पूरी तरक्की न की हो।

इन दिनों संसारके जितने पराक्रमशाली राज्य हैं उनमें सबसे बढ़ा चढ़ा इङ्गलैण्ड है—यह बात एक स्वरसे सब लोग माननेके लिये तैयार हैं। इसके माननेका मुख्य कारण यही है कि इस देशने एकाङ्गीन उन्नतिका खयाल न कर सर्वाङ्गीण उन्नति की है, जिसकी बदौलत वह सब देशोंके सामने अपना मस्तक ऊंचा किये व छाती अकड़ाये खड़ा है। आज इंगलैंड-निवासियोंकी

आशालता लहलहा रही है! आज उन्हें उनके निरन्तर अध्यवसायका फल प्राप्त हो रहा है! आज वे अपने परिश्रमको फलीभूत होते देख फूले नहीं समाते! यदि ऐसी उन्नतिपर उन्हें आनन्द न हो, जिसपर संसार आनन्द मनाता और उन्हें बधाई देता है, तो यह अप्राकृतिक होगा। अप्राकृतिकताके दर्शन इस विश्वमें नहीं हो सकते। जो कुछ आपके दृष्टिगोचर है वह सब प्रकृतिके अनुकूल है, प्रतिकूल नहीं।

---

(२)
पाश्चात्य जीवन

पाश्चात्योंने मुख्यतया दो बातोंपर ध्यान रक्खा है जिनके बिना गार्हस्थ्य जीवन कठिन ही नहीं, बल्कि असम्भवसा हो जाता है। चाहे कुछ ही क्यों न करो, पर जबतक ये दोनों बात अमलमें नहीं लायी जातीं,सारा किया कराया मिट्टी है और किसी प्रकारकी उन्नतिकी आशा करना विडम्बनमात्र है। ये दोनों बातें कुछ नयी नहीं हैं बल्कि जबसे सृष्टिकी कल्पना है तभीसे कार्यरूपमें परिणत हैं; और तभी तो सृष्टिका विकास होता रहता है, अन्यथा ह्रासकी पग पगपर सम्भावना है।

वे दोनों बातें दो शक्तियां हैं जिनमें पहलीका नाम उपार्ज्जन अथवा लाभशक्ति है और दूसरीका नाम संरक्षण-शक्ति है। उक्त-

दोनों शक्तियां आपसमें अन्योन्याश्रय-संबन्ध बड़ी ही सघनताके साथ रखती हैं और एक दूसरीकी उपेक्षा कदापि नहीं करतीं बल्कि सदा सापेक्ष रहती हैं।

उपार्ज्जन अथवा लाभकी महिमा विश्वविदित है, जिसे सजीव निर्जीव दोनोंही उपलब्ध करते हैं। बगैर उक्त शक्तिके और तो और आहारतक नहीं मिलता, जिसके ऊपर जीवन निर्भर है। वाचकवृन्द सजीवके बारेमें इस शक्तिका परमोपयोग जान गये होंगे किन्तु निर्जीवकी बाबत उन्हें सन्देह होगा। सन्देहास्पद तो यह विषय कदापि हो ही नहीं सकता, क्योंकि आहार विहार विना जिस भांति शरीरयात्रा सिद्ध नहीं हो सकती, उसी प्रकार निर्जीवका भी प्राकृतिक जीवन इस उपार्ज्जन अथवा लाभशक्तिके बिना चलता दिखाई नहीं देता। उदाहरणके लिये किसी वृक्षको ही लीजिये। जबतक वह अपना भोजन प्राप्त नहीं करता तबतक लहलहाता नहीं। पत्थरके रूपमें जो मृत्तिका परिवर्त्तित हुई उसका एकमात्र कारण उसकी लाभशक्ति है। पत्थर उन कान्तिमान् व सौन्दर्य्यशाली रत्नोंमें जो परिवर्त्तित हुए, जिनके विना बड़े बड़े राजा महाराजाओंके किरीट मुकुट शून्य दीख पड़ते, रमणीरत्नोंका शृंगार शून्यप्राय जान पड़ता, वे अपनी उक्त शक्तिहीके द्वारा। इसीलिये उक्त शक्तिको सृष्टिकर्त्ताने सारी सृष्टिके लिये प्रदत्त किया है जिसमें सभी अपना विकास करें।

तदनुसार ही पाश्चात्य संसार उपार्ज्जन शक्तिकी प्राप्तिकी

और अत्यधिक सापेक्ष हो अपनी धुनमें मस्त रहा करता है और उक्त शक्ति प्राप्त कर अपना मुख उज्ज्वल करता हुआ सारे संसार की भलाई करता है। इसकी एक एक वैज्ञानिक बातपर दर्शकोंके मुखसे अनेक अनेक धन्यवाद निकलते हैं। सच है, कला-कौशलके बिना भौतिक संसारका काम उत्तम रीतिसे नहीं चल सकता।

यदि आज और जगहोंकी बात न चलाकर इस दीन भारतवर्षकी ही बात चलायी जाय और पाश्चात्य संसारकी उपार्ज्जन शक्तिका नमूना भारतीय नगरोंकी दूकानोंमें देखा जाय तो वाचकवृन्द! आप विक्रयार्थ रक्खी हुई चीजोंको देख फौरन खिल उठेंगे और आपके हृदयमें एक प्रकारका आनन्दोद्भास होगा; तब आप कहेंगे—वाह, ये चीजें कैसी उत्तम हैं! ये तो बड़े कामकी हैं! इनके बिना भौतिक संसारका चलना कठिन ही नहीं बल्कि एकदम असम्भव है!

ये दोनों शक्तियां, वाचकवृन्द! प्रकृतिदेवीके द्वारा जन्मके साथ ही साथ दी जाती हैं, किन्तु इनका विकास सत्संगतिके अधीन रहता है। जिसने सत्संगतिमें रहकर इन दो शक्तियोंका विकास कर पाया और तदनुसार कला-कौशलके मार्गका पथिक बना, तो फिर क्या कहना है! स्वयं देवता होकर पूजा जाता है और संसारमें अपना आदर्श इस प्रकार स्थिर कर जाता है कि वही आदर्श लोगोंके हृत्पट्टपर अंकित होता हुआ अपना प्रभाव जमाता है।

अलुमीनियमके बर्तन—यदि आजकल भारतीय गृहोंमें बरतने वाली किसी भी वस्तुको लीजिये तो सच्चा उदाहरण इन बातोंकी पुष्टिमें मिलेगा। व्यवहारके बर्तनोंमें लोटा, ग्लास, कटोरा, कटोरी, थाली यहांतक कि कड़ाही, करछुल, चमचा वगैरह प्रायः सभी बर्तन हैं जो पीतल, लोहा, कांसा, भरत अथवा तांबेके न होकर कम कीमतमें मिलनेवाली अलुमीनियम धातुके बने दिखायी देते हैं। ये बर्तन हलके, राखसे मंजनेपर साफ और खट्टी वस्तुओंके रखने योग्य निःसन्देह होते हैं। यद्यपि टूटनेपर इनकी कीमत बिलकुल नहींके बराबर रहती है तथापि इनसे समयपर बड़ा काम निकलता है। क्या आप जानते हैं कि यह अलुमीनियम धातु किस प्रकार तैयार की जाती है? कहते हैं कि इसे विज्ञानवेत्ता रासायनिक सहायता द्वारा बालूसे तैयार करते हैं और इससे असीम लाभ उठाते हैं। आज भारतमें उसकी इतनी खपत है कि विरला ही कोई ऐसा घर होगा जहां दस पांच बर्तन इसके बने हुए जर्मन सिलवरको मात न करते हों! धन्य रासायनिक विज्ञान! धन्य कला-कौशल!! धन्य परिश्रम!!!

वस्त्र—यह तो हुई बरतनेके बर्तनोंकी बात। अब वाचकवृन्द! जरा उन वस्त्रोंकी ओर दृष्टि डालिये जिनके द्वारा भारतीय अपनी लज्जा निवारण कर अपनी परम प्रतिष्ठा समझते हैं। ये वस्त्र तरह तरहके उत्तमोत्तम सूतोंकी रचनाके नमूने हैं जिन्हें भारतवर्षके समान मजदूर नहीं कातते, बल्कि दैवी सिद्धियोंके

समान कलें कातकर रख देती हैं। इतना ही नहीं वे मनुष्योंके समान उत्तमतासे वस्त्र भी तैयार कर देती हैं। तभी तो आज जहां देखिये पाश्चात्योंकी तूती बोल रही है। इसकी दिन दूनी और रात चौगुनी उन्नति दिखायी दे रही है। यथार्थमें वही देश संसारमें अपना मस्तक ऊंचा कर सकता है जो विज्ञान द्वारा मनुष्योंके अत्यधिक परिश्रमको कम कर देता है और कलोंके द्वारा शीघ्रतापूर्वक सभी काम लिया करता है। निःसन्देह ये वस्त्र देखनेमें सुन्दर, पहननेमें हलके और देशीकी अपेक्षा कम कीमतमें मिलते हैं पर ये अधिक दिन टिकते नहीं। दस बारके धोनेपर उनकी हालत बिगड़ जाती है और यदि पहननेवाला व्यक्ति दीन रहा तो उसे पुनः वस्त्रके खरीदनेकी जरूरत आ जाती है।

जिनकी तबीयत मखमल, साटन या रेशमी कपड़े पहननेकी है वे कीमतका ख्याल न कर सानन्द अपने दिलकी आरजू पूरी कर लेते हैं। खासकर इस दीन भारतको रमणियां किसी प्रकार अपनी इच्छाके अनुसार चमकीले कीमती वस्त्र पहनकर अपनेको धन्य मानती हैं। यह बात दूसरी है कि जितनी कीमत उनके खरीदनेमें लगती है उसका ख्याल करते हुए वे भड़कीले वस्त्र बहुत कम टिकाऊ होते हैं।

और चीजें—इसी प्रकार और और चीजें—अर्थात् जूते, टोपियां, पेयाशीकी चीजें, जेवर, नगीने वगैरह - पाश्चात्य संसार ऐसी तैयार करता है कि देखनेसे चित्त मुग्ध हो जाता

है! भड़कदार जूते किसका मन हरण नहीं करते! चटकीली टोपियां किसे ख्वाहिशमन्द नहीं बनातीं! ऐयाशीकी चीजें किसे स्वर्गका सुख लूटनेके लिये विवश नहीं करतीं! जेवर जिनकी कारीगरी ही देखकर लोग दंग रह जाते हैं, किसका मन नहीं चुराते! नगीने जिन्हें हम नकली कह सकते हैं, क्योंकि वे इमिटेशन (Imitation) कहलाते हैं, आज दिन भारतीय नागरिकोंके शरीरकी शोभा बढ़ा रहे हैं।

मोटर—आज दिन मोटरें प्रायः भारतकी सभी जगहोंमें दौड़ा करती हैं। एक स्थानसे मनुष्य वायु-वेगवत् दूसरे स्थानको शीघ्र चला जाता है। यद्यपि चढ़नेवालेको आराम होता है, क्योंकि वह बहुत जल्द अपनी ख्वाहिश पूर्ण करता है, पर दोनों ओर रास्तेके जो दूकानदार या राही हैं वे गर्दसे भर जाते हैं और हालत बुरी हो जाती है। इसी प्रकार साइकिलसे भी कम लाभ नहीं है, यदि चढ़नेवाला होशियार हो और बहुत सचेत होकर चलावे। पर यदि टूटनेपर लागतकी ओर ज़रासा भी ध्यान दिया जाय तो यही कहना पड़ेगा कि जो कुछ काम लिया गया वही क्या कम लाभ है जब कि जरूरत अच्छी तरह पूरी हुई है।

किस तरह हरएक काममें आराम मिलेगा इसपर पाश्चात्य संसारने भलीभांति अपनी बुद्धिकी प्रखरता दिखायी है और एकसे एक आरामकी वस्तुएं तैयार कर लोगोंको उनसे लाभ उठानेसे वञ्चित नहीं किया; बशर्ते कि लाभ उठानेवाला व्यक्ति रुपये खूब खर्च कर सकता हो। तात्पर्य यह है कि उक्त संसार

अपने कला-कौशल द्वारा आरामकी चीजें तैयार कर उनसे कई गुना लाभ उठाता है और इस प्रकार अपने देशको समृद्धिशाली बनाता है।

लैंप बाइस्कोप—भारतके धनी मानी लोगोंमें इनके कला-कौशलोंकी परिचायक चीजें प्रायः सभी दिखायी देती हैं। बड़े बड़े आलीशान महल व कमरे ऐसे ऐसे लैम्पोंसे सजे जाते हैं कि यदि एक सूई भी जमीनपर गिर पड़े तो सहज ही मिल जाती है। दीवारोंमें पाश्चात्य सभ्यतासूचक जो चित्र लगे हुए हैं उन्हें देखकर दर्शकोंके मनमें ऐसे ऐसे भाव उत्पन्न होते हैं कि थोड़ी देरके लिये वे अपनेको भूल जाते हैं। ऐसी मुग्ध करनेवाली शक्तिसे सम्पन्न उनकी चित्रोंकी कारीगरी हद दर्जेकी है! बाइस्कोप भी चित्र-प्रदर्शन ही है जिसमें चित्र लिखित व्यक्ति इशारेसे सारे काम करते हैं सिर्फ बोलते नहीं। यदि किसी प्रकार वे बोलने लग जाते तो आज निःसन्देह पाश्चात्य लोग एक प्रकारके सृष्टिकर्त्ता कहे जाते; क्योंकि उन व्यक्तियोंकी कार्रवाईसे सभी रसका आस्वादन किया जाता है।

फोनोग्राफ—इस दीन भारतके समृद्ध लोगोंके रंगमहलोंमें फोनोग्राफ भी इनके कौशलका अपूर्व प्रदर्शन है। जिस समय अच्छे अच्छे रेकर्ड गानेवाले कवियोंके गानेसे भरे चढ़ाये जाते हैं और आंखें बन्दकर बाजेसे जरा दूर जाकर सुननेवाला बैठता है, तो उसे ठीक वही आनन्द प्राप्त होता है जो उसे कविका गाना सुनकर प्राप्त होता है। मनोविनोदके लिये यह एक अच्छा

साधन है और परिश्रम करनेके बाद यदि इसका गाना सुना जाय तो निःसन्देह तबीयत बदल जाती है, चेहरेपर आनन्दका विकास दृष्टिगोचर होता है, मनकी मुरझायी हुई कलियां खिल जाती हैं। बेशक, यह बड़ी ही उत्तम कारीगरी है।

गाड़ियां—दिनोंदिन परिश्रम करते हुए पाश्चात्योंने जो गाड़ियोंके बनानेमें उन्नति की है उसे वाचकवृन्द हवाखोरीके लिये तरह तरहकी गाड़ियोंपर चक्कर मारते हुए अमीर उमरा लोगोंको देखकर ही जान सकेंगे। इसके लिये आपको बहुत दूर नहीं जाना होगा। कोई धनपात्र अपनी गाड़ीपर सवार होकर चला जा रहा है और रास्तेमें तरह तरहकी कहीं अच्छी बराबर, और कहीं ऊबड़खाबड़ सड़कें मिलती हैं, पर क्या ज़रा भी चढ़ाव उतारकी वजहसे कष्ट मालूम होता है? कदापि नहीं। क्योंकि पाश्चात्य देशकी बनी कमानी है और पहियोंमें रबर लगा हुआ है, फिर लचकके सिवा विशेष कष्ट ही क्यों होने लगा।

मोटरमें विभिन्नता—मोटरके जरिये आजकल जितने काम पाश्चात्य लोग लेते हैं शायद किसी जमानेमें न लिया गया होगा। मोटरकी लड़ाऊं, मोटरकी साइकिलें, मोटरकी छोटी छोटी डेंगियां इनपर चढ़नेवालोंको हदसे बेशी आराम पहुंचाती हैं जिसके उदाहरण पग पगपर भारतीयोंको मिलते हैं। तैरनेके लिये ऐसी ऐसी तैरनेवाली चीजें तैयार की जाती हैं कि जिनकी सहायतासे तैरनेवाले जलपर अपनी जबर्दस्त हुकूमत रखते हैं। क्या यह कम कारीगरी है? नहीं, कदापि नहीं।

सुन्दरताकी वृद्धि—किस प्रकार किस वस्तुकी सुन्दरता बढ़ेगी, इसपर पाश्चात्योंने बड़ा मनन किया है और तदनुसार काम करनेसे जरा भी पीछे पैर नहीं दिया। अपनी सुन्दरता वे यथार्थमें केशोंके द्वारा ही समझते हैं। पाश्चात्य सभ्यताके रंगमें सिरसे पैरतक रंगे लोग आगेसे पीछेको गायदुम केश कटवाते हैं और सुगंधित तेल जिसमें सेंटकी गन्ध भरी हुई है, लगाते हैं। उमदा साबुन लगाकर अपने शरीरके सर्वांगको धोकर बादमें सेंटसे सुवासित करते हैं और झीने वस्त्र पहन कर रंगरेलियां मनाते हैं। गलेकी शोभाके लिये गलबन्द—नेकटाई—चढ़ा रहता है और पैरमें गर्द न लगे इसलिये मोजे बराबर चढ़े रहते हैं।

घड़ी—आज दिन घड़ी रखनेका रवैया सभी जगह दिखायी देता है। इसके कई कारण हैं, पर मुख्य कारण समयका ज्ञान है। चाहे जिस फिर्केका मनुष्य हो, कितना दिन चढ़ा है या बाकी है,अथवा कितनी रात्रि बीत चुकी है या बीतनेको बाकी है, यह जाननेकी इच्छा उसके मनमें बनी रहती है। जिसके लिये उत्कट इच्छा होती है उसका आविष्कार या गवेषण अवश्यमेव होता है। बस, यही कारण है कि लोग ठीक समय जाननेकी इच्छासे ही घड़ियोंका आदर इतना अधिक करते हैं। ज्यों ज्यों इसका आदर बढ़ता गया त्यों त्यों यह बहुतायतसे तैयार की जाने लगी और इसपर लोगोंका प्रेम इतना बढ़ा कि अब तो बड़ीसे बड़ी घड़ीसे लेकर छोटीसे छोटी घड़ी कारीगरोंने तैयार की है।

और कहांतक कहा जाय, लोगोंके हाथ, गलेका गहनातक भी इससे खाली नहीं है, तभी तो हाथपर रिस्ट-वाच और जेबघड़ी होलचेनके साथ गलेका गहना बन गयी है।

छड़ी—छड़ीका हाथमें, कहीं जाने या टहलनेके वक्त, रखना लोग पसन्द करते हैं। इसके भी कई कारण हैं, पर मुख्य कारण आत्मरक्षा है। कोई कटहा कुत्ता वार न करे, कोई उचक्का झपटकर शरीरपरसे कुछ ले न भागे, शरीर दुर्बल होनेपर कहीं तलमलाकर चलता हुआ व्यक्ति गिर न पड़े, या कोई गाय या भैंस अथवा भेड़ या बकरी अपने सींगोंसे कुठांव कहीं ठोकर न दे दे, अथवा अन्धेरेमें ऊबड़खाबड़ ज़मीनका पता न मिलनेपर गिर जानेवाला चोट न खाय, इसीलिये लोग छड़ी या डण्डेसे इतनी मुहब्बत रखते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि यह बड़े ही कामकी चीज है। यदि पानीमें कहीं जाना हो, तो उसका भी पता यह लगा देती है। तभी तो आज बाजारोंमें यह नाना प्रकारकी दिखलायी देती है। कहीं सुन्दर मुठवाली बेतकी छड़ी है तो कहीं सींगोंकी जिसके अन्दर लोहेका अच्छा गज़ दिया हुआ है। आबनूसकी छड़ी कहीं विक्रयार्थ रक्खी है तो कहीं कहीं जंगली बांस या काठकी। तात्पर्य यह है कि एकसे एक अनूठी छड़ी जिसमें पाश्चात्योंके हस्तकौशल दिखलायी पड़ते हैं, आज भारतीय बाजारोंकी शोभा बढ़ाती हुई जहांसे यह आई है उसे धन-सम्पन्न कर रही है।

बिजलीका पंखा-बिजलीका पङ्खा भी आधुनिक समयमें बड़ा ही महत्त्व पा रहा है। इसका कारण यह है कि बड़े बड़े

आफिसोंमें जहां बहुतसे कर्मचारी लोग काम करते हैं और गर्मीका मौसिम आ जाता है तो खासकर पंखोंकी सख्त जरूरत होती है। एक एक कर्मचारीके ऊपर एक एक पंखा हिलानेवाला यदि रख लिया जाय तो उस आफिसको खर्चके बोझसे दब नहीं जाना पड़े; यदि एक साथ कर्मचारियोंके बैठनेका इन्तज़ाम कर झालरदार लटकते हुए पङ्खोंके चलानेके लिये एक एक खींचनेवाला भी रक्खा जाय, तो भी वह आफिस खर्चके भारको उठा न सकेगा। बस, इसीलिये जिसमें लोगोंको तरद्दुद न हो बिजलीके पङ्खोंका प्रचार हुआ है। पर याद रहे कि जैसे तैसे बने हुए पंखे उस कामको पूरा न कर सकेंगे,इसी कारण पाश्चात्योंने नये ढंगके परदार बिजलीके पंखे तैयार कर असीम लाभ उठाया है।

बिजलीकी रोशनी—जिन कारखानोंमें दिनकी अपेक्षा रातको ही अधिक काम हुआ करता है वहां रोशनीकी—ऐसी रोशनी जिससे खूब साफ मालूम पड़े और पैसा भी कम खर्च हो—सख्त जरूरत आ पड़ती है। यदि एक एक दीपक या लालटेन अथवा मोमबत्ती प्रत्येक कर्मचारीके हाथमें दे दी जाय तो सारा कारखानेका नफा तेल बत्तीमें ही गायब हो जायगा। फिर कारखानेवाले कारखाना कैसे चला सकेंगे। इसीलिये बिजलीकी रोशनी पाश्चात्योंने चलायी है, जिसके जरिये आसानी और कम खर्चमें आला दर्जेका काम होता है; हां, पहले सिर्फ बिजलीका एक खज़ाना बनाना पड़ता है।

ब्रश—स्वच्छताके विना जीवन-संग्राममें विजय प्राप्त करना एक दुराशामात्र है। जिसमें भलीभांति लोग स्वच्छताका पालन करें इसलिये मैल दूर करनेके कितने ही साधन पाश्चात्योंने प्रस्तुत किये हैं। इन साधनोंमेंसे एक ब्रश (Brush) भी है। सरके वाल झाड़नेमें, ऊनी कपड़े या मखमल या शाल दुशालोंके साफ करनेमें ब्रश बड़ा काम देता है। टोपियोंको धूपमें रखकर इससे झाड़ देनेसे एक वार उसकी आब नयी टोपीसी हो जाती है। जिन गहनोंमें मैल जकड़ा हुआ है उन्हें सोडेके पानीमें भिंगाकर चार हाथ ब्रशके लगानेसे वह गहना बिलकुल नया हो जाता है। और तो और जमीनतक वहारनेके काममें ब्रशने बड़ा काम किया है; जूतोंकी सफाई इसके विना जैसी होनी चाहिये वैसी कदापि नहीं होती। इसी वजहसे पाश्चात्योंने ब्रशको कई परिमाणमें तैयार किया है जिसके द्वारा ये निःसीम लाभ उठाकर अपने देशको सम्पन्न करते हैं।

छुरी कैंची—इसी प्रकार कतरनेके काममें रंग विरंगी कैंचियां और तराशनेके काममें तरह तरहकी छुरियां, जिन्हें पाश्चात्य जगत जन्म देता है, आज भारतीय गृहोंके अन्दर रमणियोंकी सन्दूकोंमें दिखायी पड़ती हैं। ये दोनों चीजें बड़ीही उपयोगी हैं और ये एक बड़ी भारी आमदनीका निर्माण करती हैं। धन्य वह देश है जो जरूरतके मुताबिक चोजोंको तैयार करता है और दुनियांकी जरूरत रफा करता हुआ एक अच्छी आय प्राप्त कर अपनेको समृद्ध करता है।

सूई पेचक—वस्त्रोंकी बड़ी महिमा है, क्योंकि ये लज्जा निवारण करते हैं। किन्तु यदि पोशाक तैयार करनेके साधन सूई और पेंचक या सीनेके मशीन न हो तो उसे तैयार करना असम्भव है; फिर लज्जा निवारण कौन करेगा ? धन्य है पाश्चात्य संसार जिसने उक्त सीनेवाले साधनोंको बनाकर औरोंको सुख दिया और अपना घर भरा।

चश्मे—जबतक सारी इन्द्रियां अपने काम कर सकती हैं तबतक इनकी उपयोगिता है,अन्यथा वे बेकार होकर सिवा कष्ट देनेके और कुछ नहीं करतीं। यों तो सभी इन्द्रियां अपने अपनेको बड़े कामकी सिद्ध करती हैं, पर नेत्रोंको उपयोगिता और इन्द्रियोंसे कहीं बढ़कर कही गयी है—कही गयी है क्या ! यह बात अनुभवसिद्ध है। जिस समय नेत्रोंपर किसी तरहका जरर आ पहुंचता है उस समय जीवन भारसा प्रतीत होने लगता है, क्योंकि नेत्रोंकी अमूल्यता सबपर विदित है। जब टाइपकी खराबी या केरोसन तेलके दोषसे, या ब्रह्मचर्य्यके अत्यन्त अभावसे नेत्रोंमें दृष्टि शक्ति कम हो जाती है तब बिना चश्मा (उपनेत्र) के काम चलना एकदम कठिन हो जाता है। इसलिये लोग चश्मा लगाते और जीवनका कुछ आनन्द पा जाते हैं। जैसे भूखेके लिये अन्न, प्यासेके लिये पानी, निर्धनके लिये धन, और दुर्बलके लिये बल है उसी प्रकार कमजोर नेत्रके लिये चश्मा है। तरह तरहकी कमानियोंके साथ ऐसे पेबलको लगाना जो दूरदर्शी और अदूरदर्शी हों, पाश्चात्य संसारका ही कार्य है, जिससे नेत्रशक्तिहीन

लोग अपूर्व लाभ उठाते हैं और उक्त जगत् मालामाल हो जाता है।

ताले—जिस समय मनुष्य असीम लाभसे अपने घरोंको भरने लगता है उस समय उपार्जित धन भलीभांति स्थिर होकर रहे यही सदिच्छा उस उपार्जन करनेवाले व्यक्तिकी रहती है और तदनुसार वह सुरक्षाके साधन ढूंढ़ने लगता है। सबसे बढ़कर सुरक्षाका साधन तो किसी सच्चे व्यक्तिको उस धनको रखवालीमें नियुक्त करना है, पर यदि कई स्थानोंमें धन हो अथवा धन वस्तुओंके रूपमें हो तो ऐसी अवस्थामें बहुतसे सच्चे व्यक्तियोंकी नियुक्ति—वह भी जगह जगहपर—खर्चका एक विशेष कारण है। जिसमें अंधाधुन्ध खर्चसे बचाव हो और धन भी सुरक्षित रहे इसीलिये पाश्चात्योंने तरह तरहके मजबूत ताले और लोहेकी आलमारियां और सन्दूकें तैयार की हैं जिनमें रखनेसे ही ईप्सित धनकी संरक्षा हो जाती है, सिर्फ कुञ्जी हिफाजतके साथ रखनी पड़ती है। इस जमानेमें तालोंकी व आलमारियों तथा सन्दूकोंकी बिक्री इतनी बढ़ीचढ़ी है कि ये चीजें एक खास रास्ता आमदनीका बनाती हैं।

सेफ-जिनकी सम्पत्तियां बहुत दूरतक फैली हुई हैं और जगह जगह नकद बिक्रीकी जमा रखनी पड़ती है और अग्निभयकी पग पगपर आशङ्का रहती है वहां उस हालतमें धनसंरक्षाकी समस्या और भी जटिल हो जाती है जब कि मुद्रायें सोने चांदीकी न होकर कागजके बने हुए नोटोंकी प्रचलित हैं। इस

घोर विपत्तिका सामना करनेके लिये पाश्चात्य जगत्ने 'फायर प्रूफ' लोहेके सेफ तैयार किये जो आगमें जलनेतक नहीं और उनमें रक्खे हुए नोट उसी भांति सुरक्षित रहते हैं जैसे कि तहखानोंके अन्दर। इन सेफोंसे कम लाभ नहीं होता, क्योंकि शायद ही कोई ऐसा लक्ष्मीपात्र व्यक्ति होगा जिसके घरमें दो चार सेफ न हों।

लालटेनें—अन्धकारके नाश करनेके मुख्य उपाय सूर्य्यदेव अथवा अग्निदेव हैं। यह बात बिलकुल प्रत्यक्षसिद्ध है, क्योंकि यदि यह दैनिक घटना कही जाय तो इसमें यथार्थताके सिवाय अत्युक्तिका लेशमात्रतक नहीं है। जबतक सूर्य्यदेवका प्रकाश वर्त्तमान रहता है तबतक तो अन्धकार फटकने नहीं पाता; पर हां, ज्योंही वह अस्ताचलावलम्बी हुए कि इसने शनैः शनैः अपना अटल राज्य जमाना प्रारम्भ किया। यह घटना प्रायः रात्रिमें होती है जब चन्द्रदेवके दर्शन नहीं होने पाते; अन्यथा इसकी हासकी दशा रहती है। पहली हालतमें अर्थात् चन्द्रदेवके दिखलाई न देनेपर अग्निदेवके प्रकाशके सिवा दूसरा कोई चारा नहीं। इन्हीं अग्निदेवके प्रकाशको यथेष्ट रूपमें वृद्धि करनेके लिये पाश्चात्य संसारने तरह तरहकी रंग बिरंगी लालटेनें तैयार की हैं, जिनके शीशे सभी तरहके मोटे पतले होते हैं व रङ्ग उनके बड़े आकर्षक होते हैं। घटाने बढ़ानेवाली पेंचसे घुमाकर बत्तीको कम बेशी भी कर सकते हैं। इन लालटेनोंके द्वारा उक्त जगत् कम लाभ नहीं करता।

हाथकी पंखियां—जब ग्रीष्म कालका आगमन होता है उस समय उष्ण कटिबन्धवाले देशोंमें ठंढी हवा पैदा करनेके साधनोंका जितना आदर होता है उतना अन्यका नहीं होता। इन्हींमें से पंखा भी एक है जिसके विना काम नहीं चलता, यहांतक कि कहीं जानेपर छोटे छोटे पंखे स्त्री पुरुषोंके हाथके भूषण रहते हैं। सौन्दर्य्यकी महिमा विचित्र है। इसीका नाम आकर्षणशक्ति है। जिसमें भलीभांति वायुसेवन भी हो और आकर्षण भी बना रहे, इसीलिये पाश्चात्योंने ऐसी ऐसी मोहनी पंखिया तैयार की हैं कि देखने ही मात्रसे चित्त अपने काबूके बाहर हो जाता है और ये कम लाभमें परिणत न हो एक विशाल आय खड़ी कर देती हैं।

छाते—धूपसे व वर्षासे समयपर बचनेके लिये छातेकी सृष्टि मनुष्यजातिने की है। इसके द्वारा जो आराम गर्मी व बारिशके दिनोंमें होता है उसे हरएक आदमी अनुभव करता है। परन्तु छाता ऐसा होना चाहिए जो वजनमें बहुत भारी न हो; खोलने, बन्द करनेमें आसानीके साथ खुल व बन्द हो सके। इस जरूरतको पूरी करनेके लिये पाश्चात्योंने कैसे कैसे उत्तमोत्तम छाते तैयार किये हैं जिन्हें देखते ही मन प्रफुल्लित हो जाता है, और जब उनके द्वारा ईप्सित कार्य्य सम्पन्न हो जाता है उस समय धन्यवाद व आनन्दके अश्रु प्रवाहित होते हैं। इनकी खपत आज दिन भारतवर्षमें कहीं अधिक है और तदनुसार वे कम आमदनीके साधन नहीं हैं।

होल्डर पेन—लिखनेके कलमोंका पाश्चात्य जगत्ने कम प्रचार

नहीं किया है,जिनके द्वारा लेखनकला भलीभांति सिद्ध होती है। ऊपरका अंश होल्डर कहलाता है क्योंकि वह नीचेके अंश निबको पकड़े रहता है। होल्डर प्रायः काठके होते हैं, पर शीशे, हड्डी आदिके भी वे बहुत सुन्दर बनते हैं। निब लोहे, तांबे, पीतल व जस्तेकी बनी हुई होती है और तुरत होल्डरमें लगाकर लिखनेके काममें आती है। इन कलमोंका समधिक प्रचार भारतवर्षमें पाया जाता है। इनके अलावे परकी लेखनियां भी चली हुई हैं जिन्हें छुरीसे तराशकर लकड़ी या कंडेके कलमोंके समान बना लेते हैं और काम चलाते हैं। इनके द्वारा भी उक्त संसार कम आय नहीं प्राप्त करता।

फौंटेन पेन—जब लिखनेके साथ हद दर्जेका प्रेम उत्पन्न हुआ तब पाश्चात्य जगत्ने मसी और लेखनीको एक साथ रखनेका निश्चय किया और तदनुकूल 'फौंटेन पेन' की सृष्टि की गयी। इसके ऊपरी भागमें रोशनाई रहनेका खजाना बना और निचला हिस्सा जिसमें निब लगी है, एक स्याही आनेवाले सङ्कीर्ण मार्गसे युक्त किया गया। फिर क्या कहना! एक अनूठा लिखनेका उपकरण तैयार किया गया। जिसमें रोशनाई छलककर न गिरे, इसलिये उक्त लेखनोंमें एक अटकानेका साधन लगाकर उसे और भी महत्त्व दिया गया। इन कलमोंके कई प्रकार हैं जिनसे आज भारतवर्षके पाश्चात्य शिक्षाप्राप्त लोग अपनेको धन्य मानते हैं। इन लेखनियोंके द्वारा उक्त जगत् बड़ी भारी आमदनी करता है और अपना व्यापार बढ़ाता है।

खिलौने—छोटे छोटे बच्चोंके प्रसन्न रखनेके लिये, जिसमें वे अपनी माताओंको गृह-कार्यमें कुछ समयके लिये संलग्न रहने दें, कुछ मनोरञ्जनकी आवश्यकता है। मनोविनोदकी सामग्रियोंका निर्माण करते हुए जैसे जैसे क्रीडनक (खिलौने) पाश्चात्य जगत्‌ने बनाये हैं उन्हें देखकर ही कोई भी सहृदय व्यक्ति मुक्त-कण्ठसे उसकी प्रशंसा किये बिना न रहेगा। प्रशंसा क्यों न की जाय जब कि निर्जीव खिलौने आकार प्रकार द्वारा सजीवसे जान पड़ते हैं; और कोई कोई तो यंत्र द्वारा सम्पन्न की गयी अपनी सजीवताके कारण अङ्ग-चालन भी करते हैं, नेत्रोंको फेरते हैं, हाथोंमें दी हुई झांझ भी बजाते हैं, जिनके कौतुकको देखकर ही बच्चे कुछ देरके लिये अपनी माताओंको भूलसे जाते हैं। क्या इन खिलौनोंकी विभिन्नताकी ओर पाठकवृन्द! आपने ध्यान दिया है? जो वस्तु सृष्टिमें दिखायी देती है ये खिलौने उसीकी नकल हैं, उसीका छोटा कृत्रिम रूप धारण कर मनोमोहन करते हैं। क्या इनके द्वारा उक्त संसार कम आमदनी करता है? नहीं! यह आय ऐसी होती है जिसके द्वारा यह एक अच्छा व्यापार कहा जा सकता है।

सजावटके उपकरण—जब लोग सब कामोंसे निश्चिन्त होते हैं और भोजनादि करके आराम करते हैं उस समय कुछ तत्त्वोंके प्रति अभिरुचि उत्पन्न करनेवाले पदार्थ सामने आवें, अथवा मनोरञ्जन भलीभांति हुआ करे—ऐसे ऐसे विचार उनके मस्तिष्कमें उत्पन्न होते हैं। उसी समय उनका अपने अपने घरोंकी सजावटकी ओर

ध्यान आकृष्ट होता है। यह बात प्राकृतिक है,कुछ बनावटी नहीं। तदनुसार पाश्चात्य जगत्की बनाई हुई सामग्रियां सजावटका काम दे रही हैं। बड़ी ही अच्छी अच्छी हांड़ियां और कूंड़ियां, शीशेकी बनी दीवालगीरें और लटकानेके लट्टू, रंग बिरंगी भाड़ व बैठकें, निर्जीवताको भी सजीवतामें परिवर्तित करनेवाली तस्वीरें लोगोंके घरोंकी सजावटका उपकरण हो रही हैं। 'ऐसे घरोंके अन्दर जाते ही स्वर्गसुखकी याद आती है और इन थोड़ेहीसे उपकरणों द्वारा उसका कुछ अनुभव किया जाता है। क्या इन साधनोंसे कुछ कम लाभ होता है? नहीं! एक बड़ी भारी आय इनके द्वारा सम्पन्न होती है।

छुरे—आत्मरक्षाके कारण पाश्चात्य संसार ऐसे ऐसे साधनके निर्माण करनेमें जरा भी नहीं चूका जिनके द्वारा भलीभांति आत्मरक्षा सम्पन्न की जा सके। तदनुसार चन्द्रमा सी चमकवाले,चकाचौंध मचानेवाले छुरे उक्त जगत्ने बनाये जिन्हें हाथमें लेते ही शत्रुका सामना करना बहुत ही सरल हो जाता है, यदि उसका ग्रहण करनेवाला व्यक्ति साहसी, चतुर व धीर है; अन्यथा उसके द्वारा अपनी ही हानि संभव है। इन छुरोंके द्वारा असीम लाभ होता है, क्योंकि लोग अपनी रक्षाके लिये इन्हें खरीदते हैं और हिफाजतसे रखते हैं।

उस्तरे—बालोंको मूड़नेके लिये जब उपाय ढूंढ़ा जाने लगा उस समय उस्तरोंकी सृष्टि हुई। तरह तरहके उनके बेंट बने और अच्छे अच्छे फाल; फिर तो बालोंके मूड़नेका काम इनके

द्वारा भलीभांति सम्पन्न होने लगा। यद्यपि काम चलता था, परन्तु इसकी बनावटमें हेर-फेर कर इसको उन्नत अवस्थापर लाना यह पाश्चात्य ही जगत्‌का काम था। इस जगत्‌ने इसे ऐसा बना दिया जिसमें सब लोग बगैर देखे, अन्दाजसे ही इसका प्रयोग करें और पेंच खोलकर इसपर सिल्ली भी दे लें। यह अद्भुत उस्तरा बड़े कामका है और इसके द्वारा उक्त जगत्‌को असीम लाभ होता है।

बाल काटनेकी कल—तरह तरहकी कैंचियोंके द्वारा हजाम लोग बाल काटते चले आते हैं। पर जिसमें बाल एकदम बराबर कटें इसके लिये चतुर हजामकी जरूरत पड़ती है। इस जरूरतको दूर करनेके लिये एक कल ऐसी पाश्चात्योंने निकाली है जिसके द्वारा अनारीसे अनारी व्यक्ति भी बाल काटनेका काम उत्तमोत्तम रूपसे सम्पन्न कर सकता है, क्योंकि उस कलमें कैंची और कंघी दोनों लगी हुई हैं। ये बाल काटनेकी कलें कुछ कम लाभको चीजें नहीं हैं, जिनके द्वारा उक्त जगत् असीम व्यापार बढ़ा रहा है और अपनी कलाओंका परिचय दे रहा है।

घास काटनेकी कलें—इन दिनों अङ्गरेजी बंगलोंका रवैया चारों ओर देखा जा रहा है और उनके चारों ओर ऐसे मैदान हैं जिनमें हरी हरी घास क्या ही सुहावनी मालूम पड़ती है। पर जिस वक्त घास बढ़ जाती है उस वक्त बंगले जंगलके बीचमें खड़ेसे जान पड़ते हैं और बढ़ी हुई घासकी वजहसे उन बंगलोंमें रहनेवाले व्यक्तियोंको मच्छड़, कीट, पतङ्ग, दंश आदि बहुत

कष्ट देते हैं। इस कष्टको दूर करनेके लिये पाश्चात्य जगत्‌ने एकसे एक बढ़िया कलोंको तैयार किया है जिनके द्वारा घास काटी जाती है और एक बड़ी आमदनी पैदा की जाती है।

आइना—इस जमानेमें किसी चीजको सुन्दर और सुडौल बनाना व उसकी मनोहरताको इतना बढ़ाना कि जिसमें लोग उसे लेनेपर टूटें, यह पाश्चात्य सभ्यता अपना मुख्य कर्त्तव्य समझती है। तदनुसारही आज मुंह देखनेके रंग विरंगे आइने बाजारोंमें दृष्टिगोचर होते हैं। ये आइने छोटे बड़े सभी तरहके बनते हैं जिनके द्वारा धन-कुबेरोंके महल अमरावतीकी समता करते हैं। यह तो हुई बड़े आइनेकी बात, पर छोटे आइने भी कम आमदनीके कारण नहीं, क्योंकि इनकी कदर थोड़ी कीमतकी वजहसे सभी करते हैं और इसीलिये क्या पुरुष और क्या रमणी सभी इन्हें अपने शयनागारमें—या यों कहिये कि सब समय—पास ही रक्खा करते हैं। इसीका नाम है व्यापार द्वारा अपने देशको समृद्ध करना।

छापनेके साधन—किसी भी एक लेख या ग्रन्थ अथवा पुस्तक-मालाकी नकल कराना या करना एक कठिन परिश्रम है, क्योंकि प्रथमबार उसके लिखनेमें जो करना पड़ता है वही बात द्वितीय और अन्यान्य कई बार करनी पड़ती है। प्यारे वाचकवृन्द! यदि किसीको एक प्रति लिखनी पड़ती है तो उसीमें उसके छक्के छूट जाते हैं और लेखक घबड़ाकर सौ, हजार या लाखकी संख्यामें किसी भी पुस्तककी नकल नहीं कर सकता।

सच तो यह है कि उसे पिष्टपेषण यानी पीसेको पीसनेमें जरा भी आनन्द जान नहीं पड़ता। दूसरी बात यह है कि हाथसे लिखनेमें अशुद्धियोंका होना प्रायः संभव है जिन्हें हटाकर किसी भी ग्रन्थको शुद्ध प्रकाशित करना सभी चाहते हैं। जिसमें भली भांति शुद्ध प्रकाशन हो और वह अधिक व मनोनुकूल संख्यामें हो, इसके लिये छापनेके साधनोंकी सृष्टि पहले पहल चीनमें हुई; पर मशीनोंके द्वारा जो इन साधनोंको एक वृहत् व शीघ्र कार्यसाधक रूप दिया गया वह पाश्चात्योंकाही प्रभाव है। फिर कहना क्या, चाहे जैसी पुस्तकें हों असंख्य छपती चली जा रही हैं और जगत्‌की भलाई पुस्तकों व लेखोंद्वारा ऐसी होती जाती है कि सभी इसके लिये पाश्चात्योंको धन्य कहे बिना नहीं रहते। छापनेके साधनोंद्वारा जो लाभ पाश्चात्य संसारको होता है वह एक बड़ी पूंजीका निर्माता है।

टाइप करनेकी कल—पाश्चात्य सभ्यताके कारण उन्हींकी भाषाने सर्वत्र स्थान पाया है। हस्तलिपिको अशुद्धता व विभिन्नतासे भरी जान, आजदिन सरकारी अदालतोंने टाइप की हुई दर्ख्वास्तोंका अङ्गीकार करना जारी कर दिया है। इसलिये यह कल जिसे पाश्चात्योंने चलाया है आजदिन कचहरियोंहीमें क्या, जहां जहां पाश्चात्य भाषामें काम होता है, वहां वहां सर्वत्र इसका आधिपत्य है। इसकी जो खपत भारतवर्षमें है उससे और अन्यान्य जगहोंकी खपतोंसे पाश्चात्य देश अपरिमेय आर्थिक लाभ करते हैं।

पानीकी कलें—जलके लिये लोग कूंआके प्रचारके पहले नदियोंकाही आसरा रखते थे। पर जबसे कुंए खोदवाये जाने लगे तबसे नदियोंके अलावे उनके द्वारा भी जलका कार्य्य सम्पन्न होने लगा। जिसमें भरने व लानेमें कष्टोंका सामना करना न पड़े, इस विचारसे नदियों, तालाबों या कूओंके साथ नलोंका सम्बन्ध किया गया जिनके द्वारा निहायत आसानीसे जल लानेका कार्य्य पूरा हुआ। इनके द्वारा भी एक बड़ी भारी आमदनी पाश्चात्य लोग करते हैं और असीम लाभ उठाते हैं।

पानी छींटनेका प्रबन्ध--बड़े बड़े नगरोंमें जहांपर रातदिन घोड़ागाड़ियां चला करती हैं, मोटरकारें धूम मचाये रहती हैं सड़क इस प्रकारकी हो जाती है कि जहां देखिये वहीं गर्दकी भरमार रहा करती है। फिर तो यदि एक भी घोड़ागाड़ी या मोटरकार आयी कि बाजारकी दोनों ओरकी दूकानें और साथही बेचनेके लिये रक्खी हुई उनकी चीजें एकदम गर्दसे भर जाती हैं। बेचारे दूकानदारको झाड़ते पोंछते नाकों दम आ जाता है। इस असुविधाके दूर करनेके लिये पहले भिश्ती लोग पानी छींटा करते थे, बादमें बैलगाड़ियोंने यह काम करना प्रारम्भ किया, पर इन साधनोंसे यथार्थ काम होते न देख पाश्चात्योंने पाइप लगाकर जल छींटनेका उत्तमोत्तम प्रबन्ध किया जिसके द्वारा पानी छींटनेका यथार्थ काम होता है व गर्दा मिट जाता है। इसके द्वारा कुछ कम लाभ नहीं होता।

अन्न पीसनेकी कल—मामूली कामोंके करनेके लिये जिसमें मनुष्यजातिको अधिक श्रम न करना पड़े पाश्चात्योंने नयी नयी चीजें ईजाद की हैं। उदाहरणके लिये अन्न पीसनेकी कलको लीजिये; जितनी देर मनुष्य-जातिद्वारा अन्नके पीसनेमें लगेगी उससे बहुत ही कम समयमें अधिकसे अधिक अन्न पीसा जाता है और मेहनत तथा पैसेकी भी खासी बचत होती है। क्या पाश्चात्योंने इस अनूठी कलके द्वारा कम लाभ उठाया है? नहीं, कहीं अधिक।

सुरखी पीसनेकी कल—जिस वक्त बड़े बड़े आलीशान मकान बना करते हैं उस वक्त पिसा हुआ मसाला अधिकाधिक परिमाणमें दरकार होता है। बगैर इसके तेजीसे काम नहीं बढ़ सकता; इसलिये महीन सुरखी तैयार करनेके लिये पाश्चात्य-जगत्‌ने बड़ी बड़ी चक्कीवाली कलें ईजाद की हैं जिनके द्वारा यह कार्य्य थोड़े श्रमसे सम्पन्न हुआ करता है। इसके द्वारा उक्त संसार खासी आमदनी करता है और सभ्यतामें नाम मारे हुए है।

दवातोंकी विभिन्नता—प्रायः मनुष्यजातिमें लिखनेका काम पड़ा करता है और लेखनीके अलावा सुसम्पन्न मसीभाजन जबतक न हो तबतक सिर्फ कागज या कलमके द्वारा कुछ भी काम नहीं चलता। जिसमें रोशनाई भलीभांति रक्खी जा सके इसलिये तरह तरहकी दवात पाश्चात्य जगत् बनानेमें नहीं चूका। और इस कौशलके द्वारा इसे समधिक आय होती है।

डिब्बे व डिब्बियोंकी विभिन्नता—किसी वस्तुको रखकर यदि कहीं ले जाना होता है तो छोटे उपकरण—डिबियोंकी और बड़े उपकरण—डिब्बोंकी जरूरत मनुष्य-जातिको होती है। तदनुसार इन उपकरणोंकी सृष्टि भी उक्त जातिने की; पर इन उपकरणोंको वस्तुओंको विभिन्नता तथा परिमाण व कद्के अनुसार तैयार करना और उन्हें यथार्थ सौन्दर्य्यका स्वरूप प्रदान करना कुछ पाश्चात्योंके ही बांटमें पड़ा है। तभी तो आज जिस बाजारमें देखिये उसी जगह ये चीजें मनोहर रूपमें बिका करती हैं। इनके द्वारा पाश्चात्य लोगोंको एक बहुत बड़ी आय होती है।

सन्दूकोंकी विभिन्नता—चीजोंके रखनेके लिये मनुष्यजातिको एक ऐसे उपकरणकी आवश्यकता होती है जिसमें सब चीजें सुरक्षित रह सकें, क्योंकि सभी चीजें सुरक्षाके बिना खराब हो जाती हैं और काम लायक नहीं रहतीं। इसी सुरक्षाके अर्थ भिन्न भिन्न प्रकारके सन्दूक—क्या छोटे क्या बड़े—बाजारोंमें बिक्रीके लिये रक्खे रहते हैं। ये पाश्चात्योंद्वारा बनाये गये हैं और इनके द्वारा एक खासी आय होती है।

तरह तरहके बाजे—मनोविनोदके लिये जिसमें कानोंको सुख जान पड़े भांति भांतिके बाजोंकी पाश्चात्योंने सृष्टि की है। जिस समय मित्रमण्डलीके बीच हारमोनियम, पियानो, फोनोग्राफ इत्यादि बाजे बजते हैं उस समय जैसा मनोविनोदके साथ उनका सत्कार होता है वह अकथनीय है। इन वाद्य विशेषज्ञोंके

द्वारा उक्त जातिने जो व्यापार बढ़ाकर लाभ किया है उसे देख व्यापारी-जगत् आश्चर्यान्वित हो रहा है।

दमकलें—जिस समय किसी भी स्थानपर आग लगती है उस समय वहांकी परिस्थिति इतनी भीषण हो जाती है कि लोग 'त्राहि त्राहि' पुकारने लगते हैं, क्योंकि जीवनमें सुख देनेवाली सामग्रियां, नहीं नहीं, परिवारके व्यक्ति लोग भी जिसमें न जलें यही वहांके निवासियोंकी कामना रहती है; तदनुसार जलद्वारा विच्छेदन द्वारा वहांके रहनेवाले उस अग्नि-भयको दूर करते हैं पर यह कार्य्य शीघ्र सम्पन्न नहीं होता। इसके लिये पाश्चात्य संसार दमकलोंके बनानेमें नहीं चूका और इसके निर्माणद्वारा एक खासी आमदनी बना ली।

• *टेलीफोन*—शीघ्रताके साथ जिसमें एक स्थानसे कोई व्यक्ति दूसरे स्थानपर किसी भी व्यक्तिके साथ सुसम्बद्ध भाषण कर ले इसलिये पहले पहल लड़कोंने खेलके ढंगपर सूतके द्वारा तारबर्की बनायी। कुछ दूरपर वक्ता और श्रोता दोनों खड़े होकर अपने अपने हाथोंमें एक एक चोंगा लिये अपने मुंह, कान लगाये रहते थे और ये दोनों चोंगे सूत द्वारा, छेदके साथ जो इनके बीचमें बनाया जाता था, संबद्ध रहा करते थे। इस प्रकार अपने अपने अभिप्रायको ये दोनों कह सुनकर उसे एक विनोदकी सामग्री जानते थे। यह खेल लड़कपनमें हमलोग खेला करते थे, जिस समय टेलीफोनकी सृष्टि नहीं हुई थी। पर इसे यथार्थ रूप देकर इसके द्वारा असीम लाभ उठाना कुछ पाश्चात्योंके ही हिस्से

पड़ा, और यह जाति इस समय इससे दिन दूना रात चौगुना नफा करती है।

टेलीग्राफ—दूर दूरसे जिसमें खबर मिले, इसलिये टेली-फोनका रूपान्तर टेलीग्राफ तैयार किया गया। फर्क इतना ही है कि पहलेसे बोलकर व सुनकर काम लिया जाता है और दूसरेसे खटखटाकर व आवाज सुनकर और लिखकर। खटखटाने और सुनकर लिखनेकी जगहोंपर तारोंसे सम्बद्ध सूतकी डोरियां साथ ही खटखटानेका काठवाला यन्त्र रहता है। इसीपर हाथ रखकर खटखटाना पड़ता है, जिसे सुनकर ही और जगहका कर्मचारी लिख लेता है, क्योंकि खटखटानेमें भी संकेत है और यही संकेत अक्षरों और शब्दोंमें परिणत हो जाता है। ये तार जिसमें गिर न पड़ें,इसलिये दृढ़ खंभोंपर बनी हुई अनेक खूंटियोंसे लिपटे रहते हैं। इसके द्वारा पाश्चात्य जगत् एक बड़ी भारी आय कर लेता है। ठीक है, दामके दाम और मुफ्तमें काम!

वायरलेस टेलीग्राफ–इससे भी बढ़कर बेतारका तार इन दिनों चल रहा है। बेशक यह आविष्कार बड़ा ही आश्चर्यजनक है। बड़े बड़े बुद्धिमानोंकी अक्ल काम नहीं करती, क्योंकि इसमें सिवाय श्रोता और वक्ताके पास एक यन्त्रके किसी तरहकी लाग नहीं है, इसी यन्त्रके सहारे दोनों आपसमें बातचीत कर लेते हैं। यह यन्त्र एक दूसरेसे सम्बद्ध नहीं है। अभी इसके द्वारा केवल पाश्चात्य जगत् ही लाभ उठा रहा है। जनसाधारणके लिए इससे लाभ उठानेका हुक्म आविष्कारक लोग नहीं देते,

अथवा आविष्कारक लोग पाश्चात्योंसे जब अपने आविष्कारका मूल्य ले लेते हैं तो ऐसी अवस्थामें आविष्कारपर उनका स्वत्व ही क्या है।

रेलगाड़ियां—एक जगहसे दूसरी जगह जाने या कुछ भेजनेमें पहले गाड़ियों द्वारा काम लिया जाता था। ये गाड़ियां बैलोंकी, घोड़ोंकी या ऊंटोंकी होती थीं। सिवाय इस उपायके लोग उन जानवरोंपर ही लादकर चीजें भेज दिया करते थे। पर पाश्चात्योंने इंजिनका निर्माण कर उसके भीतर-गरम पानीके बलसे काम लेना शुरू किया और चलाने व रोकनेके साधन तैयार कर लोहेकी पटरियें और मजबूत गाड़ियोंतकके बनानेमें अटूट परिश्रम किया। तभी तो आज इन रेलगाड़ियों द्वारा पाश्चात्य जगत् मुसाफिरोंको दूर दूर पहुंचाकर एक बड़ी भारी आमदनी कायम करता है और एक जगहका माल दूसरी जगह पहुंचाकर उसके द्वारा असीम लाभ उठाया करता है।

जहाज—जो काम स्थलमें रेलगाड़ियों द्वारा होता है वही काम जलमें जहाजोंके द्वारा सम्पन्न किया जाता है। इनमें भी लोग बैठकर और माल लादकर एक जगहसे दूसरी जगह आराम-के साथ ले जाते हैं। यदि दूर ले जानेके ये साधन नहीं रहते तो अधिकाधिक परिमाणमें चीजें एक जगहसे दूसरी जगह ले जाना बड़ा ही कठिन व असम्भव होता। ये जहाज कुछ कम आमदनीके जरिये नहीं; बल्कि इनके द्वारा पाश्चात्य जगत् अमूल्य लाभ उठा रहा है।

फोटोग्राफ—मनुष्यजातिमें शायद ही ऐसा कोई होगा जिसके चित्तमें यह भाव न आता हो कि 'मैं अपना सर्वाङ्ग सम्पन्न चित्र देखता।' जब इस बातकी उत्कट इच्छा हुई तो हस्तकौशल द्वारा लोगोंने चित्र लिखना शुरू किया और धीरे धीरे जब इस काममें उन्नति की जाने लगी, तब तो पाश्चात्य जगत्ने फोटोग्राफीका आविष्कार किया। फिर तो एकदम प्राकृतिक चित्र ज्योंके त्यों खींचे जाने लगे; जैसा अक्स पड़ा वैसा ही चित्र खिंच गया। इसके द्वारा चित्र खींचकर उसे धुंधली कोठरीमें अथवा हरे रंगके कपड़ोंको टांगकर, जिससे हरा प्रकाश मिले, अभिव्यक्त (development.) करते हुए तैयार कर डालते हैं। इस साधनसे पाश्चात्य जगत्ने जो लाभ उठाया है उसका तो कहना ही क्या है, क्योंकि उस जगत्का तो यह व्यापार ही है; पर भारतवर्षके लोगोंने इस कलाको सीखकर जो जीविका उपार्ज्जन की वह विशेष उल्लेख्य है, क्योंकि उनकी जीविकाका यह प्रधान अवलम्ब हुआ।

साइक्लोस्टाइल—झटपट २०० या ४०० नोटिसें अथवा प्रश्नपत्र आदि छोटी लिखी हुई कामकी चीजें छापनेके लिये ऐसा कोई साधन नहीं था कि बगैर कम्पोज किये उनका प्रकाशन सम्भव हो सके। इस त्रुटिको दूर करनेके लिये साइक्लोस्टाइलकी पाश्चात्योंने सृष्टि की, जिसके द्वारा मोमी कागजपर एक खास लोहेकी लेखनीसे लिखकर फौरन लिखित बातोंको छाप सकते हैं। इसके द्वारा पाश्चात्योंको कम आय नहीं

होती, बल्कि इस वस्तुके व्यापार द्वारा वे बड़ा पैसा पैदा करते हैं।

पाश्चात्योंकी लाभशक्ति अथवा उपार्ज्जनशक्ति कहांतक बढ़ी चढ़ी है व व्यापार द्वारा इन्होंने कहांतक लाभ अथवा उपार्ज्जन किया है, इसका मैंने दिग्दर्शन मात्र कराया है। इसी प्रकारकी और और असंख्य चीजें इन्होंने बनायी हैं जिनके द्वारा ये असीम लाभ उठाते हैं और अपने देशोंके मुख उज्ज्वल कर संसारके धन्यवादके पात्र बनते हैं।

कला-कौशलसे सम्बन्ध रखनेवाली कौनसी चीजें इन्होंने नहीं बनायीं! विनोदसे सम्बन्ध रखनेवाली किन वस्तुओंका निर्माण इनके द्वारा नहीं हुआ! विलासिताके कौनसे साधन इन्होंने जगत्के सम्मुख प्रस्तुत नहीं किये! आरामकी देनेवाली किन वस्तुओंको इन्होंने ईजाद नहीं किया! व्यापारके कौनसे उपकरण इन्होंने सम्पन्न नहीं किये! तभी तो इनके देशोंको कोर्ति-पताकायें दिग्दिगन्तमें उड़ रही हैं और यह गिरे हुए देशोंके प्रति शिक्षा दे रही हैं कि जबतक कोई भी देश अपनी लाभशक्ति अथवा उपार्ज्जनशक्ति कला-कौशलों और उनके व्यापार द्वारा नहीं बढ़ाता, तबतक उसका उदय कदापि नहीं हो सकता। इसलिये ये पददलित देशो! अपने कला-कौशलोंको कदापि न भूलो, अन्यथा अपनी सत्तातक खो बैठोगे, क्योंकि कला-कौशलोंके बिना व्यापार नहीं और व्यापारके अभावमें किसी भी देशका जीवन दरिद्र हो जाता है।

संरक्षणशक्ति

पाश्चात्य जीवनमें लाभशक्ति अथवा उपार्ज्जनशक्तिकी बानगी दिखलाकर अब उनकी संरक्षणशक्तिका नमूना दिखलाया जाता है, जिसे प्यारे वाचकवृन्द ! आप उनके जीवनके प्रायः सभी विभागोंमें उपलब्ध करेंगे। संरक्षणशक्तिका पहला नमूना उनके वेशमें ही दिखलायी दे रहा है, जिस वेशमें रहनेसे काम पड़नेपर यथार्थ संरक्षा दे कर सारी आफतें दूर भगा सकते हैं।

टोप—पाश्चात्योंके वेशमें पहले पहल यदि निगाह डाली जाय तो वह शिरोवेष्टन अर्थात् टोपपर पड़ती है जिसे देखकर ही विचारशील कह सकता है कि चारों ओर जो अंश टोपके बाहर निकला हुआ है वह धूप व कुहेसा तथा बौछारोंसे मस्तक, नेत्र और मुखकी रक्षा बिना किये नहीं रह सकता, क्योंकि उसकी बनावट इसी प्रकारकी और साइबान सा निकला हुआ वह अंश इस कार्य्यमें पक्का योग देता है।

कोट—दूसरी चीज संरक्षणमें सहायता देनेवाली पाश्चात्योंका कोट है जो शरीरमें चुस्त रहकर किसी कामके करनेमें जरा भी रुकावट नहीं डालता, न किसी अङ्गमें लगता यफता है जिसे सुलझानेमें विलम्ब हो। यह कोट कई ढंगका बना हुआ होता है; अर्थात् मृगयाके लिये अलग, खेलके लिये अलग, शीतप्रधान व ग्रीष्मप्रधान देशोंमें शत्रुसे दूर व नजदीकसे मुकाबला करनेके

सुलझानेमें विलम्ब हो। यह कोट कई ढङ्गका बना हुआ होता है; अर्थात् मृगयाके लिये अलग, खेलके लिये अलग, शीतप्रधान व ग्रीष्मप्रधान देशोंमें शत्रुसे दूर व नजदीकसे मुकाबला करनेके लिये अलग। इनकी विभिन्नताका क्या कहना है! इन कोटोंमें छोटी बड़ी सभी तरहकी चीजोंके रखनेके लिये जेबें लगी रहती हैं, जिनमें पहननेवाला व्यक्ति मतलब हल करनेके सामान रख सके और समयपर उनसे लाभ उठावे।

पैंट और उसकी विभिन्नता—काम पड़नेपर जिसमें दौड़ने, चढ़ने, उतरनेमें जरासी भी किसी प्रकारकी अड़चन आ उपस्थित न हो, इसलिये संरक्षणशक्तिका नमूना फुल पैंट या हाफ पैंटमें देख लें कि उसके द्वारा उक्त कार्य्य किस शीघ्रतासे सम्पन्न होते हैं। पहलेवाले पूरे पैंटमें यह एक दोष था कि उसे पहनकर बैठना असंभव था, क्योंकि वह उतना ही ढीला बनता था जितनेमें जांघ आसानीसे उसके भीतर पैठ सके; परन्तु इन दिनों पाश्चात्योंने उस त्रुटिको भी दूर कर दिया, अर्थात् उसे इतना ढीला किया जिसमें पहननेवाला आरामके साथ बैठ सके और दूसरा ढंग यह निकाला कि ठेहुनोंके नीचेतक उसे कसा रक्खा और जोड़से ढीला, ताकि बैठनेकी अड़चन एकदम दूर ही हो जाय। ये पैंट यातो कमर पेटी द्वारा कमरके साथ इतने कसे रहते हैं कि वे किसी प्रकार गिर नहीं सकते, या गेलिस (एक प्रकारके समीचीन बन्धन) द्वारा जो दोनों कन्धोंपर चढ़ा रहता है, तने रहते हैं। इन पैंटोंमें हाथ गरमानेके लिये कुछ

कैश या नोट रखनेके लिये जेबें भी लगी रहती हैं और उनसे बहुतसे काम निकलते हैं; क्योंकि उनमें कुछ न कुछ रक्खा ही जाता है। फुल पैण्ट और हाफ पैण्टमें फरक इतना ही है कि पहला पड़ीतक और दूसरा ठेहुनोंतक आच्छादित किये रहता है। हाफ पैण्ट पहिननेके समय ठेहुनोंतक मोजे रहते हैं और फुल पैण्ट धारण करनेमें हाफ मोजे।

मोजे—पैरोंकी संरक्षाके लिये मोजे तैयार किये गये और इनमें पाश्चात्योंने कई प्रकारकी विभिन्नता भी की। तदनुसार शीतसे पैरोंकी संरक्षाके लिये ये मोजे सूती, ऊनी, तसरी सभी ढंगोंके बनने लगे और पूरे और आधेका भेद भी शनैः शनैः दिखलायी देने लगा। यदि इन मोजोंको चढ़ाकर ऊपरसे बूट पहनकर कोई भी व्यक्ति चले तो जो काम खाली पैर कोई भी शीतकालमें घंटेमें करेगा उसे वह आधे घंटेमें पूरा उतार देगा। मोजोंके अभावमें पैरोंकी जो हालत शीतमें होती है वह किसी भी व्यक्तिसे छिपी नहीं है।

जूते और उनकी विभिन्नता—यदि चलनेकी सड़कें सम हैं, ठुकरीली नहीं हैं, तब तो आसानीके साथ नंगे पैरों भी चलना संभव है, परन्तु जिस समय ये विषम और ठुकरीली रहती हैं उस समय जो हालत पैरोंकी ठेस लगनेपर होती है वह वर्णनातीत है; कभी तो अंगुलियां कट जाती हैं और नाखूनतक निकल आते हैं। इन कष्टोंसे पैरोंकी रक्षा करनेके लिये पाश्चात्य सभ्यताने भिन्न भिन्न प्रकारके जूते तैयार किये हैं जिनके द्वारा

घरमें घूमना, फर्शपर चलना, घुड़सवारी, लड़ाईपर धावा और शिकार खेलना—सभी काम सम्पन्न हो जाते हैं। कुशाच्छन्न भूमिपर अथवा कण्टकाकीर्ण मार्गमें चलनेके लिये जूते बड़े कामकी चीजें हैं, खासकर बर्फपर चलनेके जूते बहुत ही उपकारक हैं। इनकी बनावटमें विचित्रता यह है कि ये फिसल नहीं सकते, यद्यपि चिकनी बर्फपर चलना पड़ता है।

अभेद्य वस्त्र—निहायत जबर्दस्त दुश्मनोंके वार बचानेके लिये मेलकोट अर्थात् कवचकी सृष्टि पाश्चात्योंने की है जिसे पहनकर बेखौफ जंगके मैदानमें जा सकते हैं। हाथसे चलानेवाले शस्त्रोंके वार इसे पहने हुए व्यक्तियोंपर चोट नहीं पहुंचा सकते, क्योंकि यह अभेद्य रहता है। इसी प्रकारके अभेद्य और और वस्त्र हैं जिन्हें गलेसे मस्तकतक हाथोंमें पहन सकते हैं। पैरों व टांगों तथा कटि पर्यन्तकी रक्षाके लिये ऐसे ऐसे अभेद्य परिधानीय बन चुके हैं जिनके द्वारा युद्धमें सुरक्षा भलीभांति सम्भव है।

बन्दूकें और उनकी विभिन्नता—मल्लयुद्ध और शस्त्रयुद्धमें लड़ाई करनेवाले दो दलोंके अगणित व्यक्ति कटते व मरते हैं। इसका कारण यह है कि जिस समय दोनों दलोंके वीर आपसमें घुस पड़ते हैं और मार-काट होने लगती है उस समय जोशके मारे अपने बचावका ध्यानतक नहीं रहता। ध्यान भी कैसे रहे क्योंकि मुठभेड़ होनेपर दोनों दलोंका मिश्रीकरण हो गया; फिर बचावका ध्यान कहां? जिसमें वीर अधिकाधिक संख्यामें न छीजें और लड़ाई इस प्रकार जारी रहे कि दोनों दलोंका हौसला

वना रहे, पाश्चात्योंने बन्दूकोंकी सृष्टि कर डाली जिनके प्रयोग द्वारा यदि निशाना ठीक लगा तो योद्धा फौरन वीरगतिको प्राप्त होते हैं; अथवा जिस अंगमें गोली लगी कि वह फौरन वेकार हुआ। युद्धके अलावा मृगया वगैरहमें इससे बड़ा काम निकलता है। इससे जल-जीवका निशाना भी कारगर होता है। इसके द्वारा आकाशके बीचमें उड़नेवाले प्राणी भी मार गिराये जाते हैं। इस अस्त्रमें बहुतसी विभिन्नतायें हैं जो आज दिन तरह तरहकी बन्दूकोंमें पायी जाता हैं; पर सर्वोत्तम विभिन्नता वही है जिसका इन दिनों फौजमें खूब प्रचार है। इसकी एक विभिन्नता मशीनगन भी है जिसमें ढाले हुए शीशेके लम्बे लम्बे छड़ डाले जाते हैं और गोलियां कटकर चला करती हैं। इस विभिन्नताके द्वारा पांच मिनटमें पांच सौ व्यक्ति भूतलशायी किये जा सकते हैं।

तोपें—किसी गढ़ या किलेको तोड़ने या ढानेके लिये एक ऐसा जबर्दस्त यन्त्र पाश्चात्य संसारने तैयार किया है जिसकी प्रशंसा जहांतक की जाय थोड़ी है। इस यन्त्रका नाम तोप है। इसकी विभिन्नतायें गोलोंके कदके अनुसार बहुतसी हैं जिनके द्वारा ढाने या तोड़नेके सभी छोटे बड़े कार्य्य सम्पन्न किये जाते हैं। आत्मरक्षाके विचारसे राजा लोग, जिसमें शत्रु किसी प्रकार उन्हें पकड़कर कैद न करें या मार न डालें, गढ़ या किलेकी रचना मजबूतीके साथ कई प्रकारसे करते हैं और इसी गढ़ या किलेके अन्दर निश्चिन्त होकर निर्भयताके साथ अपनी

सौभाग्यश्रीका विस्तार किया करते हैं। परन्तु वैज्ञानिक जगत् थोड़े ही आविष्कार द्वारा अपनेको सन्तुष्ट न रख सका। उसने ऐसे ऐसे गढ़ों व किलोंके ढानेकी विधि सोच निकाली जिसके फलस्वरूप ये तोपें हैं। इनके द्वारा ७५ से ८० मीलतक २० से २५ तथा ३० मनके गोले फेंके जाते हैं। ये गोले निर्दिष्ट दूरीपर पहुंचनेके पहले फटते हैं और उनके भीतरसे दूसरा गोला निकलकर पहलेकी अपेक्षा दूनी तेजीसे चलता है जो बड़ी तेजीके साथ इष्ट स्थानपर गिरता है। बस, गिरते ही वहांपर एक बड़ा गढ़ा हो जाता है। इसी भांति बड़े बड़े दुर्ग ढा दिये जाते हैं। इन तोपोंमें जो सबसे भारी गोला फेंकती हैं उसका नाम हैविट्ज़र है जिसका प्रयोग जर्मन महासमरमें हुआ था।

तलवारें और इनकी विभिन्नता—जब किसी प्रबल शत्रुका सामना करना होता है, उस समयके साधनोंकी पाश्चात्य संसारमें ज़रा भी कमी नहीं है; तथापि मुठभेड़के समय जो शस्त्र काम देते हैं, उनकी अपेक्षा मशीनगनें और तोपें बिलकुल रद्दी जान पड़ती हैं, क्योंकि मुठभेड़में हाथोंहाथ युद्ध करना होता है। उस समय सिवा बड़ी बड़ी तलवारोंके जो तीन तीन गज़ लम्बी होती हैं और खासकर इसीलिये तैयार की जाती हैं, दूसरे शस्त्र बेकार हो जाते हैं। इनके द्वारा मारकाटमें बड़ी सहायता मिलती है। चार अंगुल चौड़े फलकी तीन गज़ लम्बी तलवार उसी प्रकार अरिदलको काटती है जैसे किसान खेत काटा करते हैं। इनकी विभिन्नताएं तरह तरहकी हैं। जो टेढ़ी बनावटकी हैं उसके द्वारा

तिरछा काटनेका काम ठीक होता है परन्तु जिसकी बनावट सीधी है उससे भोंकनेका कार्य सम्पन्न किया जाता है। सीधी बनावटवाली किर्च कहलाती है और टेढ़ी बनावटवाली तलवार। यदि चलानेवाला हद दर्जेका उत्साही है तो हाथी, बाघ तथा शेरतकका शिकार इसके द्वारा खेला जाता है और उसमें सफलता प्राप्त होती है। इन्हींको एक विभिन्नता यह है जो बन्दूकके नलके पास लगी रहती है जिसका व्यवहार भोंकनेके काममें आसानीसे हुआ करता है; उस समय यह भालेका काम मजेमें देती है।

हवाई नावें—जिस समय किसी ऐसे प्रबल शत्रुका मुकाबिला करना पड़ता है जिसकी सेना बहुत दूरतक एवं एक बड़ी संख्यामें व्याप्त है उस समयके लिये पाश्चात्य संसारने हवाई नावें तैयार की हैं। इनके द्वारा यह भी आकाश मार्गसे पता लगाया जाता है कि शत्रुकी सेना कहां कहांपर और कितनी कितनी व्यूह बांधकर सुसज्जित है। इतना पता पा जानेपर उनके ज़रिये बड़े बड़े गोले जो नाना भांतिकी विभिन्नताके साथ तैयार किये जाते हैं, आकाश मार्गसे फेंके जाते हैं और ये उनके सैन्यका विनाश कर डालते हैं। सैन्यके विनष्ट होते ही दुश्मनका हौसला मट्टीमें मिल जाता है और वह सन्धिके लिये उत्सुक होने लगता है। ये नावें छोटी बड़ी सभी तरहकी बनायी जाती हैं। जो गोले इनके द्वारा ऊपरसे फेंके जाते हैं वे जहां गिरते हैं वहां चालीस गज वर्गक्षेत्रका एक विशाल गढ़ा बना देते हैं, ऐसो

अवस्थामें मनुष्यकी बात ही क्या है जो बेचारा तुरत इस भांति उड़ जाता है कि उसकी हड्डी पसलीतकका पता नहीं रहता। इस प्रकार इनके द्वारा मजबूतसे मजबूत छतोंका विनाश और बड़े बड़े सैन्यदलोंका अन्त किया जाता है। कभी कभी विशाल गोले गिरकर ज़हरीली गैस फैलाते हैं ताकि सांस लेते ही मनुष्यका जीवन समाप्त हो जाय।

लड़ाऊ जहाज—जलयुद्धके लिये छोटी छोटी नावें या नौका-समूह, अथवा बड़े २ बेड़ोंसे काम न चलता देख पाश्चात्य जगत्‌ने लड़ाऊ जहाजकी सृष्टि की है। ये लड़ाऊ जहाज कोस कोसभर विस्तृत होते हैं। इनके अन्दर एक बड़ा नगरसा बसा होता है एवं युद्धजीवनके सारे सामान सुसज्जित रहते हैं। जगह जगह तोपोंके नाके बने रहते हैं जहांसे ये छोटे बड़े सभी तरहके गोले फेंका करती हैं और प्रतिद्वन्द्वी लड़ाऊ जहाजोंको नाश किया करती हैं। इनकी बनावट चौड़े मुंहवाली मछलीके समान होती है जिसकी वजहसे पानी फाटनेमें इन्हें कुछ भी कष्ट नहीं होता। तांबेकी बड़ी बड़ी चद्दरें जलमग्न भागमें जड़ी रहती हैं जिनके कारण जलका लेश भी अन्दर नहीं आने पाता और उसके द्वारा इच्छानुसार युद्धका काम चला करता है। प्रतिद्वन्द्वियोंके फेंके हुए गोले जिसमें ज़रा भी जहाजोंको जरर न पहुंचावें इसलिये रसायनशास्त्रकी सहायतासे भूगर्भके ऐसे ऐसे पदार्थ बाहरी हिस्सेमें लगाये जाते हैं कि वे कुछ कालके लिये स्थायीरूपसे जलयुद्धका कार्य्य सम्पन्न कर पाश्चात्य संसारकी कीर्त्ति-पताका भूमण्डलपर सर्वत्र उड़ाते हैं।

सबमेरीन—उक्त लड़ाऊ जहाजोंको क्षणभरमें जलमग्न करनेके लिये अन्तर्जलचारिणी नौकाओंकी सृष्टि उक्त जगत्‌ने बड़ी योग्यतासे की है जिनके द्वारा टारपीडो उनके पेंदोंमें मारा जाता है और एक विशाल छिद्रके होनेसे भीतर पानी पैठकर उन्हें डुबा देता है। ये नौकायें पानीके अन्दर गोते मारकर चक्कर लगाया करती हैं और पनडुब्बियां कहलाती हैं। तारीफ है उक्त जगत्‌के उद्यम और अध्यवसायकी जिसने ऐसी पनडुब्बियां निकाली हैं और अभेद्य जहाजोंका उनके द्वारा विनाश किया है।

सबमेरीन चेजर—जिसमें उक्त पनडुब्बियां बड़े बड़े लड़ाऊ जहाजोंका क्षणभरमें विनाश न कर सकें इसलिये पाश्चात्य-संसारने एक ऐसी पनडुब्बी तैयार की है जो उक्त पनडुब्बियोंका पीछा करती है और उन्हें विनष्ट कर डालती है। इसका नाम सबमेरीन-चेज़र है। जिस प्रकार दो मल्ल दाव पेच करते हैं और आपसमें हरएक दावपेचका तोड़ भी किया करते हैं, उसी प्रकार उक्त जगत् एक साधनके विनाश करनेका दूसरा साधन तैयार किया करती है।

तोबड़ा—अर्वाचीन समयमें लोहेके गोले तो बड़े बड़े गढ़ ढानेके लिये तैयार होते ही थे; पर जिसमें सेनाका शीघ्र नाश हो इसलिये ऐसे विषभरे गोले पाश्चात्य जगत्‌ने बनाये हैं कि जिनके गिरते ही ज़हरीली गैस वायुमण्डलमें इस भांति फैल जाती है जैसे पानीमें तरङ्ग उठनेसे तेल, और सैनिकवर्ग उस वायुका पानकर क्षणभरमें अचेत होकर गिर जाता है। जिसमें

इस विपाक्त गैससे किसी प्रकारकी हानि न पहुंचे इसीलिये पाश्चात्योंने मुखप्रच्छदक यानी तोबड़ा, तैयार किया है जिसके लगानेसे जहरीली गैस सैनिकवर्ग का कुछ बिगाड़ नहीं सकती।

तमंचे— जिस समय मनुष्य अकेला कहीं जाता है अथवा उसके उन्नतिशील होनेके कारण उससे ईर्ष्या करनेवाले बहुतसे व्यक्ति संसारमें हो जाते हैं, उस समय नीति यही कहती है कि शत्रुओंसे सावधान! तू अकेला है, दूसरेको अपने साथ रख। ऐसी अवस्थामें दूसरा कोई भी गुप्त सहचर मिलना कठिन है। इस अभावकी पूर्त्तिके लिये पाश्चात्य जगत्‌ने ऐसे ऐसे छोटे छोटे तमंचे तैयार किये हैं जिन्हे पाकेटमें लेकर सर्वत्र कोई भी निर्भय घूम सकता है, क्योंकि जो काम बंदूक देती है वही तमंचा भी देता है।

भाले और उनकी विभिन्नता—जब किसीको पांच चार गजके फासलेसे भोंक डालना होता है उस वक्त सिवा ऐसे शस्त्रके जो लंबा और नोकीला हो दूसरा शस्त्र काम नहीं देता। इसी विचारको ध्यानावस्थित कर पाश्चात्य जगत्‌ने तरह तरहके भाले तैयार किये हैं जिनके द्वारा उक्त कार्य्य आसानीसे पूरा किया जाता है। ये भाले छोटे बड़े सभी प्रकारके होते हैं और नजदीक, दूरके सभी तरहके उक्त कार्य्य साधन कर डालते हैं।

आर्मर्ड मोटरकार—जिस समय प्रजा अथवा शत्रु अपनी निःशस्त्र होनेकी हालतमें ईंट पत्थर फेंककर उपद्रव करना चाहता है अथवा रोष प्रकाश करता है ऐसी हालतमें सिवा

-चखतरदार गाड़ियोंके और किसी प्रकार देश रक्षाके लिये सैनिक लोग उपद्रव स्थानपर नहीं भेजे जा सकते। इसीलिये यह अनूठा साधन उक्त जगतने तैयार किया है। इसपर बैठकर सशस्त्र सैनिक उपद्रवी दलमें विभीषिका उत्पन्न करनेके अर्थ उपद्रुत स्थानपर गश्त लगाकर उपद्रव शान्त करनेमें समर्थ होते हैं। यदि विभीषिका उत्पन्न करनेसे काम चलता नहीं दिखायी देता है तो गोलियोंके द्वारा उपद्रवी दल जख्मी किया जाता है। गोलियां चलानेके लिये इन मोटरोंमें छेद बने रहते हैं।

जबर्दस्त विजली—घोर अन्धकारके समय जहाजका चलाना एक बड़ा कठिन कार्य्यसा हो जाता है। जिस वक्त यह शंका पल पलमें बनी रहती है कि कोई ऐसी दुर्घटना न हो जाय जिसके कारण जहाज टकरा जाय और फट जाय अथवा सूखे स्थानपर चढ़ जाय और पुनः यथेष्ट पानीमें जाना असंभव हो जाय या कभी यह सन्देह बना रहता है कि कोई नाव ही टकराकर न डूब जाय; ऐसी अवस्थामें तीव्र प्रकाशकी सख्त जरूरत आ पड़ती है। इस अभावका नाश करनेके लिये कड़ी विजलीकी आवश्यकता हुई और तदनुसार उक्त संसारने इसे साथ विभिन्नताके तैयार कर डाला। धन्य विज्ञान!

घड़ी—मनुष्यजातिके लिये समयके सदुपयोगसे बढ़कर और दूसरा महत्त्वपूर्ण कोई कार्य्य नहीं। मानवजातिकी वृद्धि एवं उन्नति समयके सदुपयोगके द्वारा ही हुआ करती है, यह सिद्धान्त निर्विवाद है। जिसने समयका मूल्य समझा वह पारस हो

गया अन्यथा जिस भांति पशु अपना समय नष्ट किया करते हैं उसी तरह वह भी इसको खो देता है। आजदिन वैज्ञानिक संसारमें जितने आविष्कार हो चुके व हो रहे हैं तथा आगे होंगे वे समयके सदुपयोगके फलस्वरूप हैं अतः यह कहना अत्युक्तिका परिचायक कदापि न होगा कि समयकी महत्ता वर्णनातीत है। जिस समयका महत्व इतना है, जिसका उपयोग मनुष्यको दैवीशक्ति-सम्पन्न सिद्ध करता है, जिसका मूल्य निश्चित करना मानवीय बुद्धिके बाहरकी बात है उस समयका अन्दाजा करना अथवा किस काममें कितना समय लगा इसका सम्यक् ज्ञान प्राप्त करना जिसमें भलीभांति सम्पन्न हो इसलिये घड़ीकी सृष्टि पाश्चात्य संसारने की है। इसके द्वारा समयका पूर्ण ज्ञान बना रहता है और मानवजातिके विकासके जितने कार्य हैं सब कमसे कम समयमें जहांतक हो सकते हैं उसकी भी जानकारी इससे हो जाती है। सच तो यह है कि समयका बतानेवाला यन्त्र मनुष्योंकी संरक्षण-शक्तिकी वृद्धिके लिये एक अत्युत्तम, अमूल्य और बड़ी महत्ताकी वस्तु है। नेपोलियन बोनापार्ट फ्रांस देशके इतिहासमें एक अलौकिक शक्ति, प्रतिभा तथा उत्साह-सम्पन्न वीर कहा जाता है। यह वीर अपनी धुनका पक्का, अपने उद्योगका सच्चा उत्साही और असंभवको संभव कर दिखानेवाला अपने देशका एक अमूल्य रत्न था। जिस समय इसके शाही शत्रु इसके सर्वधर्मान प्रतापको न सह सके, वे छल-कपटका अवलम्बन कर इसको

बन्दी बनानेपर तुल गये। उसके प्रधान सेनापतिको मिलाकर लड़ाईके मैदानमें पहुंचनेमें पांच मिनटकी देर करवा दी। अकेला नेपोलियन अपने सेनानायककी बाट देखता रहा और लाचार उसके न आनेपर बन्दी बना। तात्पर्य यह है कि जिसकी महिमा इतनी है उसकी सूचना देनेवाले यन्त्रका संरक्षण शक्तिके खयालसे जितना आदर किया जाय थोड़ा है।

गुप्ती—पशुओंसे रक्षा करनेके लिये तरह तरहकी छड़ियोंका प्रचार मानव समाजमें हुआ था। परन्तु कृपाण अथवा खड्ग जिसे तलवार भी कहते हैं गुप्त रीतिसे साथ रखनेके लिये गुप्तियोंकी सृष्टि उक्त संसारने की। ऊपरी भाग मूठ कहाता है जिसमें सीधी तलवार जड़ी रहती है और निचला भाग म्यानका काम करता है जिसके भीतर गुप्तरूपसे वह तलवार रहा करती है। दोनों भागोंका योग होनेसे सिवाय छड़ीके और दूसरा आकार उसका नहीं बनता। बस यही कारण है कि इससे संरक्षणमें बड़ी सहायता मिलती है, खासकर जब अकेले कहीं जाना होता है।

बिजलीके तार—कैदियोंको अपने कब्जेमें रखनेके लिये तथा अपने अधिकृत परन्तु अनावृत प्रदेशोंमें किसीको न आने देनेके लिये पाश्चात्य संसारने बिजलीके तार ईजाद किये हैं जिनसे टकराते ही कोई भी जीव अपनी जानसे हाथ धो बैठता है। ये तार उस समय बड़े ही उपयोगी सिद्ध होते हैं जब रात्रिके

समय शत्रु का बड़े जोर शोरसे हमला होता है। तारका स्पर्श होते ही अरिदल विध्वंस हो धराशायी हो जाता है। यदि इसे संमोहनास्त्र कहा जाय तो अत्युक्ति नहीं होगी। धन्य पाश्चात्योंका निरन्तर उद्योग!

टेलीफोन—जिस समय देशमें विद्रोहके भाव भरे होते हैं उस वक्त देशके रक्षक एक स्थानपर मौजूद न रहकर भिन्न भिन्न स्थानोंमें देशवासियोंमें शान्तिके भाव उत्पन्न करनेके लिये चक्कर लगाया करते हैं। यद्यपि ये इतस्ततः चक्कर लगाते हैं परन्तु अपने दलके साथ बात बातमें परामर्श करनेकी आकांक्षा घनी रहती है। उस समय टेलीफोन संरक्षामें पहले हाथ बटाता है, क्योंकि इसीके द्वारा प्रतिक्षण देशरक्षकदल आपसमें परामर्श कर देशरक्षाके कार्य्य सम्पन्न करता है।

टेलीग्राफ़—यद्यपि टेलीफोन फौरन परस्पर बातचीत करनेका एक अपूर्व साधन है तथापि दूरसे बातचीत करनेके लिये जहांसे यह यन्त्र सम्बद्ध नहीं, संरक्षाके लिये एक ऐसे यन्त्रकी आवश्यकता है जिसकी साङ्केतिक ध्वनिसे अक्षरोंका और उनसे शब्दोंका भली भांति निर्माण हो। इस अभावको हटानेके लिये पाश्चात्य सभ्यताने टेलीग्राफका आविष्कार किया। इस यन्त्रके द्वारा देशरक्षाके सम्बन्धमें सदुपायोंका परामर्श ऐसे ऐसे दूरवर्ती स्थानोंमें पहुंचाया जा सकता है जहांका सम्बन्ध टेलीफोनसे नहीं है।

वायरलेस टेलीग्राफ़—जब देशमें राजद्रोहके भाव फैलते हैं

तब जिसमें एक जगहसे दूसरी जगह खबर न भेजी जाय इसलिये राजद्रोहीदल टेलीफोन और टेलीग्राफके सम्बन्ध जारी रखनेवाले तारोंको काट फेंकता है। ऐसी दशामें परस्पर बातचीत न कर सकनेके कारण देशरक्षकोंको आपसकी कार्रवाई समझनेमें बड़ी अड़चन आ उपस्थित होती है। इस अड़चनको हटानेके लिये बेतारकी तारबर्की पाश्चात्योंने निकाली, जिसके द्वारा केवल यन्त्र हाथमें लेकर ही खबर पा जाते हैं। फिर तो देशरक्षाका कार्य्य भलीभाँति सम्पन्न हो जाता है। धन्य पाश्चात्य जगत्!

दृढ़ ताले—जैसे जैसे चोर-डाकुओंकी संख्या संसारमें बढ़ी वैसे ही वैसे लोगोंने इनसे अपनेको सुरक्षित करनेके लिये उपाय ढूँढ़ निकाले। जिस समय इनकी संख्या समाजमें नहींके बराबर थी उस समय लोग सिर्फ जंजीर और कुण्डा अथवा अर्गलके द्वारा अपने मालकी सुरक्षा कर लेते थे; पर ज्यों ज्यों इनकी भयानकता बढ़ती गयी त्यों त्यों लोगोंने उत्तमोत्तम प्रबल ताले बनाना प्रारम्भ किया। इस समय चूँकि ईमानदारीकी संख्या नहींके बराबर है इसलिये पाश्चात्य जगत्के दृढ़ ताले शायद ही ऐसा कोई होगा जिसकी रक्षा न करते हों।

लोहेकी आलमारियाँ—डाकू जिस समय डाकेजनी करनेपर उतारू हो जाते हैं उस समय धनकी रक्षा करना एक बड़ा ही विकट प्रश्न उपस्थित होता है, क्योंकि तालोंकी दृढ़ता उस समय कुछ काम नहीं देती, इसलिये कि वे उन्हें तोड़नेके साध-

समय शत्रुका बड़े जोर शोरसे हमला होता है। तारका स्पर्श होते ही अरिदल विध्वंस हो धराशायी हो जाता है। यदि इसे संमोहनास्त्र कहा जाय तो अत्युक्ति नहीं होगी। धन्य पाश्चात्योंका निरन्तर उद्योग !

टेलीफोन—जिस समय देशमें विद्रोहके भाव भरे होते हैं उस वक्त देशके रक्षक एक स्थानपर मौजूद न रहकर भिन्न भिन्न स्थानोंमें देशवासियोंमें शान्तिके भाव उत्पन्न करनेके लिये चक्कर लगाया करते हैं। यद्यपि ये इतस्ततः चक्कर लगाते हैं परन्तु अपने दलके साथ बात बातमें परामर्श करनेकी आकांक्षा बनी रहती है। उस समय टेलीफोन संरक्षामें पहले हाथ बटाता है, क्योंकि इसीके द्वारा प्रतिक्षण देशरक्षकदल आपसमें परामर्श कर देशरक्षाके कार्य्य सम्पन्न करता है।

टेलीग्राफ—यद्यपि टेलीफोन फौरन परस्पर बातचीत करनेका एक अपूर्व साधन है तथापि दूरसे बातचीत करनेके लिये जहांसे यह यन्त्र सम्बद्ध नहीं, संरक्षाके लिये एक ऐसे यन्त्रकी आवश्यकता है जिसकी साङ्केतिक ध्वनिसे अक्षरोंका और उनसे शब्दोंका भली भांति निर्माण हो। इस अभावको हटानेके लिये पाश्चात्य सभ्यताने टेलीग्राफका आविष्कार किया। इस यन्त्रके द्वारा देशरक्षाके सम्बन्धमें सदुपायोंका परामर्श ऐसे ऐसे दूरवर्ती स्थानोंमें पहुंचाया जा सकता है जहांका सम्बन्ध टेलीफोनसे नहीं है।

वायरलेस टेलीग्राफ—जब देशमें राजद्रोहके भाव फैलते हैं

तब जिसमें एक जगहसे दूसरी जगह खबर न भेजी जाय इसलिये राजद्रोहीदल टेलीफोन और टेलीग्राफके सम्बन्ध जारी रखनेवाले तारोंको काट फेंकता है। ऐसी दशामें परस्पर बातचीत न कर सकनेके कारण देशरक्षकोंको आपसकी कार्रवाई समझनेमें बड़ी अड़चन आ उपस्थित होती है। इस अड़चनको हटानेके लिये बेतारकी तारबर्की पाश्चात्योंने निकाली, जिसके द्वारा केवल यन्त्र हाथमें लेकर ही खबर पा जाते हैं। फिर तो देशरक्षाका कार्य्य भलीभांति सम्पन्न हो जाता है। धन्य पाश्चात्य जगत्!

दृढ़ ताले—जैसे जैसे चोर-चाईइयोंकी संख्या संसारमें बढ़ी वैसे ही वैसे लोगोंने इनसे अपनेको सुरक्षित करनेके लिये उपाय ढूंढ़ निकाले। जिस समय इनकी संख्या समाजमें नहींके बराबर थी उस समय लोग सिर्फ जंजीर और कुण्डा अथवा अर्गलके द्वारा अपने मालकी सुरक्षा कर लेते थे; पर ज्यों ज्यों इनकी भयानकता बढ़ती गयी त्यों त्यों लोगोंने उत्तमोत्तम प्रबल ताले बनाना प्रारम्भ किया। इस समय चूंकि ईमानदारोंकी संख्या नहींके बराबर है इसलिये पाश्चात्य जगत्के दृढ़ ताले शायद ही ऐसा कोई होगा जिसकी रक्षा न करते हों।

लोहेकी आलमारियां—डाकू जिस समय डाकेजनी करनेपर उतारू हो जाते हैं उस समय धनकी रक्षा करना एक बड़ा ही विकट प्रश्न उपस्थित होता है, क्योंकि तालोंकी दृढ़ता उस समय कुछ काम नहीं देती, इसलिये कि वे उन्हें तोड़नेके साध-

नोंसे चूर चूर कर डालते हैं। उनके आक्रमणसे गृहस्थाश्रमके एकमात्र स्तम्भ धनकी रक्षा करनेके अर्थ आज पाश्चात्योंने ऐसी ऐसी मजबूत लोहेकी आलमारियां तैयार की हैं जिनमें बन्द किया धन न केवल डाकुओंसे ही सुरक्षित रहता है बल्कि कड़ी आगसे भी वह नष्ट नहीं किया जा सकता।

छुरे—अकेले कहीं जानेमें-खासकर उस वक्त जब कुछ जोखिम की चीजें पास रहती हैं छुरेके मुकाबले ऐसी कोई चीज नहीं जो बराबर सहायताके रूपमें उत्साह प्रदान करती रहे। इस उत्साह-प्रदानके द्वारा यात्री निर्भय होकर सर्वत्र विचरता है, सब प्रकारके लोगोंमें अपनी धाक बांधता हुआ जिस कार्यके लिये उसने यात्रा की है उसे सम्पन्न कर लाता है। अकेलेका दूसरा यदि है तो वही छुरा! इसके द्वारा एकाकी यात्रीका भलीभांति संरक्षण जान उक्त जगत्ने इसे तैयार कर जगत्के सामने प्रस्तुत किया।

पानीकी कलें—पानीकी कलोंके द्वारा जो संरक्षा पाश्चात्य जगत्ने की है वह वर्णनातीत है। मनुष्योंकी एक छोटी संख्याके लिये जलका काम किसी भी कूप द्वारा सम्पन्न हो सकता है परन्तु सारे नगरका काम एक समय बगैर जलके लानेका परिश्रम उठाये कदापि नहीं चलता। आज बड़े बड़े नगरोंमें पानीकी जो कलें दिखलायी पड़ती हैं वह पाश्चात्य जगत्के ही अध्यवसायका फल है।

दमकलें—जिस समय अग्निप्रकोप होता है और टोलेका टोला,

महल्लेका महल्ला जलने लगता है उस समय एक ऐसी आपत्ति आ उपस्थित होती है जिसका टालना बड़ा कठिन हो जाता है। इस बलाको दूर करनेके लिये ऐसी ऐसी दमकलें तैयार की गयी हैं जिनके द्वारा बहुत शीघ्र जलाशयोंसे जल खींचकर लोगोंका अग्निकष्ट दूर किया जा सकता है। इसके लिये उक्त जगत् सर्वथा प्रशंसनीय है।

रेलगाड़ियां—उमड़े हुए लोगोंको दबानेके लिये, खासकर उस वक्त जब शासित देश ऐसे ऐसे काम करने लगता है जिन्हें वहांकी सरकार नहीं करने देना चाहती है, रेलगाड़ियों द्वारा सशस्त्र संरक्षक दल किसी भी स्थानपर पहुंचाकर वह अपने शासनकी संरक्षा कर लिया करती है। शासित देशकी सभी कामकी चीजें ढो ले जाकर अपने देशको संपन्न बनाना और अपनी संरक्षाका पूर्ण विधान कर डालना बगैर रेलगाड़ियोंके असम्भव है। इसलिये, इस स्वार्थसाधनके लिये, जो साधन उक्त जगत्ने तैयार किया है तदर्थ उसकी प्रशंसा जितनी की जाय थोड़ी है।

युद्धके जहाज—जो काम रेलगाड़ियोंसे स्थलके ऊपर होता है वही काम जहाज द्वारा जलके ऊपर सम्पन्न किया जाता है। जिस अवसरपर विद्रोही प्रजा स्थलके ऊपर वर्त्तमान रेलगाड़ियोंके मार्गका अवरोध कर डालती है और खुश्कीके रास्तेको चलने लायक नहीं रहने देती, वह अवसर शासनको धक्का पहुंचानेवाला कहा जाता है। उस समय जलके मार्गद्वारा जहाजोंपर लाये गये युद्धके सामान और सशस्त्र संरक्षक विद्रोहियोंके

शान्त करनेमें भलीभांति समर्थ होकर शासनको सबल बनाते हैं और उन्हें दण्ड देकर सुख, शान्तिका राज्य विस्तार करते हैं। यह पाश्चात्य जगत्के लिये प्रशंसाकी बात है।

पाश्चात्योंका रहन सहन।

पाश्चात्योंका रहन-सहन आदर्श मानकर जो आज पूर्वीय देश अपना विडम्बन जीवन व्यतीत कर रहे हैं उसमें गुणग्राहकताका एक भी उदाहरण दृष्टिगोचर नहीं होता। क्या बगैर अपने जीवनमें गुणग्राहिकताके दृष्टान्त दिखाये उक्त देशोंने नकल करनेहीमें अपने कर्त्तव्यकी इतिश्री समझ ली है,अथवा इसीमें वे स्वर्गसुख भोगनेकी इच्छाको फलीभूत समझेंगे?

पाश्चात्योंका सारा परिवार सोद्योग रहा करता है और सभी कार्य्योंमें—च्वाह वे घरके हों अथवा बाहरके—हाथ बटाना उसके लिये एक महज मामूली बात है। ये लोग किसी भी जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाले कार्यको छोटा समझकर छोड़ नहीं देते बल्कि छोटेसे छोटे कामको भी मन लगाकर करते हैं, तभी तो आज जहां देखिये वहां इनकी कीर्त्तिचन्द्रिका फैली हुई है और ये प्रशंसाभाजन बन रहे हैं।

जिस किसी परिवारकी ओर दृष्टि डालिये उसके सभी व्यक्ति अपना अपना काम बांटकर गृहकार्य सम्पन्न करते हैं। इस बातका उदाहरण आप वाचकवृन्द! सफ़ाईका दिन (Cleaning day) समझें। यह दिन हर पन्द्रहवें दिन आया करता है और उस दिन प्राचीनता नवीनतामें बदल जाती है, अर्थात् पन्द्रह

दिनोंतक घरकी चीजोंमें व्यवहार करते करते जो पुरानापन आ गया था उनमें सफाईको स्थान देकर नयापन लाया जाता है। फिर तो जिसे देखिये वही गृहकार्यमें व्यस्त दिखायी देता है; क्योंकि गृहकार्य आजदिन सबके हिस्से पड़ा है। कोई जूते साफ कर उनपर रोगन लगाता हुआ ब्रशकी मारसे उन्हें पौलिश करता है। कोई कपड़ेकी भट्ठी चढ़ा रहा है तो कोई बर्तन और रकाबियां, प्याले और ग्लास साफ कर रहता है। किसीने घरको छतोंमें, दीवारोंमें, कोनोंमें लगे हुए मकरीके जालोंको साफ किया है तो कोई नीचे नीचे झाड़ू देकर सारे मकानको स्वच्छ कर चुका है। किसीने हजामत बनानी शुरू की है तो कोई शिकारके साधन ठीक ढङ्गपर मरम्मत कर रहा है। कोई कपड़ोंको धोकर साफ कर चुका है तो कोई उनपर कलप इस्त्री कर रहा है।

इस भांति पन्द्रह दिनोंके अन्दर जितना मैल, जितनी गन्दगी, जितना कूड़ाकरकट एकत्रित हुआ था वह सब दूर हुआ और स्वच्छताका पूर्ण रीतिसे समावेश हुआ, मानों अकार्य्य कार्यमें, घृणा मनोहारितामें एवं नरक स्वर्गमें परिवर्तित हुआ। जो वस्तुएं पन्द्रह दिनोंके जमे हुए मैलसे मैली होकर अरुचिकर प्रतीत होती थीं आज वे ही रुचिकर मालूम पड़ती हैं। जिस प्रकार वसन्तऋतुके आविर्भावके पूर्व ही वनस्थलीकी अपूर्व शोभा हो जाती है मानों उसे किसीने दिव्य हाथोंसे संवारा हो, उसी प्रकार आज गृहकी सफाईके कारण अद्भुत शोभा

हो रही है। सफाईके अनन्तर सब चीजें यथास्थान रक्खी गयीं। सुधासे धवलित गृहमें साफ किये हुए लैम्पोंकी रोशनीकी जगर मगर देखते ही बन पड़ती है। इस रहन-सहनमें कायदोंकी पाबन्दी इतनी रहती है कि नियम-विरुद्ध चलना पाश्चात्योंमें एक प्रकारका पाप समझा जाता है। जो स्थान जिस बातके लिये मुकर्रर है वहां ही वह बात की जाती है, अन्यत्र नहीं। जिस जगह जो चीज़ रक्खी जाती है वहांपर वह चीज़ यदि अन्धेरेमें भी ढूंढ़ी जाय तो मिल सकती है। उसके तलाशनेमें निरर्थक इधर उधर भटकना नहीं पड़ता।

धूम्रपान

इनके रहन-सहनमें धूम्रपानने मुख्य स्थान पाया है; अथवा यों कहिये कि इनकी सभ्यताका मुख्य चिह्न धूम्रपान है। तभी तो आज सिगरेट और सिगार पीनेकी प्रथासी चल गयी है। इन्हींका रूपान्तर बीड़ियोंका पीना है। बीड़ियोंने भारतवर्षमें इतना व्यापी प्रचार प्राप्त किया है और ख़ासकर छोटे २ बालकोंके समाजमें जिसकी वजहसे उनका स्वास्थ्य नष्टप्राय हो रहा है। यदि पाश्चात्योंके सभ्यतास्वरूप इस धूम्रपानका इतना प्रचार न होता तो उनका देश और भी बली, सोद्योग और गम्भीर बातका मनन करनेवाला होता।

मद्यपान

पाश्चात्योंके रहन-सहनमें मद्यपानकी अधिकता पायी जाती है। यही कारण है कि ये तरह तरहके मद्य तैयार करके उनकी

बिक्रीसे एक अपूर्व लाभ कर लेते हैं। यद्यपि मद्यपीकी स्मृति, उसकी विचारशक्ति एकदम नष्ट हो जाती है तथापि पाश्चात्य सभ्यतामें इसकी प्रधानता होनेके कारण इसका बहिष्कार उक्त जगत् नहीं कर सकता। जहां कहीं दस पाश्चात्य सज्जन एकत्रित हुए कि मद्यपानकी बारी आयी और फिर तो अपनी सभ्यताके अनुसार वे बोतल लेकर एक दूसरेका स्वास्थ्यपान करने लगते हैं। केवल पुरुष ही नहीं बल्कि स्त्रियां भी इस कार्यमें भाग लेती हैं। परन्तु आजकल मादक-निषेध समाओंके प्रचारके कारण मद्यपानका व्यवहार कम होने लगा है। ईश्वर इन्हें सुबुद्धि दे! इनकी धर्मपुस्तक बाइबिल (इंजील) में मद्यपानकी स्पष्ट रूपसे मनाही है तथापि ये विलासिताके कारण अपने धर्मकी ज़रा भी परवा नहीं करते। नाना प्रकारके प्राणान्तक एवं असाध्य रोग मद्यपान द्वारा उक्त जगत्में उत्पन्न हुए हैं और इतने हानिकर प्रतीत हुए हैं कि उन्हें दूर भगाना इन दिनों उनके लिये एक कठिन समस्या हो गयी है।

विलासिता

पाश्चात्य लोगोंमें विलासिताकी मात्रा बहुत बढ़ी चढ़ी है। विलास करनेके लिये ऐसे ऐसे उत्तेजक साधन इन लोगोंने तैयार किये हैं और दिनोंदिन अधिकाधिक संख्यामें बनाये चले जाते हैं कि देखनेवाला दंग रह जाता है। कड़ी कड़ी मदिराओंकी सृष्टि इनने विलासिताके ही लिये की है, तरह तरहके सेंट इन्होंने विलासिताके ही लिये बनाये हैं। सजानेके सारे उपकरण,

परिधानके निमित्त नाना प्रकारके वस्त्र, रंग बिरंगके अमूल्य रत्नों से जटित अलङ्कार इनने तैयार किये हैं, मानों संसारको विलासिता सिखा दी है कि देखो! जिसे विलास करना हो हमारा अनुकरण करे। उत्तमोत्तम बाजे जिनकी सुरीली आवाज़ कानोंमें पहुंचकर हृदयमें विलासिताकी ओर तृष्णासे भरी चाह उत्पन्न करती है, मुर्दे मनको उठाकर जिन्दा बना देते हैं। यह लिखनेकी आवश्यकता नहीं कि धूम्रपान और मद्यपान विलासितामें परले दर्जेके उत्तेजक हैं। यह विलासिताहीका प्रताप है कि स्त्री, पुरुष साथ मिलकर एक दूसरेके हाथ पकड़ मद्यके नशेमें चूर सारीरात नाचा करते हैं और परस्पर रज़ामंदीके साथ इन्द्रियसुखको व्यभिचार न मानकर अव्वल दरजेकी सभ्यताके अधिकारी बननेका गर्व रखते हैं।

प्रेमके भाव

पाश्चात्य रहन-सहनमें प्रेमके भाव समधिक रूपमें दिखायी पड़ते हैं। इनका देशप्रेम, जातिप्रेम, समाजप्रेम और उद्योगप्रेम प्रशंसनीय है, क्योंकि यह सदा जागरित रहता है। ज़रासा भी अपमान हुआ कि इनमें खलबली मच गयी और ये बगैर उसका बदला लिये नहीं माननेके।

ये अपने देशको सर्वदा उन्नत अवस्थामें देखना चाहते हैं, इसलिये ये अपने देशकी बनी हुई वस्तुकाही आदर करते हैं। तभी इनका व्यापार संसारमें व्याप्त है; अन्यथा व्यापारके जरिये अन्यान्य देशोंका धन ये अपने देशमें ले जानेमें कदापि समर्थ न होते।

जिसमें अपनी जाति संसार भरमें फैले, इसलिये ये अपने

धर्मके प्रचार करनेमें ज़रा भी कोरकसर नहीं करते। धर्मके प्रचार द्वारा इनकी जाति विश्वव्यापी हो रही है; क्योंकि जो व्यक्ति इनके धर्मका अंगीकार करता है वह इनकी सभ्यता भी गले लगाता और तदनुसार इनकी जातिकी स्त्रियोंसे विवाहतक करके इनके रक्त, मांसमें सम्मिलित हो इन्हींका रूप धारण करता है। इस प्रकार पाश्चात्योंकी जात्युन्नति दिनोंदिन हो रही है और ये अपनी आशालताको सर्वदा प्रफुल्लित देखते हैं। वे उसे प्रफुल्लित देखकर ही चुप नहीं बैठते बल्कि अपने निरन्तर उद्योगके द्वारा उसे पुष्पवती अनन्तर फलवती बनाते हैं।

समाज-प्रेमका नमूना यदि बाबू वृन्द! आपको देखना है, तो चलिये क्लबघरकी ओर चलें और देखें कि ये अपने समाजपर कितना प्रेम रखते हैं। क्लबघरमें इनकी सभ्यताके सभी उपकरण एकत्रित हैं और तदनुसार इनके विनोदके प्रायः सभी साधन वहां वर्तमान हैं जिनके द्वारा ये अपनेको प्रसन्न करनेमें कृतकार्य होते हैं। वहां ये सभी प्रकारके खेल जिनमें अंटाका खेल निशाना लगानेके ख्यालसे मुख्य है, खेला करते हैं। इन खेलोंमें स्त्री, पुरुष सभी भाग लेते हैं। ज्योंही दिनके कार्यों से इन्हें फुरसत मिली, अथवा अपनी अपनी दिनचर्याके अनुसार जब सूर्यास्तका समय करीब हुआ, बस, अपनी अच्छी पोशाकें पहिन, ऊपरी सफ़ाईसे अपना मुखमण्डल विकसित कर, सुगन्ध लगा, बालोंको संवार, ये अपना समाज-प्रेम दिखानेके लिये क्लब-

घरमें पहुंच जाते हैं। उस स्थानपर वहांके सभी पाश्चात्य सभ्य प्रतिदिन आते हैं और सभी व्यक्तियोंका आपसमें पूरा पूरा परिचय रखते हैं। हर एककी सारी हालतका जान लेना उनके मुख्य कर्तव्यका एक छोटा अंश है। वे आपसमें हिल मिलकर एक दूसरेके जीवनका विस्तारपूर्वक अध्ययन करते हैं और परस्पर सच्ची सहानुभूति दिखलाते हैं जिसके द्वारा उनकी एकता चिरस्थायी होती है और संगठनका कार्य दिन दूना रात चौगुना उन्नत अवस्थामें रहता है।

व्यायाम

शरीरको नीरोग एवं प्रसन्न, फुर्तीला और निरालस्य रखनेके लिये ये सवेरे सन्ध्या व्यायाम अवश्य करते हैं। सवेरेके व्यायाममें ये घुड़सवारीके आदी हैं अथवा ये खुले मैदानोंकी सैर पैदल ही उस वक्त करते हैं जब सूर्य उदय होता हुआ दिखलायी देता है। उस समय ये ऐसे २ प्राकृतिक दृश्योंका अवलोकन करते हैं जिनके द्वारा आंखोंमें तरावट, मस्तिष्कमें बल और शरीरमें फुर्ती आपसे आप आ जाती है, मनमें उत्साहकी प्रबल तरंगें उठने लगती हैं, साहस—अदम्य साहस—कमर कसे कठिनसे कठिन कार्य करनेके लिये उन्हें प्रोत्साहन प्रदान करता है, यहांतक कि यदि तत्क्षण कहीं युद्धके लिये प्रस्थान भी करना हो तो वे पीछे पैर कदापि न देंगे। यह व्यायामकाही फल है कि उनके सभी कामोंमें कठिनाई फटकने नहीं पाती।

जिसमें एक प्रकारकी कसरतसे जो न उकता उठे इसलिये व्यायामकी विभिन्नतायें पाश्चात्य जगतने ईजाद की हैं। इस प्रकार फुटबालका खेल इन दिनों खूब ही फैला हुआ है जिसमें मुख्यतया छात्रवर्ग और गौणतया वे लोग जिनकी शिक्षा पाश्चात्य ढंगपर हुई है, भाग लेते हैं। यद्यपि इस खेलके कुछ नियम हैं तथापि वे खेलाड़ीकी दौड़में किसी प्रकार बाधक नहीं। बस, यही दौड़ना—बड़े जोरोंसे दौड़ना—इसकी मुख्य कसरत है जिसके द्वारा शारीरिक बलकी पूर्णतया वृद्धि होती है। दौड़नेसे बदनमें कस भर जाता है और शरीर सुगठित, दृढ़ और सहनशील हो जाता है। सारे अंगोंमें एक प्रकारकी बिजलीसी दौड़ जाती है।

क्रिकेटका खेल गेंद और उसके मारनेके काष्ठके साधन द्वारा खेला जाता है। खेलाड़ीको अपने तईं आये हुए गेंदको इस भांति थापीसे मारना पड़ता है जिसमें वह गेंद उछले नहीं अथवा चारों ओर खड़े हुए खेलाड़ी लोग उसे बीचहीमें रोक न सकें, अन्यथा वह खेल नहीं सकता, यही इस खेलका नियम है। यदि गेंद दूर निकल गया और उसकी थापीका स्पर्श हो गया तो दोनों ओरके खेलाड़ी परस्पर दौड़ते हैं जिसके द्वारा भलीभांति अंगचालन होता है। इस प्रकारके खेलसे मनोविनोदके साथ साथ अङ्गचालनका होना बड़ा ही रुचिकर मालूम होता है।

हाकीका खेल भी सच्ची दिलेरीका परिचायक है। यह खेल गेंद और डंडेसे खेला जाता है। डण्डेकी छोर एक ओर लाठीकी

मूठके समान मुड़ी रहती है और गेंद काठके समान कड़ा होता है। यह खेल भी नियमसे खाली नहीं। इसके द्वारा भी अच्छा व्यायाम होता है।

पोलोका खेल घोड़ेपर चढ़कर मैदानोंमें खेला जाता है। यह भी गेंद और डण्डेसे उसी प्रकार खेला जाता है जैसे हाकी। इसमें गेंदके पीछे स्वयं न दौड़कर घोड़ेको दौड़ाते हैं और गेंदको मुगरीसे मारते हैं। इसके द्वारा एक जबर्दस्त अङ्गचालन होता है और भयभीत हृदयमें निर्भीकताका इतना संचार होता है कि खेलाड़ीमें आपसे आप जमामर्दी और बहादुरी आ जाती है।

टेनिसका खेल भी व्यायामका एक अच्छा साधन कहा जा सकता है। इस खेलमें किसी भी प्रकारका खतरा नहीं; न अंगोंके टूटनेहीका डर है। इसके अतिरिक्त और और खेल, यदि खेलाड़ी चूक जाय तो, हो सकता है खेलाड़ीके किसी अंगको भंग कर दें, पर इसमें सिवाय अंगचालनके और मनोविनोदके किसी तरहकी चोटतकका भय नहीं; बस, यही कारण है कि इसे लोग 'औरताना खेल' कहा करते हैं।

इन व्यायामोंके द्वारा अंगचालन और वर्जिश तो होती ही है, साथही साथ नियमकी पाबन्दी और जीवनके सुधारनेका ऐसा बढ़िया अभ्यास हो जाता है कि उस खेलाड़ीका जीवन नियुद्ध शिक्षाके उपयुक्त हो जाता है जो देशकी सहायताके लिये नितान्त आवश्यक है। देशकी सहायता, देशका उद्धार, देशकी सेवा तथा देशकी उन्नति करना प्रत्येक देशवासीका फर्ज़ है।

देशकी सहायता द्वारा कला-कौशलोंका उपजीवन, देशके उद्धारसे मजदूरी पेशेवालोंके प्रति बन्धु-बुद्धि, देशकी सेवासे अशक्त देशवासियोंके प्रति सहानुभूति-प्रदर्शन और देशकी उन्नतिसे देशान्तरसे व्यापार द्वारा धनार्ज्जन करना समझा जाता है। यदि शरीर ही सबल नहीं है, यदि वह इतना कमजोर है कि १०, १५ मिनटके परिश्रमसे कायरकी भांति कांप उठता है तो ऐसा शरीर पृथ्वीका बोझ है। उस देहधारीका जीवन भी बोझ है, क्योंकि उसके शरीरका होना न होना दोनों बराबर हैं। धन्य पाश्चात्य जगत् जिसने अपनेको सब प्रकारसे उपयुक्त बनाया है !

जरूरत रफा करना।

पाश्चात्य सभ्यता जरूरत रफा करनेका नमूना कही जाय तो किसी प्रकार अत्युक्ति न होगी। यों तो प्रकृतिदेवी ही जरूरत रफा करनेकी जैसी शिक्षा देती है शायद ही दूसरा कोई इस रूपमें देता हो; उदाहरणके लिये छ ऋतुओंको ही लीजिये।

पहली और सर्वोत्तम ऋतु वसन्त कही जाती है। इसका कारण यह है कि इस ऋतुके आगमनकालमें ही सारी सृष्टिकी एक अपूर्व शोभा दीख पड़ती है; क्यों न हो, तभी तो सृष्टिके चक्रको चलानेके लिये इन छ ऋतुओंकी आवश्यकता होती है, और पहले पहल ऋतुराजकी अवाई हो जाया करती है।

जैसे कोई किसी उन्नत पदाधिकारी व्यक्तिके आनेके समय उसके आनेके उपलक्ष्यमें उस स्थानकी अपूर्व सजावट करता है जहां आगन्तुक व्यक्ति अपना पदार्पण करेगा, उसी प्रकार ऋतु-

राज वसन्तके आनेके उपलक्ष्यमें प्रकृतिदेवीने सारी सृष्टिकी कैसी मनोरंजक व शान्तिदायिनी सजावट की है जिसका सूक्ष्म व सारगर्भित वर्णन बिना किये उक्त विषयपर भलीभांति प्रकाश नहीं डाला जा सकता।

अहा हा! जरा प्रकृतिदेवीकी बुद्धिमत्ता तो पाठकवृन्द देखिये! जिस प्रकार किसी भी जगहका कूड़ाकरकट दूर करनेके लिये मार्जनीसे परिमार्जित करना पड़ता है, एकत्रित किये गये करकटको दूर फेंकना पड़ता है, धीमा धीमा छिड़काव देना पड़ता है और तब उस स्थानको सुसज्जित करना पड़ता है, उसी प्रकार शिशिरके अन्तमें बड़े झकोरेके साथ जो पश्चिम वायु चली उसने जंगलके सारे करकटको दूर कर मानों झाड़ू देनेका काम किया। वृक्षोंके, लताओंके जीर्ण पत्ते सूख सूखकर गिरे और न मालूम कहां गये जिनका पतातक नहीं। फिर तो वासन्ती मलयगिरिकी वायु बही और सूक्ष्म मेघोंके द्वारा जंगलमें पानी छींटा; फिर क्या? नये नये पत्तोंकी कलियां मुकुलित हुईं और बादमें नये नये पत्ते! इस समय हरियालीकी अनोखी छटा देखते ही बनती है! ऐसी गम्भीर तरावट शायद ही और किसी समय देख पड़ती हो! सूत, मागध, वन्दीगण तथा वैतालिकवृन्द जिस प्रकार मंगलस्तुति पाठ कर किसी भी प्रतिष्ठित व्यक्तिकी विरुदावली गान करते हैं, आज ठीक उसी ढंगपर सभी चिड़ियां वसन्तागमके उपलक्ष्यमें चहक रही हैं। एक ओर पुंस्कोकिल अपनी कूकसे प्रणय-कलह-कुपित मानिनीको

मान दूर कर प्रियतमसे सप्रेम, समश्रय मिलनका आदेश दे रहा है! पपीहा मधुसे मत्त होकर जो 'पी कहां'की बोली बोलता है उससे संयोगी और वियोगीको एक समान उत्कण्ठित होना पड़ता है। मोरका मस्तीमें नाचना क्या नर्त्तक नर्त्तकियोंके प्रणयनृत्यसे किसी प्रकार कम है? इसी भांति ऋतुराजकी अगवानीमें सारी सृष्टि प्रकृतिदेवीके द्वारा अपनी अनोखी समां गांठकर आज गुलाब, बेला, मोतिया आदि पुष्पोंके प्रणयोपहार देकर उनका जो स्वागत कर रही है, क्या अपने उपकारीके प्रति यह कृतज्ञता-प्रकाशन नहीं है? है क्यों नहीं।

न केवल पुष्पोंके ही वृक्ष और लतिकायें खिलीं, बल्कि फलोंके वृक्षने भी अपने मुकुलित फलोंके द्वारा हार्दिक प्रेमकी सूचना दी। रसालने इनमें पहला स्थान पाया, अनन्तर जम्बू आदि वृक्ष अपने फलोंके उपहार देनेसे न चूके। यह सब किसलिये? इसीलिये कि ऋतुपरिवर्त्तनका चक्र चलता रहे। एककी जरूरत दूसरेके जरिये रफा हो।

यदि वसन्तका आविर्भाव न होता तो ग्रीष्म ऋतु नहीं आती क्योंकि वासन्ती वायु अपने शोषक गुणके द्वारा ठंढकको दूर भगा, स्वयं सूर्यकी किरणोंसे समुत्तप्त हो ग्रीष्म ऋतुको उत्पन्न करती है; फिर तो सूर्य अपनी किरणोंसे जलाशयों व नदियोंके जलोंको सोख लेनेमें जरा भी कोताही नहीं करते। तात्पर्य यह है कि सूर्य्यकी गर्मीसे जलाशयोंका जल भाफ बनकर अनन्त आकाशके गर्भमें विलीन हो जाता है। वही भाफ मेघमण्डलोंके

निर्माण करनेमें कृतकार्य होती है और वर्षाका आगम श्याम व स्निग्ध घनोंके द्वारा सूचित हो जाता है। जिस प्रकार वसन्तके आगमनसे ग्रीष्म और ग्रीष्मके आगमनसे वर्षाका आगमन होता है, उसी प्रकार वर्षा ऋतु शरदृऋतुको उत्पन्न करती है। आर्द्रा नक्षत्रसे लेकर हस्त नक्षत्र पर्य्यन्त जो गम्भीर वृष्टि हुई उसने ग्रीष्मके तापको दूर किया। जिन वनोंमें गर्मीके मारे आग लगी हुई थी वे वन शीतल जलके धारा सम्पातसे हरेभरे दिखलायी देने लगे; जो मण्डूक गर्मीके तापसे समुत्तप्त हो पीले पड़ गये थे और पृथ्वीमें बिलोंके भीतर ही शरण लेते थे वे गड्ढोंके जलको पीकर पेट फुला बैठे और इस भांति 'टर्र टर्र'की पुकार मचाने लगे मानों बटुसमूह वेदाभ्यास करते हों। जो सर्प गर्मीसे व्याकुल हो दिनभर बिलोंमें शयन कर केवल रात्रिमें अपनी जीवन-यात्रा सम्पन्न करनेके लिये निकलते थे वे अब फुर्तीसे दिन-रात एकसां घूमने लगे।

जब गम्भीर वर्षाके कारण नद, नदियां लहराने लगीं, जब जलाशयोंमें पानी लबालब भर गया, जब पूर्ण रीतिसे पृथ्वी तरबतर हो गयी तो इस बढ़ती हुई शीतलताने जाड़ेके ढंग पैदा किये। जहांतक ग्रीष्म कालमें सूर्यकी प्रखर किरणें वसुन्धरामें पैठी थीं वहांतक जब जल पहुंचा तो सारी गर्मी ऊपर निकल पड़ी जैसे आगसे तपा हुआ लाल तवा पूरा पानी पड़नेपर अपनी गर्मीको ऊपरकी ओर फेंकता है। बस कुछ कालके लिये तो शरद् ऋतुमें उसी गर्मीके कारण ताप जान पड़ा पर शीघ्र ही

शैत्यका आविर्भाव हुआ। फिर तो इसकी बढ़तीने हेमन्तको उत्पन्न किया जब कि भूतलके सारे प्राणी जाड़ेसे थरथराने लगे, और इसने यहांतक अपनी शक्तिका संचार किया कि इससे बचनेके लिये मनुष्योंने गर्म वस्त्रोंको धारण किया और उसी भांति मोखे, झरोखे, किवाड़ बन्द कर घरमें घुसे जैसे निर्बल शत्रु। जो जीव पशु हैं और अपने बदनपर बड़े २ रोएं रखकर इसलिये खुश हैं कि दैवने कुदरती कपड़ेसे शरीरको आवृत किया है, अब जाड़ा क्या करेगा, वे भी जमीनकी सतहोंमें मांदें बनाकर जङ्गली पत्रोंसे उन्हें गुलगुल कर तबतक सोया करते हैं जबतक मौसम बदलकर फिर बसन्त न आवे।

संसारमें किसीकी भी हमेशा एकसां नहीं रही। जब सूर्यदेवकी दिनभरमें कई हालतें दिखलायी देती हैं तो औरोंकी हालतका कहना ही क्या! पहले उत्पत्ति,तब विकास, तब प्रौढ़ता और तब ह्रास, अन्तमें विनाश ही निश्चित है। यही सृष्टिका नियम है, यही रचनाका सिद्धांत है जिसका अनुभव पग पगपर जो चाहे जिस विषयमें कर ले। जब अत्यन्त जाड़ेने अपनी उन्नति की तब पश्चिम वायुने अपने शोषक गुणके द्वारा शैत्यको सोखना शुरू किया; बस, फिर तो शनैः २ शिशिरके अनन्तर वसन्तका आविर्भाव हुआ।

वाचकवृन्द! देखी आपने प्रकृतिदेवीकी चतुरता! किस प्रकार एक ऋतु दूसरीके द्वारा अपनी जरूरत रफा करती है! इस प्रकार सृष्टिचक्र बराबर चला करता है। इसी ढंगसे पाश्चात्य

भी अपना जरूरतोंको रफा करते हैं। उदाहरणके लिये वायुयानको ही लीजिये। उड़नेकी जगह आकाश है और उड़नेवाले जीव चिड़ियां हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि वही उड़ सकेगा जिसकी शक्ल चिड़ियासी होगी। बस यही कारण है कि वायुयानका आकार ठीक चिड़ियासा है क्योंकि डैनोंके समान दोनों ओरके पक्ष हैं और बीचला हिस्सा ठीक चिड़ियाके शरीरके मानिन्द है।

जरूरत दो ढंगोंसे रफा कीजाती है। एक ढंग है निर्माणका और दूसरा ढंग है विनाशका। ये दोनों ही ढंगोंको अपनी कार्य-सिद्धिका मूलमन्त्र साबित कर चुके। जहांपर निर्माणकी जरूरत होती है वहांपर बगैर निर्माण किये ये नहीं मानते जिसका उदाहरण आप उपार्जनशक्ति और संरक्षणशक्तिमें पावगे। विनाशका भी उदाहरण आपको इनके जीवनमें सर्वत्र देख पड़ेगा क्योंकि जरूरत रफा करनेके लिये ये किसीका भी विनाश शीघ्र कर सकते हैं।

विनाशके उदाहरणका उल्लेख यदि घटनाओंके द्वारा किया जाय तो सिर्फ इसीपर एक बड़ी पुस्तक लिखी जा सकती है, परन्तु सो न कर एक घटना द्वारा उसे दिखानेका प्रयत्न कर आशा करता हूं कि वाचक वर्ग इसे भलीभांति पाश्चात्योंकी जीवन-यात्रामें पावेंगे।

लेखक एक बार हजारीबागमें रहता था। समीप ही एक बड़े अहातेमें बङ्गला था जिसमें एक पाश्चात्यने अपनी स्थिति की। वह अहाता इतना बड़ा था कि उसमें १५,२० बीघा

जमीन थी और नाना प्रकारके फूल फलके वृक्ष सब तरहकी उंचाईके लगे हुए थे। वहांकी बस्ती इतनी दूर दूरपर थी कि यदि एक दूसरेको अपने अहातेसे पुकारे तो मुश्किलसे वह सुन सकता था। इस कारण जंगली जानवरोंका उपद्रव अकसर हो जाया करता था। कभी कभी रात्रिमें हुंडार, बाघ आदि भी प्रायः वहांपर निकल आया करते थे। सियारोंका तो कहना ही क्या क्योंकि वे ऐसी जगहोंको अपना बसेरा समझते हैं। इसलिये सन्ध्या होतेही 'सियार वहां पहुंच बड़ा कोलाहल किया करते। यद्यपि उस पाश्चात्यके पास कुत्ते थे पर वे उनपर हमला करनेमें एकदम असमर्थ थे। उस कोलाहलसे उसे बड़ी चिढ़ थी, अतः बन्दूक लेकर कितनोंको उसने गोलीका निशाना बनाया। जो पक्षी मुर्दोंके खानेवाले, गरुड़, गिद्ध, कौए आदि थे और उस अहातेके वृक्षोंपर बैठकर उनकी पत्तियोंको बीटके द्वारा मलिन करते थे, उन्हें भी निशाना बनाकर मार डाला। अब तो छोटी छोटी चिड़ियां जो उन वृक्षोंपर सुरीली तानें भरती थीं, रह गयीं और उन वृक्षोंके नीचे उस पाश्चात्यकी बालिका, बाला युवती, कन्याओंके पलङ्ग सोनेके लिये लगने लगे। देखकर ऐसा मालूम होता था कि स्वर्गकी अप्सराएं नन्दनवनमें विहार करनेके लिये लतागहनोंमें अपने साधन एकत्रित कर चुकी हों। शृगालोंके निराकरण और बड़े पक्षियोंके नष्ट होनेसे वहांके आनन्दको दूर करनेवाली सामग्री नष्ट हो गयी और वह अहाता एक सुखकी सामग्री बन गया।

इस प्रकार अपनी जरूरतको रफा करना पाश्चात्य रहन-सहनमें एक मुख्य बात है जिसके द्वारा यह जाति आज दिन कौन सी उन्नति नहीं कर चुकी! स्थलपर इसने तरह तरहकी रेल-गाड़ियां चलायीं, जलमें इसने जहाजोंको चलाया और आकाश-मार्गमें वायुयानोंकी ऐसी भरमार की कि आज दिन इसका मस्तक सभ्यतामें बहुत उन्नत है।

भोजन।

पाश्चात्योंका भोजन प्रायः मांसका ही होता है। ये सब प्रकारके मांस खाते हैं अर्थात् सभी पक्षियों और सभी पशु-ओंके मांस खाते हैं; जलजन्तुओंमें मछली इन्हें विशेष प्रिय है। जिस समय इन्हें भोजनकी कमी होती है ये कुत्ते, बिल्ली, घोड़ों तकको खा जाते हैं। ये अन्न भोजन भी करते हैं पर बहुत कम। फल आदिका राह चलते खा लेना भी इन्हें रुचिकर है, और दूध मक्खन भी ये नियमपूर्वक खाते हैं पर अधिकता केवल मांस भोजन ही की रहती है।

निर्दयता।

इनके जीवनमें मांसका ही भोजन मुख्य है और मांस बगैर हत्याके मिल नहीं सकता, इसलिये इनमें निर्दयता भी अत्यधिक रहती है। हा! पक्षियोंपर दया नहीं! हा! तृणभोजी पशुओंपर भी दयाका लेश नहीं!! हा! अन्य जीव जिनके द्वारा जरा सी भी हानि होती है, इनकी क्रूरतासे बच नहीं सकते!!!

अपने शरीरको अन्य प्राणीके मांस द्वारा पुष्ट करनेके लिये जो उसकी हत्या की जाती है, क्या वह किसी प्रकार भी संगत हो सकती है ? इससे बढ़कर स्वार्थपरताका उदाहरण और दूसरा क्या होगा कि एकको क्षणिक तृप्ति हुई और दूसरा अपनी जानसे हाथ धो बैठा।

पान।

पानकी वस्तु इनके समाजमें मुख्यतया मद्य है जिसका पहले उल्लेख हो चुका है; पर ये साधारणतः सोडेका पानी, निंबूका बनाया Lemonade, बरफ और मीठा पानी, चाहे वह कूपका हो अथवा नदीका, पीते हैं ! ये सिर्फ पानी सख्त जरूरत पड़नेपर पीते हैं सो भी फिल्टर द्वारा साफ किया हुआ।

तंदुरुस्तीका खयाल।

इनके जीवनमें तंदुरुस्तीका खयाल एक मुख्य बात है और विशेष ध्यान देने योग्य है। सफाई, उत्तम खान पान, एवं संयत आहार विहारके द्वारा मनुष्य जाति सदासे तंदुरुस्त रहती आई है और वह इसीके द्वारा रहेगी भी; पर जो इन साधनोंका अवलम्बन न कर स्वास्थ्यके निमित्त और और अननुभूत साधनोंका अवलम्बन करते हैं वे स्वस्थ तो क्या होंगे, हां, रोगोंके शिकार बनकर एक बुरा उदाहरण स्वास्थ्यके मैदानमें रखते हैं। वाचकवृन्द ! आज दिन यदि शरीरसे स्वस्थ व्यक्ति अधिकांशमें देखनेकी, इच्छा हो तो पाश्चात्योंमें देखिये; पर उनमें भयङ्कर रोगोंका

अभाव नहीं जिनका नाम भी मुश्किलसे भारतमें कभी सुना गया हो। इसका कारण मेरे विचारमें ईश्वर-प्रदत्त ज्ञानके द्वारा प्राप्त यथार्थ रुचिकर शाक, अन्न आदि उद्भिज्ज पदार्थोंको न खाकर एक मात्र मांस आदि तामस पदार्थोंका भोजन ही है। खैर, इतना होते हुए भी दूध मक्खनका भोजन, समयपर आहार विहार और रहन-सहनमें बाहरी सफाई देखकर, इन्हें तंदुरुस्तीका खयाल है और वह अधिक है यह कहना पड़ता है।

व्यायामके अभावमें तंदुरुस्ती नहीं रह सकती क्योंकि बगैर अङ्गचालन किये भली भांति रुधिरका संचार नहीं होता और बिना रुधिर-संचारके स्वास्थ्यका लाभ असम्भव है। यदि तंदुरुस्तीका खयाल पाश्चात्य जगत्में न होता तो आजदिन व्यायामकी सामग्रियां और विभिन्नतायें उक्त जगत्में दिखाई नहीं देतीं; क्योंकि ऐयाशीकी मात्रा उक्त जीवनमें कहीं अधिक है। फिर भी वे तंदुरुस्त रहते हैं।

स्वार्थपरता।

पाश्चात्योंके जीवनमें स्वार्थपरताकी मात्रा सभी बातोंमें अधिक है। चाहे जिस तरहसे हो वे तो अपने स्वार्थकी सिद्धि अवश्यमेव सम्पन्न करते हैं। जिस समय इनपर स्वार्थपरताका भूत सवार होता है उस समय ये धर्मकी ओरसे अपनी आंखें एक दम बन्द कर लेते हैं और सत्यका स्थान असत्य ग्रहण करता है, प्रेम द्वेषमें और विनय औद्धत्यमें बदल जाता है, दयाको क्रूरता दबा लेती है, दुष्टता सौजन्यको मार भगाती है। जहां

धर्म नहीं वहां पापकी मात्राका क्या कहना ! जहां सत्यका पता नहीं वहां तो सदा असत्यका अटल राज्य रहा करता है ! प्रेमके अभावमें द्वेष बड़ा ही बलशाली बन जाता है । औद्धत्यके प्रबल होतेही नम्रता तिरस्कृत हो जाती है ! उसके तिरस्कृत होते ही क्रूरता दयाको आने नहीं देती, न दुष्टता सौजन्यकोही अपने पास फटकने देती है । अखण्ड ज्ञान-शक्तिके प्राप्त करनेका फल, हा ! स्वार्थपरताके सम्मुख नष्टप्राय है । जो गुण सतोगुणी प्रवृत्तिकी ओर ले जाकर मानव-जातिको उन्नत करते, जो गुण राजसी और तामसी प्रवृत्तिसे उसे दूर भगाते, जो गुण उसे कभी एक आदर्श नररत्न बनाते हा ! वे गुण तो स्वार्थपरताके कारण लुप्त हो गये । हां, राजस,तामस उन्नति होगी पर सात्विक उन्नतिसे भेंट कहां ?

जातीय गौरवको अपना गौरव समझना ।

पाश्चात्य लोग जातीय गौरवको अपना वैयक्तिक गौरव समझते हैं । यदि उनकी जातिमें एक भी आविष्कार किसी भी व्यक्तिने किया तो वे अपनेको इससे बड़ाही गौरवान्वित समझते हैं । दूसरी जातिके किये हुए किसी भी आविष्कारको थोड़ा रद्द-बदल कर उसपर अपनी मुहर-छाप लगा देते हैं, और उसको भिन्न नामसे पुकारकर अपनी जातिको गौरवशाली बनाते हैं । इन बातोंमें सत्यका कितना गला घोंटा जाता है तथा दूसरेका सर्वस्व कितना हरण किया जाता है इसके बतानेकी आवश्यकता नहीं । आजके ज़मानेमें पक्षपातने ऐसी जड़ पकड़ ली है कि

उसे निर्मूल करना पाश्चात्य जगत्में तो असम्भव है। तदनुसार ही दूसरेकी रचना अपनी मानी जाती है, दूसरेका विधान अपना समझा जाता है, दूसरेके आविष्कारका डिण्डिम अपना कहकर पीटा जाता है। ये सब ढ़ंग उक्त जगत्में जातीय गौरवके बढ़ानेके लिये प्रचलित हैं। ये इसी जातीय गौरवसे अपना वैयक्तिक गौरव समझते हैं।

देशोन्नति

जिस देशमें कला-कौशलका नाम नहीं वहां व्यापारका स्वप्न भी कोई नहीं देखता। देखेभी कैसे? कुछ चीजें भी तो हों। चीजोंके अभावमें व्यापार किस तरह चल सकता है? कला-कौशलके आविष्कारके बिना, उस नूतन आविष्कारको प्रत्येक व्यक्तिके सीखे बिना देशोन्नतिका सूत्रपात किसी भी प्रकारसे नहीं हो सकता। इसलिये आज दिन पाश्चात्य जगत्में सभी कोई न कोई कलाकौशल सीखकर नयी नयी चीजें तैयार करते हैं जिनके द्वारा वे अन्यान्य देशोंसे धन लाकर अपने देशको भली भांति उन्नत करते हैं। फिर तो कलाकौशलसे व्यापार और व्यापारसे धनागम एवं उससे देश उन्नत अवस्थामें पहुंच जाता है। येही तीनों बातें आपसमें शृङ्खलाबद्ध होती हुई उस जातिकी, उस देशकी कीर्त्तिपताका उड़ानेमें आगे बढ़ती हैं। शनैः शनैः आंशिक उन्नतिसे सर्वाङ्गीण उन्नति हो जाती है और बढ़ते बढ़ते वह देश ऐसा प्रभावशाली हो जाता है कि सारे संसारमें उसकी धाक बंध जाती है।

निर्लज्जता।

निर्लज्जताकी इस जगत्में पराकाष्ठा है। यद्यपि पाश्चात्य उसे अपने देशकी चाल, अपने देशका रिवाज कहकर खण्डन करनेके लिये अग्रसर होते हैं तथापि वह खण्डन निःसार और बिलकुल फीका जान पड़ता है।

इससे बढ़कर दूसरी निर्लज्जता क्या होगी कि किसीकी स्त्री और किसीका पुरुष दोनों गलबहियां डालकर नाचमें रंगरलियां मनाते और उसके द्वारा अपनी चरित्रशून्यताका परिचय देते हैं। यदि स्त्री-जातिमें दाम्पत्य नहीं, यदि उसमें पातिव्रत्य नहीं तो फिर वह स्त्री-जाति कालिमासे भरी नहीं। पशु-जाति और उस स्त्री-जातिमें फर्क ही क्या रहा? जिस प्रकार पशु अपनी कामाग्निका निर्वापण करते हैं ठीक वही बात पाश्चात्योंके संबंधमें भी कही जा सकती है। यों तो पशु एक प्रकारसे मनुष्यके समान बुद्धिशाली न होकर उतने निन्दनीय नहीं, पर मनुष्यने अपनी पशुताका परिचय देकर तो बुद्धिशालित्वका सर्वनाश ही कर डाला। किसी कविने कहा है—

> न स्त्रीणामप्रियः कश्चित् प्रियो वापि न विद्यते।
> गावस्तृणमिवारण्ये प्रार्थयन्ति नवं नवम्॥

स्त्रियोंको न कोई प्रिय है न अप्रिय; जिस प्रकार गौएं जंगलमें नये नये तृणकी कामना करती हैं वैसे ही ये नये नये पुरुषकी। स्त्रियोंमें लज्जा ही मुख्य अलंकार है। जब-

तक स्त्रियां उसे धारण करती हैं तबतक उनकी शोभा है, अन्यथा वे हृतचरित होकर अपने दोनों कुलोंको कलङ्कित करती हैं।

उद्यमशीलता।

जो निरुद्यम होकर आलस्यका शिकार बन जाता है उसके किये कुछ भी नहीं हो सकता। न वह पेटभर भोजन ही पा सकता है न अंगभर वस्त्र ही; न उसका समाजमें आदर ही होता है न सम्मान ही। सब लोग उसकी ओर तिरस्कार भरी दृष्टिसे देखते हैं। उसके ऊपर सन्देह करना प्रत्येक व्यक्तिके लिये एक स्वाभाविक बातसी हो जाती है; क्योंकि जब कोई व्यक्ति स्वयं अपने लिये किसी प्रकारका उद्यम नहीं करता तो वह दुःखसागरकी चिन्तातरंगोंमें पड़कर किंकर्तव्यताकी वायुके झकोरोंसे अत्यन्त पीड़ित हो शरणार्थ जहां कहीं भी जाता है दूसरोंकी सहानुभूतितक नहीं पाता। ऐसी अवस्थामें वह जीता मुर्दा है। उसकी सारी मानवी शक्तियां अस्तप्राय हैं, क्योंकि वह उनका उपयोग नहीं करता।

ऐसी मुर्दा जिन्दगी जिसमें बितानी न पड़े इसलिये पाश्चात्य जगत् सदैव उद्यमशीलताका अवलम्बन किया करता है जिसका फलस्वरूप आज दिन उक्त संसार संसारमें वैज्ञानिक उन्नति करता हुआ उसे अपने अधीन करनेपर तुला हुआ है। यह उद्यमशीलताका ही फल है कि आज पाश्चात्योंका विज्ञान, उनका कला-कौशल, उनका व्यापार, नहीं ! नहीं !! उनका आधिपत्य संसारमें नाम मारे हुए हैं। वे किसी भी समय निरर्थक अपना अमूल्य

जीवन नष्ट नहीं करते। वे सदैव किसी उत्तम उद्देश्यको लेकर कार्य करते रहते हैं। वे किसी भी कार्य्यके लिये किसी अन्य देश व जातिका मुंह नहीं देखा करते बल्कि फौरन अपनी जरूरतके मुताबिक अपने कार्य सम्पन्न कर लेते हैं। तभी तो आज सारा संसार इनके मुंहकी ओर आश्चर्यसे देखता हुआ बगैर प्रशंसा किये नहीं रहता। यह इनकी उद्यमशीलताका ही फल है कि आज संसारमें इनकी सभ्यताका कहीं अधिक समादर है; इनका धर्म प्रचार पाकर बेतरह फैल रहा है; सांसारिक मनुष्योंके जीवनका प्रत्येक विभाग इनके रंगमें ऐसा रंग गया है कि उन्हें अपने अस्तित्व, अपनी सभ्यातातकका ख्याल नहीं। इसीका नाम उद्यमशीलता है! यह बड़ा ही उत्तम गुण है जिसके कारण पाश्चात्योंकी इतनी अभिवृद्धि हुई है।

उत्साहशीलता।

जिस समय किसी भी व्यक्तिका उद्यम फलीभूत नहीं होता उस समय वह व्यक्ति हताश होकर बैठ रहता है; फिर उद्यम करनेकी ओर उसकी प्रवृत्तितक नहीं होती। हो भी कैसे? जिसके लिये वह अनवरत परिश्रम किया करता था, जिसके लिये वह अपनी बड़ी बड़ी आशायें रखता था और उन्हें फलीभूत देखनेमें अभिलाषा रखता था, आज यदि उसे असफल देखता है तो नैराश्य क्यों न उसे धर दबावे?

नैराश्यके प्रकट होते ही मनुष्यको हतोत्साह होना पड़ता है।

उसे खाना पीना अच्छा नहीं लगता; उसे किसी भी वस्तुसे प्रेम नहीं रहता; उसको अपना जीवन बोझसा जान पड़ता है! उसके कर्तव्यकी इतिश्री हो जाती है, वह कहीं भी आनन्द नहीं पाता, यद्यपि वह उसकी खोजमें सदा लालायित रहता है, उसकी तलाशमें धूपमें दौड़ा फिरता है, न दिनको दिन न रातको रात ही समझता है।

प्रकृतिका नाम शांतिदायिनी है! चाहे जैसा पीड़ित मनुष्य क्यों न हो, चाहे जैसा विफल-मनोरथ व्यक्ति क्यों न हो, चाहे जैसा हतोत्साह जीव क्यों न हो, प्रकृतिदेवीके अखण्ड राज्यमें जाते ही पीड़ितकी पीड़ा, विफल-मनोरथ व्यक्तिका नैराश्य, उत्साहहीन प्राणीका अनुत्साह—ये सब एकदम शांतिदायिनी प्रकृतिके राज्यमें उसके कर्मचारियों द्वारा वन्दी कर लिये जाते हैं। वहांका मन्द, सुगन्ध, शीतल पवन इन्हें अपनी जंजीरमें जकड़ लेता है। सुहावनी चिड़ियोंकी मन हरनेवाली सुरीली तानें उन्हें निश्चेष्ट बना देती हैं। फिर किसकी मजाल कि शांतिदायिनी प्रकृतिके शांति-प्रदानमें कुछ भी बाधा पहुंचा सके!

बस, जिस समय नैराश्य घर दबाये उसी समय प्रकृतिदेवीकी शरणमें जाकर यदि उसकी उत्साहशीलताका पाठ पढ़ लिया जाय तो उस मनुष्यमें पुनः उत्साहका संचार हो जायगा, क्योंकि जितने प्रकारके पाठ हैं सभी प्रकृतिदेवीके द्वारा पढ़ाये जाते हैं।

यथासमय फलकर वृक्षोंका फलना यदि फिर उसी समय-तकके लिये बंद हो जाय तो क्या प्रकृतिदेवी निराश होकर चुप

जायगी अथवा अपनी उत्साहशीलताका परिचय देगी ? मैं समझता हूं कि सभी एक स्वरसे इसे स्वीकार करेंगे कि अपनी वार्षिक गति फलोत्पादनमें दिखलाकर वृक्ष-संसार अपने नैराश्य-विनाश और उत्साहशीलताका महान् परिचय देता है जिसका पाठ पाश्चात्य जगत् अपने जीवनके प्रत्येक कार्यसे लोगोंको पढ़ा रहा है।

जिसे डूबतेका सहारा कहना किसी प्रकार अत्युक्ति नहीं कह सकते, जिसे मुर्दा दिलका उत्तेजक कहनेमें विद्वान् जरा नहीं हिचकते, जो नैराश्यरूपी अन्धेपनमें सहारा देनेवाली लाठी है उसी उत्साहशीलताका अवलम्बन करते हुए पाश्चात्य आगे बढ़ते चले जाते हैं। ये इसीके प्रतापसे अपनी सारी मुश्किलें आसान करते हैं। ये इसीके सहारे अपना समुन्नत जीवन, अपनी समुन्नत सभ्यता, अपना समुन्नत व्यापार समधिक समृद्धिशाली बनाते हैं।

एक बार असफल होनेपर ये दूने उत्साहसे उस काममें लग जाते हैं; दूसरी बार यदि दैवयोगसे सफल न हुए तो पुनः पुनः अदम्य उत्साहके साथ तबतक उस काममें लगे रहते हैं जबतक पूर्ण रीतिसे उसे न कर डालें। ये लाचारियोंसे किसी प्रकार लाचार नहीं होते, ये बाधाओंको अपने कार्यमें बाधक नहीं समझते। इसीका नाम उत्साहशीलता है कि स्वभावमें उत्साह भरा हुआ है। तभी तो विफलता दूर भागी रहती है; क्योंकि उत्साही अन्तमें कारण फलीभूत होता है।

परिश्रम ।

संसारमें कोई भी ऐसा काम नहीं जो विना परिश्रमके सिद्ध हो सकता हो। यही कारण है कि सभीको किसी न किसी प्रकारका परिश्रम अवश्यमेव करना ही पड़ता है चाहे वह मानसिक, आर्थिक अथवा शारीरिक ही क्यों न हो। आज दिन पाश्चात्य सभ्यतामें जितने उपार्ज्जन अथवा संरक्षण शक्तिके उपकरण दृष्टिगोचर हो रहे हैं उनकी ओर विचारात्मक बुद्धिसे अवलोकन करनेपर यह मालूम होता है कि मानसिक एवं शारीरिक परिश्रमके ही वे फलस्वरूप हैं; और जबकि उन उपकरणों द्वारा अमित द्रव्य उपार्ज्जन किया जाता है तो ऐसी अवस्थामें दोनों प्रकारका परिश्रम आर्थिक हुआ। इसलिये निःसन्देह यह कहना पड़ता है कि उक्त सभ्यता परिश्रमहीकी बदौलत फैली और दिन दूनी और रात चौगुनी उन्नति कर रही है।

ये बड़ी बड़ी रेलगाड़ियां जो एक स्थानसे दूसरे स्थानपर अमित व्यक्ति व वस्तुको ढो ले जाती हैं, बड़े २ जहाज जिनके द्वारा वही काम जलपर होता है, पाश्चात्योंके तीनों प्रकारके परिश्रमके परिचायक हैं। आकाशमार्गमें जो हवाई नावें चला करती हैं यह भी उनके अनवरत मानसिक परिश्रमका फल है। परिश्रम करके ही ये बड़े २ पहाड़ोंको काटकर गिरा देते हैं, बड़ी बड़ी सामुद्रिक नदियोंके बीच पुलोंको बांध डालते हैं, जमीन काटकर नहर निकाल देते हैं जिसके द्वारा सिंचाईमें बड़ी ही सहायता प्राप्त होती है और पैसे भी मिलते हैं। परिश्रमहीके प्रतापसे

आज संसारभरमें पाश्चात्योंका सिक्का जमा हुआ है। इसीकी महिमासे ये आज असाध्य और असम्भवको साध्य और संभव दिखा रहे हैं। सच पूछिये तो इसी गुणसे ये इतने सम्पन्न व समृद्धिशाली हो सके हैं।

धैर्य्य

धैर्य्यकी महिमाका ज्ञान जिसे है वह आपत्तियोंसे किसी भी समय नहीं घबड़ाता, उसके हृदयका साहस कभी नहीं टूटता, उसकी परिश्रमशीलताकी आदत कभी भी दूर नहीं हटती, उसके चेहरेपर नैराश्यकी झलक दिखायी तक नहीं देती, उसके शरीर-पर चिन्ताकी झुर्रियोंका नामोनिशानतक मालूम नहीं पड़ता। बस यही कारण है कि धैर्य्यशाली होनेकी आज्ञा प्रायः सभी ऋषि-मुनियोंने दी है! खास धर्म्मके लक्षणोंमें जिनकी संख्या दस है, इसे पहला स्थान मिला है। इसीलिये इसकी गणना विलक्षण गुणोंमें है।

यह गुणोंका राजा पाश्चात्योंमें भली भांति पाया जाता है। यह इसीकी महिमा है कि वे एक बार असफल होनेपर दुबारा दूने उत्साहके साथ उसी काममें लग जाते हैं और अन्तमें सफ-लता हाथबांधे उनके सामने आ खड़ी होती है।

किसी भी काम करनेके समय विलम्बका होना मनुष्यको विना उबाये नहीं रहता। वह ऊब ऐसी होती है जो पुनः उसे उस कार्य्यमें प्रवृत्त नहीं होने देती। उस ऊबको दूर हटाकर कर्तामें नयी उमङ्ग भर देना जिसमें वह अपने अध्यवसायमें लगे, यह

इसी धैर्य्य गुणका काम है। सांसारिक सफलताकी इच्छासे जिस व्यक्तिमें यह गुण उत्पन्न नहीं हुआ उसकी महत्वाकांक्षायें निर्मूल हैं, उसे सफलताका स्वप्न कदापि देखना तक न चाहिये। इस गुणकी बदौलत आज पाश्चात्य जगत् अपनी समुन्नत गरिमासे विभूषित हो अभिमानके साथ विश्वकी उस मण्डलीमें एक अच्छा स्थान, नहीं नहीं, सर्वोच्च स्थान पाता है जिसने अपनी उन्नति आप की है।

क्षमा

क्षमासे बढ़कर दूसरा सम्मोहन मन्त्र नहीं। क्षमाशीलका सर्वत्र आदर होता है। किसीके अपराधकी क्षमा उसे उसके करनेसे मना करती है और वह व्यक्ति उस कामके करनेसे घृणा करने लगता है।

पाश्चात्योंमें आंशिक क्षमा है सो भी अपने दलके लिये न कि अन्य देशवासियोंके लिये। वाचकवृन्द! इसका उदाहरण जबतक सम्मुख न रखा जाय तबतक उक्त जगत्में यह गुण अपने लिये पक्षपातके रूपमें कहांतक है और दूसरोंके लिये नहीं है तो कहांतक नहीं है—इसका पता कैसे लग सकता है? पहली बातके समर्थनमें अमेरिकाका उदाहरण बिलकुल सार्थक होगा।

इस समय अमेरिकाकी उन्नति देखकर उसके इस सौभाग्यपर आनन्द प्रकाश करनेके बदले पाश्चात्य डाह करते हैं। पर उसे इसकी जरा भी परवा नहीं, क्यों कि उसने भी पहले दर्जेकी उपा-

उर्जन व संरक्षणशक्तिके साधनोंका निर्माण कर भली भांति संचय किया है। आजदिन संसारमें वह किसीसे दबता हुआ दिखायी नहीं देता, क्योंकि सब प्रकारके उपकरणोंसे वह सन्नद्ध है। यहां चोरी, जारी, डकैती अथवा अन्य किसी भी घोर दुष्कर्मके लिये किसी व्यक्तिको, चाहे वह बच्चा हो अथवा जवान या बूढ़ा, बेतकी मार नहीं पड़ती न वह समाजसे बहिष्कृत किया जाता है, फांसी, देश निकाला, कैदकी बातका तो प्रश्न ही नहीं है। ऐसी अवस्थामें उस अपराधीको नियत की हुई सज्जन-मण्डलीमें छोड़ देते हैं और उसे शारीरिक बीभत्स दण्डोंसे बरी कर उसके सम्मान व मर्य्यादाकी रक्षा करते हुए उसे सुधार लेते हैं। देखी आपने पक्षपातके रूपमें क्षमा? इस क्षमाका प्रभाव निर्घृण आचरणवाले व्यक्तिपर ऐसा पड़ता है कि वह अपने अपराधोंके लिये पश्चात्ताप करने लगता है और पुनः वैसे कर्म नहीं करता। ऐसी क्षमाके द्वारा देशका देश, चाहे वह निर्घृण कर्मोंमें ही रत क्यों न हो, एक दम सुधार डाला जा सकता है। सज्जन-मण्डलीका उपदेश परम अमूल्य रत्न है। उसकी अलौकिक ज्ञानरूपी कांतिसे भ्रमोत्पादक हृदयवर्त्ती अज्ञानान्धकार लुप्त हो जाता है और फिर तो मानवी गुणोंका अधिकारी होना उसके लिये स्वतःसिद्ध है; क्योंकि वह पशु तो है ही नहीं।

दूसरा उदाहरण दुर्दशाग्रस्त भारतसे ही दिया जाता है जहां न सज्जन-मण्डली नियत है न उपदेशक। भारतवासियोंके अपराधतंककी गणना साक्षीके कथनके ऊपर निर्भर करती है।

यदि चार आदमियोंकी एक राय हुई और उन्होंने मिथ्या ही कह डाला तो विचारालयमें वह दण्डित होगा जिसने नामके लिये भी कुकर्म नहीं किया। दण्ड ऐसे बीभत्स हैं जिनका वर्णन ऊपर किया जा चुका है, अर्थात् जिनके द्वारा उसके सम्मानका नाश, उसकी मर्य्यादाकी अधोगति इतनी होती है कि वह जन्म भरके लिये बड़ी ही छोटी निगाहसे देखा जाता है। देखी आपने क्षमाहीनता ?

इस प्रकार मैं यह कह सकता हूं कि पाश्चात्य जगत् स्वार्थान्ध होकर अपने प्रति हद दरजेकी क्षमा दिखलाता है और दूसरेके प्रति हद दर्जेकी क्रूरता और कुटिलता। इसे न्याय कहना विचारवान् जगत्को धोखा देना है। इसीको न्यायका गला घोंटना कहते हैं। इसीका नाम अविवेक है, यही पक्षपात है, यही नीच स्वार्थपरता है और यह किसी भी समुन्नत जाति, समुन्नत देशके विनाशका कारण है।

क्या ही अच्छा हो कि पक्षपात छोड़कर पाश्चात्य जगत् क्षमा प्रदान करनेमें अमेरिकाका अनुकरण करे, क्योंकि अपराधी व्यक्ति भी तो समाजका एक अंग है। यदि वह सज्जनमण्डलीके सदुपदेश द्वारा अपने अवगुणोंको दूर करे, अपने किये दुष्कर्मों पर पश्चात्ताप करे और इस प्रकार अपराधी होता हुआ भी क्षमापात्र बन अपनी मनोवृत्तिको सुधार ले तो वह व्यक्ति एक उत्तम नागरिक हो सकता है, वह सुधारकर ऊंचेसे यदि ऊंचे पदका अधिकारी बना दिया जाय तो उसके कार्यों को चढ़ा

सकता है। पर यहां तो बात ही और है! सौ क्लास बदमाश-के सुधारनेका कोई उपायतक नहीं। एकमात्र उपाय जेल समझा गया है, जहां सुधारनेके लिये एक भी तरीका काममें नहीं लाया जाता, बल्कि बदमाशोंको सुहबतमें जीवन नष्ट हो जाता है।

दम।

बाह्येन्द्रियोंको वशमें रखना ही दम कहा जाता है। इस गुणके अङ्गीकृत होनेसे मनुष्य विषयी नहीं होता, राजसी भोगकी ओर अत्यन्त प्रवृत्ति नहीं होती, शरीरमें उत्साह और बलकी पूर्णता रहती है और दमका अवलम्बन करनेवाला व्यक्ति अकस्मात् आये हुए कष्टोंके सहन करनेमें समर्थ होता है।

वाचकवृन्द! यह लिखना असङ्गत नहीं होगा कि पाश्चात्योंमें उक्त गुणका एकदम अभावसा है। जिस समय नेत्रोंके आनन्द देनेवाले उपकरणोंकी ओर दृष्टि जाती है, जब कानोंके लिये रुचिकर पदार्थोंकी ओर चित्त एकाएक चला जाता है, जिस वक्त त्वगिन्द्रियके लिये सुखकर साधनोंका निरीक्षण हो जाता है, जिस वेला घ्राणेन्द्रियकी तृप्ति करनेवाली सुगन्ध प्राप्त होती है, उस समय अनायास यह कहना पड़ता है कि विलासिताके जितने उपकरण पाश्चात्योंने तैयार किये हैं वे दमकी ओर प्रवृत्तिके अणुमात्र भी परिचायक नहीं। वे तो एक दम मनुष्यको विलासी बना डालते हैं, जिससे वह व्यक्ति एकदम निर्बल होकर नाम-मात्रका मनुष्य बना रहता है; उसके विचार सर्वदा परतन्त्रताके

रहते हैं, वह स्वतन्त्रताका द्रोही बनकर खुशामद करनेमें ही अपने कर्त्तव्यकी इतिश्री समझने लगता है।

तभी तो आज दिन पाश्चात्य जगत् इतना विलासी हो गया है कि मल्लयुद्ध अथवा हाथों हाथ संगीनकी लड़ाईसे एक दम भागता है; उसे स्वप्नमें भी वीरतोपयुक्त कार्य्य अच्छे नहीं लगते। बस यही कारण है कि आज विज्ञान द्वारा तरह तरहकी बन्दूकें, भांति भांतिकी तोपें तैयार की गयी हैं जिनके अवलम्बनसे ही प्रतिद्वंद्वी उक्त जगत् द्वारा हराये जाते हैं।

मल्लयुद्ध करना यथार्थमें सच्ची वीरता है। जिस प्रकार रैंगलरकी परीक्षाओंमें विद्यार्थी लोग अपने प्रश्नपत्रोंके साथ भिड़े रहते हैं उसी भांति एक मल्ल अपने प्रतिद्वंद्वी दूसरे मल्लसे भिड़ता है और दाव-पेंच मारकर उसे चित करनेकी चेष्टा करता है। इससे यह अन्दाजा होता है कि दोनोंके शरीरमें कितना बल है। पाश्चात्यों में मल्लयुद्धकी प्रथातक नहीं। वे अपने हाथोंमें मुट्ठीके भीतर डम-बैलके समान लोहेका चोट पहुंचानेवाला उपकरण रखकर घूंसेका युद्ध करते हैं; यही इनके यहां मल्लयुद्ध कहा जाता है। कुश्ती ये नामके लिये भी नहीं जानते, दाव पेंचका जानना तो सवालके बाहर है।

पाश्चात्यों में सैंडोका बड़ा नाम है। पर जिस वक्त भारतवर्षका गुलाम पहलवान इङ्गलैंड गया और पाश्चात्योंपर ताल ठोंका तो एक भी माईका लाल उससे लड़नेपर सहमत न हुआ। सन्मुख आने तककी कृपा नहीं की।

इस उदाहरणसे स्पष्ट है कि दमगुणके अभावके कारण ही ये दूरसे ही निशाना लगानेके उपकरण—तोप, बन्दूक इत्यादि तैयार कर अपनी संरक्षणशक्तिका परिचय देते हैं। विलासितामें दिनरात पड़कर शारीरिक बल एक दम नष्टप्राय हो जाता है और निर्बल मनुष्य बगैर तोप या बन्दूक जैसे साधनोंके किसी प्रकार अपने प्रतिद्वंद्वीको हरा नहीं सकता। यही कारण है कि वे विलासितामें पड़कर भी अपने शत्रुओंका दमन बराबर उक्त साधनोंही द्वारा किया करते हैं पर उनसे मल्लयुद्ध नहीं करते। इसलिये जिसे शारीरिक बल बढ़ाना हो वह दमगुणको ग्रहण करे।

चोरीका अभाव।

जिसने जिसकी रचना की है वह वस्तु उसकी खास है। ऐसी अवस्थामें उसे अपनी कहकर बताना दूसरोंके लिये सरासर चोरी है। यह बड़ा भारी दुर्गुण है। इसे पास न फटकने देना चाहिये। चोरीकी आदत बड़ी ही बुरी होती है।

धनकी चोरी होती है, वस्तुकी चोरी होती है, भावकी चोरी होती है और मानसिक संसारमें सबसे बढ़कर सन्दर्भ अथवा पद्य-पद्यांशकी चोरी होती है। धनकी चोरी और वस्तुकी चोरी बहुतही निकृष्ट समझी जाती है। इन चोरियोंके लिये मनुष्य राजासे दण्डित होता है, कारागारमें यातनायें पाता है और समाजमें बड़ी ही छोटी, तिरस्कारसे भरी निगाहसे देखा जाता है। जिस समय वह चोर किसी भी स्थानपर पहुंचता है

उस समय यदि एक भी व्यक्ति उसके कर्मोंसे परिचित है तो वह इशारेसे अधिकांश लोगोंको उसका परिचय देता है, फिर तो तीसरेकी एकके बाद दूसरेकी उंगली उसकी ओर उठती है। यह बात उसकी समझमें भी आ जाती है, क्योंकि वह सच्चा अपराधी है, उसने दूसरेकी वस्तु चुराई है, उसने ऐसा करके महापाप किया है। वह व्यक्ति मनही मन दुःखी होता है, पश्चात्ताप करता है, आंखोंमें आये हुए आंसुओंको वह अपने भाव व्यक्त न करनेके लिये रोक रखता है और डबडबायी हुई आंखोंसे अन्तःकरणमें वर्त्तमान परमात्माकी प्रार्थनामें अपनेको लगाता है और क्षमाप्रार्थना करता है, क्योंकि तिरस्कार सबको बुरा लगता है। सम्मान सभी चाहते हैं, सम्मानकी रक्षा भी होनी चाहिये और साथ ही साथ अमृततुल्य गुणकारी सदुपदेष्टाओंके उपदेश भी। ऐसा होनेपर वह चोर व्यक्ति सुधरकर सन्मार्ग-पर आ जाता है।

भावकी चोरी तो मानसिक संसारमें बहुत बढ़ चढ़कर होती है। पर वह चोरी न होकर निजी अनुभवके नामसे अधिकतर प्रख्यात है। संसारमें आते ही कोई शिक्षित नहीं होता। सभी प्रकारकी शिक्षायें यहां उसे मिलती हैं। सब तरहके अनुभव वह यहां ही प्राप्त करता है और उन अनुभवोंका खयाल जो मस्तिष्कमें बंध जाता है वही भावका रूप धारण करता है जिसे आत्मीय भावकी ख्याति मिलती है।

पद्य, पद्यांश और सन्दर्भकी चोरी चोरी नहीं कही जा सकती,

वह तो डाकेजनी है। शिक्षित संसारमें ऐसा काम बड़ी ही घृणाकी दृष्टिसे देखा जाता है। इसका कारण यह है कि ऐसा काम कोई पण्डितमानी मूर्ख ही करता है। जिसमें योग्यता है वह दूसरेके भावोंको लेकर भी उनके व्यक्त करनेमें अपनी ऐसी योग्यताका परिचय देता है, ऐसा अनूठापन दिखलाता है कि लोग लोटपोट हो जाते हैं और उसकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा करते हैं।

पाश्चात्य संसारमें इस गुणकी कितनी कमी है इसका विचार मैं विचारशील पाठकोंसे ही कराना चाहता हूं। मैं सिर्फ उपकरणोंको उनके सम्मुख प्रस्तुत करता हूं जिनके द्वारा उन्हें विचार करनेमें सुविधा होगी।

छापनेके साधनोंका जन्म चीन देशमें हुआ, पर उनमें जरासा परिवर्तन करके उस कलाको अपनी सम्पत्ति बताना यह पाश्चात्योंका ही काम था। इसी भांति जिस समय मैं ६।७ वर्षका बालक था और बाल-चापलके कारण दो मिट्टीके पुरवोंमें छेद कर उन्हें सूत्रसे सम्बद्ध कर दूसरे बालकसे कौतूहलके कारण कानमें एक पुरवेको लगानेके लिये कहता था और दूसरेमें मुंह लगाकर बातें करता था, क्या यह टेलीफोनका आविष्कार अथवा गवेषण नहीं कहा जा सकता; पर दूसरेके गवेषणको प्राश्चात्य-संसार क्यों मानने लगा? उसे तो दूसरेकी कीर्त्ति पर झपट्टा मारना है, दूसरेकी की हुई चीजको अपनी बताना है।

यदि वायुयानकी बात चलायी जाय, जिसपर आज दिन

पाश्चात्यसंसार घोर गर्व करता है, तो यह कहना अनुचित न होगा कि उसके निर्माणका ढङ्ग वेदोंका अनुवाद कराकर जर्मनीमें निकाला गया। सिवाय वेदोंके दूसरी जगह इसके निर्माणका विधान नहीं है। रामायण इस बातकी पुष्टिमें वर्तमान है कि राजा रामचन्द्रजी पुष्पक विमानपर अपनी सेनाके साथ अयोध्यामें लौट आये थे।

जैसी जैसी मायाका वर्णन रामायणमें मिलता है, क्या उससे बढ़कर आजदिन पाश्चात्य संसार एक भी आविष्कार कर सका है? तब उन्हींके आधारपर यदि वह भिन्न भिन्न चीजें तैयार करता है और उन्हें अपने आविष्कार बतलाता है तो इसे क्या कहा जाय, इसका विचार करना कठिन नहीं है।

नियमकी पाबन्दी।

हरएक काम करनेके लिये पहले उसके सम्बन्धमें नियम बनानेकी सख्त जरूरत है। बिना नियमका कार्य्य अच्छे ढङ्गपर नहीं चलता, न पूरा ही उतरता है। यही कारण है कि पहले उसके सम्बन्धमें नियमका निर्माण कर लिया जाता है और तब कार्य प्रारम्भ किया जाता है।

नियमकी पाबन्दीकी शिक्षा कुछ नयी नहीं है। प्रकृतिदेवीने इसकी शिक्षा अनादि कालसे संसारको दे रक्खी है। इसके सभी कार्य्य नियमानुसार हुआ करते हैं, क्योंकि नियमके बिना कार्य्यमें सजीवता नहीं आती। यथासमय भोजनकी इच्छा, समयपर शौचक्रिया, निद्रा एवं सृष्टिवृद्धिकी चेष्टा आदि बातें

यह बता रही हैं कि किसी भी कार्य्यको नियमके साथ करो। तदनुसार पाश्चात्योंमें नियमकी पाबन्दी की जाती है और उसका फल भी उन्हें भलीभांति मिलता है ; तभी तो आज वे अपना मस्तक ऊंचा किये भूखण्डको सिखा रहे हैं कि किसी भी कार्य्यकी सिद्धिके लिये पहले नियमोंको बना लो तब अध्यवसाय फलीभूत होगा, अन्यथा नहीं।

यथार्थमें इनकी सभ्यताके परिचायक जितने कार्य्य हैं उनमें बगैर नियमके एक भी नहीं है। उपार्ज्जनशक्तिके उपकरणोंसे लेकर संरक्षणशक्तिके उपकरणोंतक नियमकी पाबन्दी, पाठक वृन्द! आप भलीभांति पावेंगे। नियमानुकूल सैनिकोंकी व्यूह-रचना, नियमानुकूल उनका एक साथ सब काम करना जैसे जैसे सेनापति अपनी आज्ञा दे, इस बातकी पुष्टिमें उनके आदर्श कार्य्य हैं।

स्त्रीजातिका समादर।

संसारके जितने समुन्नत देश हैं वे स्त्री-जातिका समादर करके ही समृद्धिशाली हुए हैं। स्त्री-जातिही उत्तमोत्तम नररत्नों-को उत्पन्न कर अपने देशकोगौरवान्वित करती है। यह स्त्री-जातिकाही काम है कि बच्चोंको उत्पन्न कर उन्हें सब प्रकारकी शिक्षाके योग्य बना देती है, उनके मस्तिष्कको इस योग्य बना देती है कि उनके सामाजिक, नैतिक एवं आर्थिक भाव भली भांति उन्नत हों। सच है बिना माताके उपदेशके बच्चा कुछ भी नहीं कर सकता।

जो स्त्री-जाति सृष्टिके निर्माणमें तीन हिस्से हाथ बटाती है, जिस स्त्री-जातिने शिशुओंकी भली भांति रक्षा कर शिक्षा दे उन्हें सच्चा नागरिक होनेके योग्य तैयार कर दिया है; जिस स्त्री-जातिने अपनी सच्ची सेवा द्वारा पुरुष-जातिको आदर्श बना दिया है, जिस स्त्री-जातिसे पुरुष-जाति सारे सुख पाती है उस स्त्री-जातिका समादर, उसकी प्रतिष्ठा करना पुरुष-जातिका धर्म है। तदनुसार यदि पाश्चात्य-संसार स्त्री-जातिका समादर कर अपनी उन्नति कर रहा है तो यह कार्य उसका बड़े महत्वका है और उस संसारकी दिनों दिन उन्नति अवश्यम्भावी है।

स्त्री-जातिको देखकर पुरुष-जातिको उचित है कि अपने देशकी समुन्नतिके लिये उसका यथोचित समादर करे; अर्थात् उसके ऊपर एक समादरभरी दृष्टि डालना प्रत्येक पुरुषका कर्त्तव्य है। समादर दिखानेके कार्य्य यही हैं कि उसके सन्मुख किसी प्रकार औद्धत्य प्रकट न करे; एक प्रतिष्ठापूर्ण और गम्भीर अवलोकन द्वारा उसका सम्मान करे; यदि उसे पथ विस्मृत हो गया हो अथवा भार-वहनसे वह पीड़ित हो तो उसे पथ बताने और भार वहन करनेमें सहारा दे दे; सदा माता कहकर उसका सम्बोधन करे, क्योंकि वह यथार्थमें जननी है। प्राण-संकटके उपस्थित होनेपर पहले उसकी रक्षाका उपाय करे। इसका नाम पूजा है—और सच्ची पूजा है।

प्यारे पाठकवृन्द ! देखिये, भारतवर्षके प्राचीन न्याय-कर्त्ता (Lawgiver) मनु महाराज इस पूजाके विषयमें क्य इशारा देते हैं—

यत्र नार्य्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ॥

जहां स्त्रियोंकी पूजा होती है वहां देवता आनन्द करते हैं और जहां इनकी पूजा नहीं होती वहांके सभी कार्य निष्फल जाते हैं।

मनुके इस वचनानुसार ही पाश्चात्य जगत् स्त्रियोंका समादर करता है। वह स्त्रियोंपर कदापि अत्याचार नहीं करता। वह उन्हें प्रेमभरी दृष्टिसे देखता है और तभी आज वह इतना समृद्धिशाली भी हो रहा है।

बिना स्त्री-जातिके पुरुषजाति संसार चला नहीं सकती। यही प्रकृतिदेवीका नियम है अन्यथा इसको सृष्टि होनेकीही क्या आवश्यकता थी ?

पाश्चात्य जगत् स्त्री-जातिके समादर करनेमें जरा भी कोर-कसर नहीं करता। वह अपने जगत्की ललनाओंको देखतेही समादरसे भरी दृष्टि डालता है, अपने टोप उतारता है, अपनी दाहिनी ओर गाड़ियोंपर स्थान देता है, पग पगमें उनकी प्रसन्नता चाहता है, देखकर ही प्रतिष्ठासूचक अभिवादन करता है। इसीका फलस्वरूप आज दिनोंदिन उनकी बढ़ती हो रही है; क्योंकि दो आधे मिलकर ही एक समूचा होता है। स्त्री-पुरुष दोनों ही किसी भी राष्ट्रके सच्चे नागरिक हैं; वे नागरिकताके कार्य्योंमें पूर्ण रीतिसे हाथ बंटाते हैं। यदि इन दोनों जातियोंमें पूर्ण रीतिसे पारस्परिक समादरके व्यवहार द्वारा आपसमें प्रेमकी

अभिवृद्धि न हुई, तो उन्नति तो क्या, उसका स्वप्न भी निरर्थक है। इसको विशद करनेके लिये यदि एक उदाहरण दिया जाय तो उचित होगा।

वाचकवृन्द! दस वर्षसे अधिक समय व्यतीत न हुआ होगा एक जहाज़ जिसका नाम टयूटौनिक था, समुद्रमें बड़े वेगसे जा रहा था। उसपर ५००, ७०० पाश्चात्योंका दल था। इस दलमें स्त्री, पुरुष,बच्चे—सभी थे और वे आनन्दके साथ रंगरलियां मनाते जा रहे थे। यथार्थमें यह यात्रा उनके लिये सुखकी सामग्रियोंसे परिपूर्ण थी। वे बालबच्चोंकी लीला—शिशुलीलाका आनन्द लेते हुए यात्रा कर रहे थे।

मनुष्यके हाथमें उद्यम करना ही मात्र है, कुछ फलप्राप्तिका अधिकार तो है ही नहीं। हां, यह दूसरी बात है कि उद्यम ही फलके रूपमें पलट जाता है, यदि वह भली भांति यथोचित ढंगसे किया जाय। पर चूक भी संसारमें मनुष्योंसेही होती है, चाहे जितनी सावधानीसे काम लिया जाय। हां, एक बार बार चूकता है, क्योंकि उसे उसका अनुभव नहीं, उस कार्य्यके करनेका तरीका उसे भले प्रकार मालूम नहीं; पर जिसने अनुभव प्राप्त किया है, जिसने अच्छी लगनके साथ किसी भी काममें सिद्धहस्तता दिखलायी है वह सफलताका सच्चा अधिकारी है।

जब किसी कार्य्यका कारण नहीं दिखलायी देता और वह कार्य्य एक भयानक घटनाके रूपमें हो जाता है उस समय और तो और, बड़े बड़े दार्शनिक भी यह कहनेमें नहीं चूकते कि दैव-

संयोग है। पाश्चात्य संसार इसे Chance कहकर ही अपने हृदयको सन्तोष देता है। पौरस्त्य लोग भाग्य कहकर अपनी मुरझाई हुई आशालताको पुनः उत्साहसेक प्रदान करते हैं।

जिस समय रात्रिकी वेला थी और रंगरलियां मनाकर वे पाश्चात्य धीमी धीमी हवाके चलनेसे आनन्दनिद्राकी गोदमें जा पड़े थे, अनायास उसी समय एक चट्टान—बर्फकी चट्टान—समुद्रमें बहती हुई आ निकली और उसीसे जहाज टकरा गया। टकराते ही हाथभरकी दरार उसके पेंदेमें हो गयी। पानी आने लगा। आपत्ति समयमें सहायता प्रदान करनेवाली छोटी छोटी नावें भी जहाजके साथ रहती हैं; वे खोली गयीं। लड़के, लड़कियां और महिलायें उनपर उतारी गयीं। हा! जिस समय महिलाएं अपने पतियोंसे वियुक्त हुई', जिस समय उनके पति आंसुओंसे भरी निगाहके साथ नीचा मुंह कर उन प्राणवल्लभाओंसे यह कहकर विदा मांगने लगे कि 'बच्चोंकी रक्षा करना और मेरा सच्चा प्रेम जो तुम्हारे प्रति मेरे हृदयमें वर्त्तमान है याद रखना ताकि समुद्रमें विलीन होनेपर भी मेरी आत्माको सन्तोष हो' उस समयका दृश्य बड़ाही करुणोत्पादक था—बड़ाही रोमाञ्चकारी था।

जुदाई किसी भी परिचितकी क्यों न हो, अपना असर किये बिना नहीं रहती। दो चार आंसू अवश्य गिर ही पड़ते हैं, विवर्णता हो ही जाती है। फिर खासकरके अपने बाल-बच्चे, अपनी प्राणवल्लभा सहधर्मिणी जिस वक्त छूटती है—हमेशाके

लिये छूटती है, उस वक्तकी हालत कैसी नाजुक है इसे सम
सहृदय सोच सकते हैं, अनुभव कर सकते हैं। पर इस दुर्घटं
दुःखसे यद्यपि वे पीड़ित थे, अपने चित्तकी शान्तिके लि
पहले उन्होंने बाजे बजाये और फिर आनन्दके गीत गाये। अनन्त
एक व्यक्ति यों वक्तृता देने लगा—

आज हम लोगोंका बड़ा भारी सौभाग्य है कि जननीस्वरू
स्त्री-जातिका अपने प्राणोंकी बलितक देकर—अपने महान
स्वार्थका परित्याग कर जीवनरक्षा की! जो बालक बालिकाएं
आज शिशु हैं, एक दिन वे ही हमारे देशके—राष्ट्रके सच्चे नाग
रिक होंगे। उनकी रक्षा करना—प्राणपणसे भी उन्हें बचान
हमारा कर्त्तव्य है! अपना कर्त्तव्य-सम्पादन कर जो सात्विक
आनन्द हम लोगोंको प्राप्त हुआ है वह अनिर्वचनीय है!

फिर क्या था! पानी भर ही रहा था, वह जहाज जलमें-
अनन्त जलमें निमग्न हो गया। मरनेके लिये कहना ही क्या है!
वे मर गये, पर सज्जनों—विचारशीलोंके हृदयपर स्त्री-जाति
समादरका अपूर्व चित्र खचित कर गये। धन्य पाश्चात्य जगत
जिसने उन्नतिमें मुख्य सहायक इस गुणको गहा है!

बालक बालिकाओंकी शिक्षाका प्रयत्न।

जो देश बालक बालिकाओंको शिक्षाका प्रयत्न नहीं करता
उसकी अधोगति ध्रुवनिश्चित है; क्योंकि उनकी शिक्षाके
अभावमें उस देशके लिये सच्चे नागरिकका प्राप्त करना बड़ा

दुःसाध्य हो जाता है। फिर तो सच्चे नागरिक ही जहां नहीं वहांकी उन्नति स्वप्नमात्र नहीं तो और क्या है? इसी प्रकार आज दिन जितने देश गिरे हुए हैं उनके अधःपतनका कारण यदि देखा जाय और ढूंढ़ निकाला जाय तो यही बात निश्चित होगी कि उन देशोंने अपने भावी नागरिकोंकी जरा भी परवा नहीं की।

जिसमें अधोगति पाकर देशका विनाश न हो इसलिये पाश्चात्य जगत् अपने बालक-बालिकाओंकी शिक्षाके प्रयत्नमें कदापि उदासीन नहीं रहता। वह सदा उन्हें भाषाकी शिक्षा, कला-कौशलकी शिक्षा, अपने देशकी उपार्जन व संरक्षणशक्तिकी अभिवृद्धिकी शिक्षा दिया करता है जिसका फलस्वरूप उस जगत्की अविराम उन्नति हुआ करती है।

भाषाकी शिक्षासे उस देशकी भाषामें जितनी भिन्न भिन्न विषय और विभागकी पुस्तकें हैं उनका भलीभांति पठन कर विद्वानोंके वैज्ञानिक, सामाजिक, धार्मिक व आर्थिक विचारोंका अच्छी तरह परिज्ञान हो जाता है क्योंकि वे अपनी भाषामें ही उक्त विचारोंका उल्लेख कर भांति भांतिकी पुस्तकें छोड़ गये हैं। कलकौशलकी शिक्षासे अपनी जरूरत रफा हो जाती है और अन्यान्य देशोंसे व्यापारके द्वारा अमित धन आता है। इसीसे उपार्ज्जन शक्तिकी अभिवृद्धि होती है और संरक्षण शक्तिका विकास होता है।

आपकी थैली आपको दी। आपने बड़ी कृपा की कि मुझे इसकी रखवालीसे बचाया! यह वचन सुनकर वह यात्री भारतको धन्य धन्य कहता आगे बढ़ा।

वाचकवृन्द! क्या इससे भी बढ़कर कोई जीवनकी पवित्रताका उदाहरण होगा? कभी नहीं! जबतक समाज पवित्र जीवन व्यतीत नहीं करता तबतक उस समाजके लोग खासकर बालक—कदापि पवित्र जीवनकी सारगर्भित बातें नहीं जान सकते। शरीरकी पवित्रताके बिना मानसिक पवित्रता कहां? उसके अभावमें वाचिक और आर्थिक पवित्रता फटकतक नहीं सकती। एक गड़ेरियेके बालकने जैसी पवित्रताका परिचय दिया, उसने दूसरेके धनको मिट्टी समझ पैरसे ठुकरा दिया, लालचने उसके मनपर लेशमात्र भी अधिकार नहीं किया, उसने सत्यका अवलम्बन भलीभांति किया, उसने दूसरेकी वस्तु चुरायी नहीं, न उसे अपनी निजकी समझी, तो इससे बढ़कर जीवनकी पवित्रता और क्या होगी? उसी यात्रीने भारतीयोंके चरित्रका जिन शब्दोंमें उल्लेख किया है वे ये हैं—'भारतीय लोग सीधे, सच्चे, शांतिप्रिय, क्षमाशील व्यक्ति हैं। ये नशेकी चीज़ोंका व्यवहार न कर व्यभिचारसे एकदम विमुख रहते हैं। द्यूत इनका मनोविनोद नहीं, हिंसाका इनके कार्यक्षेत्रमें स्थान नहीं। वैवाहिक सम्बन्ध इनका बड़ा ही शुद्ध है। ये ईश्वरसे-धर्मसे कभी भी विमुख नहीं होते। ये स्त्रियोंको गृहलक्ष्मी समझते हैं, सादगीके नमूने हैं, और बड़े परिश्रमी होते हैं। इनका जीवन सब प्रकारसे अनुकरणीय है।'

वाचकवृन्द ! इस घटना द्वारा आपको भारतीय जीवनकी पवित्रताका पूर्ण परिचय मिल गया होगा। सात्विकताके भाव इस जीवनमें यहांतक भरे हैं कि संसारमें और किसीके जीवनमें नहीं देखे जाते। यदि आप इसे अत्युक्ति अथवा आत्मश्लाघा समझते हों तो ज़रा भारतीय ऋषि-जीवनकी ओर ध्यान दीजिये।

ऋषिजीवन व्यतीत करनेवाले लोग संसारमें सिवा भारतके अन्यत्र दिखायी नहीं देते; इसका कारण यहांका जल है, वायु है, मनोहर दृश्य है, शान्तिमय वनोद्देश है, प्रभावशाली पूर्वजोंका इतिहास है, उनके अलौकिक चरित्र हैं, उनके वे गुण हैं जिन्हें धर्म-लक्षणके नामसे पुकारा जाता है, और सर्वोपरि उनका सात्विक भोजन है जिसके प्रतापसे वे अपना जीवन लोकोत्तर बना डालते हैं।

ऋषियोंका जीवन सादगीसे भरा हुआ है। उनके रहन-सहनमें सादगी, उनके कार्योंमें सादगी, उनके आश्रममें सादगी ! जहां देखें वहीं सादगी ! आडम्बर फटकने नहीं पाता, राजस वा तामस भाव उनके हृदयमें उत्पन्नतक नहीं होते, क्षमाका शस्त्र हाथमें लिये, अक्रोधकी ढाल लगाये वे दिनरात निःशङ्क रहते, विश्वम्भरको अपना रक्षक जानकर वे सदा निर्भय रहा करते हैं।

ऋषियोंका आश्रम ऐसे स्थानपर रहा करता है जहांपर नदियां स्वच्छ धारा बहाती हुई अपनी सिकताओंसे उस प्रदेशको पूत कर अपने कृत्य द्वारा परोपकारके उत्तम व उन्नत उपदेश दिया करती हैं ! उनके जलके कारण चारों ओर तरी छा जाती

है और इसीलिये वहांपर तराईका दृश्य बड़ा मनोहर जान पड़ता है। वहांकी प्रकृतिकी हरियाली अनिर्वचनीय है। मृगोंका झुण्ड निर्बाधरूपसे आश्रमके चारों ओर विचरा करता है और आश्रमवासियोंसे ऐसा हिलमिल जाता है कि वह निःशङ्क घूमा करता है। गौएं और महिषियोंके झुण्ड भी बहुत रहा करते हैं, क्योंकि चरी वहां बहुतायतसे प्राप्त होती है। यह न समझना चाहिये कि ऋषि लोग बगैर स्त्रियोंके रहा करते हैं। वे ब्राह्म-विवाह करके अपनी अर्द्धाङ्गिनियोंके साथ पक्के गृही बनकर गृहस्थाश्रमका सुख भोगते हैं। उनके बाल बच्चे भी होते हैं। वे इन्द्रिय-सुखके लिये विवाह नहीं करते, बल्कि सुसन्तान उत्पन्न करनेके लिये। उनके आश्रममें किसी वस्तुकी कमी नहीं रहती। गोवंशोंके कारण वहां दूध, घीकी नहर बहा करती है। अन्न आदिकी जरा भी कमी वहां फटकने नहीं पाती। ऋषियों, ऋषिपत्नियों, ऋषि-बालकोंकी सेवामें आश्रमके वृक्ष प्रति संध्या फलाहार उपस्थित करते हैं। अतिथिसेवा वहां भलीभांति हुआ करती है! याचक वहांसे विमुख नहीं फिरते!

यद्यपि ऋषिलोग गार्हस्थ्य जीवनमें रहा करते हैं तथापि उनका लक्ष्य एकमात्र निर्वाण रहा करता है। निर्वाण कोई ऐसी वस्तु नहीं जिसका लाभ कोई स्वल्प मूल्यसे कर ले। जबतक सांसारिक वासनायें बनी रहती हैं तबतक निर्वाणकी प्राप्ति नहीं होती; हां शनैः शनैः उसके समीप वह मुमुक्षु व्यक्ति पहुंच जाता है। इस प्रकार अनेक जन्मोंकी कैवल्य विषयक

इच्छा द्वारा उसकी प्राप्तिके निमित्त उपाय करता हुआ; जब उसकी वासनायें नष्टप्राय हो जाती हैं, वह उसे पा जाता है। तभीसे वह आवागमनके दुःखोंसे छूटकर परब्रह्ममें लीन हो जाता है। जिस प्रकार दीपके निर्वाण प्राप्त करनेपर तेज तेजमें विलीन-हो जाता है उसी प्रकार वह जीव ब्रह्मकी अवस्थामें पहुंचकर उसीमें विलीन हो जाता है। इसीका नाम मुक्ति है, यही कैवल्य है, यही निर्वाण है, यही सांसारिक बन्धनोंसे छूटना है, यही अपने जीवनका सुधार है, यही खोये हुए अपने अमूल्य तथा अपूर्व कांतिमान् रत्नका पा जाना है।

जबतक किसी बातसे, किसी घटनासे दुःख—अतिशय दुःख होनेकी सम्भावना न हो तबतक उस दुःखके दूर करनेका कोई भी उपाय नहीं किया जाता। पर जब उसके दुःखको अनिवार्य जान लेते हैं और उसके द्वारा होनेवाली हानियां दिखायी पड़ती हैं तब उपाय भी ढूंढ़ निकाला जाता है।

संसारमें जितने प्रकारके कष्ट हैं, जितनी सजायें हैं उनकी नाममात्र भी गणना गर्भवासके कष्टसे मिलान नहीं की जा सकती। आजकल राष्ट्रीय भावापन्न व्यक्ति राजविद्रोही समझे जाते हैं और उन्हें जो कालकोठरीकी सजा दी जाती है वह हद्दसे बेशी कड़ी है, क्योंकि आठ दिनोंमें ही उस सजाका भोगनेवाला व्यक्ति पीला पड़ जाता है। इसका कारण यह है कि चार हाथ लम्बी चौड़ी जमीनमें वह रहता है और उसीके अन्दर पाखाना व पेशाबकी व्यवस्था है; कड़ी कैदकी हालतमें उसके अन्दर चक्की

मी पीसनेके लिये गड़ी रहती है। ओढ़नेके लिये कंबल रहता है। इस कष्टको झेलते हुए मलमूत्रकी गन्धसे नाकोंदम आ जाता है, फिर वह पीला क्यों न पड़े? पर गर्भवासकी काल-कोठरी ऐसी विचित्र है कि उसमें न वह जीव पैर फैला सकता है न हाथ। हां, किसी प्रकार वह घूम सकता है, पर उसी जकड़ बंदीकी हालतमें। नाभिसे एक मांसका नाल लगा रहता है जिसके द्वारा उसके पेटमें आहार पहुंचता है। बस, यही उसका अवलम्ब है, यही सहारा है जिससे वह जीता है! पाखाना, पेशाब बंद! बोलना चालनातक बंद! निःश्वास प्रश्वासतक बंद! चमड़ेकी पतली सी झिल्ली चारों ओर बंधनसी लपटी रहती है। इतना ही नहीं, उदरके भीतरवाले कृमि उस जीवको कोमल पाकर उसी भांति काटा करते हैं जैसे पलंगपर सोनेवालेको उसमें बहुतायतसे वर्तमान खटमल। उस वक्त उस जीवको अपने सब जन्मोंके कर्म याद आते हैं, वासनायें स्मृतिपटपर अङ्कित हो जाती हैं।

जब प्राणी कष्ट—असह्य कष्ट—में पड़ जाता है उस वक्त अपनेको उस कष्टसे दूर करनेके लिये अपनी शक्तिभर चेष्टा करता है, उद्यम करता है, पर जब सभी चेष्टायें, सारे उद्यम विफल हो जाते हैं; सारा गढ़ा हुआ मनसूबा मिट्टीमें मिल जाता है, उस समय सिवा परमात्माके और दूसरा कोई रक्षक जान नहीं पड़ता। उस समय वह दुखित जीव कष्ट दूर करनेके लिये परमात्माकी स्तुति करता है, विनय करता है, प्रार्थना करता है

और सांसारिक मायामें न फंसकर वासनाओंके परित्यागका बीड़ा उठाता है। उस समय परमात्मा दया दृष्टि कर उस जीवको वहांसे शीघ्र मुक्त कर देते हैं और प्रसूति मारुत द्वारा वह वेचारा सिर नीचे और पैर ऊपर ऐसी अवस्थामें ही बाहर फेंक दिया जाता है। ये बातें गर्भके अन्दरकी कैसे मालूम हुईं—इस प्रश्नके उत्तरमें मैं यही कह सकता हूं कि योगसिद्धियोंके द्वारा।

यद्यपि उस जीवको अपने कष्टका ज्ञान रहा करता है, जन्म-जन्मान्तरके कर्मों का स्मरण भी रहा करता है तथापि सांसारिक माया जिसका मनोहर दृश्य यथार्थमें मनका हरण करनेवाला है उस जीवको उस ब्रह्मसे हटाकर अपनी ओर लगा लेती है और फिर भी वासनाओंके कारण उस जीवको गर्भवासकी कैद भोगनी पड़ती है और जन्म ग्रहण करना पड़ता है। इसी आवागमनको निर्मूल करनेके लिये निर्वाणकी चेष्टामें ऋषि लोग लगे रहते हैं और अन्तमें अपने लक्ष्यको पा जाते हैं। इसी बातको योगेश्वर श्रीकृष्णचन्द्रने गीतामें कहा है—

"अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्।"

यह न समझना चाहिये कि ऋषि लोग सृष्टिके विस्तारमें हाथ नहीं बटाते। नहीं, यह तो जीवमात्रका धर्म है कि वह ब्रह्मकी सृष्टिकी सर्वदा समधिक उन्नति किया करे जिससे सृष्ट्युन्नति सम्बन्धी उसका कर्त्तव्य पूर्ण होता रहे और तदनुसार वह वेचारा कर्त्तव्यच्युत न समझा जाय। इसी सिद्धान्तके अनुसार ऋषिलोग भी अपनी सहधर्मिणीके साहाय्यसे केवल

ऋतुकालमें एक वार सन्तानोत्पत्तिके लिये उनका सहवास करते हैं और पांचवीं रात्रिसे सोलहवीं रात्रितक सम रात्रिमें गमन कर कन्या और विषममें गमन कर पुत्रकी उत्पत्ति करते हैं जिससे सृष्टिवृद्धिमें बड़ा भारी योगदान हो जाता है।

सन्तानोत्पत्ति करके वे अपनी सन्तानको अपने समान विद्वान् बनाते, धार्मिक बनाते, योगी बनाते और ऐसा आदर्श उसके सामने रखते हैं जिसमें उसके चरित लोकोत्तर, उसकी प्रतिमा उज्ज्वल, उसके विचार पवित्र और उसके आचार सात्विक भावोंसे भरे होते हैं। जिस भारतमें ऐसी आदर्श ऋषिसन्तानें थीं उस भारतका समाज परम पवित्र हुआ तो आश्चर्य ही क्या! फिर तो सात्विक वायुमण्डलमें रहनेवालेके भाव भी सात्विक ही होते हैं और सभी कार्य्योंमें सत्त्वाधिक्य दृष्टिगोचर होहीगा। कैवल्यके लिये अनवरत परिश्रम करनेवाले ऋषियोंका प्रभाव यदि आदर्श जनतामें व्यापी हुआ और तदनुसार जनताके चरित अनुकरणीय हुए तो इसमें विस्मय कैसा? यह उन्हीं महात्माओंका आदर्श था कि एक गड़ेरियेके बालकने इतनी सत्यता दिखायी और धनका प्रलोभन उसे दबा न सका।

यह भारतीय जीवनकी एक तुच्छ बानगी दिखलायी गयी है। यह इसलिये कि ऐतिहासिक घटनाको पाश्चात्य संसार प्रामाणिक मानता है। जिस भारतकी गोदमें ऋषिगण खेल चुके और आज भी खेल रहे हैं, जहां जन्म ग्रहण कर वे नाना शास्त्रोंकी रचना कर गये हैं, और उनके द्वारा सभी प्रकारके मानवोपयोगी

कार्य बतला गये हैं, उस भारतकी आज पाश्चात्य सभ्यताके कारण ही यह दशा है; नहीं तो अपने ऋषिजीवनका यदि आज भी भारत अनुकरण करे तो उसे वही सम्पत्ति, वही योगसिद्धियां अवश्य प्राप्त हों !

योगसिद्धियां कोई खरीदकर बाजारसे नहीं सकता ला, न पढ़नेसे ही इनकी प्राप्ति होती है। ये सिद्धियां उन्हींको मिलती हैं जो सांसारिक वस्तुओंमें रागद्वेष न करके एकमात्र परमात्मासे प्रेम करते हैं ताकि उनमें लीन हो जायं, और तदनुसार अपनी चित्तवृत्तिका निरोध करके सांसारिक सारी वासनायें, सब माया-जाल दूर हटाते हैं। फिर तो उनका शरीर दुर्बल, पर बलशाली, उनका मुख कांतिमान, उनकी दृष्टि स्निग्ध, उनका हास्य शांतिमय और उनका सङ्ग कल्याणकारी हो जाता है। वे अपने उपदेश एवं अवलोकनसे लोगोंके समक्ष एक समुन्नत आदर्श उपस्थित करते हैं जिसका फल अमृततुल्य होता है।

ईश्वर-प्रेमसे बढ़कर संसारमें कोई प्रेम नहीं; प्रेमसे प्रेमकी उत्पत्ति होती है और घृणासे घृणाकी। जड़के साथ प्रेम करनेसे कोई लाभ नहीं; उलटे हानिकी सम्भावना है। चेतनमें भी जो विवेकशील नहीं उसके साथ प्रेम करनेका फल कुछ नहीं। प्रेमका फल यदि मिलता है तो विवेकीके साथ प्रेम करनेसे। सो भी फल विवेकी अपनी शक्तिके बाहर नहीं दे सकता। यही कारण है कि ईश्वर-प्रेम ज्ञानी लोगोंको बड़ा प्रिय है। यह ईश्वर-प्रेमकी ही महिमा है कि योगकी आठ सिद्धियां प्रेमीको

प्राप्त होती हैं जो अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्वके नामसे विख्यात हैं। ईश्वरप्रेमीकी गति कहीं भी कुण्ठित नहीं होती। वह अग्निमें जलता नहीं, जलमें डूबता नहीं, जमीनमें गाड़े जानेपर मरता नहीं। वह ईश्वरके समान सर्वव्यापी हो सकता है; उसमें और ईश्वरमें फर्क नहीं रह जाता। वाचकवृन्द! यदि आपको विश्वास न हो तो ऐसी घटना उपस्थित करता हूं जो १९०७ और १९०८ ई० में हुई थी।

योगविद्या सिवा भारतवर्षके दुनियामें और कहीं नहीं है और यही एक विद्या है जो पाश्चात्य वैज्ञानिकोंको सर्वदा चकित किये रहती है। यद्यपि पाश्चात्य वैज्ञानिकोंने भौतिक बलका विस्तार बड़ी बड़ी तोप, बन्दूक, हवाई जहाज इत्यादिके द्वारा बहुत किया पर क्या उन्होंने योगका तत्त्व पाया?—कभी नहीं। यह आत्मिक बल है। इसके सामने भौतिक कलाकी कुछ नहीं चलती। जिसमें आत्मिक बल है उसके ऊपर एक भी हरबा उठ नहीं सकता। उसका व्यक्तित्व ऐसा प्रभावशाली होता है जिसे देखकर ही बुरी भावनायें दूर भाग जाती हैं, सत् भावनाओंका उसके हृदयमें उदय हो जाता है।

योगी पहले भारतमें घर घर दीख पड़ते थे, पर आजकल भी ढूंढनेसे मिल जाते हैं। उक्त सन्में एक योगीने अपनी साप्ताहिक समाधि हरिद्वारमें दिखलायी थी। इस प्रदर्शनका उल्लेख स्वयं एक अंग्रेजने अपने अखबारमें किया था जिसे पढ़कर सम्पादक 'सरस्वती' ने आश्चर्यके साथ उसका विवरण अपनी पत्रिकामें प्रकाशित किया था। घटना यों है —

एक अमेरिकन अंग्रेज किसी भारतीय मित्रके साथ हरद्वार गया था। वहां यह सुननेमें आया कि आज एक योगीकी सामाहिक समाधि होगी। फिर तो कुतूहलाविष्ट हो वे दोनों वहींपर निर्दिष्ट स्थानमें प्राप्त हुए। निश्चित समयपर पहाड़परसे शङ्ख, घण्टेकी ध्वनि सुनायी पड़ी, आती हुई योगियोंकी एक बड़ी मण्डली दिखाई पड़ी। जब वे नीचे आये और निर्दिष्ट स्थानपर पहुंचे तो उनके बीचमें वह महात्मा दिखायी पड़े जिनकी समाधिके देखनेके लिये इतनी भीड़ थी। सब बैठ गये पर बीचमें वह महात्मा खड़े थे। उनका शरीर हड्डियों और नसोंका प्रदर्शन मात्र था। यद्यपि शरीर इतना दुर्बल था पर मुखारविन्द कान्तिसे चमक रहा था। अवस्था वृद्ध थी, सारे बाल पाटके समान पके हुए थे, भौंहें और पलनियां झरी हुई सी जान पड़ती थीं। इतना होनेपर भी जरा उनका शारीरिक बल, तो देखिये! एक बार महात्माने अपनी शान्तिमयी, स्नेहपूर्ण दृष्टि स्मित करते हुए लोगोंपर डाली जिससे दर्शकोंको जान पड़ा मानो महात्मा सबोंका चित्त चुराते हों। हाथके त्रिशूलको उठाकर एक ही बारमें दबाकर गाड़ दिया, ओंकारका गान प्रारम्भ हुआ, गड़हा संदूक रखनेके लायक एकपोरिस पहलेहीसे खोदा जा चुका था; अब उस त्रिशूलके सहारे ही खड़े खड़े महात्मा समाधिस्थ हो गये। ५-७ योगी लोग उठे और उन्हें एक वस्त्रसे लपेटा। नाक, कानके रन्ध्र रूईसे बंद कर कुछ औषध ऊपरसे लगा दी; सन्दूकमें रखकर उसे बन्द किया और गड़हेमें नीचे उतार दिया। फौरन मिट्टीसे वह

गड्हा भर दिया गया, एक छोटासा चबूतरा उसपर बना दिया गया। पर जब त्रिशूल उखाड़नेके लिये १० आदमी लगे तब वह बड़ी मुश्किलसे उखाड़ा जा सका। वाचकवृन्द! देखा आपने महात्माका शारीरिक बल! त्रिशूल चबूतरेपर गाड़ा गया। सब लोग लौटकर चले गये। अमेरिकन अपने भारतीय मित्रके साथ आश्चर्य्यान्वित हो सारी घटना देखता रहा और दिनमें दो बार, रात्रिमें एक बार आकर उस जगहको देख जाता था, पर कोई चिह्न चबूतरेके खोदे जानेका नहीं मिलता था। सातवें दिन समय-पर वही योगियोंकी मण्डली आई और ओंकारका गान प्रारम्भ हुआ, त्रिशूल उखाड़कर चबूतरा खोदा गया, गड्हा खाली किया गया, सन्दूक निकालकर महात्माको निकाला गया; घत्रसे मलकर नाक, कानके रन्ध्र खोले गये और जरासी वायु लगनेसे महा-त्माजी उसी प्रकार उठ बैठे जैसे कोई सोया हुआ पुरुष निद्रा भंग होनेपर जाग जाता है। एक स्नेहमयी दृष्टि दर्शकोंपर डाली और मण्डलीके साथ महात्मा पर्वतपर चले गये।

प्यारे वाचकवृन्द! ऐसा दृश्य यदि कोई भी पाश्चात्य व्यक्ति दिखलाता तो अखबारों और छोटी पुस्तिकाओंके प्रकाशन द्वारा पाश्चात्य जगत् डंकेकी चोट इसे कहीं बढ़ाकर कहता और सपनेको मनुष्य न कहकर शायद फिरिश्ता कहता। पर सभ्यतामें ऊंचा नाम अभी उक्त जगत्ने नहीं मारा है, इसीलिये बेचारा मसोसकर रह जाता है।

हालमें ही ब्रुट्लैंडकी जिमोग्रैफिकल सोसाइटीने भारतकी

गौरीशङ्कर चोटीकी लंबाई-चौड़ाई नापनेके लिये चेष्टा की। हवाई जहाज द्वारा लोग इसके ऊपर गये और चढ़े पर शीतसे उनके कान फटने लगे, किसीकी नाक फटने लगी, अधिकांश लौट आये, कुछ ऊपर चढ़े जिन्होंने एक विचित्र दृश्य देखा।

गौरीशङ्कर चोटी कुछ मामूली चोटी नहीं है जहां सब कोई जा सके। यह वही स्थान है जहांपर पार्वतीने शङ्करजीके प्राप्त्यर्थ घोर तपस्या की थी और वह सफल हुई थी। यह स्थान सिद्ध, मुनि, गन्धर्व, योगियोंसे व्याप्त है। वे यहां तपस्या बराबर किया करते हैं।

जब ये पाश्चात्य उस चोटीपर पहुंचे तो क्या देखते हैं कि कन्दराओंमें महात्मा लोग तप कर रहे हैं और कुछ सुगन्धित वस्तु उनके सामने जल रही है। संयोग अच्छा था कि अपनी बन्दूकका घोर अभिमान रखनेवाले ये पाश्चात्य उनकी कन्दराओंमें न जाकर लौट आये। इसमें सन्देह नहीं कि इन्हें उनके तपश्चरणसे विकट भय हुआ। तभी तो वे उनसे बातचीततक न कर सके। इस घटनाको मनगढ़न्त नहीं कह सकते क्योंकि यह रिपोर्ट पाश्चात्योंकी ही दी हुई है।

सोचनेकी बात है कि जहां पाश्चात्य पैदल न जाकर हवाई नावोंके जरिये जाते हैं और मुश्किलसे पहुंच पाते हैं, वहां उनके कथनानुसार दीन-हीन, असभ्य, भारतीय घोर शीतकी पर्वाह न कर सानन्द तपस्या करते हैं। इन तपस्वियोंका भय

पाश्चात्योंको इतना था कि ये उनसे बोलनेतकके लिये समर्थ न हुए। शायद, छेड़छाड़का फल कुछ अनिष्ट हो यह खयाल उनके चित्तमें हुआ होगा।

आज दिन भारत पाश्चात्य सभ्यतामें लीन होकर अपनी सभ्यता यद्यपि भूल रहा है तथापि उसकी सत्ता वर्त्तमान है, उसके भाव प्रत्येक भारतवासीके मस्तिष्कमें जागरित न हों सो बात नहीं। एक एक घटना इस प्रकारकी हुआ करती है जिससे अपनी सभ्यताका अभिमान, अपनी जातिकी मर्य्यादा, अपने भावोंका, अपने विचारोंका प्रेम बना रहता है। यही कारण है कि संसारमें यद्यपि बहुतसी जातियां लुप्तप्रायसी हो रही हैं, तथापि उनकी सत्ता किसी न किसी रूपमें वर्त्तमान है।

शायद इन घटनाओंके उपस्थित करनेसे पाश्चात्योंके चित्तमें भारतीय जीवनकी बात, कि यह कितनी और कहांतक पवित्रतासे भरा है, आ गयी होगी; विशेष इशारा देनेकी जरूरत क्या है? अन्यथा ऐसी ऐसी घटनाओंकी अवलियां वर्त्तमान हैं जिन्हें देख सुनकर तत्वान्वेषण भलीभांति किया जा सकता है।

भारतीय जीवनमें सत्यकी मात्रा कहीं बढ़ चढ़कर है। सत्यका पालन जितना इस जीवनमें है उतना अन्य किसी भी जीवनमें नहीं। सत्यसे संसार चलता है, सत्यसे धर्मकी रक्षा होती है; अर्थ, काम, मोक्षकी प्राप्तिका मुख्य साधन भी सत्य ही है। इसकी महिमा सर्वत्र व्याप्त है और ईश्वरके तुल्य है। सांसारिक जितने कार्य्य हैं वे सत्यके परिचायक हैं।

सत्यकी महिमा इतनी जबर्दस्त है कि भारतमें एक समय सत्ययुगके नामसे विख्यात है। उस युगका आविर्भाव क्यों हुआ इस प्रश्नके उत्तरमें पाठकवृन्द! मैं यही कह देना उचित समझता हूं कि उस समय जीवनमें, समाजमें, प्रत्येक कार्य्यमें चाहे वह कायिक हो, मानसिक हो, वाचिक हो किंवा आर्थिक हो—सत्यहीका अटल राज्य था।

यथार्थमें बात भी ऐसी ही है। तभी तो धर्मका प्रधान अङ्ग सत्य ही है और सभी मतवाले—चाहे इसका व्यवहार करें या न करें—आदरकी दृष्टिसे इस धर्म-लक्षणको देखते हैं।

राजा हरिश्चन्द्र इस गुणके बड़े ही कट्टर पक्षपाती हो गये हैं। उनकी कथा यों है—वह अयोध्याके बड़े प्रतापी राजा थे। उनकी स्त्रीका नाम शैव्या था और पुत्रका रोहिताश्व। यह राजा सत्यके इतने बड़े प्रेमी थे कि जो कुछ स्वप्नमें करते थे उसे भी सत्य समझ जागकर कर डालते थे। उनके सत्यकी ख्याति इतनी बढ़ी कि देवताओंके राजा इन्द्रतकने डाह करना आरम्भ किया। यह डाह उस समय निःसीम बढ़ा जब अनायास नारदजीने स्वर्गमें पहुंचकर राजा हरिश्चन्द्रके सत्यकी हद दर्जेकी प्रशंसा की। इन्द्र महाराज उनके सत्यकी प्रशंसा सुन सुनकर जलने लगे। वे मौका ढूंढ़ने लगे कि राजा हरिश्चन्द्रको किस प्रकार सत्यभ्रष्ट किया जाय। अनायास विश्वामित्रजी आ पहुंचे और उनके द्वारा अपनी नीच मनोवृत्तिका सिद्ध होना उनने निश्चित समझ इन्द्र महाराजने ज्योंही वह बात चलायी, त्योंही विश्वामित्रने प्रण किया और वहांसे प्रस्थान किया।

राजाने स्वप्न देखा कि एक बड़े क्रोधी ब्राह्मणको मैंने सा राज्य-पाट दान कर दिया है। रानीने भी राजाको श्मशान विभूति लगाये घूमते हुए स्वप्नमें देखा। रोहिताश्वको काल सर्पने डसा और वह मर गया,यह भी रानीने स्वप्नमें देखा। अप दीन-हीन और निःसहाय अवस्थाको भी रानीने उसी स्वप्न देखा। जब राजासे प्रातःकाल रानीकी भेंट हुई उस सम दोनों दुःस्वप्नोंके कारण मलिनमन थे। स्वप्नकी बात चलते ही रानीने कहा—महाराज ! शान्तिके लिये गुरुजीको सूचना दी थी उनके शिष्यने मङ्गल-पाठ करके कुशोंके अभिमन्त्रित जल मार्जन कर आशीर्वाद दिया है। राजाने कहा—मैंने भी स्वप्नमें किसी क्रोधी ब्राह्मणको सारा राज्य पाट दे डाला है। जबतक वह ब्राह्मण मिलता नहीं तबतक उसीके नामपर मुझे शासन करना चाहिये। तदनुसार राजाने डौंड़ी पिटवा दी और कर्म चारीकी भांति कार्य्य चलाने लगे। जब द्वारपालने उस ब्राह्मणके आने और क्रोधमें उसे गाली देनेकी बात राजासे कही तो उन्होंने प्रसन्न हो उस ब्राह्मणको बुलाकर अपने सिंहासनपर बैठाया और कहा—मुझे जो आज्ञा की जाय उसे करनेके लिये तैयार हूं,आपके आनेके पहले ही मैंने सारा राज्य किसी अनिर्दिष्ट नाम-गोत्रवाले ब्राह्मणको देकर डौंड़ी पिटवा दी है और मैं कर्मचारीके रूपमें कार्य्य चला रहा हूं। यह सुनकर विश्वामित्रने दक्षिणा मांगी। इतने बड़े दानकी दक्षिणा हजार अशर्फियोंसे क्या कम होगी यह मुनिने कहा।

सारा राज्य-पाट दान किया गया, खजाना भी उससे अलग नहीं रहा, तो अब क्या किया जाय—इस विचारने राजाको चकित किया। उन्होंने काशीमें अपने शरीरका विक्रय कर दक्षिणा देना उचित समझा। तीनों प्राणी बिकनेके लिये काशी चल पड़े। हा! जो शरीर कुछ पहले इतने बड़े राज्यका स्वामी था, अब वह बिकनेको जा रहा है। किसलिये? सत्यके लिये। हा! जो रानी असूर्य्यम्पश्या थी और महलोंमें दासी-दासियोंसे सेवित रहा करती थी आज वह अपने कोमल चरणोंके द्वारा मार्गमें ठोकरें खाती अपने कोमल बालकको लिये बिकनेके अर्थ काशी जा रही हैं! दैव, तू बड़ा ही अन्यायी है! तेरी नीति बड़ी ही वक्र है! क्या ऐसे न्यायी राजाको भी तुझे ऐसे दिन दिखलाने चाहिये थे?'

हा! राजा पांव पांव रानी और बच्चेके साथ चलते चलते थक जाते और बैठ बैठकर विधिकी वक्रतापर विचार करते। वे चिन्ताके समुद्रमें डूबने लगते, पर धैर्य बांधकर सत्यके पालनके लिये सब कष्टोंको झेलते। यद्यपि वे रानीका मुखकमल मुर्झाया हुआ देखते और राहके चलनेसे जो उसे शारीरिक कष्ट होता उसके चिह्न भी प्रत्यक्ष देखते, पैरोंके छाले व सूजन देखते, पर वीरताके साथ उसे धैर्य्य प्रदान करते, सत्यकी पूर्तिके लिये सारे कष्टोंको सहन करनेके लिये उत्साहपूर्ण शब्दोंके उपदेश देते। इस प्रकार वे तीनों प्राणी विश्वनाथपुरीके अतिथि हुए।

यद्यपि मुनिको दक्षिणा देनेकी चिन्ता राजा-रानीको विकल कर रही थी तथापि विश्वनाथपुरीकी महिमा देखकर उन्होंने गङ्गास्नान किया और अपने विक्रयका विचार स्थिर किया। इतनेहीमें विश्वामित्रजीने पदार्पण कर अपनी दक्षिणाका तकाज़ा करना प्रारम्भ किया।

धारनेवालेपर पानेवालेका तकाजा कुछ अनुचित नहीं, पर जो धारता नहीं, न कर्ज ही जिसने लिया उसके प्रति सख्त तकाजा कैसा जान पड़ता है इसे सहृदय विचारें। हां, यदि एवजमें कुछ भी काम किया हो तब तो साम्यवादके अनुसार पानेवाला तकाज़ा कर सकता है। यहांतक तो नीतिकी बात हुई। किन्तु आज भी ऐसे लोगोंकी संख्या कम नहीं है जो धार कर भी देनेका नाम नहीं लेते, एवजमें जीतोड़ परिश्रम करा-कर भी जिन्हें देना नहीं भाता, क्या ही घृणास्पद दृश्य है! कैसा अनुचित कार्य्य है!

राजा हरिश्चन्द्रकी समता करनेके लिये यदि ऐसे लोग मूंछें ऐंठते हों तो उन्हें उचित है कि वे पहले उक्त राजाके समान अपना हृदय उदार बना लें और अपना मानसपट्ट सत्य व्यवहारसे उद्भासित रक्खें, तब कहीं वे किसी अंशमें समताके अधिकारी हो सकते हैं, अन्यथा उनका यह एक स्वप्नमात्र है। केवल घरमें ठाकुर पूजने और मस्तकपर तिलक व गलेमें कण्ठी अथवा तुलसी-रुद्राक्षकी माला पहननेसे काम नहीं चलता, उन्न-त्तिके लिये है सत्य व्यवहारकी; सत्य प्रतिज्ञाकी।

राजा हरिश्चन्द्रको उनके तकाजेसे दुःखका लेश नहीं होता था; पर अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनेकी बात उनके मनमें जमी हुई थी। उन्होंने सूर्यास्ततक दक्षिणाकी सहस्र स्वर्णमुद्रायें देनेका वादा किया। मुनिके जानेपर राजा अपने मस्तकपर तृण रखकर शरीर बेचनेके लिये काशीके ठठेरी बाजारमें अर्द्धाङ्गिनी और बालकके साथ घूमने लगे। उनके विनीत शब्द ये थे—"भाई सेठ साहूकार लोगो! हम अपनेको किसी कार्य्यवश बेच रहे हैं; यदि कोई मोल ले तो बड़ा उपकार हो।" इसपर वह बालक भी माताकी ओर देखकर राजाके कहे हुए शब्दोंको अपनी तोतली बोलीमें दुहराता था जिसे सुनकर अवश्य ही राजाका कलेजा फटता होगा।

जिस समयकी यह घटना लिखी जा रही है वह समय सत्ययुगका था। उस समय भारतमें खाद्य पदार्थ बहुत ही सस्ता था। शारीरिक बल लोगोंके शरीरमें कहीं अधिक था। लोग अपने हाथों अपना काम कर लेते थे। दास-दासियोंकी आवश्यकता लोगोंको ज़रा नहीं रहती थी। ऐसी अवस्थामें सहस्र स्वर्णमुद्राएं देकर—क्योंकि यही दक्षिणा थी—दास-दासी खरीदना लोगोंको अनुचित जान पड़ता था। यदि राजा हरिश्चन्द्रको सहस्र स्वर्णमुद्रायें न मिलें तो उनका प्रण भङ्ग होता है! कैसी जटिल समस्या है!

यदि एकमात्र सत्यका व्यवहार करनेवाला व्यक्ति प्रतिज्ञा पालनके लिये अपनी कुलीनता, मान-मर्यादा—सारी बातोंको

जलकर उसके प्रति घृणाका भाव दिखाना, अनिष्टकी आग भड़काना क्या किसी भी विचारशीलको शोभा देता है? कभी नहीं! ऐसा करनेसे वह स्वयं ही तुच्छ समझा जाता है। जिसे इस बातका विचार नहीं, अथवा जो अपकीर्त्तिसे डरता नहीं, जिसे ऐसे कामोंकी लज्जा नहीं, वह व्यक्ति ऐसे ही कार्य्य सज्जनोंको कष्ट देनेके लिये करता है जैसे राजा इन्द्रने किये।

अभी इन्द्रका हृदय ठंढा नहीं हुआ था, इसलिये उन्होंने विश्वामित्रजीके परामर्शसे तक्षक सर्पको रोहिताश्वके डसनेके लिये भेजा। बेचारा रोहिताश्व गुरुजीके शिशु शिष्योंके साथ खेलता हुआ फूल लाने गया था। ज्योंही उसने फूल तोड़ना चाहा कि तक्षकने डसा। वह बेचारा कटे वृक्षके समान गिर पड़ा और उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। चेले लोगोंने आकर रोहिताश्वकी मातासे यह दुःसंवाद कहा। हा! बेचारी शैव्या रोती पीटती अपने मृत पुत्रके पास पहुंची और जो विलाप किया, शायद, उससे पत्थरका भी कलेजा फटता था और टुकड़े टुकड़े हो जाता था।

राजा हरिश्चन्द्रकी कड़ी जांचका समय है। आकाश-मार्गमें विमानोंपर देवताओंके ठट्ट लगे हैं। भगवान् भुवनभास्कर अपने वंशजकी परीक्षा समझ उसकी उत्तीर्णताके अभिलाषी हो रहे हैं। साक्षात् सपत्नीक विष्णु भगवान् यहांपर नभमें उपस्थित हैं।

भोरका समय हुआ चाहता है। बर्साती बादल छाये हुए हैं। गङ्गाका प्रवाह बड़े वेगसे चल रहा है। ऊपरतक लबालब जल

भरा हुआ है। इसपर भी कम्बलकी घोघी लगाये, हाथमें लट्ठ लिये राजा हरिश्चन्द्र अपने कार्य्यपर सावधान हैं।

इतनेहीमें बेचारी शैब्या विलाप करती, अपने अञ्चलमें पुत्रको लपेट चलती चलती श्मशानमें पहुंची जहां हमारे दानवीर एवं सत्यवीर राजा हरिश्चन्द्र चाण्डाल-कुलके दासकी हैसियतसे अपने स्वामीका काम कर रहे थे। वे शैब्याका विलाप सुनकर एक बार दुःखसमुद्रमें डूब गये, पर संभलकर उससे आधा मृतवस्त्र और पैसे मांगे। उसने कहा—आर्य्यपुत्र! अञ्चलमें लपेटकर मैं अपने सर्प-दष्ट लालको लाई हूं और आप आधा मुर्देका कपड़ा मांगते हैं। यदि मैं आधा दूंगी तो यह उघारा ही रह जायगा। राजाने अपने दुःखका खयाल न कर, इस समय शैब्याको अपनी रानी न जान, अपनेको चाण्डाल-कुलका दास समझ, अपने कर्त्तव्यकी उपेक्षा नहीं की और वस्त्रके लिये हाथ फैलाया एवं रानीने फाड़ना चाहा कि आकाशसे पुष्पवृष्टि हुई! धन्य धन्य!! जय जय!!! की ध्वनी सुन पड़ी।

विष्णु भगवान् सब देवताओंके साथ प्रकट हुए; भगवान् भुवनभास्कर अपने वंशजको आशीर्वाद देने लगे। विष्णु भगवान्ने कहा—राजन् हरिश्चन्द्र! यह सब तुम्हारी परीक्षा है! तुम्हारा पुत्र दीर्घायु है, वह मरा नहीं! तुम धर्मके दास हो, चाण्डाल-कुलके नहीं! वटुकने तुम्हारी रानीकी रक्षा की है। राज्य तुम्हारा है!

इन वचनोंको सुनकर राजा आश्चर्य्यभरे नेत्रोंसे सविनय

साष्टांग प्रणाम करने लगे और रोहिताश्व उठ खड़ा हुआ। इन्द्र महाराज और विश्वामित्रने क्षमा मांगी! राजा सपुत्र सकलत्र अपने राज्यमें चले गये।

क्या इनसे भी बढ़कर संसारमें किसीने दान-वीरता और सत्य-वीरता दिखायी होगी—इस प्रश्नके उत्तरमें मुझे, वाचक-वृन्द! यही कहना होगा कि शायद एकने भी नहीं। सांसारिक जीव अपनेको तथा पुत्र-कलत्रको सर्वोपरि मानते हैं, और इसीका नाम स्वार्थपरता भी है; फिर कैसे विश्वास किया जाय कि कोई व्यक्ति ऐसी दान-वीरता और सत्य-वीरता दिखला सकेगा!

आज दिन राजा हरिश्चन्द्रका पतातक नहीं है; न उनकी रानी ही जीवित है, न रोहिताश्व; फिर भी जो उनकी धवल चन्द्रिकासी कीर्त्ति संसारमें फैल रही है, उनकी दान-वीरता और सत्य-वीरताकी पताका जो जगत्में उड़ रही है वही उनके लिये अक्षय स्वर्ग है, उसीसे वे आज भी अमर हैं और जबतक सूर्य्य चन्द्रमा हैं अमर रहेंगे। धन्य हरिश्चन्द्र! धन्य आपकी दान-वीरता!! धन्य सत्य-वीरता!!!

भारतीय जीवनमें सत्यका स्थान कितना ऊंचा है—यदि इसकी जांच करनी हो तो, वाचकवृन्द! राजा नलकी जीवनीपर ध्यान दीजिये।

जूआ बहुत ही बुरा व्यसन है। इसके चक्करमें आकर लोग अपना सर्वस्व खो बैठते हैं, खाने-खराब हो जाते हैं, सहधर्मिणी-तकको बाजियोंमें हार जाते हैं, जब कुछ नहीं रहता है तो वेर-

मानीतक करनेपर तैयार हो जाते हैं; पर भारतीय जीवनमें बेईमानीकी बातका लेश नहीं; यहां सत्यका राज्य है, मिथ्याकी मात्राका नामोनिशान भी नहीं।

राजा नल उन उच्च विचारवाले व्यक्तियोंमेंसे हैं जिन्होंने संसारको अपनी धार्मिकतासे प्लावित कर दिया है; अपने सत्यका परिचय देकर राज्य-पाट आदितकको दे डाला है पर सत्यको मिथ्या करनेके लिये झूठा तर्क नहीं किया, न वाक्‌प्रपञ्च ही फैलाया। सुखसे कष्टोंका सहन कर सत्यकी मर्य्यादाका पालन किया और धैर्य्यसे आये हुए विघ्नोंका विजय किया।

जिस समय संसारमें सुन्दरता-सम्पन्न व्यक्तिकी खोजमें राजा नलके नामपर बड़े बड़े तत्वदर्शी लोगोंकी उंगलियां उठती थीं और मस्तक हिलते थे वह समय ऐसा था कि सत्य हीका सार्वभौम राज्य था। ऐसे सुन्दर राजा नल थे कि विवाह करनेकी इच्छा रखनेवाली राजकुमारियां उक्त राजाके चित्रको हाथमें लेकर एक बड़े आईनेके सामने बैठतीं और चित्रखचित नलके सौन्दर्य्यसे अपनी लावण्यमयी सुन्दरताका मिलान करतीं; पर, हा! नलके सौन्दर्य्य-लेशको अपनी सुन्दरतामें न पाकर नैराश्य-समुद्रमें पड़कर लम्बी सांसोंसे उसे मलिन करतीं। नलकी सुन्दरता उस समय रमणियोंके चित्तमें ऐसी जमी थी कि स्वप्नावस्थामें भी उन्हींको वे देखतीं। यह कुछ आश्चर्य्यकी बात नहीं है। सौन्दर्य्य एक ऐसी ही वस्तु है जिसपर सृष्टिमात्रका प्रेम रहता है। सौन्दर्य्य देखनेके लिये कुलीन और पतिव्रताओंतकके

अवगुण्ठन खुलते हैं। सौन्दर्य-प्राप्ति कुछ थोड़े पुण्यका काम नहीं! यह बड़े संस्कारसे मिलता है।

पाठकवृन्द! क्या सुन्दरताकी विनाशक कुसंस्कृतियोंको आपने जानातक नहीं? कानापन, अन्धापन, गूंगापन, बहरापन, लङ्गड़ापन, और बदनुमा चेहरे और शरीरकी बनावट ये ऐसी कुसंस्कृतियां हैं जिनसे सौन्दर्य नष्टप्राय हो जाता है; फिर दर्शकका सौन्दर्यके प्रति प्रेम कैसे उत्पन्न हो? कहनेकी आवश्यकता नहीं कि राजा नल इन कुसंस्कृतियोंमेंसे एकके भी शिकार न थे; तिसपर भी उनका अलौकिक गुण-सौन्दर्य—अद्भुत सौन्दर्य वर्त्तमान मनोहरताको और भी बढ़ा रहा था।

राजा नलका विवाह, कुण्डिनपुरके राजा भीमकी कन्या दमयन्तीसे जो सुन्दरतामें नाम मारे हुई थी, हुआ था। यह त्रिलोकी की रमणियोंमें एक मात्र सुन्दर थी और उनकी सुन्दरताके मदको इसने चूर किया था इसीलिये शायद इसका दमयन्ती नाम पड़ा था। यदि ऐसा न होता तो इन्द्र, वरुण, यम, कुवेर और अग्नि ये पांचों लोकपाल उसकी रूप-सम्पदापर मुग्ध हो स्वयंवरके लिये प्रस्थित राजा नलको प्रार्थना कर उन्हें दौत्य कर्ममें नियुक्त न करते और इन्हें इस काममें जाना न पड़ता।

ये दोनों दम्पति विवाहके पूर्वकी कल्पनाओंका यथार्थ आस्वादन करते जब सन्ततिके मुखावलोकनके सौभाग्यसे सम्पन्न हुए उस समय इनके सुखोंकी सीमा न रही, पर भावीवश अपने छोटे भाईके ललकारनेपर जूएमें बैठ सारा राज्य-पाट हार गये।

पतिव्रता-शिरोमणि दमयन्तीने अपनी सन्तानको अपने पिताके घर पहुंचा दिया। आनेवाली विपत्ति थी वह रुकी नहीं। जब राजाके पास कुछ न रहा और वे सब हार गये तब छोटे भाईने स्त्रीको बाजीके लिये ललकारा। असमर्थ हो राजा सस्त्रीक राज्यसे निकल पड़े।

राजा दमयन्तीपर बड़ा प्रेम रखते थे। उनका दाम्पत्य बड़ा ज़बर्दस्त था। उसमें मोहिनी शक्ति थी,इसीलिये इस दुःखके समयमें भी वे वियुक्त न हुए। बुरे दिनोंको बुद्धिमान् लोग प्रकृतिकी गोदमें काट देते हैं; बस, यही कारण था कि वे अपने पक्के इरादेके साथ जङ्गलकी ओर चले।

भला, जिसने कभी दुःखका नाम ही मात्र सुना और उसका अनुभव एक दम न किया वह व्यक्ति दुःखका हाल क्या जाने? पर दैव जो कुछ सहाता है उसे सहना ही पड़ता है। राजा नल यद्यपि इस समय भैक्षुकी वृत्तिका अवलम्बन किये हुए थे पर दुःखका अनुभव न होनेके कारण राग-द्वेषसे अलग न थे। इन्होंने यद्यपि वृक्षोंके प्रति भैक्षुकी वृत्ति अवलम्बन की थी और उनसे फलोंकी भिक्षा पाकर अपना उदर-पोषण कर लेते थे,परन्तु राजस भोजन करनेकी जो आदत पड़ी हुई थी उसने एक समय, जब इन्हें बड़ी भूख लगी थी, कुछ चरते हुए पक्षियोंको पकड़कर उनके द्वारा क्षुधा-निवारण करनेकी राजाको सलाह दी। तदनुसार इन्होंने अपना परिधानीय वस्त्र उन चरते हुए पक्षियोंपर फेंका। वे राजाके कब्ज़ेमें आनेके बदले उस वस्त्रको लेकर उड़ गये, यह

कहकर कि "भगवन्! हमलोग जूयके पासे हैं। आपका विवस्त्र कर हमारा हृदय सन्तुष्ट हुआ।"

बेचारी दमयन्तीने राजाको अपना अर्धवस्त्र लपेट लेनेके लिये दिया और बड़े प्रेमसे दोनों प्राणी वनकी ओर जा रहे थे। यद्यपि राजाका मन दमयन्तीके समीप घबड़ाता नहीं था परन्तु उसको जिसमें कष्ट न हो इसलिये राजा उसे नैहर जानेका परामर्श देते थे। कभी वे उसके प्रति वनके दुःखोंका, कष्टोंका, पीड़ाओंका विशद वर्णन करते कभी वे उसके सुकुमार कोमल शरीरको वनके निवासके अयोग्य बतलाते। इस प्रकार कभी हिंसक जीवोंके भयका व्याख्यान सुना ही रहे थे कि वह बेचारी निद्रादेवीकी गोदमें जा पड़ी। राजाने उसे कष्टोंसे मुक्त करनेकी इच्छासे अपने शरीरमें लिपटे हुए वस्त्रको बीचसे फाड़ डाला और यह सोचकर कि यह इसी राहसे अपने नैहरका पता पूछती हुई वहां चली जायगी, आप उसे अकेली सोती हुई छोड़कर चल दिये।

कहां बेचारी दमयन्तीने यह सोचकर राजाका साथ नहीं छोड़ा था कि वनमें मैं आर्यपुत्रकी सेवा करूंगी; यदि जरा भी राज्य सुखके विनाशका ध्यान आर्यपुत्रको होगा तो मैं बड़े उत्कट युक्तियोंसे उनके मनको सन्तोष प्रदान करूंगी और किसी प्रकारसे उन्हें निराश न होने दूंगी, क्योंकि आशा ही जीवन है; नैराश्य तो मृत्युतुल्य है; कहां अब अनाथ दमयन्ती घोर वनमें अकेली है, कहीं जानेका रास्तातक नहीं जान पड़ता

है। जो अपने जीवनमें कभी क्लेशोंका नाम भी न सुन पायी थी आज वह उन्हें झेलनेके लिये तैयार है, झेलती जाती है और उनका अन्त होना सम्भव नहीं जान पड़ता।

इतनेमें उसे एक बाघ दिखलायी पड़ा और उसने समझा के यह मुझे खा जायगा पर एक व्याधने फौरन उसको मार डाला और दमयन्तीकी रूप-सम्पत्तिपर मुग्ध हो इसे अपनी कान्ता बनानेका निश्चय किया। उसके इस दूषित विचारको जान पतिव्रताने शाप दिया और वह उसी क्षण वहीं भस्मावशेष हुआ। भारतीय जीवनमें पातिव्रत्यकी बड़ी महिमा है। क्या मजाल कि कोई भारतीय ललनाके पातिव्रत्यमें दाग तो लगा दे! इस समय जो भारतमें वारनारियां दिखलायी देती हैं यह पाश्चात्य सभ्यताका प्रताप है, क्योंकि दुर्दशाग्रस्त भारतमें इस समय पाश्चात्य सभ्यताको दनादन तूती बोल रही है!

वह बेचारी आगे चली और एक बनियोंका दल जा रहा था उसीके साथ हो ली। विचार उसका यह था कि किसी प्रकार रास्तेका पता तो लगे। हा दैव! रात्रिका समय था, वह अनाथा सो रही थी कि जङ्गली हाथियोंका एक झुण्ड आया और उनके साथवाले हाथियोंसे ऐसा लड़ा कि बहुतसे लोग दब-कर मर गये, पर बेचारी अबला बच गयी और सुनकर भागी कि "वह बड़ी मनहूस है, मिलनेसे मार डालना होगा।"

वहांसे भागकर वह एक नगरमें पहुंची जहां लोग पगली समझकर उसे तंग करने लगे! खासकर वहांके लड़के जो अनाथ

स्त्रियोंको तंग करनेहीमें अपना मनोविनोद समझते हैं। ज राजमहलके नीचेसे वह बेचारी गुज़री तो उसके खुले, धूलम केशकलाप, उसकी मैली-कुचैली धोती, गर्दसे भरा हुआ उसक शरीर, लड़कोंका उसे नाहक सताना, ज़ार ज़ार रोनेसे आंखों सूजन और गमका भरा चेहरा—इन बातोंने राजमाता सम्वेदनाको उसकी ओर आकृष्ट किया और उन्होंने उसे अप परिचारिकाके हाथ बुलवा भेजा। महलमें जाकर जब राजमाता कहनेसे उसने स्नान किया और खा पीकर जब अपना परिच दिया तो राजमाता रिश्तेमें दमयन्तीकी मौसी निकली। तब कु रोज़ रखकर दमयन्तीको उसकी माताके पास राजमात भेज दिया। यद्यपि मायकेमें उसे सब प्रकारके सुख प्राप्त थे औ बालबच्चे भी थे तोभी अपने राजाकी याद कर वह बराबर रो करती थी। धन्य दमयन्तीका पातिव्रत्य!

उधर राजा जब दमयन्तीको सोती छोड़ भाग गये तो वे कर्क टक सर्पके समक्ष पहुंचे। उसने इनको डस लिया जिससे इनक रूप विकृत हो गया और उसीके कहनेसे अपना बाहुक नाम रक्खा कर्कोटक सर्प बोला—"राजन्! तुम्हारे दिन खराब हैं। कलि तु कष्ट दे रहा है, पर मेरे डसनेसे वह वेदना अनुभव करता रहेगा ऋतुपर्ण अयोध्याके राजा हैं उनके यहां जाकर तुम उनसे अ विद्या सीखना और उन्हें अश्वविद्या सिखलाना। जब तुम्हारे दु दिन कट जायंगे तो फिर तुम पूर्ववत् अपने राज्यका शासन अप छोटे भाईको जीतकर करोगे,सब काम आपके पूर्ववत् ही चलेंगे

दमयन्तीके वियोगसे दुःखी हो अब बाहुक ऋतुपर्णके यहां पहुंचे। उन्हें घोड़ेका बड़ा शौक था। ज्योंही बाहुकने अपनी अश्वविद्या दिखलाई कि राजा मुग्ध हो गये। उन्होंने अपने यहां बाहुकको रख लिया और बाहुक नित्य नित्य एक नयी ही अश्व-क्रीड़ा दिखलाते और उनका मनहरण करते।

दमयन्ती यद्यपि अपने बालबच्चोंके साथ मायकेमें थी और सब प्रकारके भोग उसे प्राप्त थे, पर क्या अपने प्राणनाथ, प्रियतम-के वियोगमें उसे कुछ भी रुचता था? कुछ नहीं! वह बेचारी राजाका संवाद पानेके लिये चिन्तित—घोर चिन्तित—थी। जब उसे कोई भी उपाय उनसे मिलनेका न जान पड़ा तो उसने अपना पुनः स्वयंवर घोषित किया।

प्यारे वाचकवृन्द! पतिव्रतायें अन्य पुरुषकी चिन्ता स्वप्नमें भी नहीं करतीं। परपुरुषका चिन्तन उनके लिये महापाप है। भारतीय जीवनमें स्त्रीजातिकी गुणावली कथनमें पातिव्रत्य और परपुरुषका त्याग मुख्य बातें हैं। तब उस पतिव्रता-शिरोमणिने अपने पुनः स्वयंवरकी घोषणा क्यों की यह एक स्वभावतः प्रश्न उपस्थित होता है। मेरा विनीत निवेदन यही है कि दमयन्तीने अपने प्रियतमको बुलानेके लिये यह एक जाल रचा था।

जिन जिन राजाओंने दमयन्तीके पुनः स्वयंवरकी सूचना पायी वे आनन्दसे उछलने लगे। एक बार उसके स्वयंवरमें जो निराश हुए थे उनके मनकी मुरझाती हुई कली खिल उठी, उनके हृदयमें पुनः आशाका सञ्चार हुआ। इसका कारण था

उसकी अलौकिक, अनिर्वचनीय और स्वाभाविक सुन्दरता। सुन्दर वस्तु लोगोंके चित्त अपनी ओर खींचा करती है यह स्वाभाविक है। उसके पुनः स्वयंवरकी बातने राजा लोगोंमें तैयारियोंकी धूम मचा दी।

यह घोषणा ऋतुपर्णके कानमें उस समय पड़ी जब स्वयंवरके लिये एक दिन बाकी था। उन्हें दमयन्तीके पानेकी इच्छा—उत्कट इच्छा—थी। वे उसके सौन्दर्य्यपर मुग्ध हो रहे थे। उन्होंने निरुपाय होकर लंबी सांस लेनी शुरू की। बाहुकके पूछनेपर सारी हालत कह सुनायी और पूछा कि आजभरमें अयोध्यासे कुण्डिनपुर पहुंचना सम्भव है? बाहुकके स्वीकार करनेपर राजा सुसज्जित हो तैयार हुए और उसने रथ जोता। जब बैठकर राजाने आज्ञा दी तो वायुके वेगवाली चालसे घोड़े चले। वह रथ पृथ्वीके ऊपर ऊपर चलता जान पड़ता था। घोड़े उड़ते हुए जान पड़ते थे। भोर होते ही राजा कुण्डिनपुर पहुंच गये। राजा भीमने उन्हें टिकाया, सब सामान राजसम्मानके योग्य पहुंचवा दिये। जब ऋतुपर्णने एक ही दिनमें अयोध्यासे यहां पहुंचनेका कारण बाहुककी अश्वविद्याको बताया तो भीम भूप बड़े आश्चर्य्यमें पड़े। इसकी चर्चा सर्वत्र फैली। दमयन्तीने भी सुनी। उसने राजा नलकी अश्वविद्याके बारेमें सुन रक्खा था, इसलिये उसके हृदयमें आशा टहल लगाने लगी और अपनी अश्वशालामें जहां बाहुक टिके थे एक दासीके साथ अपने बच्चोंको भेजा।

अपने अपने बच्चोंपर सभी प्राणी प्रेम करते हैं सिवा सर्पिणी

और मछलियोंके। मनुष्यका तो कहना ही क्या है! यह एक समुन्नत प्राणी है। बाहुकने बच्चोंको देखते ही गोदमें उठा लिया और अश्रुधारा मारे प्रेमके प्रवाहित हो चली। यह संवाद जब दमयन्तीने सुना तो उसने और जांच करनी शुरू की। अश्व-शालामें सारे भोजनके सामान भेजवाकर आग और पानी नहीं भेजवाया। पाक करनेमें ये दोनों मुख्य हैं, इनके बिना पाक होना असम्भव है। जब बाहुकने देखा कि आग और पानी नहीं है तो सूर्य्यकी ओर देखकर मन्त्र पढ़ा और खरको मुंहसे फूंका। फिर क्या था, आग जलने लगी। जब जलकी आवश्यकता पड़ी तो वरुणका मन्त्र कहा और पात्रमें हाथ देते ही वह पानीसे पूर्ण हो गया।

जब यह समाचार दासीने दमयन्तीसे कहा तो उसे पूर्ण विश्वास हुआ और वह स्वयं अपने बच्चोंके साथ अश्वशालामें पहुंची। बाहुकने उन्हें देख सिवा अविरल अश्रुधारा बहानेके और कुछ नहीं कहा। दासीके पूछनेपर बाहुकने यही कहा कि मेरे भी ऐसे ही बालबच्चे हैं। बस, कर्कोटकके कथनानुसार जब राजाके अच्छे दिन आये तो उन्होंने कर्कोटकका ध्यान किया और उसका कञ्चुल रूप विष उतरा जिसने राजा नलकी असली सूरत छिपा दी थी और कलिको वेदना देता था। फिर राजा नल अपने असली रूपको पाकर अपनी प्राणवल्लभासे मिले और जब ऋतुपर्णसे मिले तो उन्होंने हाथ जोड़कर क्षमा मांगी। यह उनसे अक्षविद्या सीख चुके थे और अश्वविद्या सिखा चुके थे,

उसको अलौकिक, अनिर्वचनीय और स्वाभाविक सुन्दरता। सुन्दर वस्तु लोगोंके चित्त अपनी ओर खींचा करती है यह स्वाभाविक है। उसके पुनः स्वयंवरकी वातने राजा लोगोंमें तैयारियोंकी धूम मचा दी।

यह घोषणा ऋतुपर्णके कानमें उस समय पड़ी जब स्वयंवरके लिये एक दिन बाकी था। उन्हें दमयन्तीके पानेकी इच्छा—उत्कट इच्छा—थी। वे उसके सौन्दर्यपर मुग्ध हो रहे थे। उन्होंने निरुपाय होकर लंबी सांस लेनी शुरू की। बाहुकके पूछनेपर सारी हालत कह सुनायी और पूछा कि आजभरमें अयोध्यासे कुण्डिनपुर पहुंचना सम्भव है? बाहुकके स्वीकार करनेपर राजा सुसज्जित हो तैयार हुए और उसने रथ जोता। जब बैठकर राजाने आज्ञा दी तो वायुके वेगवाली चालसे घोड़े चले। वह रथ पृथ्वीके ऊपर ऊपर चलता जान पड़ता था। घोड़े उड़ते हुए जान पड़ते थे। भोर होते ही राजा कुण्डिनपुर पहुंच गये। राजा भीमने उन्हें टिकाया, सब सामान राजसम्मानके योग्य पहुंचवा दिये। जब ऋतुपर्णने एक ही दिनमें अयोध्यासे यहां पहुंचनेका कारण बाहुककी अश्वविद्याको बताया तो भीम भूप बड़े आश्चर्यमें पड़े। इसकी चर्चा सर्वत्र फैली। दमयन्तीने भी सुनी। उसने राजा नलकी अश्वविद्याके वारेमें सुन रक्खा था, इसलिये उसके हृदयमें आशा टहल लगाने लगी और अपनी अश्वशालामें जहां बाहुक टिके थे एक दासीके साथ अपने बच्चोंको भेजा।

अपने अपने बच्चोंपर सभी प्राणी प्रेम करते हैं सिवा सर्पिणीके

और मछलियोंके। मनुष्यका तो कहना ही क्या है! वह एक समुन्नत प्राणी है। बाहुकने बच्चोंको देखते ही गोदमें उठा लिया और अश्रुधारा मारे प्रेमके प्रवाहित हो चली। यह संवाद जब दमयन्तीने सुना तो उसने और जांच करनी शुरू की। अश्व-शालामें सारे भोजनके सामान भेजवाकर आग और पानी नहीं भेजवाया। पाक करनेमें ये दोनों मुख्य हैं, इनके बिना पाक होना असम्भव है। जब बाहुकने देखा कि आग और पानी नहीं है, तो सूर्य्यकी ओर देखकर मन्त्र पढ़ा और खरको मुंहसे फूंका। फिर क्या था, आग जलने लगी। जब जलकी आवश्यकता पड़ी तो वरुणका मन्त्र कहा और पात्रमें हाथ देते ही वह पानीसे पूर्ण हो गया।

जब यह समाचार दासीने दमयन्तीसे कहा तो उसे पूर्ण विश्वास हुआ और वह स्वयं अपने बच्चोंके साथ अश्वशालामें पहुंची। बाहुकने उन्हें देख सिवा अविरल अश्रुधारा बहानेके और कुछ नहीं कहा। दासीके पूछनेपर बाहुकने यही कहा कि मेरे भी ऐसे ही बालबच्चे हैं। बस, कर्कोटकके कथनानुसार जब राजाके अच्छे दिन आये तो उन्होंने कर्कोटकका ध्यान किया और उसका कञ्चुल रूप विष उतरा जिसने राजा नलकी असली सूरत छिपा दी थी और कलिको वेदना देता था। फिर राजा नल अपने असली रूपको पाकर अपनी प्राणवल्लभासे मिले और जब ऋतुपर्णसे मिले तो उन्होंने हाथ जोड़कर क्षमा मांगी। यह उनसे अक्षविद्या सीख चुके थे और अश्वविद्या सिखा चुके थे,

अतः वे अपने राज्यको गये और ये पुत्रकलत्रके साथ कुछ दिन रहे। अन्तमें अपने भाईके साथ अक्षक्रीड़ा कर हारा हुआ सारा राज्य लौटा लिया और सुखपूर्वक पुत्रकलत्रके साथ बहुत कालतक राज्य किया।

ककोंटक नागका अनाथावस्थामें राजा नलके प्रति उपकार, दमयन्तीका अनुकरणीय पातिव्रत्य, दाम्पत्य और पतिके वियोगमें कष्टसहिष्णुता, नलका धैर्य और ऋतुपर्णकी दीनबन्धुता तथा गुणग्राहिता—इन गुणोंने ही उक्त व्यक्तियोंको प्रातःस्मरणीय बना दिया है। पाचकवृन्द! इस बातके प्रमाणमें मैं एक संस्कृत श्लोक उद्धृत करता हूं।

> कर्कोटकस्य नागस्य दमयन्त्या नलस्य च।
> ऋतुपर्णस्य राजर्षेः कीर्त्तनं कलिनाशनम्॥

सत्य ही एक ऐसा गुण है जो सारे अवगुणोंको दूर हटाये रहता है। जो सत्यशील है वह एक भी दुष्कर्म नहीं कर सकता; क्योंकि कुकर्म करके सत्यशीलताके कारण वह व्यक्ति उन्हें किसी प्रकार छिपायेगा नहीं। कहनेसे उसे लज्जाके वशीभूत होना पड़ेगा, इसलिये एक भी कुकर्म वह कदापि नहीं कर सकता। इसीलिये "नास्ति सत्यात् परो धर्मः; सत्ये नास्ति भयं-क्वचित्" आदि आदि सूक्तियां धर्मग्रन्थोंमें बहुतायतसे पायी जाती हैं।

भारतीय जीवनमें अवगुणोंका लेश नहीं। इसमें गुणोंका इतना प्राधान्य है कि दुर्गुण फटकनेतक नहीं पाते। पाचक-

वृन्द! यदि इसकी सत्यता प्रमाणित करनी हो तो जरा राजा रामचन्द्रजीकी जीवनीपर दृष्टि डालिये।

सब बातोंमें मर्य्यादाकी रक्षा रामचन्द्रने की है; इसीलिये मर्य्यादापुरुषोत्तमकी उपाधि इन्हें भारतीय जनताकी ओरसे मिली है। इनका आदर्श अनुकरणीय है इसलिये आदर्शपुरुषोत्तम भी इन्हें कहना अत्युक्ति नहीं। जबसे ये पैदा हुए कोई भी काम दूषणके योग्य इन्होंने अपने जीवनमें नहीं किया। इनको भली-भांति यह ज्ञान था कि मैं राजकुमार हूं; मुझे प्रजाकी प्रसन्नतासे काम है। इसीलिये ये सबको प्रसन्न रखते थे। सबको प्रसन्न रखना बड़ा ही दुष्कर कार्य्य है; पर इन्होंने इस काममें सर्वोपरि सफलता प्राप्त की जिसके सुबूतमें इतना ही कहना काफी है कि रामका सिंहासनपर बैठना सबको इतना अधिक रुचा था। इस खबरसे ही सब लोग इतने प्रसन्न थे कि आनन्दके मारे उनके हृदय उछलते थे, उनके प्रसन्नताके भाव ऐसे निःसीम थे कि वे रामको अपने जीवनसे प्रिय, अपना सर्वस्व समझते थे।

उक्त कथन उस समय और भी पुष्ट होता है जब राम अपनी सौतेली माता कैकेयीकी आज्ञा मान—क्योंकि राजा दशरथने अपने मुंहसे यह न कहा कि राम! वन जाओ—वन जानेके लिये पिताके चरण छूने आये तो पुरवासी लोगोंमें बड़ा हाहाकार मचा; और जब जानकी तथा लक्ष्मणके साथ रथपर बैठे और सुमन्त्रने उसे हांका तो सब पुरवासी उनके संग लगे। क्या इतना प्रेम पुरवासियोंका कभी किसीने अपने तई खींचा है?

क्या पुरवासियोंके हृदयपर अपने व्यक्तित्वका इतना प्रभाव किसीने डाला है ? क्या प्रजाने और किसीके तईं भी ऐसी भक्ति दिखायी है ? उत्तरमें यही कहना है कि किसीके प्रति नहीं।

रामचन्द्र जितना प्रजागणको प्रसन्न रखनेमें सफल हुए उतना दूसरा न हुआ; इसका एक मात्र कारण इनका स्वार्थ-त्याग है। जिस समय इन्हें राज्य मिल रहा था और राजा दशरथने वन जानेकी आज्ञातक नहीं दी थी, उस समय दूसरा व्यक्ति सौतेली माके कहनेसे राजसिंहासनका त्याग कदापि नहीं करता, इतने धन, इतने सुख, इतने भोगोंकी सहज ही उपेक्षा नहीं करता।

जिस समय रामचन्द्र चित्रकूटमें पहुंचे और वहां रहने लगे, उस समय वनके कष्टोंका परिचय उन्हें पूर्ण रीतिसे हो चुका था, क्योंकि सिवाय लक्ष्मणके दूसरा उनका सेवक न था और सिवाय जानकीके उनके एक भी परिचारिका न थी। वे राज-सुखमें पले हुए थे, स्वर्गभोग भोग चुके थे, इतनी अवस्था उनकी आनन्द कटी थी; तिसपर भी भरत उन्हें मनाने व लौटाने गये थे, सारा परिवार और प्रजागण उनके साथ था, साक्षात् वशिष्ठादि मन्त्री भी वहां वर्तमान थे, सबकी एक मात्र यही इच्छा थी कि रामचन्द्र अयोध्या लौट चलें। इन सबकी इच्छासे बढ़कर भरतकी इच्छा थी, क्योंकि उन्हें कलङ्क—घोर कलङ्क—लगता था, इसलिये कि उनकी ही माताने तो रामके अभिषेकमें बाधा पहुंचाई थी, अपने पुत्रके लिये राज्य मांगा था और रामके लिये मुनिवेशमें वनवास; और वे बिना लौटाये आप लौटनेके लिये तैयार

नहीं थे। इस अवस्थामें यदि राम लौटते और राज्य अङ्गीकार करते तोभी उनपर लालचकी लाञ्छना कोई नहीं लगाता। परन्तु वे सच्चे मनसे पिताकी बातकी पूर्त्ति करनेके लिये, कैकेयीके वरोंको फलीभूत करनेके लिये लौटे नहीं, यद्यपि भरतने बहुत विलाप किया और वनवासपर दुःख प्रकट किया। उन्होंने भरतको उलटा समझा बुझाकर और अपनी पादुका देकर लौटा दिया! इतना स्वार्थत्याग कौन कर सकता है?

जब पञ्चवटीमें रावण आया और उसने जानकीका हरण किया तो उन्हें लंकामें ले जाकर अशोकवाटिकामें रखा और अपनेको अङ्गीकार करनेके लिये उन्हें बहुतसे प्रलोभन दिये, पर सब व्यर्थ! उनकी खोजमें राम-लक्ष्मण वन वन घूमे और घोर विलाप किया। सुग्रीवसे मित्रता कर बालिको मार जब रामने हनुमानके द्वारा जानकीका संवाद पाया तो वानरी सेना लेकर समुद्रमें पुल बंधवा लंकामें पहुंचे। वहां युद्ध होने लगा, रावणका सकुटुम्ब क्षय हुआ और जानकी सुखपालपर सवार कराकर विभीषण द्वारा भेजी गयीं। जिनके वियोगमें राम वन वन रोते फिरते थे, जिनकी प्राप्तिके अर्थ राम किसी कार्य्यको अकार्य्य नहीं समझते थे, जिनके लिये समुद्र बांधा गया, जिनके लिये सकुटुम्ब रावणका नाश हुआ, आज उन्हीं जानकीकी शुद्धिके विषयमें रामको सन्देह हुआ और उनकी महा कठोर शुद्धि हुई—अर्थात् अग्निमें उन्हें पैठना पड़ा और गोदमें लिये अग्निदेव प्रकट हुए; उन्होंने इनकी शुद्धि साबित की। यह सब किसलिये? सिर्फ

इसीलिये कि यदि प्रजा कहेगी कि सालभर रावणके घर जानकी रहीं और फिर रामने उन्हें कैसे रक्खा तो यही शुद्धि—घोर शुद्धि—उस वक्त लोगोंको उत्तर रूपमें काम देगी और मुंह न उठेगा, प्रकृतिरञ्जनमें किसी प्रकारकी बाधा उपस्थित न होगी। हुआ भी ऐसा ही, किसीने मुंह न उठाया।

संसारके जितने काम हैं अपवाद सबोंमें लगा हुआ है। वही अपवाद रामके प्रकृतिरञ्जनमें भी आ पड़ा। यद्यपि रामने अपनी ओरसे इस काममें जरा भी कोताही नहीं की, कुछ भी चूक नहीं की, पर अपवाद अपवाद है। वह अपना स्थान अवश्य पाता है।

लंकासे लौटकर अवधिके अन्तिम दिन जब भरत नन्दिग्राममें वल्कल चीर पहने, कुशासनपर बैठे रामकी अवधिकी याद कर अविरल अश्रु धारा बहा रहे थे और मनमें सोचते जाते थे कि "यदि आज राम नहीं आये तो मैं जीकर क्या करूंगा ? लक्ष्मण-का सौभाग्य है कि वह उनकी सेवा कर सके ! जान पड़ता है रामने मुझे हद दर्जेका नीच समझा, तभी तो मेरा परित्याग उन्होंने किया कि आजतक नहीं आये। हा ! अवधि आज पूरी हो रही है और मेरे जीवन, धन, प्राण क्यों नहीं आये ?"

वाचकवृन्द ! क्या इससे भी बढ़कर सौभ्रात्र दुनियाके पर्देपर किसी भी देशमें दिखलाया गया है ? आजतक तो ऐसा आदर्श सौभ्रात्र दिखायी नहीं दिया। यह भारतीय जीवन है, यहां ऐसी ही अनूठी अनूठी आत्मत्यागकी बातें, प्रेमकी बातें,

पातिव्रत्यकी बातें दिखायी व सुनायी पड़ती हैं जो उत्तम धार्मिक जीवन, उन्नत समाजके बनानेमें सर्वथा समर्थ होती हैं।

रामचन्द्र जब अयोध्यामें लौटकर आये उस समय जनताके हृदयका असीम आनन्द देखने योग्य था। उसका वर्णनातीत उत्साह एक ऐसी कहानी हो गयी है जिसे भारतीय लोग बराबर कहा सुना करते हैं। जिन रामचन्द्रके वियोगमें दुःखी हो अयोध्यावासी रात-दिन अविरल अश्रुधारा बहाया करते थे, उनको सिंहासनासीन देख उनका संयोग-सुख अनुभव कर आनन्द और उत्साहका बढ़ना स्वाभाविक है।

राज्य करनेमें भलीभांति प्रजारञ्जन होता है या नहीं इसकी सूचना पानेके लिये मर्य्यादापुरुषोत्तमने चारों दिशाओंमें दूत भेजे थे। सबोंने लौटकर प्रजा द्वारा किये गये उनके गुणगानका वर्णन किया, परन्तु एकने धोबीके कहे हुए बड़े ही मर्म्मभेदी वचन कहे जिसपर जानकीसी पतिव्रताका त्याग—गर्भ-भारसे अलस, अग्निके द्वारा पहले ही शुद्ध बतायी हुई परम पवित्र जानकीका त्याग—एक मात्र प्रकृतिरञ्जनके लिये रामचंद्रने किया। क्या इससे भी बढ़कर किसीने प्रकृतिरञ्जन किया है? उत्तरमें "नहीं" शब्दका प्रयोग ही सुनायी देगा।

जिस दिन दूतोंने प्रस्थान किया था वही दिन रामचन्द्रके साथ जानकीके प्रेमालापका अन्तिम दिन था और वही रात्रि अन्तिम रात्रि थी। दिनमें जो प्रेमालाप हुआ था उसकी समाप्ति रात्रिमें हुई थी। जानकीने रामचन्द्रके बार बार पूछनेपर अपना

दोहद (गर्भवतीका मनोरथ) कह सुनाया। उन्होंने कहा—"प्यारे आर्य्यपुत्र ! मेरी इच्छा थी कि मैं मुनियोंके आश्रममें घूमती, ऋषि-पत्नियोंसे प्रेमालाप करती, वनकी शोभा देखती, प्रसन्न जलवाली नदियोंमें अवगाहन करती। सिवा इन साधोंके और कोई साध इस समय मेरे चित्तमें नहीं है।" ऐसी बातें करती हुई जानकी रामचन्द्रके गलेसे लगकर सो गयीं और वे भी उनके अंग प्रत्यंगोंका स्पर्श करते हुए, जिस समय विवाह हुआ उस समयसे लेकर आजतक, जो कुछ उनके गुणोंका अनुभव हुआ था, उसका वर्णन मन ही मन करते रहे।

इतनेहीमें दूत लोग आये। सब प्रसन्न थे पर एक उनमें रोता था। सबसे कुशल पूछ प्रकृतिको सादिच्छा जान उन्हें विदा किया। अब रोनेवालेकी बारी आयी। उसने कहा—महाराज, एक धोबीकी स्त्री आपसमें झगड़ा होनेके कारण रातभर दूसरेके घरमें रही और सबेरे जब लौट आयी तब उस धोबीने कहा कि अब तू मेरे कामकी नहीं है, जहां रातको रही वहां चली जा, मैं राजा नहीं हूं कि वर्षभर दूसरेके घर रहकर आयी हुई स्त्रीको भी रख लूं। मेरे जातिभाई मुझे जातिसे बहिष्कृत कर देंगे।

ये वचन मर्य्यादापुरुषोत्तमके कानमें जिस समय पड़े वे बड़े भारी सन्नाटेमें पड़ गये। वे किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये। एक ओर प्राणप्रिया जानकीके प्रति प्रेम और दूसरी ओर प्रकृति-रञ्जन जिसका उपदेश वशिष्टजीतकने बड़े जोरदार शब्दोंमें दिया था। उन्हें इस बातका पक्का विश्वास था कि जानकी पति-

व्रता शिरोमणि हैं। यदि ऐसा न होता तो लंकामें अग्निदेव उन्हें गोदमें लिये उनकी शुद्धताका साक्ष्य कैसे देते? इन सब बातोंके होनेपर भी, बहुत विचार करनेपर भी मर्य्यादापुरुषोत्तमने उनका परित्याग ही प्रकृतिरञ्जनके लिये मुख्य उपाय समझा। तदनुसार कार्य्य भी किया गया। लक्ष्मणके आनेपर उनसे मर्य्यादापुरुषोत्तमने कहा—"लक्ष्मण! एक धोबीने जानकीके सम्बन्धमें कलङ्ककी बात कही है, इसलिये इन्हें वनमें पहुंचाकर लौट आओ, मैंने प्रकृतिरञ्जनके लिये पतिव्रताशिरोमणि जानकीतकका परित्याग किया।"

रथ कसा तैयार है। महारानी गर्भभारसे अलस बड़े तड़के उठीं और वनकी यात्राकी भावनासे प्रसन्न थीं। वनकी शोभा देखनेके लिये नेत्र उत्सुक हो रहे थे। इतनेहीमें लक्ष्मणने आकर कहा -"रथ तैयार है, महारानी वनको चलें।" फिर क्या था! रथपर बैठकर महारानीने वनकी ओर प्रस्थान किया।

मनके भाव छिपाये नहीं छिपते। वे किसी न किसी प्रकार प्रकट हो ही जाते हैं। लक्ष्मणके जिम्मे जो काम सौंपा गया था वह बड़ा ही क्रूर और नृशंस था। लक्ष्मणसे ज्ञानवान पुरुषके लिये ऐसा काम करना कदापि उचित न था। परंतु बड़े भाई—पिताके समान बड़े भाई—की आज्ञा और दूसरे प्रकृतिरञ्जन, न कैसे करते?

ज्यों ज्यों वन समीप आने लगा त्यों त्यों विवश हो उनके नेत्रोंसे अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। उच्छ्वासके मारे व्याकुल हो वे अधीर हो रोने लगे। जानकीने कभी ऐसा दृश्य नहीं देखा था,

अतः वे पूछने लगीं—लक्ष्मण, सत्य कहो, बात क्या है ? राजाका कुछ अनिष्ट तो नहीं हुआ ? आज तुम्हारे चित्तकी अवस्था ऐसी क्यों है ? क्या तुमसे कुछ अनुचित हुआ है ? यह सुनकर अधीर हो रोते रोते वे बोले—"माता, एक धोबीके कठोर वचन कहनेपर प्रकृतिरञ्जनके लिये भाईने आपका परित्याग किया है !"

इतनेमें वे गङ्गापार पहुंच चुके थे। रथसे महारानी उतरकर भूमिपर जा बैठीं, रोने लगीं। लक्ष्मण शोकमें अन्धे हो रहे थे। रोदनका अपूर्व दृश्य था! इसपर महारानीने जो तर्क किया उसका उत्तर न लक्ष्मण ही दे सके न मर्य्यादापुरुषोत्तमने ही भेजा। महारानीने कहा—"हे लक्ष्मण! मेरी ओरसे तुम राजा रामचन्द्रसे कहना कि आंखोंके सामने अग्निमें शुद्ध प्रमाणित हुई मुझे लोकापवाद सुनकर ही जो उन्होंने परित्याग कर गर्भिणी-की अवस्थामें वनमें छोड़ा क्या यही उस शिक्षित एवं जगत्प्रसिद्ध कुलके योग्य कार्य्य है ?"

लक्ष्मण लौट आये, जानकीके कहे हुए उन वाक्योंको राजा रामचन्द्रजीसे कह सुनाया। वे निरुत्तर हो यथार्थमें जानकीकी वियोगाग्निसे भीतर ही भीतर जला किये। केवल मुखपर तेजःपुञ्ज था कि प्रकृतिरञ्जनके लिये मैंने सर्वस्व त्याग किया, पर शरीर पीला और दुर्बल होने लगा। वे सब बातोंमें निरानन्द रहा करते और जानकीकी वह अवस्था उन्हें भूलती नहीं थी।

लक्ष्मणके लौटनेपर महारानी मूर्च्छित पड़ी रहीं। निरवलम्ब बेचारी कहां जाय ? इतनेमें वाल्मीकि मुनि भ्रमण करते वहीं आ

निकले और इन्हें अनाथकी अवस्थामें देखकर उनका हृदय दयासे पिघल गया। जब पूछकर उनका परिचय पाया तो उन्होंने इन्हें लेकर आश्रमकी ओर प्रस्थान किया। वह समीप ही था, इसलिये पहुंचनेमें देर न लगी। ऋषिकन्या तथा ऋषिपत्नियोंने उनकी अवस्थापर सहानुभूति प्रकट की।

वाल्मीकि मुनिके आश्रममें रहते जब कुछ समय बीता और गर्भका समय पूरा हुआ तो जानकी महारानीने दो पुत्र एक साथ प्रसव किये। वे दोनों जातकर्म व नामकरणके उपरान्त लव-कुश नामसे पुकारे जाने लगे। इन दोनों भाइयोंने बहुत थोड़े समयमें वाल्मीकि मुनिसे सब शास्त्रोंको पढ़ा और उनकी बनाई हुई रामायणको वीणा लेकर खूब गाते थे जिससे आश्रमवासी लोगोंका तो कहना ही क्या था, सारे पशु-पक्षीतक भी मुग्ध हो जाते थे।

महारानी जानकीके समान इस समय संसारमें कोई भी दुःखी व्यक्ति न होगा। इनके दुःखकी अवधि नहीं थी इसीलिये वह समुद्र तथा पर्वतसे भी बढ़कर था। पतिदेवके चरणोंकी सेवाका सौभाग्य उन्हें प्राप्त होगा यह अब आशाके परेकी बात थी। इतना ही नहीं; उनके चरणोंके एक बार दर्शन भी होंगे और वे अपने नेत्रोंको तृप्त करेंगी—इसकी भी सम्भावना नहीं थी; क्योंकि राजा रामचन्द्रने उनका एकदम परित्याग कर दिया था। ऐसे दुःखके दिन महारानीके कैसे कटते यदि उन्हें लव-कुश सरीखे दो पुत्र न होते? ये पुत्र अपनी रूप-सम्पत्तिसे रामचन्द्रजीके

समान थे और उनके सारे गुण इनमें स्वभावतः वर्त्तमान थे। इन्हीं बच्चोंका संयोग इस घोर दुःखके समुद्रमें महारानीके लिये बेड़ा बन गया जिसके सहारे वे अपनी जीवनयात्रा पूर्ण कर सकीं।

कैसी कड़ी परीक्षामें राजा रामचन्द्र, महारानी जानकी और लक्ष्मण उत्तीर्ण हुए इसे सहृदय पाठक सोच-समझ सकते हैं। प्रकृतिरञ्जनके लिये जानकीसी पतिव्रताका त्याग करना जिनकी शुद्धि अग्नि द्वारा प्रमाणित हो चुकी है—सिवा राजा रामचन्द्रके दूसरेसे होना असम्भव था। माताके समान बड़ी भौजाईको गर्भकी हालतमें भाईके कहनेसे वनमें छोड़ आना ऐसा नृशंस कर्म सौभ्रात्रके खयालसे सिवा लक्ष्मणके दूसरेसे कदापि नहीं हो सकता। पतिसे परित्यक्त हो दुःखसागरमें डूबी हुई महारानी जानकीने उनके प्रति पातिव्रतोचित ही भाव रक्खे—यह दूसरी स्त्रीके लिये मुमकिन नहीं था। यह भारतीय जीवन है; यहां ऐसी ही बातें देखी सुनी जाती हैं।

महारानी जानकीके वियोगमें यद्यपि राजा रामचन्द्र प्रकृति-रञ्जन करते थे पर चित्त बड़ा ही उदास, निराशापूर्ण और निरानन्द रहा करता था। उन्होंने धन तथा वीरताका परिचायक अश्वमेध यज्ञ किया। लंकाके युद्धमें जिन लोगोंने साथ दिया था वे ही इस बार भी अश्वके साथ २ थे। इसके मस्तकपर एक पट्ट बंधा था जिसमें ईर्ष्याके उत्पादक और वीरताके परिचायक वाक्य थे। इन वाक्योंको पढ़कर क्षत्रिय लोग उसी हालतमें

घोड़ेको नहीं पकड़ते थे जबकि अपनेको कमजोर और अशक्त समझते थे। घोड़ा अपनी इच्छाके अनुसार चलता था। जाते २ वह वाल्मीकिके आश्रममें पहुंचा। लवने जिनकी अवस्था किशोर थी उस पट्टके वाक्योंको पढ़ा, यद्यपि मुनि बालकोंके साथ वे बालकोचित खेल खेल रहे थे। पढ़कर ही उनका क्षत्रियत्व प्रोत्साहित हो उठा। उन्होंने बालकोंसे कहा—"अजी, ढेलोंसे मारकर इस घोड़ेको आश्रममें ले चलो, यह बेचारा भी मृगोंके बीचमें रहकर चरा करेगा। मेरे भैया कुश इसपर सवारी करेंगे।" इसपर बालकोंने "उसके पीछे बड़ी सेना है"—इस बातकी विभीषिका दिखलायी। भला लव विभीषिका क्या जानें? वे महारानी जानकी और राजा रामचन्द्रके पुत्र थे जिन्होंने जनक राजाके यहां धनुषको उठाया और तोड़ा था। ऐसे पराक्रमी माता-पिताके पुत्रका बलवान् होना स्वाभाविक है। यही कारण था कि वे निडर होकर ढेलेसे मारते हुए उस घोड़ेको आश्रममें ले आये।

अब युद्धकी बारी आयी। पर सारी सेनाको लवने जब मूर्च्छित कर डाला तो लक्ष्मणके पुत्र चन्द्रकेतुने उन्हें मूर्च्छित किया और रथपर लादकर ले चले। यह वार्त्ता कुशके कानमें पड़ी। वे तुरन्त रणभूमिमें आये और विकट बाणावली करके अपनी स्फूर्त्ति दिखला लवको छुड़ा ले गये।

कहते हैं कि इस युद्धमें भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न सबोंने हार खायी थी और साक्षात् रामचन्द्र भी लड़े थे। हनुमान, अंगद,

विभीषण,—ये सब आश्रममें बंधे पड़े थे। महारानीने इन लोगोंको पहचानकर छुड़वा दिया। अन्तमें बच्चोंको फुसलाकर घोड़ा भी दिलवा दिया।

जहां अश्वमेधशाला थी वहां वाल्मीकि मुनि अपने दोनों शिष्यों लव-कुशके साथ उपस्थित मुनिमण्डलीमें पहुंचे। इन दोनों शिष्योंने वीणापर जो रामायणका गान किया उसे सुन सारी अश्वमेधशाला मुग्ध हो गयी। जिस समय महारानी जानकीके परित्यागका प्रसङ्ग गानमें आया उस समय महाराज रामचन्द्रके नेत्र भी आंसुओंसे डबडवा गये। उन्हें निरपराध जानकीका त्याग उस समय बहुत ही दुःख देने लगा। उन्होंने कहा कि यदि इस यज्ञशालामें सारी जनताके समक्ष जानकी अपनी शुद्धि प्रमाणित करे तो मैं अंगीकार कर सकता हूं।

सब शिष्यके साथ महारानी जानकीने प्रवेश किया। उनका शरीर दुबलाकर कांटा हो गया था। सिर्फ चाम और हाड़ ही दिखाई देते थे। मस्तक लम्बी २ जटाओंसे परिवेष्टित था। महारानी चीर वल्कल पहने जिस समय वहां आयीं, एक बार सन्नाटा छा गया। अपनी शुद्धिके साबित करनेके लिये कहे जानेपर महारानीने कहा—"यदि मैंने आर्यपुत्रसे भिन्न मनुष्यकी कभी चिन्तनातक न की हो तो भूतधात्री देवी मुझे अपनेमें स्थान देकर अंगीकार करें।"

यद्यपि राजा रामचन्द्रने अपना विवाह नहीं किया था, पर यज्ञमें अर्द्धाङ्गिनीकी स्वर्णमयी प्रतिमा रखी थी, क्योंकि बिना

अर्द्धाङ्गिनीके यह सम्पन्न नहीं हो सकता था। उस प्रतिमाको देखकर महारानीके हृदयमें जलन हो उठी थी। यही कारण था कि उन्हें जीवन बोझ जान पड़ता था।

उनके यह कहते ही आश्चर्यकी घटना हुई। पृथ्वी फटी और काञ्चन सिंहासन नागकी फणपर रखा हुआ निकला। उसीपर बैठकर उन्होंने पातालमें प्रवेश किया। वाल्मीकिके कहनेसे लव-कुशको रामचन्द्रजीने ले लिया। यज्ञ विसर्जन कर रामचन्द्रने अपने पुत्रों और भतीजोंको राज्य दे सब भाइयोंके साथ सरयूमें अपनेको गोता मार विलीन कर डाला और साकेतवासी हुए।

वाचकवृन्द! एक रामचरितसे ही अनेक गुण एकत्रित किये जा सकते हैं, यदि कोई तत्वान्वेषी उक्त चरितमें उनका अन्वेषण करे। राजा दशरथने जो मित्रभाव रोमपाद राजाके प्रति दिखलाया शायदही कोई दिखलाता हो। राजा रोमपादके कोई सन्तति नहीं थी पर उनके प्रिय मित्र राजा दशरथको शान्ता नामक कन्या थी। राजाने सोचा कि मैं सन्ततिवाला हूं और मेरे मित्र रोमपाद बेसन्ततिके हैं यह ठीक नहीं। मुझे उचित है कि मैं अपनी कन्या उन्हें दे दूं। यह विचार कार्य्यमें परिणत कर दोनों मित्र आपसमें सन्ततिवाले हुए। सहानुभूति और समवेदनाका सच्चा उदाहरण इससे भी बढ़कर होगा? क्या कोई भी सभ्य देश इससे बढ़कर तो क्या, इसकी समतामें एक भी उदाहरण दे सकता है?

स्त्री-पुरुषका ज्ञान होना, खासकर बहुत ही छोटी अवस्थामें

जिस समय एकाग्र मनसे उत्तमोत्तम गुणोंका उपार्जन होता है, क्योंकि उसके लिये बालकोंको अभ्यास दिलाया जाता है, एक स्वाभाविक बात है, परन्तु ज्यों ज्यों अवस्था बढ़ती है त्यों त्यों बालकका एकाग्र मन स्त्री-जातिकी ओर अनुरक्त होता जाता है। इसी अनुरक्तिका परिणाम उपनयनके उपरान्त विवाह है जिसे सम्पन्न कर भारतीय गृहस्थाश्रममें सहर्ष प्रवेश करते हैं। पर यदि स्त्री-पुरुषका ज्ञान न हो तो बालक और भी समधिक गुणोंका उपार्ज्जन कर सकता है, क्योंकि मस्तिष्क एक ओरके सिवा दूसरी ओर आकृष्ट नहीं होगा।

ऋष्यशृङ्ग महात्मा विभाण्डकके पुत्र थे और वे इकलौते पुत्र थे। उनके जीवन—सादे जीवनकी ओर दृष्टि डालिये और देखिये कि उसमें कितनी सादगी और सिधाई भरी पड़ी है। इससे बढ़कर सादगी व सिधाई और क्या हो सकती है कि वेश्याएं—सुसज्जित वेश्याएं बड़ी बड़ी नौकाओंपर कृत्रिम पुष्पवाटिकाएं लगाकर आश्रम-फलोंके स्थानमें शहरकी अपूर्व बनी हुई मिठाइयोंको लेकर उन महात्माके आश्रममें गयीं और उन्हें फुसलाकर रोमपाद राजाके राज्यमें ले आयीं जिनके प्रतापसे खूब वृष्टि हुई। जब विभाण्डकजी पहुंचे तो उनका सत्कार कर अपनी कन्या-तुल्य शान्ताका ऋष्यशृङ्गके साथ विवाह कर दिया।

ऐसा सादगीका नमूना क्या किसी भी देशमें देखा गया है? पाश्चात्य जगत इसे निरा जंगलीपन कह डालेगा। पर दर

असल यह सादगी है या जंगलीपन, अथवा ब्रह्मचर्य्यरक्षाका एक मुख्य उपाय है—इसे सहृदय भलीभांति समझ लें। मुझे शोकके साथ लिखना पड़ता है कि एक वह समय था जब ऐसे ब्रह्मचारी थे और एक आज समय है कि सिवा स्त्री-लोलुपोंके ब्रह्मचारी कठिनतासे मिलते हैं। ब्रह्मचर्य्यका आदर्श पाश्चात्य सभ्यतामें पड़कर इतना गिर गया है कि लोगोंके चेहरेपर कान्ति, शरीरमें बल, हृदयमें उत्साह बिलकुल गायब है।

लोग ऐसे सत्यवादी थे कि किसीकी भी कही हुई बातको एकदम सच्ची समझ लेते थे। तभी तो ऋष्यशृङ्गको वेश्याएं आश्रमके बहाने राजाके राज्यमें ले आयीं। सत्यका स्थान भारतीय जीवनमें कितना ऊंचा है इसकी पुष्टिमें राजा हरिश्चन्द्र और नलके चरित जिनका हवाला पहले दिया जा चुका है काफी हैं।

गुरुजनोंके आज्ञा-पालनका जीता-जागता उदाहरण यदि ढूंढ़ा जाय तो सिवा भारतीय जीवनके अन्यत्र मिलना मुश्किल है। यह बात शायद मर्यादापुरुषोत्तमके लिये कही जा सकती है कि जो मिलते हुए राज्यका परित्याग कर सौतेली माके कहनेसे चौदह वर्षोंके लिये जंगलमें जाकर रहे और नाना प्रकारकी असुविधाओंका सामना किया। पिताकी आज्ञा थी कि 'राम!' तुम कल राज्य पाते हो; आज ही अनायास तुम्हारी सौतेली मा कैकेयी मेरे पूर्वप्रदत्त दो वरोंको मुझसे मांगती है, जिनमें एकसे अपने पुत्र भरतका राज्य और दूसरेसे तुम्हारा चौदह वर्ष वनवास; तुम राजाकी हैसियतसे हमें कैद करो, और राज्य भोगो।' पर

रामचन्द्रने किया क्या ? ठीक इसका उलटा, क्योंकि वे मर्यादा-पुरुषोत्तम थे। पिताको कैद कर राज्य लेनेवाले भारतके इतिहासमें शाहजहां और औरङ्गजेब हैं; यों जहांगीरने भी राज्यके लिये अकबरके विरुद्ध बलवा उठाया था।

भाई भाईके झगड़ोंके उदाहरणोंसे जगत्‌का इतिहास कलंकित है, पर भाई भाईके प्रेमकी बात, सो भी सहोदर नहीं, सौतेले—यहीं पायी जाती है। रामके वियोगमें भरतका अपने सुखोंको तिलांजलि देना और रात दिन रोया करना एक ऐसी हृदयविदारक घटना है जिसे स्मरण कर सहृदय आंसू बहाते हैं। राज्यसुखोंका परित्याग कर भाईके साथ चौदह वर्षोंतक वनमें सेवक रूपसे रहना यह लक्ष्मणका ही काम था। क्या इससे भी बढ़कर सौभ्रात्रका उदाहरण दूसरा होगा ? कदापि नहीं!

प्रजाओंकी प्रीति—सच्ची प्रीतिके लिये जगत्‌के राजा लोग इतनी स्पृहा रखते हैं कि उन्हें दूसरी कामना उतनी शायद ही होती हो। यह बात दूसरी है कि वे अपनेको अधिकाधिक समृद्धिशाली देखना चाहते हैं। पर क्या ऐसा भी कोई राजा दुनियाके पर्देपर होगा जिसने प्रकृतिरञ्जनके लिये अपनी पतिव्रता सहधर्मिणीका परित्याग किया हो ? एक भी नहीं। यह बात भी हमारे मर्यादापुरुषोत्तमके ही लिये विधाताने रख छोड़ी थी, किसी दूसरेके लिये नहीं!

अपनी २ सहधर्मिणीके पातिव्रत्यपर जगत्‌के सभी लोग साभिमान रहते हैं। यदि स्त्री नेकचलन है तो उसका सर्वत्र

आदर है अन्यथा वह अपने पतिसे परित्यक्त होती है, तिरस्कृत होती है। पाश्चात्य देशोंमें परित्याग, तिरस्कार (Divorce) तक है; पर इससे समाजमें उस स्त्रीका स्थान ज्योंका त्यों रहता है। इसका कारण वहांकी धनसम्पत्ति है। समाजमें समुन्नत स्थान पाना धनसम्पत्तिकी वृद्धिके ऊपर निर्भर है। भारतीय जीवनमें सो यात नहीं। यहां पति स्त्रीके लिये देवता है, वह उसके शरीरपर अपना अधिकार रखता है। दोनोंके दो शरीर कहनेके लिये होते हैं, पर हृदय एक ही होता है। रोज़ी-रोज़गार, वणिज-व्यापार, खरीद-बिक्री, लेन-देन—सब कामोंमें अर्द्धाङ्गिनी अपनी राय, सत्परामर्श देती है। वास्तवमें वह गृहलक्ष्मी है। उसके बिना घर सूना है। सभी बातें उसके अभावमें निरानन्द जान पड़ती हैं। राजा रामचन्द्रने यद्यपि एक धोबीके रञ्जनके लिये महारानी जानकीका परित्याग किया पर आप उन्हें निर्दोष जानकर दिनोंदिन पीले पड़ने लगे, अस्थिचर्मावशिष्ट रह गये। महारानी जानकीने रावणद्वारा हरी जानेपर लङ्कामें उपस्थित किये गये अनेकानेक प्रलोभनोंसे अपनी मर्य्यादाकी रक्षा की और उन्हें तुच्छ माना; यही नहीं बल्कि प्रतापशाली रावण जिस समय अपनी रानियों और परिचारिकाओंके साथ महारानीको मनानेके लिये आता और उन्हें अपने विभव, अपनी सम्पत्तिकी मालकिनी होनेको कहता उसी समय ऐसे २ वचनोंसे—युक्तियुक्त वचनोंसे उसकी नीचता साबित करतीं कि वह थर्रा जाता और क्रोधमें भर जाता। क्या इतना पातिव्रत्य कहीं भी किसी स्त्रीमें संभव

है ? यदि है तो इसी भारतीय जीवनमें । पतिव्रताओंके चरित्र जो इस जीवनमें दृष्टिगोचर होते हैं वे और जीवनमें नहीं। सती, सावित्री आदिके अनुकरणीय चरित्र आज भी बड़ी आदरभरी दृष्टिसे देखे जाते हैं।

पतिदेवकी आज्ञाकारिणी और छायाके समान उनका अनुसरण करनेवाली बनना सभी स्त्रियां चाहती हैं, क्योंकि इससे उनकी कीर्त्तिकी वृद्धि होती है। पर यथार्थमें कितनी औरतोंने ऐसा किया है ? बग़ैर कठिन समयके जांच करना कठिन ही नहीं असम्भव है। रामचन्द्रका वन जाना और लक्ष्मणका उनके साथ हो लेना यह कौशल्या और सुमित्रा दोनों महारानियोंके लिये ऐसी बात है कि वे अपने पति दशरथराजका तिरस्कार—घोर तिरस्कार कर सकती थीं,पर किया क्या ? उनके वन जानेपर राजाके पास बैठे उनका समाश्वासन करने लगीं, उन्हें ढाढ़स धाने लगीं, उन्हें सब प्रकारसे सन्तुष्ट करने लगीं।

ऐसा कोई विरला राजा होगा जो अपनी शासनप्रणालीसे प्रकृतिरंजन करनेकी इच्छा न रखता हो। पर क्या कोई ऐसा भी है जिसने राम-राज्यके समान प्रजाओंके प्रसन्न करनेमें सुख्याति पायी हो ? राम-राज्यमें मरे हुए ब्राह्मणके पुत्रका जीवन-प्रदान और संन्यासीसे मार खाकर एक कुत्तेका अपनी फर्याद सुनाकर न्याय पाना बड़ी ही विचित्र घटनायें हैं जिनकी वजहसे राजा द्वारा दिये गये थोड़ेसे सुखके लिये भी लोग उसके राज्यकी समता रामराज्यसे करते हैं।

अनाथोंकी सेवा और इन्द्रिय-विकल लोगोंकी हालतें—हृदयको दयार्द्र करनेवाली हालतें—हा! भारतीय जीवनमें किसका चित्त नहीं आकर्षित करती थीं! भिन्न भिन्न अनाथालय और चिकित्सालय जो देशसेवा करते थे उनका नमूना यहीं था, अन्यत्र नहीं।

जो सम्पत्ति इस देशमें थी, जो व्यापार यहां था, जो कला-कौशल यहां था उसकी सुख्यातिने ही विदेशियोंको इस भारत-भूमिके लिये लालायित किया, वह ही उन्हें हज़ारों कोससे घर छोड़वाकर यहां लायी कि आज इस देशमें उनका अखण्ड अधिकार है और वे अपनी इच्छायें सफल करके मौजें उड़ाते हैं, रंगरलियां मनाते हैं।

इस समय पाश्चात्य संसार अपने कला-कौशलोंपर, अपने नये नये आविष्कारों, रासायनिक प्रक्रियाओं, विज्ञानवेत्ताओंपर जो घमण्ड करता है, सो ठीक है; क्योंकि आधुनिक भारतीय जीवन गुलामीका जीवन है। इस जीवनमें किसी भी व्यक्तिको शक्तिशाली होनेके साधनोंका आविष्कार करते नहीं पा सकते, क्योंकि इसकी शासनप्रणालीमें कानूनन सख्त मुमानियत है; कला-कौशलोंके द्वारा यथार्थ उन्नति करते हुए व्यक्तिके मार्गमें भी कानून बाधा डालते हैं। आधुनिक जीवनको कानूनोंसे विदेशियोंने जकड़ डाला है। हां, यदि प्राचीन भारतीय जीवनसे पाश्चात्य संसार अपनी तुलना करे तोभी उसने उतनी उन्नति नहीं की जिसपर उसे गरूर है!

आजकल पाश्चात्य संसार जो काम शत्रुओंके नाशके लिये करता है और आग, बारूदके संयोगसे बड़े बड़े गोले फेंकता है वह शारीरिक बलका कदापि परिचायक नहीं। हां, यह बात दूसरी है कि विलासितामें गर्क मनुष्योंके शरीरमें बल नहीं रहता इसीलिये ऐसे उपकरण तैयार किये गये। परन्तु हमारे प्राचीन भारतीय जीवनमें जिस बाणावलीसे वीरोंने काम लिया है वहांतक तो अभी उक्त जगत् पहुंचा ही नहीं है।

शास्त्रविद्या, शस्त्रविद्या, जीवविद्या, वनस्पतिविद्या, योग-विद्या एवं और और प्रकारकी विद्याओंके जाननेवाले इस भारतमें एक नहीं अनेक थे, और योगविद्याके जाननेवाले तो आधु-निक समयमें भी वर्त्तमान हैं जिनपर पाश्चात्य सभ्यताने अपनी घोर घमण्डवाली दशामें भी हार खायी है। वह सभ्यता योगकी शक्तिपर अवाक् हो रही है। उसे लज्जित होकर अपनेको अधूरी मानना पड़ रहा है; या यों कहिये कि आध्यात्मिक शक्ति क्या वस्तु है इसके जाननेमें वह अन्धकारमें है। लाख टटोलती है कि योगविद्याकी प्राप्ति हो, पर तामस भोजनवाले राक्षस-प्रकृतिके लोगोंको वह नसीब कहां ?

बालकोंकी शिक्षाका सुदृढ़ व सुसंगठित प्रबन्ध जो भारतीय जीवनमें था वह इतना विख्यात था कि विदेशी लोग आ आकर यहांकी शिक्षासे लाभ उठाते थे। यहांकी धन-सम्पत्ति इतनी बढ़ी चढ़ी थी और इस समय भी अनन्त भूगर्भमें है जिसकी वजहसे विदेशी लोग भारतमें मंडराया करते हैं। यहांका धर्म

शान्तिमय अहिंसा सिखाता है। यहांकी वीरता सच्ची वीरताकी शिक्षा देती है। यहां बनावटका नाम नहीं। अपनी सब प्रकारकी सचाई, सादगीके कारण यहांके लोग ईश्वरतकसे परिचित थे व हैं।

पर अभाग्य किसीको भी नहीं छोड़ता, क्योंकि अधःपतन सभीका होता है; यही कारण है कि सृष्टि क्षणभङ्गुर कही जाती है। जब भाग्योदय होता है उस वक्त सब तरहसे उन्नति ही उन्नति होती है, और जब अभाग्य आता है तब अवनति होते होते अधःपतन होता है और वह यहांतक होता है कि नामोनिशानतक मिट जाता है। उदाहरणके लिये सृष्टिकी प्रत्येक वस्तुको लीजिये, उसकी उत्पत्ति, उसका विकास, उसकी पूर्णता, उसकी अवनति एवं उसका विनाश भलीभांति निरीक्षण कर देखिये।

इस स्थानपर प्रत्येक वस्तुकी सृष्टि, विकास और विनाशका वर्णन उदाहरण सहित मैं कर सकता था, पर पुस्तक बहुत बढ़ जायगी इसलिये सूक्ष्म रीतिसे ही दिग्दर्शन करा दिया है; सहृदय लोग भलीभांति इसका मनन कर सकते हैं और तत्वका पता लगा सकते हैं।

इसी अभाग्यने भारतको भी नहीं छोड़ा। वह उसको निगल गया है और हजम करना चाहता है, पर उसमें कुछ ऐसी अलौकिक शक्ति है जिसकी वजहसे अभाग्य भी घबड़ाता है, कहता है कि परमात्मन्! कौनसी बुरी चीज मैंने निगली जो मेरे हजम

किये हजम नहीं होती ? यह वस्तु मेरी आन्तोंको रौंदती हुई पेटके अन्दर घूम रही है ! हा ! मैं एक बड़े अजदहेके मानिन्द हूं और सबको निगलकर अपनी तृप्ति सम्पन्न करता हूं, पर यह चीज हजम होनेके बदले मुझे बीमार डाल देगी। आह ! अब सिवा वमन करनेके कोई चारा नहीं ! खैर, के किये डालता हूं !!!

यद्यपि भारत अभाग्यके मुंहसे निकल आया है, पर वह उदास है ! अजदहेके पेटकी गर्मीने उसे बदहवास बना दिया है ! शरीर लालासे लिप्त है ! यदि कोई महात्मा अपने कमण्डलुके जलसे इसका सेक करें तब यह अपनी बदहोशीका परित्याग कर सकता है।

उपाय सब बातोंका है । ऐसी कोई बीमारी नहीं जिसकी दवा न हो। ऐसा कोई काम नहीं जिसकी सिद्धिके लिये उद्यम निर्दिष्ट न हो। पर कमी है ढूंढ़नेवालेकी। यदि सच्चा उद्यमी हो तो असम्भवको सम्भव कर दिखा सकता है, असिद्धको सिद्ध कर सकता है।

ऐसे महात्माओंकी इस भूमिपर कमी नहीं जिनके हृदयमें उपकार करनेकी उदारता वर्त्तमान है। भारतभूमि उपकारके लिये सुविख्यात है। इसके उपकारकी शोहरत कहां नहीं है ? पर अभी तो अभाग्यने इसे निकाला है, निगलकर उगला है। दैवसंयोगसे एक सच्चे, स्वार्थत्यागी, जीवमात्रपर अक्षुण्ण दया दिखानेवाले महात्माने जिन्होंने अहिंसाव्रतका उपदेश किया है, इसे असहयोग जलसे सर्वांग सिक्त किया है, जिस

सेकके कारण यह आँखें खोल उठ बैठा है और अपनेको संगठन द्वारा, कला-कौशल द्वारा उन्नत कर रहा है।

यद्यपि सारा भारत अभी इस उद्धार-कार्य्यमें नहीं लगा है, तोभी जहांतक यह लगा है उससे भविष्य प्रकाशमय जान पड़ता है। यह उज्ज्वल भविष्य प्रतिदिन बहुत सन्निकट जान पड़ता है जब यह देखनेमें आता है कि जो भारतीय सब बातमें विलायती कला-कौशलों द्वारा सम्पन्न किये गये उपकरण काममें लाते थे वे इन दिनों अपने देशके बने उपकरण काममें ला रहे हैं। भारतीय खाद्यके साथ वे भारतीय वस्त्र भी व्यवहार कर रहे हैं। कुछ लोगोंने तो यहांतक प्रण किया है कि अपनी कमरका एक पैसा भी खरच करना पड़ेगा तो उसे देशकी वस्तु खरीदनेमें, देशके श्रमजीवीको देनेमें करेंगे। यह प्रतिज्ञा बहुत अच्छी है। इसके अनुसार कार्य्य करनेसे देशका उद्धार भलीभांति सम्पन्न होगा।

अभाग्यका मुख्य कारण आपसकी एकताका अभाव, सहानुभूति एवं समवेदनाका अभाव है जिनके बिना कोई भी समुदय प्राप्त देश गिर सका, पददलित हुआ और अपनी सत्तातक खो बैठा; क्योंकि पाश्चात्य जातियां अपनी धाक बांधकर विजित अथवा अधिकृत देशकी जमीनतक खोदकर अपने यहां हो ले जानेकी चेष्टामें लगी रहती हैं। इसपर भी ज़रासी चमक मटक देखकर प्रलोभनमें पड़ जब यहांके रहनेवाले अपने देशकी उन्नतिको तिलाञ्जलि देनेकी इच्छासे अपने यहांकी बनी एक भी वस्तु न

अपनाने लगे तो विदेशियोंका व्यापार बढ़ा और इस देशको उनके ऊपर भरोसा करना पड़ा। फिर तो वस्तुओंका मनमाना दाम बढ़ाकर, हा! भारतका पैसा निचोड़ा गया और वह यहांतक विदेश गया कि भारत उस रोगीकी समता करने लगा जिसके शरीरमें रक्तका लेश न हो और चरकसा सुफेद पड़ गया हो।

अभाग्यका परिणाम इतना ही भोगकर उस दीन-हीन भारतको निश्चिन्त होना पड़ा हो सो बात नहीं। विदेशियोंके प्रबल अधिकारने इस देशको दबाना शुरू किया और यहांतक दबाया कि ज़रा ज़रासी बातोंमें गोलियां चलीं और निहत्थे भारतीय मार डाले गये। इसका एक विचित्र दृश्य पंजाबमें जलियांवाला बाग है जहां अभी भी कई हजार मनुष्य गोलियोंके शिकार हुए।

महात्मा गांधीने जिस असहयोगका प्रयोग बताया है उसका तात्पर्य यह है कि सारे भारतीय ऐसे शासनसे असहयोग करें अर्थात् अलग हो जायं; क्योंकि भारतीयोंके सहयोगसे ही शासनका सारा काम चलता है। महात्माजीने बात बहुत ठीक बतायी और ऐसी बतायी कि जिसके द्वारा बहुत शीघ्र स्वतन्त्रताका सूत्रपात हो। सरकारी न्यायालयोंमें अन्याय और अपरिमित व्यय होते देख उन्होंने भारतीयोंके प्रति पञ्चायत-प्रथाका उपदेश दिया। इसके द्वारा अहम्मन्य होकर रोबके साथ शासन करनेवालोंके हाथ पैर ढीले किये। विदेशी वस्त्र आदि उपकरणोंका जिनके बिना जीवन-यात्राका चलना कठिन हो जाता है, परित्याग करना भारतकी कलाओंके संजीवनका मुख्य उपाय जान आपने

विदेशी वस्तुका परित्याग और स्वदेशी वस्तुका स्वीकार अनिवार्य बताया। इस प्रकार विदेशी व्यापार और शासनकी नींव हिला दी। सरकारी मुलाजिमोंको अपनी नौकरियां छोड़नेके लिये उन्होंने उपदेश दिया। इस काममें स्वार्थी भारतीय टससे मस नहीं हुए। हां, कुछ जिलोंके पुलिसवाले निश्चय ही नौकरियां छोड़नेको तैयार थे और उनकी इस बातसे पुलिस अफसरोंके छक्के छूटने लगे थे, पर बहुत थोड़ी संख्यामें नौकरियां छोड़ी गयीं, इसलिये उन्हें अपमान सहना पड़ा। सम्मानार्थ शासन-प्रदत्त उपाधियोंके लौटानेकी बात भी उन्होंने चलायी पर उसे भी बहुत थोड़े लोगोंने किया। यद्यपि भारत बहुतसे मजहबोंका इस समय प्रदर्शन हो रहा है पर इसकी उन्नतिमें सबोंका पूर्ण रीतिसे योग हो इसके लिये महात्माने भारतके हिन्दू-मुसलमान-ईसाई सबोंको एक होनेका उपदेश दिया, जो कुछ अंशतक पूरा उतरा पर पूर्णतया नहीं। इस प्रकार महात्माजीका असहयोग-अस्त्र एक अमोघ अस्त्र कहा जा सकता है जिसकी सफलताके विषयमें कोई सन्देह नहीं हो सकता, पर हां, काम करनेवालोंकी ही कमी है।

स्वतंत्रताका मुख्य साधन महात्माजीने प्रस्तुत कर दिया इसमें कोई सन्देह नहीं। एकमात्र क्षमा और अहिंसाव्रतके उपदेशसे महात्माजीने कामोंके अग्रसर करनेमें जरा भी रुकावट न डाली, अन्यथा कार्य्योंकी प्रगति रुक सकती थी। महात्माजीका मतलब संगठनके उपरान्त सत्याग्रहसे है जिसके बिना

कोई भी पददलित देश उठ नहीं सकता अर्थात् क्षमा और अहिंसाके साथ सत्याग्रह करनेसे कामको सफलता आपसे आप कार्य्यकारीके अङ्कमें आ जाती है।

महात्माजीकी बातोंका प्रभाव बहुत अधिक पड़ा। इसका मुख्य कारण देशकी महंगी है। महंगीके कारण आज दिन ऐसे लोगोंकी कमी नहीं जिन्हें मुश्किलसे एक सन्ध्या भोजन मिलता है। यह महंगी उस समय बड़ा ही विकट रूप धारण करती है जब सरकारी खरीद होती है। खरीदनेकी मुद्रायें कागज़ हैं जिनके खर्च करनेमें ज़रा भी हिचक नहीं रहती; क्योंकि उनका निर्माण करनेवाला और खरीदनेवाला एकही व्यक्ति है; फिर अन्यान्य देशोंमें खरीदी हुई वस्तुओंका विक्रयकर कागज़के बदले सोना मिलता है। इस प्रकार सुवर्णका मिलना कौन नहीं पसन्द करेगा! जिस सुवर्णके लिये लोग अनवरत परिश्रम किया करते हैं, जिसकी प्राप्तिके लिये अधिकांश लोग धर्मलक्षणोंपर लात मार देते हैं, कार्य्याकार्य्यका विचार जिसके कारण नहीं रहता वह यदि अपनी इच्छाके अनुसार एक वृहत् परिमाणमें प्राप्त हो जाय तो उसके लिये सभी हाथ फैलायंगे; 'कंचन, कामिनि, कुचनको किन न पसास्यो हत्य'।

कानूनोंका समधिक परिमाणमें बनाया जाना शासकोंके पक्षमें कहीं बढ़कर हितकर हुआ। कुछ थोड़ेसे कानून प्रजाओंके हितके लिये सिद्ध हुए। इस प्रकार कानूनोंकी अकड़बन्दीमें पड़कर प्रजाओंके हाथमें गुलामी करके मुट्ठीभर अन्न खाने और

अपने दिन काटनेके सिवा और कुछ न रह गया। कला-कौशलों-का प्रचार पहलेहीसे रोक दिया गया था इसलिये प्रजाकी हालत बिगड़ गयी थी। इसपर भी एक कानून जिसका नाम रौलट ऐक्ट था बना, जिसके अनुसार गिरफ्तार किये गये मनुष्यको न साक्षी देनेका अधिकार, न बहस करनेका अधिकार, न किसी प्रकार अपनी संरक्षा करनेका अधिकार रहा।

परमात्मा न करे कि कोई देश अभागे भारतके समान गुलाम हो! हा! जिस समय यह भीषण ऐक्ट बड़ी व्यवस्थापिका सभामें पेश था उस समय सारा भारत एक स्वरसे कहने लगा कि यह कानून बड़ा ही दोषी है, इसे कदापि दण्ड-विधानमें स्थान नहीं मिलना चाहिये, क्योंकि एकसे एक उत्पीड़न देनेवाले कानूनोंकी जब कमी नहीं है तो ऐसे कानूनकी जरूरत ही क्या, जिसके द्वारा प्रत्येक भारतीयकी जान खतरेमें रहे! जब इस प्रकार भारतमें खलबली मची और सब जगहोंसे एक ही आवाज इस दूषित कानूनके विषयमें गूंजी तब भी लोकमतका कुछ खयाल न कर जब शासकोंने इसे पास करना चाहा तो इस सङ्कटापन्न अवस्था-में महात्मा गांधी देशोद्धारके लिये निष्क्रिय प्रतिरोधका उपदेश करने लगे। यह काम सत्याग्रहके नामसे होने लगा। उस समयसे लेकर कई बार लोगोंने सत्याग्रह किया और इसकी बराबर विजय होती गयी।

पहले पहल सत्याग्रह कलकत्तेमें उस वक्त बड़े ज़ोर-शोरसे हुआ था जब सम्राट्के पुत्र युवराजके रूपमें भारत देखने आये।

उनके आनेकी तिथिको हड़ताल मनानेका उपदेश स्वयंसेवक-दल प्रत्येक दिन देता था और खद्दर बेचनेका तो एक बहाना मात्र था इस काममें भी शिक्षित समाजके नवयुवक, महिलायें और अधे अवस्थाके लोग सम्मिलित हुए। क्षमा और अहिंसाके बलप भारतीयोंने इस संग्राममें विजय-लाभ किया। जो कष्ट इ देशभक्तोंको झेलने पड़े वे असह्य थे। ये कष्ट नौकरशाहीको ओरसे दिये गये थे यह कहनेकी आवश्यकता नहीं। इस काममें भी सहस्रों मनुष्य जेलके अतिथि हुए।

उसके बाद तो सारे भारतमें सत्याग्रहकी धूम मची, मादक वस्तुओंसे अपने देशबन्धुओंको बचानेके विचारसे जब नवयुवक जी-जानसे लगकर उपदेश देने लगे तो शासकोंको आबकारी विभागको आयके घटनेका बड़ा भय हुआ। इसलिये वे धरना देनेवालोंको, मना करनेवालोंको पकड़वाकर जेलमें ठूंसने लगे। यह दृश्य बनारस, इलाहाबादमें खासकर औ और और देशोंमें साधारणतः दिखाई देने लगा, पर सत्याग्रहियोंने इस बार भी क्षमा और अहिंसाके बलपर विजय प्राप्त की।

तीसरी बार नागपुरमें राष्ट्रीय झंडेके सम्मानके लिये सत्याग्रह हुआ। जहांपर अंग्रेज लोग रहते थे वहां उसके ले जानेकी मुमानियत थी। इसलिये करीब करीब समग्र भारतके लोगोंने इस सत्याग्रहमें योग दिया। दनादन लोग कृष्ण-भवनके अतिथि होने लगे। अधिकारी चाहते थे कि मेरी बात रहे और राष्ट्रीय झंडेकी सीमा निर्दिष्ट रहे, पर असहयोगी राष्ट्रीय

झंडेकी गति अप्रतिहत चाहते थे। इस बार भी हजारों स्वेच्छा-सेवकोंने असह्य कष्ट सहा। यद्यपि थोड़ी थोड़ी बातोंके लिये इस प्रकार कष्ट भोगना अच्छा नहीं, पर शासकोंको मालूम हो गया कि भारतीय कैसे और कहांतक कष्ट सहनेवाले हैं। खैर, सत्याग्रहियोंकी विजय हुई। उन्हें हुकुम लेकर जलूस निकालनेकी आज्ञा मिली और झंडा निर्दिष्ट सीमा पार कर गया।

ईसाई-संसार जितना हिन्दुओंको सीधा और अच्छा समझता है उतना मुसलमानोंको नहीं। हिन्दू लोग किसी भी ढंगसे जाति-च्युत किये गये व्यक्तिको अपनानेमें अपनी पवित्रतामें बट्टा लगना समझते हैं और इसी कारण वे उस व्यक्तिका परित्याग कर डालते हैं। इस बातसे ईसाइयोंको बड़ा लाभ है। वे कुछ खिला-पिलाकर उसे ईसाई बना लेते हैं और हिन्दुओंकी तायदाद कम कर डालते हैं। परन्तु मुसलमानोंके साथ यह उद्यम लागू नहीं होता ; वे झटपट कलमा पढ़ाकर उसे फिर अपने धर्ममें दीक्षित कर लेते हैं। इस कारण ईसाइयोंकी मुसलमानोंके साथ कुछ चलती बनती नहीं।

हिन्दू-मुसलमानोंके मेलकी बाबत महात्माजीने उपदेश दिया था। इस बातसे बहुत ही लाभ होता जान पड़ता था पर अधिकांश मुसलमानोंने इससे अपना ज़ाती नफा उठाया और हिन्दुओंके साथ बड़ा भारी विश्वासघात किया। वे कहनेके लिये एक थे पर जहां किसी भी हिन्दूके मुसलमान करनेकी बात आ जाती चाहे उसकी अरुचि ही क्यों न हो, तो उस वक्त घोर

विश्वासघात करते। इसके एक नहीं अनेक प्रदर्शन हुए। पश्चिम भारतमें एक नहीं अनेक दंगे प्रायः सभी शहरोंमें हुए जिनमें मेरठ, मुलतान आदि शहरोंके दंगोंके नाम विशेष उल्लेख्य हैं, जहां हिन्दू-स्त्रियोंके जेवर अंग काट कर ले लिये गये। यों तो मुसलमानोंने अक्सर नादिरशाही मचायी पर मालावारमें जो मोपलाओंका उपद्रव हुआ वह बड़ा ही रोमाञ्चकारी था। उपद्रवके समय इनने ललकार कर कहा-"ऐ काफिर हिन्दुओ! या तो इस्लाम कुबूल करो, या तलवारके सामने आओ।" लाचार इनने इस्लाम कुबूल किया, 'मरता क्या न करता'वाली कहावत चरितार्थ हुई। इतनेहीसे उनके हृदयमें सन्तोष नहीं हुआ। उनने बहुतसी हिन्दू-महिलाओंको अपनी भर्य्याओंका स्वरूपतक दिया! क्या इससे भी बढ़कर कोई विश्वासघात हो सकता है?

जब सरकारी रिपोर्ट निकली और कुछ नेताओंने उपद्रवके उपरान्त वहां जाकर पता लगाया तो ये बातें बिलकुल सही निकलीं; यों तो अफवाहको मुसलमान लोग झूठ बताते थे। जिस समय नेताओंके सामने हिन्दू-स्त्रियोंने अपनी दुःख-गाथा सुनायी उस समय वे रोने लगे। अब तो चारों ओरसे वहां एक मात्र यही आवाज गूंज उठी कि जो लोग जबर्दस्ती तलवारके जोरसे मुसलमान बनाये गये उन्हें शुद्ध किया जाय। फिर क्या था, महात्माजीने अछूतोंके उद्धारके लिये पहलेहीसे उपदेश दिया था, उसीके अनुसार ये विपद्ग्रस्त हिन्दू शुद्ध करके मिला लिये गये।

इस कार्य्यका प्रभाव बड़ा अद्भुत पड़ा। औरंगजेबके समय

इसी प्रकार तलवारके जोरसे सैकड़ों राजपूतोंके गांव मुसलमान बना डाले गये थे। यद्यपि वे तलवारके जोरसे कहनेको मुसलमान बनाये गये, पर उनका आचारव्यवहार ज्योंका त्यों बना रहा। केवल दो एक कुरीतियां—जैसे मुर्दोंका गाड़ना और व्याहके अखीरमें काजीको कुछ दे देना—इनमें आ गयी थीं। इसमें भी मतलब था, जिसमें बादशाह यह न जाने कि ये नाम मात्रके मुसलमान हैं, आचार-विचार हिंदुओंकासा ही है। मालावारी हिन्दुओंकी शुद्धिपर ये चुपचाप न बैठे। इन्होंने भी हिंदू-समाजसे अपनी शुद्धिकी बाबत कहा और ये शुद्ध किये गये।

दिन सभीके फिरते हैं। चाहे वह जड़ हो अथवा चेतन, अवस्था सभीकी पलटती हैं। इसीका नाम क्रान्ति है; इसीका नाम परिवर्त्तन है। यह अनिवार्य्य है, इसकी गतिमें कोई बाधा नहीं डाल सकता, यह प्राकृतिक नियम है। इसी नियमके अनुसार आज हमारे वे भाई, जो सैकड़ों वर्ष पहले तलवारके जोरसे मुसलमान बनाये गये थे, शुद्ध हुए और बिरादरीने उन्हें अपनेमें मिला लिया। इस काममें राजा महाराजा लोग सम्मिलित हुए।

इन भीषण दंगोंने जो प्रभाव सहृदय हिन्दुओंपर डाला उसने महामना महात्माओंको हिन्दूजाति-संगठनके लिये बाध्य किया। वे इस समय समग्र भारतमें घूम घूमकर यह कार्य्य सम्पन्न कर रहे हैं। उन्होंने अभी काशीमें एक बड़ी भारी हिन्दू-महासभाका आह्वान किया था। जितने प्रस्ताव उस सभाने अङ्गीकार किये, वे यदि कार्य्यरूपमें परिणत हो जायं तो निश्चय हिन्दू-जाति

उसे कुछ महंगा करके बेचते हैं। यदि एक ही आदमी खरीदके भावसे कुछ महंगा करके माल बेचता तोभी देशवासियोंको इतनी महंगीका सामना नहीं करना पड़ता, पर बात दूसरी ही है। उस व्यक्तिसे दूसरेने कुछ नफा देकर थोक माल खरीदा और उससे तीसरेने, तीसरेसे चौथेने—बस, जितने व्यक्तियोंने खरीदा उतना ही नफा उस मालपर रखकर वह बेचा गया। परिणाम इस व्यापारका यह निकला कि देशकी तिजारत गारत हुई; स्वार्थने अपना सिर अच्छी तरहसे उठाया; फूटने पैर रोप दिये; एक दूसरेकी उन्नतिपर जलने लगा और देशोन्नतिकी परवा किसीको भी नहीं रही। अब कहिये, कला-कौशलोंका सहारा कौन ले? हां, कुछ थोड़ेसे श्रमजीवी हैं जो लोहार, सोनार, बढ़ई, राज, बेलदार, जुलाहे, धुनिये आदिका काम करके अपनी जीविका उपार्जन करते हैं। चमार यद्यपि जूते बनाते हैं पर ज्यादातर पाश्चात्य ढंगके; दरजी कपड़े सीते हैं पर उनमें भी पाश्चात्य सभ्यताने अपना पूर्ण अधिकार कर लिया है; कसेरे और लोहार सिवा छोटी छोटी चीजोंके एक भी बड़ी वस्तु तैयार नहीं कर सकते। सोनार प्रायः खाद मिलाकर जुआचोरी किया करते हैं। प्रायः ब्राह्मणोंको सिवा भिक्षा-वृत्ति और नौकरीके दूसरा काम न रहा! अपनी विद्या-पठन-पाठन प्रणाली छोड़ दी इसलिये नाममात्रके वे ब्राह्मण रह गये। क्षत्रिय प्रायः नौकरी, पियादगिरी करने लगे और वैश्योंने नफेपर नफा लेकर देशवासियोंको खूब लूटा! फिर तो मूर्ख शूद्र बेचारे क्या करें! इनने

दासवृत्तिपर कमर बांधो और भारतको गारत करनेमें जरा भी कोर कसर न रक्खो।

अधिकांश भारतीय अंग्रेजी पढ़कर इसी सभ्यतामें रंग गये और वे दासवृत्ति अङ्गीकार कर अपनी जीवन-यात्रा ते करते हैं। आज दिन देशोन्नतिकी ओर उनका ध्यानतक नहीं है। जो पढ़े-लिखे नहीं हैं वे सब तरहकी नौकरी-चाकरी करते हैं या गाड़ी-वानी, पक्केवानी करते हैं। पैसा कमानेकी ओर अपनी अपनी धुनमें सब मस्त हैं, चाहे वह पैसा कैसे ही कुकर्मकर क्यों न प्राप्त हो। समाजका कोई सुधारनेवाला नहीं; कुरीतियोंके निकालनेका कोई उपाय नहीं; क्योंकि इस ओर कोई दृष्टिपाततक नहीं करता। हां, कुछ अहिंसा व्रतके व्रती महात्मा ऐसे हैं जो देशोन्नतिके लिये जेलमें पड़े हैं।

ऐयाशीमें पड़कर, जिसकी दीक्षा भारतीयोंको पाश्चात्य सभ्यतासे मिली है, हा! ये—क्या स्त्रियां, क्या पुरुष—व्यभिचारमें प्रायः प्रवृत्त हो गये हैं। फिर तो "कामातुराणां न भयं न लज्जा" वाली कहावत चरितार्थ करते हैं। जो ललनाएं अशिक्षित रहनेके कारण, अपनी मर्य्यादा-सभ्यता न जाननेके कारण एक बार भी गलतीसे कुपथमें पड़ीं वे सदाके लिये समाजसे बहिष्कृत की जाती और फिर तो कुलटायें होती हुई वेश्याओंका जीवन व्यतीत करती हैं—यद्यपि सदुपदेश द्वारा उनका भी कल्याण किया जा सकता है—और पहले नीरोग अवस्थामें रहनेकी वजहसे इस व्यभिचारको जीविका समझ पैसे कमाती हैं, पर शीघ्र क्षण

होनेपर अत्यन्त दुर्दशाग्रस्त हो अपनी लीला संवरण करती हैं। ऐसी स्त्रियोंके सुधारनेका भारतीय समाजमें कोई उद्यम नहीं।

व्यभिचारी पुरुषोंको बगैर धनके अत्यन्त कष्टका सामना करना पड़ता है। उन्हें मादक-सेवनकी सख्त जरूरत रहती है, इसलिये वे जुआ अथवा चोरीके शिकार बन जाते हैं। फिर तो कारागार वास करनेका सौभाग्य उन्हें स्वतः प्राप्त हो जाता है। कितने उचक्केका काम करते हैं। जरासा सन्नाटा हुआ कि किसीकी चीज़ फौरन झपट ली। कितने दलबंदीकर डाकेजनी, राहजनी किया करते हैं। इस काममें भी वे सुख नहीं पाते बल्कि सदा सशङ्क जीवन व्यतीत करते हैं।

कितने लोग बंदर नचाकर अपनी जीविका उपार्जन करते हैं और कितने भालु नचाकर। सांप और बिच्छू, गोह और बिल-लोपड़ोंका प्रदर्शन भी जीविकाउर्जनका एक मुख्य साधन हो गया है। ऐसे लोग मदारी या सपेरे कहे जाते हैं। कुछ लोग नट-बाजी अथवा इन्द्रजालके द्वारा लोगोंकी आंखोंमें धूल झोंकते हैं और अपने पैसे बना लेते हैं। यह भी एक प्रकारका प्रहसन है।

नाटकोंके अभिनय और जंगली हिंसक पशुओंके साथ लड़ना, हाथीको अपने ऊपर चढ़ाना और छातीपर पत्थल तुड़वाना, सीकड़ोंको तोड़ना और चलती हुई मोटर रोकना आदि काम भी जीविकाओंके साधन हैं। नटबाजीके द्वारा भी लोगोंका जीवन चलता है। नाचना, गाना आदि कार्यों से नटनर्तक तथा वेश्याओंके जीवन चलते हैं।

मजदूरीसे भी बहुत लोग जीते हैं। पर कला-कौशलोंके अनुशीलनसे प्रायः देश विमुखसा हो रहा है। यद्यपि विदेशी चीजें—छाते, मोटर गाड़ियां, साइकिलें, हारमोनियम, फोनोग्राफ, घड़ियां आदि—भारतमें मरम्मत होती हैं और इसके जरिये बहुतसे लोग अपनी जीविकाका कार्य सम्पन्न कर लेते हैं।

शीशे और सीसकी चीजें—व्यवहारिक चीजें—भी बनने लगी हैं। मोटे वस्त्र और साथ ही महीन भी बनने लगे हैं; परन्तु सारा देश, न मालूम क्यों, इन्हें अभी एक दम अपनाता नहीं; तोभी देशीका व्यवहार बहुत होता है, इसमें सन्देह नहीं।

टिकुली और सितारे तथा गोटे-पट्टेका भी काम यहां होता है पर मूलवस्तु जो उनमें लगती है विदेशसे ही आती है। यद्यपि कुछ श्रमजीवी लोग इस कामके द्वारा अपना पारिश्रमिक पा जाते हैं तथापि इस व्यवसायसे मुख्य लाभ विदेशको होता है।

खाने-पीनेकी चीजें भारतीय बाजारोंमें मिलती हैं और उनसे हलवाइयोंको लाभ होता है, पर विदेशी ढंगकी चीजें भी बनने लगी हैं जिनकी खपत नकल करनेवालोंमें अच्छी होती है। सबको—चाहे मुसलमान हो या ईसाई—यदि वह विदेशी नहीं है, तो भारतीय खाद्य खाना पड़ता है; कुछ विवश होकर नहीं बलिक प्रकृतिके कारण।

आधुनिक जीवनमें भारतीय समयका मूल्य अधिकांशमें नहीं समझते। वे इतनेको ही अपना कर्त्तव्य समझ बैठे हैं कि किसी प्रकार भोजन वस्त्रभर कमा लेना और बाकी वक्तको या तो कलह

अथवा सोकर या मादक वस्तुओंका सेवन कर काट देना। पहली अवस्थामें फौजदारी होती है और परिणाम कारागारवास होता है। दूसरी अवस्थामें आलस्यकी मात्रा इतनी बढ़ जाती है कि मनुष्य किसी कामका नहीं रहता और एकदम बेकार हो जाता है। कुछ अशिक्षित लोग यद्यपि निर्दोष मनोविनोदकी दुहाई देकर चिड़ियोंको अगिन, तूती, बुलबुल, बटेर, तीतर, तोता, मैना आदिको लेकर घूमा करते हैं, पर समय उनका तीन चार घंटेसे कम बरबाद नहीं होता जिसके एवजमें वे सिवा उनकी मीठी बोली सुननेके या लड़ाई देखनेके और कुछ नफा नहीं उठाते। हा! जिस देशमें कला-कौशलोंका परित्यागकर लोग इस तरह कालक्षेप करें उस देशका अधःपतन क्यों न हो? वह तो अवश्यम्भावी है। कहीं तास या गंजीफा खेलकर दिन बिताया जाता है तो कहीं शतरंज व चौसर खेलकर कहीं सितार या सारंगी बजती है तो कहीं हारमोनियम और फोनोग्राफ। इस प्रकार अपने समयका भारतवासी सदुपयोग करते हुए अपनेको मिट्टीमें मिला रहे हैं।

आधुनिक जीवनमें इनकी सभ्यताका स्थान बहुत ही नीचा है। उसे पाश्चात्य सभ्यताने धर दबाया है। हां, जहांपर संस्कृतका पठन-पाठन बना हुआ है वहां यह फटकनेतक नहीं पायी है और निराश होकर लौटना पड़ा है। यही कारण है कि पाश्चात्य तत्त्वदर्शी लोग भारतमें उसकी सभ्यता और सत्ताका विनाश करनेके लिये विदेशी भाषा, विदेशी विचार, विदेशी आचार प्रचलित करनेकी शिक्षा अपने यहां दे रहे हैं।

धार्मिक विचार यद्यपि भारतके बड़े समुन्नत हैं तथापि इस दीन-दरिद्र देशको धनका लालच अथवा नौकरियोंका प्रलोभन देकर ईसाई-संसार अपना मतलब खूब गांठ रहा है। उधर पैयाशीमें पड़ रंडियोंके फेरमें लोग मुसलमान तो पहले बन जाते हैं पर बादमें 'धोबीका कुत्ता न घरका न घाटका' वाली कहावत चरितार्थ होती है। वे न इधरके रहते हैं न उधरके।

यह कहना अत्युक्ति न होगी कि भारतवासी अपना आधुनिक जीवन संचालन करनेके लिये अपने शासकोंका मुंह जोहा करते हैं। जो कुछ पहले लिखा जा चुका है उससे स्पष्ट है कि आधुनिक भारतीय जीवन समादरके योग्य नहीं। तभी तो गुलामी भी भोगनी पड़ रही है और इससे उद्धारका उपाय नहीं सूझता! हां, यदि अहिंसा-व्रतके व्रती बन भारतीय कष्ट झेलनेके लिये तैयार हों और महात्माके बताये असहयोग-सिद्धान्तपर चलें तो बहुत शीघ्र देशोद्धार सम्भव है। फिर तो यह देश अद्वितीय हो जायगा। इसका पूर्व वृत्तान्त बड़ा ही समुज्ज्वल है इसलिये यह बहुत शीघ्र समुन्नत होगा इसमें सन्देह नहीं।

यद्यपि इस देशकी भाषा प्राचीन समयमें संस्कृत थी और अनन्तर वह प्राकृतसे संपृक्त हुई तथापि समयके हेरफेरसे यवनोंके आक्रमणके कारण उसे उर्दू मिश्रित हिन्दी होना पड़ा है। इस समय यही भाषा प्रधान है यों तो प्रान्तीय भाषायें अपने अपने प्रान्तोंमें प्रचलित हैं। जबसे अंग्रेजी अमलदारीने अपना दखल जमाया तबसे अंग्रेजी भाषाका प्रचार भारतमें फैला, और

आधुनिक भारतीय जीवनमें यह इतना घट गया है कि संस्कृतका पठन नहींके बराबर है; यद्यपि प्रान्तोंमें कहीं कहीं इसके प्रेमी ब्राह्मण लोग इसको जीवित अवस्थामें रक्खे हुए हैं। पाश्चात्यों ने तो इसे मृत भाषा (Dead Language) कहनेमें भी जरा संकोच नहीं किया, यद्यपि बहुत थोड़े परिवर्त्तनके साथ यह मद्रास प्रान्तमें व्यवहृत होती है। महाराष्ट्र लोग भी इसे उसी प्रकार बोलते हैं जैसे मद्रासी। बंगाली लोग तो इस भाषाका इतना समादर करते हैं कि शुद्ध बङ्गला और संस्कृतमें कुछ भी भेद नहीं जान पड़ता, हां, विभक्तियोंका अभाव बङ्गला विभक्तियों के चिह्नसे पूर्ण किया जाता है।

ज्यों ज्यों अंगरेजीका पठन-पाठन बढ़ता गया त्यों त्यों पाश्चात्य सभ्यताने अपनी दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति की। इस भाषाका प्रेम यहांतक बढ़ा कि लोगोंने और भाषाओंका पढ़ना छोड़ दिया। इस समय तो भारतमें अंग्रेजी जाननेवाले गली गलीमें भरे पड़े हैं। बी० ए०, एम० ए० पास किये व्यक्ति जब सैकड़ों मिलते हैं तो मेट्रिक और आई० ए० वालोंकी कौन चर्चा चलावे। इनकी भाषा भी एक विचित्र ढंगकी हुई है। इसे सुनकर बेतरह हंसी आती है! इसे हिन्दी-अंग्रेजीका सम्मिश्रण कह सकते हैं। एक दम अंग्रेजी या हिन्दी बोलें सो बात नहीं; बल्कि हिन्दीके बीच बीच अंग्रेजीका तड़का या उसकी बघार रहा करती है; जैसे—'रातको साउंड स्लीप या नाइटमें साउंड स्लीप नहीं हुई।' 'ईट करनेके वक्त किसीको चोट करना अच्छा नहीं।'

इस समय बहुतसे भारतीय अंग्रेजी ही बोलकर अपना अभिप्राय अन्य अन्य प्रान्तवालोंके प्रति व्यक्त करते हैं। घरेलू भाषामें भी अंग्रेजीकी बघार रहा करती है। यद्यपि अंग्रेजीका इतना प्रचार है तथापि राष्ट्र-भाषा हिन्दीका प्रचार इन दिनों खूब बढ़ रहा है। सभी प्रान्तवाले इसे सीख चुके हैं और सीख रहे हैं। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन अपना काम बड़े वेगसे कर रहा है। अन्यान्य प्रान्त भी अपनी अपनी भाषाकी उन्नति कर रहे हैं।

पाश्चात्योंकी नकल करना और उनके गुणोंका ग्रहण न करना भारतीयोंके लिये बड़े दुःखकी बात है। पाश्चात्योंके समान कला-कौशलका अनुशीलन न कर उनके किये आविष्कारों और गवेषणोंपर मूंछें ऐंठना, उनके समान अपनी महिलाओंको भूषण-वसन पहना गाड़ियों और मोटरोंपर लिये घूमना (यद्यपि वे पाश्चात्य महिलाओंके समान शिक्षित नहीं), पाश्चात्योंके व्यापारद्वारा प्रदत्त वस्तुओंसे अपना जीवन निर्वाह करना, आपसमें द्वेषाग्नि भड़काते रहना, एकताका अभाव और प्रेमका अभाव भारतीय सत्ताका विनाशक है। वाचकवृन्द, प्यारे देशवासियो, जिसमें उक्त सत्ता बनी रहे, सभ्यता बनी रहे सो काम करना चाहिये।

तुलनात्मक जीवन।

इसमें पाश्चात्य जीवन और भारतीय जीवनकी तुलना की गयी है। इसी उद्देश्यसे यह जीवन लिखा गया है। बिना तुलना किये पता नहीं लगता कि किस जीवनमें कौन गुण अथवा अवगुण वर्त्तमान है। कौनसा जीवन सर्वश्रेष्ठ है, पक्षपातशून्य होकर इसकी मीमांसा करना एक बड़ी कठिन समस्या है। इस वक्त पक्षपातका बाजार बड़ा गर्म है। जहां देखिये वहां इसने अपना ऐसा दखल जमाया है कि न्याय बेचारा अन्धकारमय हो जाता है, उसका गला घोंट डाला जाता है और वह अपनी फर्यादतक किसीको सुना नहीं सकता। एकमात्र न्यायपर प्रकाश डालनेके लिये इस जीवनकी रचनाकी ओर लेखक प्रवृत्त हुआ।

तुलना देश, भाषा, सौंदर्य्य, उर्वरता, रत्नगर्भता, खाद्य, पेय पदार्थ, वेश-भूषा, बल, कलाकौशल, विद्वत्ता, तर्क, समाज, प्रथा, गुण-दोष, धर्म, रीति-नीति आदिके साथ की जाती है; और इसी सिद्धांतको आगे रख लेखक पहले भारतवर्षके साथ पक्षपातशून्य होकर पाश्चात्य देशोंकी तुलना करता है।

भारतवर्षको प्रकृतिदेवीने स्वयं अपनी गोदमें रख लिया है। पश्चिम, उत्तर और पूर्वकी ओर पर्वतश्रेणियोंने इसे

घेरकर अगम्य बना दिया है; हां, पश्चिम और पूर्वकी पर्वत-श्रेणियोंमें होकर घाटियां हैं जिनके द्वारा लोग दोनों ओरसे आ जा सकते हैं और आते जाते भी हैं। इसका दक्षिण भाग समुद्रसे प्रक्षालित है। एक ओर अर्थात् पश्चिम-उत्तरकी ओर ऊंचीसे ऊंची पर्वतश्रेणियां हैं और दूसरी ओर नीचीसे नीची रत्नाकरकी तरंगमाला! बीचका प्रदेश पर्वतोंसे निकली हुई समुद्रगामिनी नदियोंसे ऐसा सींचा-संवारा हुआ है कि इसकी जहांतक प्रशंसा की जाय थोड़ी है। यही कारण है कि भारतमें सब प्रकारके प्रदेश वर्तमान हैं जहां हदसे ज्यादा गर्मी और सर्दी पड़ती है; और बाज बाज जगहें न अधिक सर्द हैं न गर्म।

शायद पाश्चात्य देशोंमेंसे किसी भी एक देशको प्रकृतिदेवीने ऐसा सुरक्षित, मनोमुग्धकारी, ठंढा, गर्म और औसत दर्जेकी सर्दी व गर्मीसे युक्त नहीं बनाया। वे देश न तो भारतवर्षसे सुरक्षित हैं न मनोहर ही। ठंढक उन देशोंमें इतनी पड़ती है कि वहांके रहनेवाले बदन फटनेके कारण बरफसे सुफेद हो जाते हैं। बस यही कारण है कि वे अपनेको सुन्दर देशोंका बताते हैं। यथार्थमें वे सुन्दर नहीं हैं। ठंढके मारे जो दशा उनकी होती है उसका वर्णन बड़ा विचित्र है। प्रायः उत्तरीय प्रदेशोंमें जहां सूर्य्यके दर्शन बगैर मौसम बहारके आये मिलना सम्भव नहीं, ऐसी ऐसी जातियां रहा करती हैं जिन्हें कभी भी स्नान करनेका सौभाग्य नहीं होता। इन जातियोंके लोग रात-दिन सिरसे पैरतक

भेड़की रोमांदार छालके बने कपड़े पहने रहते हैं, सिर्फ आंखें और मुख उनके खुले रहते हैं। उन्हें सिर्फ भोजन करना और सोनेके सिवा यदि कुछ काम रहता है तो यही कि कुछ काम अपनी जीविका-निर्वाहके लिये—जैसे जानवरोंका शिकार इत्यादि कर लेते हैं। इसके सिवा उनका जीवन पृथ्वीके लिये बोझ है। निरर्थक जीना अच्छा नहीं। हा! जिस प्रकार कुत्ते, बिडाल आदि जीव अपनी देहको चाटकर स्वच्छ करते हैं, अपने बच्चोंकी देह साफ करनेके लिये चाटा करते हैं, वैसे ही ये नर-पशु अपनी तथा अपने बच्चोंकी देह चाटकर स्वच्छ करते हैं। शायद भारत-वासी ऐसे कष्ट झेलनेके लिये तैयार नहीं। यह दूसरी बात है कि बहुतसे दरिद्र, गृहहीन, जीविका-हीन, रोग-ग्रस्त तथा निःसहाय भारतवासी हैं जो अपनी दशापर लोगोंकी सच्ची सहानुभूति एवं समवेदना आकृष्ट करते हैं, नाना प्रकारके कष्टोंके शिकार बने रहते हैं; पर चाटकर पशुके समान देहको स्वच्छ ये भी नहीं करते हैं। हा! उन देशोंकी प्राकृतिक बनावटने वहांके अधि-वासियोंको पशुतुल्य बना दिया है। उनकी पशुता उस समय और बढ़ जाती है जिस समय उन्हें भोजन नहीं मिलता, अकाल पड़ता है। वे कभी कभी आपसके लोगोंको पकड़ पकड़ खा जाते हैं। हा! इतनी पशुता!

भाषा।

भाषा वही अच्छी समझी जाती है जो सुननेमें अच्छी लगे।

जो भाषा सुननेमें कटु और अप्रिय हो, जिसमें चित्तके खींचनेकी शक्ति नहीं, जो मनको मुग्ध न कर सकती हो, जिसके उच्चारण करनेमें कष्ट हो अथवा जो उच्चरित न हो सके वह भाषा भाषा नहीं किन्तु एक भारी कष्टका प्रदर्शन है। यदि इसे भाषाका विडम्बन कहें तो ज़रा भी अत्युक्ति न होगी।

भारतवर्षकी भाषा प्राचीन समयमें तो संस्कृत थी ही यह निर्विवाद सिद्ध है; परन्तु पाश्चात्योंहीके मतसे १५०० से १६०० वर्षके करीब हुए होंगे कि उज्जैनके राजा विक्रमादित्य और भोजके समयमें संस्कृतकी चर्चा किसी प्रकार कम न थी। उन दोनोंमेंसे पहलेकी सभाके नवरत्न नव पण्डित थे जो यथार्थमें रत्न ही थे; और दूसरेके समयमें सभी संस्कृत बोलते थे और कविता करते थे; राजाके प्रसन्न होनेपर प्रत्यक्षर लक्ष लक्ष मुद्रायें लोग पाते थे। इस बातकी पुष्टिमें एक नहीं अनेक प्रमाण हैं जो भोज-प्रबन्धमें मिलते हैं। और सबसे जबर्दस्त प्रमाण तो यह है कि आज एक ओर गुजराती, मराठी, बंगाली तथा मद्रासी आदि प्रान्तीय भाषाएं और दूसरी ओर हिन्दी, उर्दू, अर्धी, मागधी तथा अन्य प्रान्तकी बोली जानेवाली भाषाएं कोई कम कोई अधिक संस्कृतके शब्दोंसे सुसम्पन्न हैं। और इन भाषाओंमें संस्कृतके शब्द बीचमें बीचमें जब आ जाते हैं तो सुनकर चित्त और भी प्रसन्न होजाता है। संस्कृतके शब्दोंमें यथार्थ माधुरी है। इस माधुरीकी समता आजतक तो किसी भी भाषाने नहीं की।

कहनेके लिये लोग कह सकते हैं कि जो जिसकी मातृभाषा

है वही उसको रुचती है। परन्तु यदि इस विषयमें तत्त्वान्वेषण किया जाय तो भलीभांति पता लग सकता है कि कौन भाषा यथार्थ मधुरिमासे पूर्ण है, किस भाषाकी वाक्यावलीमें मनोमुग्धकारिणी शक्ति है, किस भाषामें आकर्षणशक्ति है। यह गुण प्रायः संस्कृतसे विभूषित होनेके कारण भारतीय भाषाओंमें आ गया है। हां, यह बात दूसरी है कि जिस भारतीय भाषामें अधिक संस्कृत शब्द आये हैं वही सर्वाङ्गसुन्दर हो सकी है।

जो उच्चारण किया जाय उसका शुद्ध शुद्ध लिखना और जो लिखा जाय उसका शुद्ध शुद्ध पढ़ना—ये बातें सिवा भारतीय भाषाओंके अन्य भाषामें नहीं मिलतीं। किसी भी बातको शुद्धतापूर्वक भारतीय भाषाओंमें लिख सकते हैं, पर अन्य भाषाओंमें यदि लिखने लगें तो बड़ी भारी अड़चनें आ उपस्थित होंगी।

पाश्चात्योंकी भाषाओंमें यह बड़ा भारी दोष है कि जो लिखते हैं उसको भलीभांति उच्चारण कर पढ़ नहीं सकते; दूसरे शब्दोंमें यह पाश्चात्य भाषाओंमें विकट विलक्षणता है कि शब्दोंकी बनावटमें जितने अक्षरोंका प्रयोग होता है वे सभी उच्चरित नहीं होते, अनुच्चरित भी रह जाते हैं। क्या संस्कृत अथवा भारतीय अन्यान्य भाषाओंमें भी उपर्युक्त दोष दिखलायी देगा? कदापि नहीं।

पाश्चात्योंकी भाषा चित्तको खींचती नहीं न उनकी भाषामें कुछ रस ही जान पड़ता है। जिन्होंने भलीभांति उनकी

भाषाका अध्ययन किया है वे भी उसमें रस नहीं पाते। इसका मुख्य कारण यही है कि उनकी भाषामें सरस वाक्यावलीका पता नहीं है, न शब्दोंमें मनके मुग्ध करनेकी शक्ति ही है। जिन्होंने अपनी जिन्दगी उनकी भाषाके अध्ययनमें बिता दी है वे भी उनकी भाषामें रसाभाव बतलाते हैं।

सौन्दर्य्य।

सौन्दर्य्यमें बड़ी भारी आकर्षणशक्ति है। उसने लोगोंके मनको बहुत जल्दी मुग्ध करनेमें सफलता पायी है। उसकी ओर दृष्टिपात सभी करते हैं। वह बड़ीसे बड़ी मनोमोहिनी शक्ति है। उसमें किसीको भी वशीभूत करनेकी बड़ी ताकत है। यही कारण है कि वह प्रधान गुणोंमेंसे एक समझा जाता है।

भारतवर्षका सौन्दर्य्य विश्वविदित है, यह कुछ अत्युक्तिकी बात नहीं। इस गिरी दशामें भी जो सौन्दर्य्य इस देशके नर-नारियोंका है उसकी समता करना किसी भी देशके लिये गौरव-की बात है। सौन्दर्य्य एक स्वाभाविक होता है और दूसरा कृत्रिम। स्वाभाविक सौन्दर्य्यकी यहांपर बात हो रही है। कृत्रिम सौन्दर्य्य भारतमें नहीं है बल्कि वह पाश्चात्योंके हिस्सेमें पड़ा है। अङ्ग प्रत्यङ्गकी बनावट, मृदुता, गठन जो भारतमें है वह दूसरी जगह नहीं है। पाश्चात्य लोग अपनी चरफसी गोराईको बहुत ऊंचा स्थान देते हैं, पर यथार्थमें जो लावण्य और सौन्दर्य्य लाल वर्णवाले भारतीयोंमें है वह उन्हें मुअस्सर कहां? प्रकृतिदेवीने उन्हें अपने हाथों संवारा है। इनके केश-

काले, नेत्रकी पुतलियां काली, भूमध्यके समीप रहनेके कारण रंग न बहुत काला न बहुत चरकसा उजला रहता है। यदि कोई व्यक्ति हद दर्जेका सांवला भी है तोभी उसकी सांवली सूरतमें एक वशीकरणवाली शक्ति है, जिसके द्वारा वह विना दर्शकको मुग्ध किये नहीं रहता।

पाश्चात्योंमें वह सौन्दर्य्य ढूंढ़नेपर भी नहीं मिलता। उनका सौन्दर्य्य एक निराले ढंगका है। वे भूरी आंखें, भूरे केश और चरकसा उज्जला रंग पसन्द करते हैं। यथार्थमें भूरी आंखोंके प्रति लोगोंका मन खिंचता नहीं, न भूरे केश ही चित्तका आकर्षण करते हैं। चरकसे सफेद रंगमें भी आकर्षण नहीं। यदि उस रंगमें बीच बीचमें कुछ दाग़ आ गये हैं तो वह अबलख रंग नेत्रोंके लिये सुखकर किसी प्रकार नहीं। शरीर एवं चेहरेकी विलक्षण बनावट दर्शकके मनमें कुछ भयका सञ्चार करती है। कहनेका तात्पर्य्य यह है कि अधिकांश पाश्चात्य व्यक्ति सौन्दर्य्यसे प्रकृतिदेवी द्वारा वंचित किये गये हैं। जिनकी गणना सुन्दर व्यक्तियोंमें है वे किसी प्रकार भारतीय सौन्दर्य्यका कुछ अंश पा चुके हैं। उदाहरणके लिये बहुतसे पाश्चात्य नर-नारी वर्त्तमान हैं। उन्हें देखकर ही पता लग जायगा कि लेखकने कहांतक सत्य बात लिखी है।

उर्वरता।

उर्वरता भारतवर्षमें प्रधान स्थान पाये हुए है। यद्यपि इस

समय भारत गुलामोंकी जंजीरसे जकड़ा हुआ है तथापि यह भारतकी उर्वरता है जिसके कारण ऐसी अवस्थामें भी लोग अपना जीवन निर्वाह कर लेते हैं, जबकि अन्यान्य देश अन्न न पाकर या बहुत कम पाकर आपसमें एक दूसरेको भक्षणतक कर जाते हैं।

उक्त कथनकी पुष्टिमें १६२२-२३ में रशियाके अकालकी बातका लिखना ही काफी है। जो दुर्भिक्ष वहां पड़ा था उसका स्मरण मात्रही रोमाञ्चकारी है। परिवारके लोगोंकी दशा ऐसी हीन हो गयी थी कि खाद्य पदार्थके अभावमें वे मुश्किलसे पेड़ोंकी जड़ें और पत्तियां पाते थे। तदनुसार अस्थिचर्मावशिष्ट होकर आपसके सम्बन्धियोंतकपर घातक आक्रमण किये बिना नहीं रहते थे। हा! भाई भाईको कमजोर समझकर खा न डाले इस लिये वह जंजीरसे जकड़ा गया था! माता-पिता बड़े भाईसे छोटेका खाया जाना कैसे देख सकते थे? इसलिये वे उसे बांध कर रखना ही पसन्द करते थे।

जहां उर्वरता अधिक होती है वहां मांस-भोजन बहुत कम होता है। जहां प्रायः सभी लोग जानवरोंके मांस खाते हैं, अथवा जहांका प्रधान भोजन मांस ही है, वहां उर्वरताका अभावसा होता है। एकके अभावमें दूसरेका भाव होना प्राकृतिक है।

उर्वरताके लिए अच्छी मिट्टीकी बड़ी ही आवश्यकता है। अच्छी मिट्टी सिवा भारतवर्षके दूसरे देशोंमें नहीं पायी जाती। बस, यही कारण है कि अन्यान्य देश अच्छी मिट्टीके अभावके कारण उर्व-

रताका बहुत ही थोड़ा दम भरते हैं। जिस देशका भोजन मांस, परिधान चमड़ा है, उस देशमें उर्वरताका नामोनिशान भी नहीं। यद्यपि यह युग विज्ञानका है और वैज्ञानिक उन्नतियां प्रायः सभी विभागमें हुई हैं, परन्तु प्रकृतिदेवीने जिसे स्वाभाविक उर्वरता प्रदान की है उसकी समता गैर मुल्क कैसे कर सकता है! यह सौभाग्य भारतवर्षको साक्षात् प्रकृतिदेवीने प्रदान किया है और प्रधान कारणोंमेंसे यह भी एक कारण है जिसपर लुब्ध होकर पाश्चात्य देश यहांपर कब्जा किये बैठे हैं।

रत्नगर्भता।

संसारमें जितने रत्न अथवा उनकी जातियां निकली हैं वे सब पृथ्वीके भीतर गर्भहीसे आविर्भूत हुई हैं। यही कारण है कि पृथ्वीका नाम वसुन्धरा अथवा रत्नगर्भा है। सभी देशोंको यह सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ है। पाश्चात्य देशोंने यहांपर अपने मुंहकी खायी है। भारतवर्षको प्रकृतिदेवीने यह सौभाग्य प्रदान किया है। प्रायः नवरत्न जिनकी समता करनेमें चौरासी संगोंके अवशिष्ट पचहत्तर संग आजतक विफल मनोरथ हुए हैं, भारतवर्षमें ही उत्पन्न होते हैं। इन रत्नोंके सिवा चांदी, सोना यहांके पहाड़ोंसे निकलते हैं।

जर्मन महासमरके होनेका कारण भी भारतवर्षकी रत्नगर्भता है। महासमर आरंभ होनेके पहले जर्मनोंका एक दल गुप्त विचारके साथ यहां आया था। उसने ऐसी गुप्तरीतिसे भारत-

वर्षके स्थान स्थानकी मिट्टीकी जांच की थी कि जब वह दल जर्मनी पहुंचकर इसका पूरा विवरण निकालने बैठा तब पाश्चात्योंकी आंखें खुलीं और खासकर अंग्रेजोंने जाना कि भारतीय भूमि इस प्रकार रत्नोंको उत्पन्न करनेवाली है।

यों तो पृथ्वीका नाम ही वसुन्धरा है, पर बात अधिकताकी है। जहांपर जो चीज अधिकतासे पायी जाती है वहांकी भूमिकी ख्याति बढ़ जाती है। बस यही कारण है कि अनन्त-रत्नोंको उत्पन्न करनेवाली भारतीय भूमि रत्नगर्भा होनेकी कीर्त्तिसे चमत्कृत है। इसी हेतु विदेशोंसे आ आकर लोगोंने अनेक बार आक्रमण किये और भारतको खूब ही लूटा। रत्नगर्भताके कारण लूटे जानेपर भी भारत अपना मस्तक इस गुलामीकी अवस्थामें भी सब देशोंसे अधिक उन्नत रखता है।

खाद्यकी सामग्रियां जो भारतवर्षमें हैं वे दूसरी जगह नहीं पायी जातीं। इसका मुख्य कारण यह है कि प्रकृतिदेवीने जो उर्वरता इसे प्रदान की है वह और देशोंको नहीं। इसीलिये भारतवर्षको पाश्चात्य संसार अपनाये हुए है अन्यथा बड़े बड़े कष्टोंका सामना कर वह भारतभूमिको अपने अधीन न करता।

खानेकी मुख्य सामग्री अन्न है। अन्नके अनेक भेद हैं। इन विभिन्नताओंके द्वारा नाना प्रकारके खाद्य तैयार किये जाते हैं। खाद्योंके तैयार करनेमें गोदुग्ध बड़ी सहायता पहुंचाता है। कच्ची रसोईके सामान, पक्की रसोईके सामान, तरह तरहकी मिठाइयां,

भांति भांतिके पक्वान्न, अनेक प्रकारकी भाजियां—ये सब आज दिन भी इस दीन भारतवर्षमें बहुतायतसे होती हैं जिन्हें खाकर भारतवासी शारीरिक बलमें किसी भी जातिसे कम नहीं रहते। पाश्चात्य संसारने इतनी सुविधा प्रकृतिदेवीसे नहीं पायी; तभी तो उसका मुख्य भोजन जानवरोंका मांस है और शारीरिक बलके अभावमें यन्त्रोंका बल उसे काम देता है।

पेय पदार्थ।

भारतवर्षमें पेय पदार्थ मुख्यतया दुग्ध है। यह गौका अथवा भैंसका या बकरीका बहुत बड़े परिमाणमें उपलब्ध होता है। भारतवर्षके लोगोंका मुख्य बल यही था। इसके द्वारा मक्खन और और मलाई तैयार होती है जिसे भारतीय खाकर 'जीवेम शरदः शतम्' की वैदिक कहावत चरितार्थ करते थे। इसीसे घी निकाला जाता है। घीके समान बलकारक वस्तु कोई नहीं; पर आज भारतका अभाग्य है कि यहांके रहनेवालोंको न घी मिलता है न दूध, मक्खन तो इस समय गोरी जातियोंके बांटे पड़ा है। पाश्चात्य सभ्यताका प्रभाव जबसे इस देशपर पड़ा है तबसे लोग मादक अधिक सेवन करने लगे हैं। कई तरहकी शराबें इस देशमें चल रही हैं और देश गारत होता जा रहा है।

पाश्चात्य संसारकी पेय वस्तु एक मात्र मदिरा है। यह मदिरा पीकर मस्त रहा करता है। स्त्रियांतक इसकी गुलाम हो रही हैं। इसके कारण उनपर उस देशमें जुर्माने भी हुआ करते

हैं; पर इसका प्रभाव उनपर कुछ नहीं पड़ता। पड़े भी तो कैसे? पाश्चात्य संसार अपनेको भारतवर्षका यथार्थ अधिकारी समझता है और इस देशके लोगोंको अपना गुलाम।

इन दिनों पाश्चात्य संसार और विडम्बन जीवन व्यतीत करनेवाले भारतीय लोग चाह और कहवा भी पीते हैं। हां, दूध भी इन्होंने पुष्टिकारक समझकर पीना शुरू कर दिया है। यों तो गर्मियोंमें बरफ और लेमोनेड तथा सोडा वाटर प्रायः ये पीते हैं। यद्यपि इस पानके द्वारा किसी प्रकार स्वास्थ्यको लाभ नहीं होता तथापि उक्त व्यक्तियोंको इस प्रकारके पानका व्यसन सा हो गया है। यथार्थ बलका वर्द्धक दूध है जिसे खाकर और पीकर बगैर दूसरी चीज खाये भी मनुष्य रह सकता है, इसका कारण यह है कि उसमें जलका भी अंश है।

वेशभूषा।

मनुष्यजाति विवेकी होनेके कारण अपनेको इस ढंगसे रखती है कि जिसमें शरीर सुन्दर और मनोहर जान पड़े। बस यही कारण है कि मनुष्यजातिने वेशभूषाकी सृष्टि की। यह सृष्टि तरह तरहकी हुई इसमें सन्देह नहीं परन्तु किसकी वेश-भूषा उत्तम है यह मैं विचारशील पाठकोंहीपर विचारनेके लिये छोड़ता हूं।

यद्यपि भारतीयोंने वेशभूषाको अलङ्करणका साधन माना है, तथापि मुख्य साधन ब्रह्मचर्य्यको इन्होंने पहला स्थान दिया है।

जिसके शरीरमें ब्रह्मचर्य्यकी मात्रा जितनी अधिक है और स्वच्छताने जहां सर्वत्र स्थान पाया है यथार्थ सुन्दरता और मनोहरताका वहीं निवास है। यथार्थ सुन्दरता उस चमकदमकमें रहती है जो ब्रह्मचर्य्यके कारण दिखलायी देती है। जैसे आबके बिना जवाहरकी शोभा नहीं उसी तरह कान्तिके बिना यथार्थ मनोहरताका नामनिशानतक नहीं। ब्रह्मचर्य्यकी कान्ति क्या है वह रत्नोंकी चमक है। खिले हुए फूलोंकी शोभा ब्रह्मचारीके अंग प्रत्यङ्गमें देखी जाती है, पर ब्रह्मचारीके अङ्गोंमें जो सुखमा है उसके दर्शन तो ब्रह्मचर्य्यके पालन करनेवालोंहीमें होते हैं।

प्यारे वाचकवृन्द! जिन प्राकृतिक लोहित कपोलोंको देख कर ही चित्त प्रफुल्लित हो जाता है, हंसी आनेके समय जो चेहरेकी ललाई उसकी अपूर्व शोभा बढ़ाती है, चंपाके समान सर्वाङ्गमें जो अन्तर्विलीन लालिमा दिखलायी देती है, वही ब्रह्मचर्य्यकी सच्ची ज्योति है। इसी ज्योतिका प्रकाश जिसके सर्वाङ्गमें है वही व्यक्ति यथार्थ सुन्दर है। फिर सुन्दरता—यथार्थ सुन्दरता—के आगे बनावटी सुन्दरताकी क्या ज़रूरत? भारतवर्षमें सच्ची सुन्दरता है और उसीका सम्मान है, यही कारण है कि भारतीयोंका सादा वेश है और भूषण उनको विद्या है। पर हां, जबसे पाश्चात्य सभ्यताने अपने कदम भारतमें बढ़ाये हैं तबसे इस ज्योतिका पता विरले व्यक्तियोंमें लगता है।

इस स्थानपर गुरुकुलकी शिक्षा पाकर गृहस्थाश्रममें प्रवेश करनेकी इच्छासे बाहर आये हुए ब्रह्मचारीकी मनोमुग्धकारी बातें

उपयुक्त होंगी इसमें सन्देह नहीं। ज्योंही एक ब्रह्मचारी बिलकुल साधारण वेशसे देशकी दुर्दशापर आंसू बहाता जा रहा है कि एक अशिक्षित रमणी उसके मार्गमें खड़ी हो कुशल-प्रश्न करती हुई कहती है—"अहा! आपके समान मनोहररूप मैंने आजतक नहीं देखा; मैं मुग्ध हो रही हूं,क्या मुझे अङ्गीकार करेंगे?" देश दुर्दशापर विचार करते हुए उस व्यक्तिने उस रमणीकी बातें न सुनकर पूछा—"क्या है? आप क्या कह रही हैं?" रमणीने पुनः कहा—"अपने समान पुत्र प्रदान कीजिये।" अब ब्रह्मचारीकी समझमें बात आ गयी और वह झट बोला—"ठीक मेरी समताका पुत्र होना असम्भव है। कुछ न कुछ फर्क अवश्य ही आ जायगा, इसलिये तू मेरी माता है और मैं तेरा पुत्र हूं।" इन बातोंको सुनकर रमणी लज्जित हुई और ब्रह्मचारी अपने काममें लगा।

जिस भारतने ब्रह्मचर्य्यकी सच्ची ज्योतिको सौन्दर्य्य समझा वह आज पाश्चात्योंकी विलासितामें इतना डूब गया है कि अपनी सत्तातक खोनेपर तैयार है। जिस भारतमें शकुन्तलासी प्राकृतिक सौन्दर्य्यशालिनी मुनिकन्याओंने गान्धर्व विवाह कर राजाओंसे पुत्र उत्पन्न किये और उन्हें अपने वशमें रक्खा वहां नकली सुन्दरताकी बोलबाला रहे इससे बढ़कर लज्जाकी बात भारतीयोंके लिये और दूसरी क्या होगी! पर पाश्चात्योंकी रमणियोंके कपोल जो बनावटी सुन्दरतासे रंजित रहते हैं यहांकी प्राकृतिक सुन्दरताका मुकाबिला नहीं कर सकते।

भारतीयोंकी यथार्थता विलासितामें नहीं बल्कि सादगीमें

पायी जायगी। यों तो जितने प्रकारके कपड़े और गहने भारतीयोंने पहने और पहनते हैं शायद ही पाश्चात्य संसार उसकी समता करे। हां, जितना विलासितामें गर्क रहनेके कारण पाश्चात्य संसार अपनेको वेशभूषाके साधनोंसे संवारा करता है और इसी कारण अपनेको स्वर्गीय समझता है उतना भारतीय नहीं। मकानोंको जालीके पर्देसे सजाना, केशोंको ऐलबर्ट फैशनपर संवारना, साहब और मेमोंके समान कपड़े पहनना और वैसी सजधज जो आज दिन भारतमें दृष्टिगोचर हो रही है पाश्चात्य सभ्यताका प्रभाव है। हां, जब कभी सजनेका मौका आ जाता है उस वक्त भारतीयोंका सजना पाश्चात्योंसे कहीं बढ़ जाता है। पाश्चात्य संसार रात-दिनकी सजावटमें चूर रहनेके कारण एकदम विलासप्रिय हो गया है और अब भारतको अपना अनुयायी बना रहा है; नहीं तो रोजकी सादगी और वक्तपरकी सजावट यही यहांका सिद्धांत है।

बल।

भारतका बल ब्रह्मचर्य था जो इस समय पाश्चात्य सभ्यतामें पड़कर नष्टप्राय हो गया है; अन्यथा भारतमें बलकी कमी नहीं। इस हीन दशामें भी यदि किसी भारतीय बालकके साथ पाश्चात्य बालककी कुश्ती देखिये तो जान पड़ेगा कि कौन अधिक बलवान है। भारतीय युवक पाश्चात्य युवककी छातीपर दिखलायी पड़ेगा। भारतीयोंकेसे दाव पेच उन्हें

मालूम नहीं, फिर वे शारीरिक बलमें इनकी समता कहांसे कर सकेंगे ?

विलासी लोगोंके शरीरमें बल हो भी नहीं सकता। बल तो वीर्य्य है; जहां वीर्य्यका संचय नहीं, जहां हमेशा पुरुष स्त्रियों-की संगति किया करते हैं वहां व्यभिचार-दोष उत्पन्न होकर वीर्य्यको विनष्ट कर देता है। यह प्रथा पाश्चात्य संसारमें अधिकतर पायी जाती है। यही कारण है कि वहां शारीरिक बलके अभावमें वैज्ञानिक बलसे विशेष काम लिया जाता है।

गत जर्मन महासमरमें भारतीय तलवार लेकर जो सैनिकोंमें प्रवेश करते थे उसकी प्रशंसा अंग्रेजोंतकने मुक्तकण्ठसे की है। जैसे किसान खेतमें अन्न काटकर ढेर लगाता है वैसे ही सैनिकों-को काटकर वे ढेर लगाते थे। इसका प्रभाव ऐसा पड़ा कि उक्त युद्धमें पाश्चात्य संसार भारतीयोंसे कहीं अधिक डरने लगा।

कला-कौशल।

इस समय पाश्चात्य संसारको अपने कला-कौशलपर जितना गर्व है उससे कहीं अधिक गर्व विदेशियोंके आगमनके पहले भारतीयोंको अपने कला-कौशलका था। भारतीयोंका कला-कौशल उस समय इतना बढ़ा चढ़ा था कि विदेशी लोग इनकी बुद्धिपर चकित रहते थे। पर यह कहावत सच है कि पुरानी बातोंसे नये जमानेमें काम नहीं चलता। किसीके पिता, पितामह यदि सम्पन्न थे और सन्तानको यदि खानेको लाले पड़ें तो वह पूर्वकी

अवस्थासे धनिक नहीं कहा जा सकता। भारतीयोंके हाथमें जो कुछ कला-कौशल है वह प्रोत्साहनके अभावसे बिलकुल दबा पड़ा है। जबतक देशवासी प्रोत्साहनके ख्यालसे देशकी बनी वस्तु न खरीदें तबतक बनानेवाले हमेशा चीजें किस तरह तैयार करें और क्योंकर तैयार करें? निरर्थक समय खोना—उसमें भी पैसा लगाकर—किसे अच्छा लगेगा!

पाश्चात्य संसार इस समय कला-कौशलमें नाम मारे हुए है। उसकी तिजारत इस कारण संसारमें कहीं बढ़ी चढ़ी है। उसने पैसे कमाकर अपना वैज्ञानिक बल इतना बढ़ाया है कि जिससे कला-कौशल बहुत परिवर्धित हुआ है और उक्त संसारकी सामरिक शक्ति खूब सुसमृद्ध और सुसम्पन्न है। क्यों न हो, यह उक्त संसारकी एकतापर निर्भर करती है; एकमात्र एकता कला-कौशलके प्रोत्साहनमें, प्रोत्साहन गहरी तिजारत—संसारव्यापी तिजारत—में, तिजारत धनार्जन—प्रचुर धनार्जन—में, एवं धन शक्ति-संचयमें परिणत हुआ है। तभी तो वह आज विश्वसाम्राज्यपर अधिकार जमानेका दम भरता है। केवल जापानके सिवा इस संसारका मुकाबला करनेवाला दूसरा नहीं है; क्योंकि उसने भी तिजारतमें बड़ा नफा उठाया है। जबतक बराबरवाला न मिले तबतक युद्धमें अधिक आनन्द नहीं आता। जबसे रशियाको जापानने शिकस्त दी है और पहलेका पोर्टआर्थर पिछलेने दखल किया है तबसे बड़े बड़े राष्ट्र उसका दबदबा मानने लगे हैं। यह दबदबा इतना बढ़ा चढ़ा है कि पाश्चात्य

संसार यद्यपि कई राष्ट्रोंका है पर उस अकेलेको दबानेकी हिम्मत नहीं रखता।

विद्वत्ता।

विद्वत्ताके खयालसे भारतवर्ष भूतलपर सर्वश्रेष्ठ गिना जाता था। यहांकी विद्याकी शोहरत भूतलके किस खण्डमें नहीं पहुंची थी! वह सर्वत्र छायी हुई थी; तभी तो देश देशान्तरसे सानन्द लोग यहां आते थे और नाना प्रकारकी विद्याओंको सीखकर अपनी विद्वत्ताका परिचय देते थे। पर उस ज़मानेसे इस जमानेकी हालत एकदम बदली हुई है। जिस देशमें षड्दर्शनोंने जन्म पाया, जहांका संस्कृत व्याकरण और उसके टीका-ग्रन्थ अद्वितीय हुए, जहांका चिकित्सा-शास्त्र सर्वाङ्ग परिपूर्ण हुआ, जहांका न्याय संसारमें लासानी कहलाया, जहां ज्ञान-विज्ञानका खजाना वेद साक्षात् वर्तमान है, वह देश—वह भारतवर्ष आज गुलामीकी जंजीरमें जकड़े जानेके कारण अधोगतिको प्राप्त हो रहा है!!

उस प्राचीन विद्वत्ताका परिचय देनेवाले आज भी कुछ इने गिने विद्वान भारतवर्षमें हैं, पर आज दिन इन विद्वानोंकी कुछ-भी नहीं चलती। पाश्चात्य सभ्यताने बलपूर्वक ऐसा रंग जमाया है कि लोग उसी रंगमें रंग गये हैं, और इसलिये वे अपनी विद्वत्ताको तिलाञ्जलि दे बैठे हैं। जब अपनी विद्वत्ता ही नहीं तब अपनी सभ्यता कहां? और जब अपनी सभ्यतापर तरह

तरहके आक्रमण विदेशियोंके होते हैं, तब तो सत्ता भी खतरे—विकट खतरेमें पड़ी हुई है।

तर्क।

बुद्धिपर शान देनेके लिये तर्कशास्त्रकी रचना हुई है। बगैर तर्कशास्त्रके मननके युक्तियुक्त बहस कोई कर नहीं सकता, न किसीका व्याख्यान ही उत्तम और सर्वाङ्ग परिपूर्ण हो सकता है। भारतवर्षकी प्राचीन भाषा संस्कृतमें जो तर्कशास्त्र महर्षि गौतम और कणाद मुनिका रचा हुआ वर्त्तमान है वह भूतलपर बेजोड़ है और यही कारण है कि भारतीय पण्डित और देशोंके पण्डितोंको तर्कमें दबा देते हैं।

प्राचीन समयके इस बातकी पुष्टिमें अगणित उदाहरण दिए जा सकते हैं, पर उन्हें लोग 'स्वप्नकी सम्पत्ति' कह डालनेमें जरा न हिचकेंगे। इसलिये आधुनिक समयका उदाहरण लोगोंके दिमागमें धसेगा और उनपर कारगर होगा इसमें सन्देह नहीं।

लोकमान्य बालगङ्गाधरतिलक, जिनकी मृत्युसे इस दीन भारतको राजनीतिक क्षेत्रमें बेतरह धक्का लगा है, कई पुस्तकें रच गये हैं जो उनके प्रगाढ़ पाण्डित्य और सच्चे तर्कका परिचय दे रही हैं। उनकी बनायी पुस्तकोंमेंसे एक पुस्तकमें इस बातपर विचार किया गया है कि आर्य्यलोगोंका आगमन कहांसे हुआ। इसी विषयपर बड़े बड़े पाश्चात्य विद्वानोंने भी निबन्ध लिखकर अपने अपने विचार प्रकट किये, पर जिस समय लोकमान्यका

निबन्ध पढ़ा गया उस समय उन सबोंके निबन्ध फीके पड़ गये। आर्य्योंका आना किसीने कहींसे बताया, किसीने कहींसे, किन्तु लोकमान्यने उत्तरीय ध्रुवसे आर्य्योंका आगमन सिद्ध किया। इस बातकी पुष्टिमें उन्होंने वेदमें की गयी सूर्य्य, वायु और अग्नि-देवताकी स्तुतियोंको पेश किया एवं आर्य्योंके सभी शुभकार्य्य उत्तराभिमुख होकर सम्पन्न किये जाते हैं इसे भी दिखलाया। इन प्रौढ़ प्रमाणोंके सम्मुख जो तर्कके अटल सिद्धान्तोंसे जकड़े हुए थे, पाश्चात्य विद्वानोंने लोकमान्यके निबन्धको मस्तक झुकाकर सत्य माना और अपनी पराजयपर दांतों उंगली काटते रह गये। लोकमान्यका तर्क बनावटी नहीं था, वह सत्यतासे परिपूर्ण था। जिस समय सूर्य्य दक्षिणायन हो जाता था और कार्त्तिकका महीना उपस्थित होता था, उस समय सूर्य्यका दर्शन होना ही दुर्लभ हो जाता था और शीतके मारे जो कष्ट उन्हें सहने पड़ते थे वे वर्णनातीत थे। बरफका बेतरह जमना वहांका एक प्राकृतिक एवं स्वाभाविक दृश्य था, ऐसी दशामें ही—इस कष्टकी दशामें ही आर्य्योंने शीत—घोर शीत—दूर करनेके लिये सूर्य्य, वायु, और अग्नि-देवताकी स्तुतियां कीं; क्योंकि ये ही तीनों देवता शीतके नाशक हैं। सूर्य्य बरफको गलाता है और वायु शोषण करती है, एवं अग्निके संयोगसे शीतका कष्ट दूर भागता है। आर्य्योंके शुभ कार्य्य जो उत्तराभिमुख होकर होते हैं सो उनके प्राचीन गृहवाली दिशाके प्रेम—अलौकिक प्रेम—के परिचायक हैं।

प्रसिद्ध देशभक्त महात्मा गोपाल कृष्ण गोखलेको तर्कमें कोई शिकस्त न दे सका, इसे सभी पाश्चात्य लोग मानते हैं। वे जिस समय बहस करने खड़े होते थे उस समय उनके श्रीमुखसे जो वाग्धारा तार्किक सिद्धान्तोंसे प्लावित हो निकलती थी क्या उसे किसी पाश्चात्यके तर्क-बन्धन रोक सकते थे? कदापि नहीं! सब लोग उनके तर्कके सामने मस्तक झुकाते थे और उनकी बातोंका हृदयसे सम्मान करते थे। वे एक एक दिन चार–पांच व्याख्यान देते थे और श्रोतृ-मण्डलीको बिना सन्तुष्ट किये नहीं रहते थे।

जस्टिस महादेव गोविन्द रानाडेका नाम प्रौढ़ तर्कके लिये प्रसिद्ध है। इनकी तर्क-प्रणाली इतनी उदार और तथ्यसे पूर्ण थी कि विपक्षी लोग भी इनकी मुक्तकंठसे प्रशंसा किये बिना नहीं रहते थे। जो बहस करनेके लिये अदालतमें इनके समक्ष उपस्थित होते थे उन्हें ये उनकी ही बातोंसे कायल करते थे। जो मनुष्य किसी प्रकारके दोषका शिकार रहता उसे तर्कके साथ ऐसी ऐसी शिक्षायें देते थे कि वह यह नहीं जानता था कि मेरे दोष इन्हें विदित हो गये, और वह स्वयं उन्हें परित्याग करता था। इसीका नाम समीचीन तर्क है।

काशीनिवासी सरयू पारीण ब्राह्मण महामहोपाध्याय पंडित शिवकुमार शास्त्री जैसी जैसी अनूठी तार्किक युक्तियोंका प्रयोग करते थे वैसी वैसी शायद पाश्चात्य संसारमें है ही नहीं। पाश्चात्य लोग तर्क करनेमें अपना तर्कशास्त्र (Logic) उपस्थित करते हैं जो केवल वाक्यमात्रकी जांच करता है कि अमुक वाक्य

दूषित तो नहीं है। जो काम काव्य-प्रकाश, साहित्य-दर्पण प्रभृति ग्रन्थोंके दोष बतलानेवाले अंश करते हैं वही काम पाश्चात्योंका तर्कशास्त्र (Logic) करता है। यदि पाश्चात्योंका तर्कशास्त्र किसी अंशमें भी संस्कृतके प्रसिद्ध विद्वान उक्त शास्त्रीजीके तर्कका अनुसरण करता तोभी वह भारतीय दृष्टिमें श्रद्धाका पात्र बन जाता। पाश्चात्योंके खण्डन-मण्डन-सम्बन्धी तर्कका तो कहीं पता ही नहीं लगता; न कभी किसीने कोई पाश्चात्य तर्क ही उपस्थित किया, न इनके कभी खण्डन-मण्डनात्मक शास्त्रार्थ ही देखनेमें आये। पाश्चात्य विद्वान मैक्समूलरने भारतीय पण्डितोंकी सहायतासे वेदोंका अनुवाद जिनके अंदर वैज्ञानिक बातें भरी हुई हैं, भले ही किया हो, पर व्याकरण और तर्कशास्त्रोंका अनुवाद आजतक किसी पाश्चात्यने नहीं किया।

महामहोपाध्याय पण्डित हरिहर कृपालु न्यायाचार्य्य जो इस समय पटनेमें बाबू रामनिरञ्जनरायकी पाठशालामें अध्यापनका कार्य्य सौ रुपये मात्र वेतन लेकर करते हैं ऐसा तर्क उपस्थित करते हैं कि वादी आगे बढ़ नहीं सकता; बढ़े भी वह कैसे? उसे समीचीन एवं प्रौढ़ तर्कसे वे ऐसा जकड़ते हैं कि वह किसी तरफ जरा भी हिल नहीं सकता। आप भी सरयूपारीण ब्राह्मण हैं और रात-दिन पठन-पाठनका कार्य्य किया करते हैं। आपका समय सर्वदा तार्किक विषयोंके मननमें ही व्यतीत होता है। आपका तर्क उक्त महामहोपाध्याय शिवकुमार शास्त्रीके समान होता है।

साहित्याचार्य पण्डित रामावतार शर्मा एम०ए०का तर्क भी बड़ा ही प्रौढ़ होता है। आप भी सरयूपारीण ब्राह्मण हैं और पटना कालेजमें प्रोफेसरके पदपर अध्यापनका कार्य्य करते हैं। आपका तर्क लोगोंको ऐसा जकड़ता है कि वे उचित मार्गपर फौरन चले आते हैं। आपका तार्किक विद्याभ्यास इतना बढ़ा-बढ़ा है कि पण्डित-मण्डली उसके सामने मस्तक झुकाती है।

भारतीय तर्कके नाते कुछ अर्वाचीन विद्वानोंका नाम उल्लिखित किया गया है जिसे दिग्दर्शन मात्र ही समझना चाहिये। यह मानी हुई बात है कि पाश्चात्य तर्कशास्त्र (Logic) वाक्यमें शाब्दिक और आर्थिक दोषके सिवा और कुछ तथ्य नहीं दिखाता। हाथ कंगनको आरसी क्या? आप वाचक वृन्द, Deduction और Induction Logic देख सकते हैं एवं मेरे लेखकी पुष्टि उसमें पा सकते हैं।

समाज।

भारतीय समाज प्राचीन समयमें ऐसा सुसंगठित था कि कर्मके अनुसार भारतीयोंकी जाति मानी गयी या यों कहिये, कि गुण तथा कर्मने भारतमें प्रधान स्थान पाया था। इसीको लेकर भारतीय समाज चलता था, इसीने मुख्यतया ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रकी उत्पत्ति की और पहले तीन जन्म और संस्कारके कारण द्विज कहलाये। ये द्विज आपसमें वंशका परिचय देते हुए सहभोज्यता सम्पन्न करते थे तथा इनमेंसे पहले दो आपसमें

वैवाहिक सम्बंध भी करते थे। केवल कृषि-कार्य्य करनेसे नाममात्रकी वैश्य संज्ञा थी, पर उत्पीड़नसे देशके बचानेमें सभी भाग लेते थे, इसलिये यथार्थ क्षत्रियोंकी संख्या कहीं अधिक थी। कला-कौशलमात्रसे जो अपनी जीविका चलाते थे वे शूद्र संज्ञा पा गये; पर ये पात्रवहिष्कृत नहीं थे। हां, जिन्हें कुत्तोंका मांस खाना एवं विड्वराहोंका रखना प्रिय था, या जो निहायत गन्दे रहते थे वे अन्त्यज इसलिये हुए कि उनमें न गुणोंका समादर ही था और न वे उत्तम कर्म्म ही किया करते थे। यही कारण था कि वे अस्पृश्य हो गये और अपने उद्धारकी चेष्टातक उन लोगोंने नहीं की।

कला-कौशलसे जीविका निर्वाह करनेवाले शूद्र इसलिये कहलाये कि भारत ऐसे सम्पन्न देशको कला-कौशलोंकी बहुत कम जरूरत थी। यह भारत अमूल्य रत्न, सुवर्ण, रजत और विविध धातुओंकी इतनी पर्वताकार राशियोंका जन्मदाता था कि इन सम्पत्तियोंके सामने दूसरी वस्तु—कला-कौशल द्वारा बनायी हुई वस्तु—का अधिक समादर न होना बिलकुल प्राकृतिक है। इसपर भी योगविद्यामें पारदर्शिता प्राप्त किये हुए ब्राह्मणोंने जिन मानसी सिद्धियोंका प्रदर्शन कराया उनका मूलकारण तपोबल था और वे इसी तपोबलकी वृद्धि बराबर किया करते थे। इसके द्वारा कोई भी कार्य्य असाध्य नहीं था, सारी बातें सम्पन्न होती थीं। आज दिन पाश्चात्य संसार जिन बातोंपर घमण्डमें चूर रहता है वे सब बातें कहते सम्पन्न होती थीं, क्योंकि योगसि-

द्वियोंका ऐसा ही प्रभाव है। इन बातोंमें मिथ्याका लेशतक नहीं है। इन बातोंकी खूब जांच की जा सकती है।

अर्वाचीन समयमें समाज एक ऐसे दूषणसे सन्नद्ध है जिसका अंकुर भारतीय सामाजिक जीवनमें महाभारतके समयमें वृद्धिको प्राप्त हुआ। यही बढ़ते बढ़ते पृथ्वीराज व जयचन्द्रके बीचमें एक विशाल वृक्ष बन गया। यह दूषण था फूट, आपसकी घृणा, द्वेष, वैर जिसके कारण सामाजिक जीवन पलट गया और वह बुरी तरह बदल गया, जिसका परिणाम आज दिन अधोगति है—भारतका दीन-हीन दशामें गिर जाना है। ऐसा होनेपर भी विदेशियों—म्लेच्छों—के घोर लुण्ठनपूर्ण आक्रमण करनेपर भी, अर्वाचीन भारतीय समाजमें प्राचीन सामाजिक कृत्योंकी छायामात्र दीख पड़ती है। आज दिन इस अधोगतिकी अवस्थामें भी दम्पतिका विशुद्ध प्रेम, सन्तानोंकी गुरुजनोंके प्रति आज्ञाकारिता, अपने धर्ममें कट्टर विश्वास, बड़े लोगोंका पूर्ण समादर जो भारतमें दिखायी देता है वह शायद ही कहीं हो।

पाश्चात्य संसार दम्पतिके विशुद्ध प्रेमसे परिचित नहीं, बड़े होनेपर सन्तानोंकी आज्ञाकारिता नाममात्रकी रह जाती है; उनका क्या धर्म है, उसके सिद्धान्त पुष्ट तर्ककी भित्तिपर अवस्थित हैं कि नहीं इसकी बाबत उक्त संसार कोरा है। अगर कोई बड़ा गुण उक्त संसारमें है तो यही कि उसकी जातियोंमें सहानुभूतिकी मात्रा कहीं अधिक है, अपनी जरूरतको वे खूब

समझती हैं और उसे जैसे हो, पूर्ण किये बिना नहीं रहतीं। शत्रु का सामना करनेके लिये सर्वोत्कृष्ट भौतिक बल उन्होंने स्वयं सम्पन्न किया है, यद्यपि मुख्य षड्वर्ग—छः शत्रुओं—से वे सदैव पराजित रहा करती हैं। इसकी ओर उनका तनिक भी ध्यान नहीं है न हो ही सकता है, क्योंकि परमार्थ उनके धर्ममें है ही नहीं न पुनर्जन्म ही वे मानते हैं, यद्यपि उनके गुरु ईसा मारे जानेपर कब्रके अन्दरसे कुछ दिनों बाद निकल आये थे और उपदेश दिया था; क्योंकि मरनेके अनन्तर जीव धारण करना ही पुनर्जन्म है।

कला-कौशलोंकी परिचायक वस्तुओंमें दग़ा भरा पड़ा है। यही उक्त संसारकी ख़ूबी है! किसी चीज़के तोड़ने या टूटनेपर उसकी लागत एक धेलेकी भी नहीं जान पड़ती, यह कैसी सचाई है! ऊन कह कर सनकी चीज़ें बनाना-बेचना; कुछ कह कर कुछ देना यह उक्त संसारको ही शोभा देता है! सत्यका लेश नहीं, मिथ्याका प्रचार-इससे बढ़कर धर्मका भी निरादर—सिवा उक्त संसारके दूसरा कदापि नहीं करता। दोमें मतभेद पैदाकर स्वयं शासन-सूत्र हाथमें लेना यह सत्यताका परिचायक नहीं; इसे लोग—सभ्य लोग—कुकर्म कहा करते हैं। भले बुरेका विचार न कर स्वार्थकी पूर्ति करना महापाप है; सभ्य लोग-सभ्यताके अभिमानी इसे घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं।

प्रथा।

भारतवर्षकी जितनी प्रथायें हैं वे सब धार्मिक भित्तिपर

अवस्थित हैं। एक भी प्रथा भारतवर्षकी ऐसी नहीं जो घृणित समझी जाय, न कोई चाल ही ऐसी है जिसको कोई भी सभ्यताभिमानी दूषित बतला सके।

खान-पानके सम्बन्धमें भारतवर्षने जिस प्रथाका अवलम्बन किया है वह भी समीचीन है। छुआछूतका विचार करनेकी जो प्रथा है उसका तात्पर्य्य सात्विकतासे है। जल और अग्नि द्वारा जो मुख्य शुद्धि भारतीय मानते हैं सो यथार्थमें शुद्धिके दो ही द्वार हैं। सब प्रकारकी शुद्धियोंमें भारतीय मनकी शुद्धि मुख्य मानते हैं। जहां मनकी शुद्धि है वहां कार्य्यकी शुद्धि अवश्य है; क्योंकि विचार—भले हों अथवा बुरे—पहले पहल मनमें ही उठते हैं पश्चात् कार्य्यरूपमें परिणत होते हैं।

पाश्चात्य संसार दो बातोंको निषिद्ध बतलाता है—(१) सती-प्रथा और (२) विधवाओंका पुनर्विवाह न होना। वाचकवृन्द! सती-प्रथाकी नींव लोगोंकी जबर्दस्तीपर निर्भर न थी, बल्कि स्त्रियोंके सतीत्वपर उसने अपनेको अवलम्बित किया था। इस बातकी पुष्टिमें एक नहीं अनेक उदाहरण वर्त्तमान हैं। हां, जिसका पुत्र वीर होता था वह पतिके साथ जलती न थी, अन्यथा पतिके वियोगमें मरना ही वह पसन्द करती थी और खुशी खुशी जलती थी। Bengal Peasant Life नामक पुस्तकमें जो पादड़ी लाल विहारी देने बंगालकी एक रमणीका पहले खुशीसे सती होनेकी इच्छासे चितापर पतिसे मिलकर सोना और पीछे भागनेकी इच्छा प्रकट करना और लोगों द्वारा

जबर्दस्ती उसका जलाया जाना लिखा है वह आधुनिक विदेशी सभ्यताका प्रभाव था जिसमें सतीत्वकी रक्षाका नामोनिशान तक नहीं है। हां, आधुनिक समयमें भी विदेशियोंके अत्याचार न सहनेकी ही इच्छासे पद्मिनी आदि सैकड़ों स्त्रियां जल गयी हैं पर शाही मुखोंपर लात ही मारी है। और सतीत्वहीके कारण पुनर्विवाह भी उनने नहीं किये कि पातिव्रत्यमें धक्का न लगे। यद्यपि मनुने पुनर्भू संस्कारका जिक्र किया है पर वह अनिवार्य्य नहीं है, यदि ब्रह्मचर्य्यका पालन करती हुई कोई रमणी अपने प्राणेश्वरके मृत्यु-वियोगमें अपनी जिंदगी बिता दे, तो उसकी मनुजी प्रशंसा करते हैं। हां, व्यभिचारकी हर हालतमें निंदा है। इसको ओर यदि किसीका ध्यान नहीं है तो पाश्चात्य संसारका। उसने व्यभिचारको, स्वेच्छाचारिताको स्वाधीनताका परिचायक समझा है।

बाल-विवाहकी बाबत जो दोषारोपण है वह भी विदेशियोंके आक्रमण और अत्याचारके फलस्वरूप है। जवान लड़कीको घरमें रखनेसे विदेशी घरके मालिककी आबरू लेनेपर तुल जाते थे, बस, यही कारण हुआ कि लड़कपनमें शादी हो जाती और लड़कियां अपनी ससुरालमें रहा करती थीं। हां, इन दिनों बालविवाहकी प्रथा उठीसी है, तथापि जहां मनुष्योंकी तैंतीस करोड़की संख्या है वहां कोई भी काम जबतक खूब जोर-शोरसे न चल पड़े, तबतक सफलताका पूरा दबदबा नहीं कहा जा सकता।

गुण-दोष

जहां गुणोंने स्थान पाया है वहां दोषोंने भी अपना अधिकार

करनेमें बाकी न छोड़ा। इस सिद्धांतकी पुष्टिमें चन्द्रदेवका उदाहरण बड़ा ही उपयुक्त है। चन्द्रदेव सारे संसारको आह्लादित करते हैं, प्रकाशित करते हैं, अन्धकारका निवारण करते हैं, लोकप्रियता उनकी अत्यन्त प्रशंसनीय है इसमें संदेह नहीं; परंतु उनके मध्यमें जो कालिमा, कलंककी छाया दिखलायी देती है वह उनकी कीर्त्तिमें धब्बा लगाती है। कैसे २ कांतिमान् रत्न भूगर्भसे उत्पन्न होते हैं, पर उनमें भी दागका आ जाना उनके मूल्यके लिए हानिकर समझा जाता है। कवि कविता—उत्तम, अनूठी कविता—करता है; परन्तु किसी भी प्रकारका दूषण यदि उसमें आ गया तो उसका सौन्दर्य्य—मुग्धकारी सौन्दर्य्य—लुप्त प्राय हो जाता है। इसी कारण यह सिद्धान्त निर्णीत है कि-

'जड़ चेतन गुण-दोष-मय, सकल कीन्ह करतार।
सन्त-हंस गुण गहहिं पय, परिहरि वारि विकार॥"

ऐसी अवस्थामें गुण दोषोंका विवेचन करना बड़ा कठिन है। परन्तु जो गुण है वह सभीकी दृष्टिमें गुण है और जो दोष है वह भी सबकी दृष्टिमें दोष ही है। यह नहीं हो सकता कि किसीकी दृष्टिमें एक ही बात गुण भी हो और दोष भी, जब-तक कि उसे परिस्थितिने वैसा करनेके लिये बाध्य न किया हो। परिस्थितिके बाध्य करनेपर भी, यदि कोई सहज उपाय निकल आता है, तो उस अवस्थामें फिर 'दूधका दूध और पानीका पानी' वाली कहावत चरितार्थ होती है एवं गुण-दोषकी विवेचना प्रत्यक्ष हो जाती है।

पाश्चात्य संसार भारतीयोंको जंगली समझता है और ये उस संसारको। वह इन्हें कलाकौशलोंसे अनभिज्ञ, अशिक्षित कहनेका दम भरता है और ये उसे स्वार्थपरायण आदि आदि उपाधियोंसे विभूषित करते हैं। पर इन कोरे झगड़ोंसे भरे तर्कमें वाचकवृन्द, आप क्या तथ्यातथ्यके निर्णयपर पहुंच सकते हैं ? कदापि नहीं। इसलिये गोस्वामी तुलसीदासके दोहेके अनुसार सारी सृष्टिको गुण-दोष-मय जानकर गुणोंका ग्रहण और दोषों परित्याग करना ही उचित है, यदि परिस्थिति बाध्य न करती हो।

धर्म्म।

धर्म्मका अर्थ यदि कर्त्तव्य समझा जाय तो संसारका बड़ा उपकार हो। इस शब्दका अर्थ जबसे मतमतान्तर अथवा सम्प्रदाय समझा जाने लगा है तबसे संसारमें गुणोंकी संख्या बहुत कम पायी जाती है और दोषोंकी संख्या इतनी बढ़ रही है कि जहां देखिये वहां दोष ही दोष नजर आते हैं। धर्म्मको सम्प्रदाय मानकर कर्त्तव्यका जो गला घोंटा जा रहा है और संसारमें जो द्वेषकी, घृणाकी अग्नि भड़कायी जा रही है उसका फल संसारके लोगोंको रो रोकर भोगना पड़ रहा है और आगे आगे पड़ेगा। हां, यदि कर्त्तव्य उसे मान लें और मुक्तकण्ठसे अपना कर्त्तव्य समझ दें तो सम्प्रदाय मानकर जो हानि होनी सम्भव है वह निवारण की जा सकती है।

विदेशियोंने जो धर्मके नामपर आत्याचार किये हैं और कर रहे हैं वे क्या सभ्य संसार—हमदर्द संसार—से कहीं भी छिपे हैं? कदापि नहीं। उक्त संसार विदेशियोंके अत्याचारके ऊपर घृणासे थूकता है और यह कहता है कि परमात्मा तुम्हारा नाम भूतलपरसे उठा दे। क्या यह शाप मिथ्या हो सकता है? कदापि नहीं। सबके हृदयमें परमात्माका वास है, क्योंकि वह सर्वव्यापी और विश्वात्मा है, उसकी सृष्टिमें जो उत्पन्न हुए हैं सब आपसमें उसी एक परमपिताके पुत्र हैं; ऐसी अवस्थामें अपना अपना कारण प्रत्यक्षकर सब कर्त्तव्य निर्धारित करें, बहुत सम्भव है कि परिस्थिति उन्हें कारणवश कुकर्म करनेके लिये दबाती हो, पर समुदायके लोगोंमेंसे बहुतोंकी बुद्धि उन्हें ठीक और महानिकर रास्ता बता सकती है जिससे वे गुमराह नहीं हो सकते और न परमात्माकी सृष्टिको हानि ही पहुंचा सकते हैं।

जो बातें अच्छी हैं वे सब सम्प्रदायोंके लिये अच्छी हैं। ऐसी हालतमें साम्प्रदायिक नियमोंपर जोर देकर भले बुरेका विचार न करना—खासकर मानवजातिके लिये—बड़ी भूल है।

शोकके साथ लिखना पड़ता है कि मुसलमानोंके धर्ममें कुर्बानी करना जो साम्प्रदायिक आज्ञा है वह निर्दयताकी पराकाष्ठा है, और मुहम्मद साहब, जिन्हें उक्त धर्मके अनुयायी रसूलकी उपाधि देते हैं, की यह आज्ञा है न कि उस अल्लाहतालाकी जिसकी रहमत सारी खिलकतपर बरसा करती है। यदि कोई मुसलमान पाप करे, तो कयामतके दिन उसका इन्साफ रसूल

साहब करेंगे और पापके एवजमें उसे दोजखकी आगसे यह कहकर बचा लेंगे कि यह मेरा बन्दा है। वाहरे धर्म! इसी प्रकार ईसाई धर्ममें भी यह बात मानी हुई है कि हजरत ईसाने ईसाइयोंके पापको लेकर क्रूसपर कीलोंसे जड़े जाकर जो आत्मविसर्जन किया है वह उनके गुनाहोंका नाशक सिद्ध हुआ है। इसीलिये ईसाई संसार पापकी परवा नहीं करता न उससे घृणा ही करता है।

भारतवर्षके लोगोंका धर्म्म पुकार पुकार कर कहता है कि पापका फल अवश्य भोगना पड़ेगा। जो कुछ भला बुरा कर्म किया जाता है उसका फल भोगना अनिवार्य है, वह रुक नहीं सकता। यहां भी शास्त्रतः तो नहीं पर तान्त्रिक साहित्यके अनुसार कापालिक सम्प्रदाय नरबलि देता था और नर-मांससे हवन-सम्पन्न करता था। पशुबलि तो शक्तिके उपासक आजदिन भी देते हैं; पर 'अजापुत्र बलिर्दद्यः देवोदुर्बल घातकः' वाली कहावत चरितार्थ हो रही है।

मैं धर्म्मके नामपर घोर अत्याचारका एकदम विरोध करता हूं—चाहे वह विदेशियों, विधर्म्मियों द्वारा हो अथवा भारतीयोंके द्वारा। प्यारे वाचकवृन्द, किसी जीवको मारकर अपने पेटमें रख लेना, या घोड़े, बैल तथा बकरेका वध कर अपना कार्य साधन करना न्यायकर्ताकी सृष्टिके साथ घोर अत्याचार है। चीन देशके रहनेवाले तो किसी भी जीवको अपना खाद्य बना लेते हैं। उनके समान जीवहिंसा शायद ही कोई असभ्य भी करता हो।

इस जमानेमें हिंसासे बढ़कर भारतमें दूसरा पाप नहीं गिना जाता। इसीलिये महात्मा गांधी अहिंसाव्रतके व्रती होकर इसका पूर्णरूपसे प्रचार कर रहे हैं। वे चाहते हैं कि बुद्धदेवके समयमें जिस प्रकार हिंसाका नामोनिशान नहीं था, उसी प्रकार हिंसा भारतसे उठा दी जाय। बात भी ठीक है! जिस देशमें ऋषियोंने जन्मग्रहण किया है उस देशमें हिंसाका नाम रहना ही बुरा है।

रीति-नीति।

भारतवर्षकी एक भी रीति दूषित नहीं कही जा सकती, यदि उसकी परिस्थितिका विचार भलीभांति किया जाय। अर्वाचीन समयमें कुछ सदियां व्यतीत हुई होंगी जब गंगासागर स्थानपर अथवा गंगातटपर, वे स्त्रियां जिनकी कोख न खुलती थी, अपने प्रथमजात शिशुको गंगामें फेंक दिया करती थीं और वे प्रथमजात शिशुके चढ़ानेकी मंता मानती थीं। यह बात भी कानूनन रोक दी गयी और इस कुप्रथाके दूर करनेके लिये राजाको धन्यवादका पात्र समझना चाहिये। इसी प्रकार विदेशियोंके प्रभावसे ऐयाशीकी मात्रा अधिक बढ़नेपर ज्यों २ सतीत्वका बन्धन शिथिल हुआ त्यों २ लोभवश पुरोहितोंने, कुछ स्त्रियोंके पतियोंकी मृत्युपर अपना स्वार्थ सिद्ध करनेके अभिप्रायसे, क्योंकि उनके आभूषण आदि वेही ले लिया करते थे— स्त्रियोंको इच्छा न रहनेपर भी उन्हें पतिके साथ बांधकर जिन्दा जलाना आरम्भ किया था जो कानूनन रोका गया। वे पहले

विधवाओंको सतीधर्मकी शिक्षा देते थे और जब बांध देते थे तब अनाथ स्त्रियां विवश हो जाती थीं। इस कुप्रथाके निवारण-के लिये भी राजा धन्यवादका पात्र है।

भारतवर्ष आभ्यन्तर और बाह्य शुद्धताके लिये परम प्रसिद्ध है। अशुद्धियोंसे पूर्ण रहनेके ही कारण अछूत जातिकी उत्पत्ति हुई है जिसका स्पर्शतक करना पाप समझा गया और इसकी छायातक निवारणीय सिद्ध हुई। इस बातमें घृणाका लेशतक नहीं है, पर विचारोंकी सात्त्विकी शुद्धि अवश्य है जिसके लिये स्पर्श—नहीं नहीं छायातक निवारणीय समझी गयी। पाश्चात्य संसार सब प्रकारकी मलिनताको अपने स्वार्थके लिये अंगीकार करता है। अपने पाकालयमें मेहतर भंगीतकसे पाक सम्बन्ध करनेमें सहायता लेता है।

भारतवर्षकी नीति सर्वदा उदार रही है और इस गिरी अवस्थामें भी उसमें अनुदारताका लेश नहीं है। जिस कार्यमें आंखें उठाकर देखें उसी कार्यमें उदारताका सूत्र जान पड़ेगा। जीवनके प्रत्येक कार्यमें—क्या मित्रता, क्या शत्रुता सभीमें, प्यारे पाठकवृन्द, आप उदारताको पावेंगे। संकीर्ण नीति भारतवर्षकी कहीं भी,कभी भी किसीके साथ नहीं रही, चाहे कोई इसके प्रति कैसे ही भाव रखता हो। उदाहरणके लिये पृथ्वीराज और मुहम्मद गोरीका दृष्टान्त वर्तमान है कि बार बार पहलेने दूसरेको गिर-फ्तारकर उसके साथ राजाकासा व्यवहार किया और उसे मुक्त कर दिया, जिसके लिये दूसरेने कृतघ्नता—घोर कृतघ्नता—की।

पाश्चात्य संसार एवं विदेशियोंकी रीतियोंकी यदि आलोचना की जाय तो ज्ञान पड़ेगा कि भारतवर्षसे भिन्न देशवाले कैसी २ कुरीतियोंको अपने समाज और जीवनमें स्थान दिये हुए हैं। स्त्री-पुरुषका सम्बन्ध उनमें ऐसा है जैसे कोई किसी रखेलीकी संगतिमें रहे और उसके साथ व्यवहार करे। इसपर भी थोड़े २ दिनोंकी जीवनयात्रामें पुरुषोंकी कौन कहे, स्त्रियोंके एक नहीं दस दस विवाह सम्पन्न किये जाते हैं। अब वाचकवृन्द, जरा सोचनेकी बात है कि वारनारियोंसे किस तरह वे गृहस्थकी स्त्रियां कम हो सकती हैं जो विवाहको गुड़ियाका खेल समझती हैं और घोर व्यभिचारको एक स्वाभाविक कार्य्य समझती हैं। रुधिर जिसमें पवित्र रहे ऐसा काम करना उक्त संसारको उचित है; यह नहीं कि थोड़ीसी सम्पत्ति और थोड़ेसे आरामके लिये—सो भी अभिनवताके ख्यालसे—अपनी इज्जत और आबरू खो बैठना। हां, जिस देशने, जिस संसारने धनहीको सर्वोच्च स्थान दिया है, उसकी बुद्धि और विवेचनाकी बात कहां तक चलायी जाय? खान-पान, विहार और ऐशोआराम ही जिस देश, जिस संसारका सर्वोपरि सिद्धांत है, किसी भी प्रकारसे हो, धन एकत्रित करना जिसका मुख्य उद्देश्य है, उसके समक्ष उदारता, प्रतिष्ठा, रुधिरकी शुद्धता, धर्म्म, कर्तव्य, सभ्यता एवं परमात्माको ओर लगन आदि बातोंका जिक्र ही निरर्थक है। खैर, भारतवर्ष इस गिरी हुई अवस्थामें भी अपने प्रातःस्मरणीय महात्मा तुलसीदासजीके इस दोहेसे

पूरी नहीं तो अधूरी ही सही, चौथाई ही सही सहानुभूति रखता है—

'तुलसी सोई चतुरता, रामचरण लवलीन।
परमन, परधन हरणको, वेश्या बड़ी प्रवीन॥'

विदेशियोंकी नीति—कुटिल नीति, संकीर्ण नीतिका तो कहना ही क्या है! इसका नमूना, प्यारे वाचकवर्ग, यदि आप जरासा भी विचारसे काम लेंगे आपको अपने जीवनकी अधिकांश घटनाओंमें मिलेगा। कुछ घटनाएं उदाहरणके रूपमें दी जाती हैं जिनके द्वारा तथ्यातथ्यका निर्णय बिल्कुल सुलभ हो जायगा।

जिस समयसे विदेशियोंका आगमन भारतवर्षमें हुआ उस समयसे जिस निर्दयताके साथ भारतवर्ष लूटा गया उसका अन्त नहीं दिखलायी पड़ा। विदेशियोंने चढ़ाइयांकर सिर्फ भारतकी सम्पत्तिको ही लूटा हो सो नहीं, औरत, मर्द और बचोंतकको लूटा और उन्हें गुलाम बनाकर बेच डाला। उस वक्त अपनी इज्जत-आबरूका बचाना यहांतक मुश्किल हो गया कि भारतवासी स्त्रियां पर्देनशीनी इख्तियार करने लगीं। जब इतनेसे भी काम न चला तब बाल-विवाहकी प्रथा जारी की गयी। यद्यपि यहांतक उपायोंका अवलम्बन किया गया तथापि विदेशियोंने मनचाहा उपहार—कन्याओंकी भेंट—ले ही ली। यदि वे ऐसा करनेसे रोके गये तो गांवका गांव जला देना, सारे शहरको कत्लेआमकी आज्ञा सुना देना,जो जी चाहे कर डालना, तलवार-

के जोरसे विधर्मी बना डालना, नष्ट-भ्रष्ट कर देना एक मामूली बात थी।

आजदिन यद्यपि पाश्चात्य संसार भारतवर्ष पर ही क्या सारे संसारपर कब्जा किये हुए है और कानूनी शासन कर रहा है, तथापि लोग वे बातें भूल गये हैं जिनका उल्लेख—जिन अत्याचारों का उल्लेख—ऊपर किया गया है। हां, उत्पीड़न—कानूनके जरिये घोर उत्पीड़न—की पुकार पूर्वीय संसार मचा रहा है, पर नक्कारखानेमें तूतीकी आवाज कौन सुनता है? भारतवर्षका अस्तित्व मिटे नहीं इसलिये भारतवर्षके सच्चे हितैषी नेता लोग उत्पीड़नके विरुद्ध आवाज उठाने लगे। पर इसका फल यह हुआ कि वे जेलके शिकार हुए और उत्पीड़न दिन-दूना रात-चौगुना बढ़ता गया। तब देशके प्रसिद्ध नेताओंने यह सोचा कि जबतक देशका शासन अपनी इच्छासे नहीं होगा तबतक शासनके दमनसे बचाव नहीं है; बस, इस सिद्धांतको आगे रख लोकमान्य बालगंगाधर तिलक स्वतंत्रता और स्वराज्यके संदेशको देशके प्रत्येक व्यक्ति-तक पहुंचाने लगे जिसका फल यह हुआ कि वे जेलके अतिथि हुए। वहांसे आनेपर भी वे निरन्तर स्वराज्यके उद्योगमें अपना जीवन व्यतीत करने लगे। देश-सेवा उनने बहुत की; पर मृत्यु सभीके लिये अनिवार्य्य है, इसलिये उन्हें भी मृत्युमुखमें विलीन होना पड़ा। जो हो, उक्त लोकमान्यकी मृत्युके समय सारे देशने उनको देश-सेवासे अत्यन्त सन्तुष्ट हो उनकी लोकमान्यताका परिचय दिया और सारे भारतमें इसका शोक मनाया गया जिसे देखकर

शासकमण्डली दहल उठी और उसे यह भलीभांति ज्ञात हो गया कि भारतमें उत्पीड़नके कारण अभूतपूर्व उत्तेजना फैली है।

देखिये, कैसी कुटिल नीति—संकीर्ण नीति—का अवलम्बन पाश्चात्य संसार कर रहा है कि जिसके द्वारा उसे स्वर्गसुख प्राप्त है उसका ही दमन कर रहा है। उनकी मृत्युके पश्चात् महात्मा गांधीने स्वराज्य-प्राप्तिके लिये उद्योग करना शुरू किया और असहयोग-प्रचार कर जेलके अतिथि हुए। ऐसे अहिंसाव्रतके व्रतीको जेल भेजना पाश्चात्य संसारको ही शोभा देता है! उक्त महात्मा जगद्गुरु होनेकी योग्यता रखते हैं और इसको जगत् मान भी रहा है।

उस समय उक्त महात्माजीके छोड़े जानेका प्रस्ताव न हुआ हो सो नहीं, पर उनसे पूछनेपर वे बोले कि यदि सब राजनीतिक कैदी छोड़े जायं तो मुझे भी छोड़ा जाय अन्यथा नहीं; क्योंकि हम लोग एक ही उद्देश्य—एक ही लक्ष्य—के लिये जेल भेजे गये हैं। खैर, न सब लोग छोड़े जाते और न महात्माजी छूटते। प्यारे वाचकवृन्द, देखी आपने पाश्चात्योंकी कुटिल नीति! तात्पर्य्य यह है कि अकेले महात्माजीको छोड़नेके लिये कहेंगे और वे अकेले छूटना कदापि पसन्द न करेंगे; बस, वे न छूटेंगे। यह बात भी कब की जा रही है? उस वक्त जब स्वयं पाश्चात्य संसार इस बातको अनुचित बता रहा है। इसका नाम मुंह छूना है—इसीका नाम घोर कुटिल नीति है। भारतवर्ष ऐसी कुटिल नीति कदापि पसन्द नहीं करता; न उसने कभी भी-

प्राचीन समयसे आजतक—इस कुटिल नीतिका अवलम्बन ही किया। ऐसी नीति पाश्चात्योंके ही बाटे रहे यही अच्छा है। भारतवर्ष जो कुछ करना चाहता है वह साफ तौरपर, दगा करके नहीं।

अनुकरणीय जीवन ।

अनुकरणीय जीवन यथार्थ आदर्श जीवन अथवा प्राकृतिक जीवन है। इसीके द्वारा मानव-जाति सभ्यताके शिखरपर जा सकती है, नहीं नहीं, जो विश्वका सर्वोच्च पद है वह भी उसे वे-चाहे आपसे आप मिल सकता है। जिसने इस जीवनका अव-लम्बन किया वही यथार्थमें अवतार—परमात्माका अवतार—माना जाता है और उसी तरह पूजा और सम्मानका पात्र बन जाता है।

अनुकरणीय जीवन वही है जिसकी शिक्षा प्रकृतिदेवीसे मानव-जातिको मिली है। यह जीवन अनुकरणीय इसलिये है कि ऐसा जीवन व्यतीत करनेवाले मुनियोंकी समतामें आ जाते हैं और वे विश्वके सामने आदर्श जीवन प्रस्तुत करते हैं जिसकी महिमा वर्णनातीत है। अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि कौन कौनसे कार्य्य करनेसे, किस किस सिद्धान्तके कार्य्य रूपमें परिणत करनेसे, कौन कौन गुणोंका अवलम्बन और किन किन दोषोंके त्याग करनेसे, कैसी शिक्षा देनेसे, कैसी विद्या पढ़नेसे तथा कैसे उपदेश, व्याख्यान देनेसे मानव-जाति अनुकरणीय जीवनकी अधिकारिणी बन सकती है।

प्यारे वाचकवृन्द, इसी प्रकारका प्रश्न यदि प्राचीन कालमें

कोई भी व्यक्तिविशेष करता तो वह कर ही नहीं सकता, क्योंकि उसे करनेका अवसर ही नहीं था, क्योंकि जीवन अनुकरणीय थे, किन्तु आजदिन हमारा प्यारा भारतवर्ष इतना गिर गया है, ऐसी अधोगतिको प्राप्त हुआ है कि मुझे अनुकरणीय जीवन बतलानेकी आवश्यकता आ पड़ी है।

जीवनको अनुकरणीय बनानेके लिये आडम्बर तथा विडम्बन-से दूर रहना पड़ता है। सादगीकी मात्रा, स्वाधीनता, उदारता, समवेदना एवं सहानुभूति, उपकार-बुद्धि आदि आदि गुणोंको इस जीवनमें भरमार रहती है। तभी तो किसीका भी जीवन अनु-करणीय बन जाता है।

प्रकृतिदेवीने आडम्बर तथा विडम्बनका प्रदर्शन कभी भी नहीं कराया, तब फिर न जाने क्यों लोग इतने आडम्बरप्रिय हो रहे हैं? हा, इस बातके कई उदाहरण प्रत्येक दिन दृष्टिगोचर होते होंगे, पर आडम्बर एवं विडम्बन जिन्हें निरर्थक एवं हानिकर होता हुआ भी प्यारा है उनके सुधरनेका कोई ढंग नहीं नजर आता, जबतक कि वे स्वयं आडम्बर और विडम्बनकी बुराइयोंको समझ-कर न छोड़ें। एक महाशय पटना एग्जिबिशन् रोडपर एक किरायेके मकानमें रहते थे। उनकी परिस्थिति उन्हें आज्ञा नहीं देती थी कि वे किरायेके मकानमें—उसपर भी अधिक किरायेके मकानमें—रहें। उचित यह था कि वे उसे छोड़ देते, पर किराया चुकताकर छोड़ना लाजिम है इसलिये वे छोड़ न सके, क्योंकि रुपये पास न थे। इस हालतमें न उन्होंने किराया दिया

और न मकान ही छोड़ा—किराया अधिक हुआ। अब दो ही सूरतें थीं—या तो करज करते या अदालतसे उनकी जायदाद कुर्क होती। जो हो, इतने आडम्बरकी कौनसी ज़रूरत थी। महज मामूली मकान रहनेके लिये काफी था।

विडम्बन जीवनका चित्र मैंने शुरूहीमें खींचा है। उस जीवनमें खर्च बहुत होता है—यहांतक कि कर्जके भारसे उक्त जीवन बितानेवाला व्यक्ति चूर रहा करता है। उसे अपने जीवनका तनिक भी आनन्द नहीं आता न वह सुखसे भोजन करता है न सोता है। चिन्ता राक्षसी रातदिन चैन नहीं लेने देती, न उसके मुखपर मधुरिमापूर्ण हंसी ही कभी दिखलायी देती है। हा, ऐसे आडम्बर और विडम्बनका त्यागकर भारतवासी सादगीके नमूने न बने तो ये अपनी सत्तातक खो बैठेंगे। यदि वे सादगी ढूंढ़ना चाहें तो उन्हें प्राचीन सभ्यताकी ओर ज़रा मुड़ना पड़ेगा और तब ये उसे पावेंगे।

प्रकृतिदेवीकी गोदमें जिस प्रकार मधुर मधुर कुसुमावलि खिलती है और बनावटका उसमें नाम नहीं, जैसे विकासोन्मुख अभिनव कलिकाएं बिना किसी प्रकारकी कृत्रिमताके विकसित हो उठती हैं, जैसे अन्यान्य जीव अपने जीवनमें बिना किसी नकली कार्य्यके अपना सौन्दर्य्यमय विकास करते हैं, उसी प्रकार प्यारे भारतीयो! आप भी अपना विकास करें; तब इसमें बनावटकी बातोंका नामोनिशान भी न रह जायगा अन्यथा आप पाश्चात्य सभ्यतामें पड़कर ऐयाशीके शिकार बनेंगे और अपनी

सभ्यतासे इतनी दूर जा पड़ेंगे कि फिर लौटकर यहांतक आना आपके लिये मुश्किल होगा।

प्यारे भारतीयो! आप ऋषि-सन्तान हैं। मैं समझता हूं, आपको ऋषि-सन्तान होनेका गर्व अवश्य है और होना ही चाहिये। तब आप ऋषि-जीवन क्यों नहीं व्यतीत करते हैं? शायद आप समझते होंगे कि पाश्चात्य वेश ऋषियोंके वेशसे सुन्दर जान पड़ता होगा;पर आपको यह कहावत याद रखनी चाहिये कि 'आत्मरुचि भोजन पररुचि शृङ्गार'। शृङ्गार वही है जो दूसरेके देखनेपर अच्छा मालूम हो। आप जो ऐलवर्ट फैशनके बाल कटवाते हैं उसके लिये आपको दो आनेसे लेकर आठ आनेतक देने पड़ते हैं। इतनेपर भी उसकी शोभा कुछ नहीं। चेहरा देखनेपर गुण्डोंकासा या वेश्याओंकासा जान पड़ता है; क्योंकि सभी वही फैशन रखते हैं। मस्तकपर जान पड़ता है कि काली हांडी औंधी पड़ी है। मूंछोंके बिना पुरुषोंका मुख विकसित नहीं जान पड़ता। छोटी, अधकटी या बीचसे मुड़ी मूंछें अथवा बिलकुल ही गायब कैसी बुरी लगती हैं! मुख श्रीविहीन, कान्तिविहीन दीख पड़ता है! ऐयाशीमें लिप्त, विलासितामें गर्क लोगोंको रमणियोंका रात-दिन सहवास ही रुचता है, तिसपर भी वे इनका सान्निध्य इतना चाहते हैं कि उनसे अलग होनेमें उन्हें दुःख होता है, जुदाई सही नहीं जाती, ज़हरे इश्क पिये हुए हैं। वीर्य्य क्षय करते करते चेहरेका रंग फीका पड़ जाता है, बलके न रहनेसे कामाग्नि प्रज्वलित नहीं होती,तब वे मादकके गहरे शिकार

बन जाते हैं। इस प्रकार मादक और विलास दोनों उनके बल, उनकी चमक-दमकको हर लेते हैं; अब तो कान्तिशून्य चेहरा निहायत बुरा जान पड़ता है। सुस्ती आलस्यके वे शिकार बन न कुछ कर ही सकते हैं न अपना मस्तिष्क ही ठिकाने रख सकते हैं। इस प्रकार अपनी सभ्यता खोकर गैरोंकी सभ्यता अपना कैसे कैसे कुकर्म्मके वे वशीभूत हो जाते हैं! जब सरमें चक्कर आने लगता है, तब वे सुगन्धित तेल लगाया करते हैं सो भी नकली जिसका फल कुछ भी नहीं होता। हो भी कहांसे? ब्रह्मचर्य्य, वीर्य्यरक्षा जो बलशाली बनानेका तरीका—जबर्दस्त तरीका है, जिसका पालनकर व्यायाम—सुदृढ़ व्यायाम—हमारे ऋषि लोग करते थे और अत्यन्त बलशाली बने रहते थे, आजदिन उक्त सभ्यतामें पड़कर लापता है।

प्यारे भारतीयो! आप ब्रह्मचर्य्यका पालन करें अर्थात् ऋतु-कालमें अपनी सहधर्मिणीका सहवास करें, वह भी ऋतु-दर्शनकी रात्रिसे दसवीं रात्रिमें, तब आपका ब्रह्मचर्य्य नष्ट न होगा और सुपुत्र उत्पन्न होगा। एक बारके गमन करनेसे आपकी शक्तिका ह्रास न होगा और आप वीर्य्यशाली बने रहेंगे, शरीरमें बल रहनेसे बहुतसे काम आप स्वयं कर लेंगे, दीपन पाचन प्रबल रहेगा और जिस कान्तिको आप अपने चेहरेमें देखना चाहते हैं वह आपको उसमें दीख पड़ेगी। यदि केशका शौक है तो भारतीय ढंगका रख लें। मूंछोंकी शोभा है इसलिये उन्हें रखें और बढ़ाकर रखें। अपने देशकी बनी चीजें अपनावें;

क्योंकि आपको स्वाधीनताकी जरूरत—सख्त जरूरत—है। संसारके प्रायः सभी देश आजाद हो रहे हैं और आपको गुलामीकी नींद सोना अच्छा लग रहा है।

ऐ मेरे प्यारे देशवासियो! आपको पाश्चात्य शासनमें रहते सदियां बीत चुकीं, पर आपने उन लोगोंसे एक भी गुण सीखा हो सो नहीं। यहांतक कि आप अपनी सभ्यता भूल गये, अपनी सत्तातक खोनेको तैयार हैं; और जो आपपर शासन करते आ रहे हैं उन्होंने भूलनेके बदले अपनी सभ्यताकी उन्नति की और इसीलिये उनकी सत्ताका मूल पातालमें पहुंच गया है और इतना मज़बूत है कि किसी भी प्रकारसे वह उखाड़ा नहीं जा सकता। उनकी सभ्यतासे कुछ मतलब नहीं! पर अपनी सभ्यता और सत्ताको बचाना बहुत ज़रूरी है इसलिये आपको अपने देशके कला-कौशलको भलीभांति उत्साह प्रदान करना ही होगा, अर्थात् अपने देशकी बनी हुई चीजें आपको खरीदनी होंगी; तब आपका व्यापार बढ़ेगा। जिस देशमें कलाकौशलका नाम नहीं, वहांका व्यापार गिर जाता है, और जहांका व्यापार गिरा हुआ है वहांकी सम्पत्ति-सम्बन्धी अवस्था बड़ी ही भयानक—दीनहीन है। वह देश बराबर उन्नतिका स्वप्न ही देखा करता है, पर यथार्थमें अवनति ही अवनति दिखायी पड़ती है। इसलिये आपको अपने देशकी दुरवस्था दूर करने और उसे सुधारनेके लिये अपने देशकी बनी चीजें-वस्त्र, खाद्य, परिधानीय वस्तुएं अथवा विलासिता-

की सामग्रियां, वाहनकी वस्तुएं—खरीदनी होंगी जिससे कला-कौशलके लिये यथार्थ प्रोत्साहन मिलेगा। जब आप अपने देशकी बनी वस्तुएं खरीदें और उनके द्वारा कोई चीज़ तैयार करवावें,तो याद रखें कि तैयार की जानेवाली चीज़ हिंदुस्तानी ढङ्गकी हो; इसीमें आप अपनी सभ्यताकी रक्षा कर सकेंगे और सत्ता बचा सकेंगे।

प्यारे भारतीयो! आपको देशी, हाथके बनाये वस्त्रके कोट, कमीजकी जगह कुर्त्ते, मिरज़ई तथा बगलबन्दियां और अंगरखे बनवाकर पहनने होंगे; पैंटकी जगह धोतियां पहननी होंगी, टोपकी जगह टोपियां धारण करनी होंगी। वे जूते जो आपके देशके चमार दिनभर परिश्रम कर हिन्दुस्तानी ढंगके बनाते हैं; आप खरीद कर पहनें इससे देशका पैसा देशमें रहेगा और कला-कौशल पुनरुज्जीवित होकर फैलेगा। जिस प्रकार पाश्चात्य संसार अपने देशकी बनी सारी चीजें व्यवहारमें लाता है, उसी प्रकार आपको भी अपने देशकी बनी सभी वस्तुएं व्यवहारमें लानी चाहिये। इसीमें आपकी और आपके देशकी भलाई है। जिस समय आप लोग तैंतीस करोड़ देशवासी यह प्रण करेंगे कि देशकी ही वस्तु व्यवहार की जायगी उस समय पाश्चात्य संसार व्यापारमें फीका पड़ जायगा। व्यापार-सम्बन्धी उसकी जो एक बृहत् आय होती सो आपकी होगी और इससे आपका देश सम्पन्न होगा। इसीका नाम सादगी है जिसकी शिक्षा आप प्रकृतिदेवीसे पाते हैं। इसीका नाम आडम्बर और विडम्बनसे दूर रहना और सच्ची देशसेवा है।

प्यारे देशवासियो! ऋषियोंका सादा जीवन और उनके उच्च विचार सुने जाते हैं। क्या आप भी हर एक जीवनकी बातमें सादगी दिखलायंगे? यदि हां, तो याद रक्खें कि भोजन पुष्टिकर एवं और और बातें सादगीसे भरी रहेंगी। जीवनमें आडम्बर एवं विडम्बनके दर्शनतक न होने चाहिये। फिर ऋषियोंके पास कौनसी सिद्धि न थी? प्रायः सभी सिद्धियां उनके सामने हाथ बांधे खड़ी रहा करती थीं। शारीरिक बल उनमें इतना बढ़ा चढ़ा रहता था कि 'परशुरामजीके द्वारा राजा सहस्राज्जुनका वध' एक ऐसी वीरताका परिचायक है जिसके सामने आश्चर्यसे सभी मस्तक झुकाते हैं। जब शरीरमें बल बढ़ता है तब स्वाधीनताकी चाह उत्पन्न होती है। वही व्यक्ति स्वाधीन हो सकता है जिसके शरीरमें बल है, यद्यपि मानसिक और आर्थिक बलकी भी इसके लिये सख्त जरूरत पड़ती है।

प्रकृतिदेवीने ही स्वाधीनताकी शिक्षा दी है। जबसे सृष्टिका विकास हुआ उसी समयसे उक्त देवीने उसे स्वाधीन बना दिया। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश जिनके द्वारा—जिन मुख्य तत्वों द्वारा—सृष्टि रचना हुई है, सबोंके लिये प्रकृतिदेवीने एक सा कर दिया, सब इन तत्वोंपर समान अधिकार रखते हैं। यहांतक कि सूर्य्य, चन्द्रमा तथा नक्षत्र आदिसे सारी सृष्टि समान लाभ उठाती है। जीव जो सृष्टिमें उत्पन्न होते हैं, सबका भोजन ही जन्मसे स्वाधीन रहता है। इसलिये परमात्माका यह नियम जान पड़ता है कि सबको स्वाधीन रहना चाहिये।

सृष्टिके विकासका मुख्य कारण जो प्रसन्नता है उसे स्वाधीनता ही ला उपस्थित करती है। पराधीनता प्रसन्नताको नष्ट करती है। बिना प्रसन्नताके पूरा पूरा विकास नहीं होता। विकासके अभावमें जीवन निरर्थक रहता है। इसलिये स्वाधीनताकी प्राप्ति अवश्य करनी चाहिये, खासकर दीन-हीन भारतको, जहां स्वतन्त्रता नाममात्रकी भी नहीं है।

परमात्माकी सृष्टिमें जितने पशु हैं सभी स्वतन्त्र हैं, जितने पक्षी हैं सभी स्वतन्त्र हैं, मनुष्योंका तो कहना ही क्या है, कीट-पतङ्ग आदि सब प्रकारके प्राणी स्वतन्त्रताका आनन्द लेते हैं, तब क्यों बलवान दुर्बलोंको दबाकर उनकी स्वतन्त्रतामें बाधा डाला करते हैं? उनका ऐसा करना कदापि उचित नहीं समझा जा सकता। उन्हें ऐसा करना न चाहिये। वही व्यक्ति ऐसी दशामें स्वतन्त्र हो सकता है जिसने ब्रह्मचर्य्यकी रक्षा कर व्यायामसे शारीरिक बल बढ़ाया है और भारतीय शास्त्रों और वेदोंका पूर्ण अध्ययन और मननकर मानसिक बल बढ़ाया है। जहां शारीरिक और मानसिक बल है वहां आर्थिक बल स्वतः हो जाता है। इन्हीं तीनों बलोंपर स्वाधीनता निर्भर रहा करती है। प्यारे! इसे अवश्य अपनाना चाहिये, बड़ेसे बड़े, अधिकसे अधिक मूल्यपर भी यदि यह मिले तो इसे प्राप्त करना चाहिये। इसके बिना जीवन निरर्थक है; वह अनुकरणीय नहीं हो सकता, क्योंकि प्रसन्नताका अभाव ही रहेगा।

प्यारे देशवासियो ! स्वतन्त्रता या स्वाधीनताके होनेपर यदि उदारता न हुई तो वह जीवन अनुकरणीय नहीं कहा जा सकता। अनुदार व्यक्ति स्वाधीनता-सम्पन्न होनेपर बहुत सम्भव है कि किसीका उत्पीड़न करे; इसलिये उदारता यदि न हुई तो जीवनमें अनुकरणीयता नहीं आ सकती।

उदारताका अर्थ है हर एक बातमें अच्छा सलूक करना। बड़ेसे बड़े अपराधीको भी उतना ही दण्ड देना जितनेको वह प्रायश्चित्त समझकर खुशीसे भोग ले, दण्ड देनेपर भी उस अपराधीको उसके भोगनेके लिये समाश्वासन देना, किसी बातमें भी हृदयकी, मनकी, विचारकी, वाणीकी और कार्य्यकी संकीर्णताको स्थान न देना एक सच्ची उदारता है। प्यारे भारतवासियो ! जो जो बातें आपके हृदयमें, मनमें उगें, जैसे जैसे विचार मानस-पट्टपर अङ्कित हों, जिन जिन बातोंको आप अपने मुखसे निकालें और उनके अनुसार कार्य्य करें, उन सबमें सब प्रकारकी उदारताका परिचय देना आपको उचित है। इस गुणकी प्राप्ति सत्संगतिसे तो होती ही है, परन्तु स्वार्थत्याग भी बहुत करना पड़ता है। जबतक मनुष्य स्वार्थत्यागी नहीं होता, तबतक उसमें यथार्थ उदारता नहीं आती। इसलिये भारतवासियो! अपने जीवनको अनुकरणीय बनानेके लिये आपको स्वार्थत्याग भी करना पड़ेगा; तभी तो आप यथार्थ उदार बनेंगे। उदारता प्राप्त करनेके लिये भारतीयो! आपको क्षमाका आश्रय भी अधिक लेना पड़ेगा, क्योंकि क्षमाके बिना स्वार्थत्याग होना

कठिन है और उसके अभावमें उदारता नाममात्रकी—शायद वचनोंमें ही—रह सकती है, न कि कार्य्योंमें।

उपर्युक्त सारे गुणोंके होनेपर यदि समवेदना और सहानुभूति उस व्यक्तिमें नहीं है जो अपने जीवनको अनुकरणीय बनानेकी चेष्टा करता है तो उसका वह जीवन पूर्णतया अनुकरणीय कदापि न होगा, वह अधूरा ही रह जायगा। प्यारे भारतीयो! जब आप औरोंके दुःखमें दुखी और सुखमें सुखी होंगे, तभी आपका जीवन आदर्श होगा, दूसरे आपको अपना अग्रेसर समझकर आपके गुणोंको अङ्गीकार करेंगे। क्या आप भारतकी सड़कोंपर रोगियोंका, अनाथोंका दृश्य नहीं देखते? क्या उन्हें देखकर आपके हृदयमें दयाके भाव कभी उदित हुए हैं, यदि उदित हुए हैं, तो उन्हें दयासे और भी आर्द्र करनेकी आवश्यकता है। तब आप देखेंगे कि आपमें दयानिधि बननेकी शक्तिका संचार होगा और उसके प्रतापसे आपमें जगत्प्रेम उत्पन्न होगा। इस प्रकार आप प्रेममूर्त्ति होकर सारे भारत, नहीं नहीं—सारे जगत्‌की सेवा करनेके लिये कमर कसकर तैयार रहेंगे। आप दुखियोंके दुःखपर आँसू बहाया करेंगे और सुखी-समृद्ध लोगोंको सुख-सम्पत्तिपर आप आनन्द प्रकाश करते रहेंगे। यदि कोई ऐसा व्यक्ति मिलेगा जिसके हृदयमें दर्द होता होगा, तो आपके हृदयमें दर्द होने लगेगा। इस गुणहीका नाम समवेदना और सहानुभूति है, यथा नाम तथा गुणः।

ऊपर जिन गुणोंका वर्णन किया गया है वे सब जिस

प्यारे देशवासियो ! स्वतन्त्रता या स्वाधीनताके होनेपर यदि उदारता न हुई तो वह जीवन अनुकरणीय नहीं कहा जा सकता। अनुदार व्यक्ति स्वाधीनता-सम्पन्न होनेपर बहुत सम्भव है कि किसीका उत्पीड़न करे; इसलिये उदारता यदि न हुई तो जीवनमें अनुकरणीयता नहीं आ सकती।

उदारताका अर्थ है हर एक बातमें अच्छा सलूक करना। बड़ेसे बड़े अपराधीको भी उतना ही दण्ड देना जितनेको वह प्रायश्चित्त समझकर खुशीसे भोग ले, दण्ड देनेपर भी उस अपराधीको उसके भोगनेके लिये समाश्वासन देना, किसी बातमें भी हृदयकी, मनकी, विचारकी, वाणीकी और कार्य्यकी संकीर्णताको स्थान न देना एक सच्ची उदारता है। प्यारे भारतवासियो! जो जो बातें आपके हृदयमें, मनमें उगें, जैसे जैसे विचार मानस-पट्टपर अङ्कित हों, जिन जिन बातोंको आप अपने मुखसे निकालें और उनके अनुसार कार्य्य करें, उन सबमें सब प्रकारकी उदारताका परिचय देना आपको उचित है। इस गुणकी प्राप्ति सत्संगतिसे तो होती ही है, परन्तु स्वार्थत्याग भी बहुत करना पड़ता है। जबतक मनुष्य स्वार्थत्यागी नहीं होता, तबतक उसमें यथार्थ उदारता नहीं आती। इसलिये भारतवासियो! अपने जीवनको अनुकरणीय बनानेके लिये आपको स्वार्थत्याग भी करना पड़ेगा; तभी तो आप यथार्थ उदार बनेंगे। उदारता प्राप्त करनेके लिये भारतीयो! आपको क्षमाका आश्रय भी अधिक लेना पड़ेगा; क्योंकि क्षमाके बिना स्वार्थत्याग होना

कठिन है और उसके अभावमें उदारता नाममात्रकी—शायद वचनोंमें ही—रह सकती है, न कि कार्य्योंमें।

उपर्युक्त सारे गुणोंके होनेपर यदि समवेदना और सहानुभूति उस व्यक्तिमें नहीं है जो अपने जीवनको अनुकरणीय बनानेकी चेष्टा करता है तो उसका वह जीवन पूर्णतया अनुकरणीय कदापि न होगा, वह अधूरा ही रह जायगा। प्यारे भारतीयो! जब आप औरोंके दुःखमें दुखी और सुखमें सुखी होंगे, तभी आपका जीवन आदर्श होगा, दूसरे आपको अपना अग्रेसर समझकर आपके गुणोंको अङ्गीकार करेंगे। क्या आप भारतकी सड़कोंपर रोगियोंका, अनाथोंका दृश्य नहीं देखते? क्या उन्हें देखकर आपके हृदयमें दयाके भाव कभी उदित हुए हैं, यदि उदित हुए हैं, तो उन्हें दयासे और भी आद्र करनेकी आवश्यकता है। तब आप देखेंगे कि आपमें दयानिधि बननेकी शक्तिका संचार होगा और उसके प्रतापसे आपमें जगत्प्रेम उत्पन्न होगा। इस प्रकार आप प्रेममूर्त्ति होकर सारे भारत, नहीं नहीं—सारे जगत्की सेवा करनेके लिये कमर कसकर तैयार रहेंगे। आप दुखियोंके दुःखपर आँसू बहाया करेंगे और सुखी-समृद्ध लोगोंको सुख-सम्पत्तिपर आप आनन्द प्रकाश करते रहेंगे। यदि कोई ऐसा व्यक्ति मिलेगा जिसके हृदयमें दर्द होता होगा, तो आपके हृदयमें दर्द होने लगेगा। इस गुणहीका नाम समवेदना और सहानुभूति है, यथा नाम तथा गुणः।

ऊपर जिन गुणोंका वर्णन किया गया है वे सब जिस

व्यक्ति विशेषमें होते हैं उसके हृदयमें उपकार-बुद्धि स्वतः उत्पन्न हो जाती है। फिर तो वह व्यक्ति मन, वाणी और कर्म्मके द्वारा सदासर्वदा उपकार किया करता है; अपने आपको विस्मृत करता हुआ लोकोपकारमें ही अपना सर्वस्व न्योछावर करता है, उसीको अपना सात्विक आनन्द मानता है, वही उसका मुख्य धर्म-कर्म बन जाता है।

यथार्थमें किसीका भी उपकार करना परम धर्म है, यदि वह अपने देशपर किसी प्रकारकी आपद् न लावे; क्योंकि एकके उपकार करनेसे सारे देशको यदि कष्ट उठाना पड़े तो वह उपकार यथार्थ उपकार नहीं हो सकता; वह तो देशोत्पीड़नमें पलट जाता है, इसलिये ऐसा उपकार कदापि नहीं होना चाहिये जिससे दूसरा हानि सहनेके लिये वाध्य किया जाय। हां, उपकारकी महिमा बड़ी भारी है। संसारमें इससे बढ़कर दूसरा कोई कार्य्य नहीं, इससे बढ़कर दूसरा कोई पुण्य नहीं। तभी तो महाभारत और अष्टादश पुराणोंके रचयिता महात्मा वेदव्यासने कहा है कि "पुण्यं परोपकाराय पापाय परपीड़नम्।"

प्यारे भारतवासियो! जीवनको अनुकरणीय बनानेके लिये उपर्युक्त गुणोंके अलावा यम-नियमोंकी बड़ी आवश्यकता है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, परिग्रह, ब्रह्मचर्य—ये ही यम कहलाते हैं। शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय एवं ईश्वरप्रणिधान—ये नियम कहलाते हैं। इन दोनोंको; अर्थात् यम-नियमोंको जीवनमें प्रधान स्थान देनेसे जीवन अनुकरणीय बन जाता है।

प्यारे भारतवासियो! इस प्रकारका अनुकरणीय जीवन, आपके लिये आदर्श है। आप यदि इसका अनुकरण करेंगे तो अपने ही देशके लिए नहीं वरन सारे संसारके लिये आदर्श होंगे। इन्हीं गुणोंसे सम्पन्न हो आपके भारतवर्षके कितने ही महात्मा लोग यद्यपि लीला सम्वरण कर चुके हैं तथापि अपने अपने जीवनका अनुकरणीय आदर्श यहां छोड़ गये हैं। ऋषियोंने, जिनकी सन्तान होनेका आपको पूर्ण अभिमान है, आपके लिए एकसे एक आदर्श छोड़ रखा है। आपको उचित है कि आप उनके आदर्शका अनुकरण करें। तभी तो आप वर्त्तमान समयमें सच्चे और अनुकरणीय नागरिक बनेंगे। आपहीकी ओर आपका देश—दीन भारत दृष्टि लगाये बैठा है। इसलिये यह आपको उचित है कि उस दीन भारतकी उन्नति कर उसे उठावें।

प्राचीन समयके ऋषियोंके आदर्शपर ही तो अर्वाचीन समयके नेता लोग चले आ रहे हैं। पर प्यारे भारतीयो, मेरा मतलब सच्चे नेताओंसे है; नकली नेताओंसे मुझे देशहितकी कदापि आशा नहीं। यदि देशका अहित उनके हाथों न हो तो वही बहुत है; देशहित करनेकी उनमें योग्यता ही नहीं है। उन्होंने स्वार्थका त्यागतक नहीं किया है; फिर देशहितकी बातका उनसे क्या भरोसा किया जाय? देशहितकी जिसके मनमें इच्छा रहती है, वह उसे ही अपना मुख्य ध्येय समझता है, वह उसीके पीछे दिन-रात लगा रहा करता है, उसीका ध्यान हरवक्त उसके मनमें जमा रहा करता है, वही सच्चा राष्ट्रीय संन्यासी है।

देशहितके लिये वह हर वक्त चिन्ता किया करता है। उसे देशहितके मार्गमें चाहे जितने कण्टक मिलें, सबोंका वह संशोधन करता है। सब प्रकारके कष्टोंको वह देशहितके लिये सहन करता है। जिस प्रकार धार्मिक व्यक्ति धर्मके ख्यालसे, साम्प्रदायिक व्यक्ति सम्प्रदायके ख्यालसे उसके नियमोंका पूर्णतया पालन करते हैं, उसी प्रकार सच्चा देशहितैषी व्यक्ति देशहितको ही अपना धार्मिक नियम, देशसेवाको ही अपना साम्प्रदायिक कृत्य समझता है। वह देशवासियोंसे भिन्न ईश्वरको भी नहीं समझता। उसकी दृष्टिमें दीन-हीन दशावाले दरिद्र, अनाथ लोग जो फटे-चिटे चिथरे पहनकर नाममात्रके लिये लज्जा निवारण करते हैं, कापालिक भैरवके स्वरूप जान पड़ते हैं, और वह उनकी सेवाकर भैरवस्वरूप शङ्कर महादेवकी पूजा करना समझता है। जब वह सब प्रकारकी, सब अवस्थाकी, सब श्रेणीकी दीन-हीन, अनाथ, रोगी स्त्रियोंकी सेवा करता है, उस समय वह दश महाविद्याओंकी पूजा-अर्चा स्वतः की गयी समझता है। जब वह अनाथों एवं दीनोंकी मण्डलीको भोजन कराकर वस्त्र देता है उस समय वह सत्यनारायणकी पूजा स्वतः सम्पन्न की गयी समझता है। प्यारे भारतीयो! मेरा ऐसे ही सच्चे, देशहितैषी नागरिकसे, जो नेताकी उपाधि नाममात्रके लिये धारण करता है, मतलब है। ऐसा ही नेता—ऐसा ही नागरिक विश्वात्माका सच्चा भक्त है। ऐसे नेताकी चरणधूलि परम पवित्र है। ऐसे नेता आपके देशमें अर्वाचीन समयमें थे भी और

हैं भी। आपको उनके ढूंढ़नेकी जरूरत नहीं है। क्या कोई सूर्य्य-चन्द्रमाको ढूंढ़ता है? कदापि नहीं। वे तो स्वयं प्रकाशमय हैं; उनके आलोकसे जगत् आह्लादित होता है। प्रत्येक जीवको आपसे आप उनके दर्शन होते हैं। दिन तथा रात्रिके वेही प्रत्यक्ष देवता हैं!

प्यारे भारतीयो! मैं समझता हूं कि मेरे इशारेसे—सूर्य्य, चन्द्रमाका नाम लेनेसे आपको अर्वाचीन समयके उन दोनों सच्चे देशहितैषी नेताओंका ज्ञान हो गया होगा, क्योंकि जैसे सूर्य्य-चन्द्र नहीं छिपे हैं वैसे ये दोनों लोकमान्य और कर्मवीर भी नहीं छिपे हैं। पहले नेता जो वैकुण्ठके अतिथि हुए हैं, श्रीयुक्त बालगङ्गाधर तिलक थे। ये महात्मा विद्याओंसे पूर्ण, अनुभवोंसे युक्त, राजनीतिमें निपुण विदेशी भाषाओंसे भलीभांति परिचित एवं प्रसिद्ध देशभक्त थे। आपने देशसेवा सम्पन्न करते हुए जो कष्ट सहे, वे वर्णनातीत हैं। यद्यपि आप छः वर्षों तक कृष्ण-भवनके अतिथि रहे और कष्ट झेले, तथापि आपके देशहित-सम्बन्धी विचारोंमें जरा भी अन्तर नहीं पड़ा। आप सच्चे देशभक्त थे, इसी लिये भारतवर्ष ही क्या—सारा भूमण्डल आपका समादर करता था। इतना समादर और सच्चा देशहित करते देख, इन्हें भारतीय जनताने लोकमान्यकी उपाधि दे डाली। आप संस्कृत शास्त्रोंके अच्छे गंभीर विद्वान् थे। आपने वेदोंका खूब मनन किया था। आपकी बुद्धि विचार करनेमें अप्रतिहत गति रखती थी। आपका बहस बड़ा ही तर्कपूर्ण और युक्तिसंगत होता था। अङ्गरेजी आदि

कई विदेशी भाषाओंपर भी आपका अधिकार था। गणितशास्त्रके आप उद्भट विद्वान् थे। वेदान्तमें आप भलीभांति निपुण थे, तभी तो आपने कई ग्रंथ बनाये और उत्तम ग्रंथ बनाये जिनका भारतहीमें नहीं बल्कि पाश्चात्य संसारमें भी समधिक आदर हुआ। कई निबन्ध आपने लिखे और सब योग्य साबित हुए।

आपका जीवन जो ऐसा आदर्श हुआ इसका कारण यह था कि पहले लड़कपनमें संस्कृतका अध्ययन हुआ। बादमें अङ्गरेजी पढ़ाई गयी और आप बी० ए० एल० एल० बी० हो गये। इनकी विद्या पुस्तकस्थ नहीं थी बल्कि जिह्वाग्र थी और पढ़नेसे अधिक ये अपनी विद्याको गुना करते थे। लड़कपनमें जो संस्कृतका प्रभाव जीवनपर पड़ा वह अपनी निष्ठा, अपने धर्म-कर्ममें इन्हें निपुण एवं कट्टर बना बैठा। विद्याध्ययनके साथ साथ व्यायामने आपके शरीर और मन दोनोंको पुष्ट बना डाला। आप पेशवा खान्दानके थे। पूनामें आपका बड़ा विशाल मकान है जो गढ़ोंकी समता करता है। देशप्रेम आपमें कूट कूटकर भरा था। देशसेवासे अन्य आपके जीवनका दूसरा लक्ष्य ही न था। आपके हाथमें देशसेवाके दो अमोघ अस्त्र थे। वे थे व्याख्यान और प्रकाशन। जिस बातको विपक्षमें देखते थे उसके विरुद्धमें व्याख्यान देते और प्रकाशन करते थे, तथा जिस बातको पक्षमें देखते थे, उसके पक्षमें वक्तृता देते व लेख प्रकाशन करते थे। आपका बनाया गीतारहस्य ऐसी सुन्दर रीतिसे प्रकाशित हुआ कि उसे देख प्रसिद्ध २ विद्वान् भी अवाक् रह गये। शङ्कराचार्य प्रभृति उद्भट

विद्वानोंने जिसे ज्ञानपरक सिद्ध किया, उसे लोकमान्यने कर्मपरक सिद्ध किया। क्या इनसे पहलेके विद्वान् टीकाकार भांग खाये हुए थे जो ऐसी गलती कर गुजरे? तबसे भारत देशसेवाकी ओर बड़े जोरों कर्मयोगमें दत्तचित्त है पर तैंतीस करोड़की जनसंख्यामें इतनी तेजी पर्य्याप्त नहीं कहा सकती।

लोकमान्यने देशसेवा करते हुए पहले पहल स्वराज्यकी आवाज उठायी थी सो भी ऐसे समय जब किसीको इस बातका साहसतक भी न होता था कि शासकमण्डलीके विरुद्ध स्वराज्यकी आवाज उठायी जाय। यद्यपि उसके फलस्वरूप छः वर्षोंके लिये लोकमान्यको मांडले (रंगून) का किला कारागारके रूपमें मिला, तथापि उसके अंदर एक अमूल्य साहित्यरत्न—गीतारहस्यकी सृष्टि हुई जिसने देशसेवामें बड़ी तत्परतासे लोगोंको अग्रसर किया।

लोकमान्यको एक अङ्गरेज व्यक्तिने जिसका नाम वेलेंटाइन शिरोल था, बदनामी कह डाला था जिसपर लोकमान्यने विलायत जाकर, यद्यपि जर्मन महासमर छिड़ा हुआ था, उसपर मुकद्मा दायर किया था। बड़ी बेतरह बहस हुई, लोकमान्य अपनी ओरसे आप बहस करते थे। आखिरकार कायल होकर विचाराधिपतिको दंग रह जाना पड़ा। पर विपक्षीने लाचार होकर यह बात सुझायी कि लोकमान्यको मुकदमेमें विजयी बना देनेपर भारतके अङ्गरेजोंका प्रभाव कितना घट जायगा जिन्हें भारतवासियोंके साथ हमेशा बरतना है। यह सोच लें तब फैसला दें। इसीपर

विचारपतिने लोकमान्यके विरुद्ध फैसला दिया और उक्त बातको अपने फैसलेमें लिख दिया। इतनी दूर जाकर कई लाख रुपयोंकी हानि उठाकर लोकमान्यको यद्यपि वही फल मिला जो यहां मिल चुका था, तथापि वहां जानेके साथ ही, इनने भारतकी सभी अवस्था व्याख्यानों एवं छोटी पुस्तिकाओंके प्रकाशनके जरिये सबोंके कानमें डाल दी, अपने ध्येयको भी जनाया, भारतमें बनाकर प्रचलित किये गये सारे कानूनोंकी त्रुटियांतक लोगोंको दिखलायीं जिनमें स्वार्थपरताकी मात्रा बेतरह भरी हुई थी। शेषमें लौटकर आप भारत आये और अपने ध्येयमें दत्तचित्त हुए। जो काम आजतक किसीने नहीं किया था उसे लोकमान्यने-सो भी वहां जाकर—कर दिखाया। इससे बढ़कर देशसेवा क्या होगी?

लोकमान्यके इंगलैंड चले जानेपर शासकमण्डलीने वह रौलट ऐक्ट पास करना चाहा जिसका जिक्र पहले हो चुका है। यदि लोकमान्य यहां रहते तो वे भी इसके विरुद्ध आवाज अवश्य उठाते; क्योंकि यह स्वतंत्रताका एकदम नाश करनेवाला था। पर उनकी अनुपस्थितिमें भी सारे देशने एक स्वरसे उस दुष्ट कानूनका विरोध किया और अन्तमें महात्मा गांधी इस युद्धमें कूद पड़े जिसका फल यह हुआ कि अमृतसरका जलियानवालाबाग भारतीय हिन्दू-मुसलमानोंके खूनसे रंगा गया और इसलिये वह एक बड़ा राष्ट्रीय तीर्थ बन गया।

दूसरे नेता जिनकी उपमा चन्द्रमासे दी गयी है, स्वनामधन्य हृदय-सम्राट् श्रीयुक्त मोहनदास कर्मचन्द गांधी हैं जिनकी देश-

सेवाओंसे सन्तुष्ट हो भारतीय जनताने उन्हें कर्मवीरकी उपाधि दे डाली। महात्मा गांधी यथार्थमें कर्मवीर, धर्मवीर और राष्ट्र-वीर हैं। देशसेवा करनेमें जो कर्मवीरता आपने दिखलायी, उसका परिचय मैं यहांपर भलीभांति देता हूं।

महात्मा गांधी गुजरात प्रान्तके अहमदाबादके रहनेवाले हैं। जिस समय इन्होंने अपनी भाषाकी शिक्षा प्राप्त की और अंगरेजी पढ़कर वैरिस्टरीकी उपाधिसे भूषित हो अदालतमें वकालत करने लगे; तभीसे आपका झुकाव सत्यकी ओर बराबर रहता था। तात्पर्य यह है कि जितने मुकदमे आप लेते थे वे सब सच्चे ही होते थे। एक बार आपको एक मुकदमा लेकर अफ्रिका जाना पड़ा। वहां जानेपर निर्दिष्ट रास्ता छोड़कर अन्य मार्ग द्वारा चलनेके लिये इन्हें काला आदमी देख भारतीय समझकर गोरोंने बूटोंकी ठोक-रोंसे मारा, सीढ़ीपरसे ढकेल दिये गये। ये जैसे कमजोर हैं मर ही जाते पर एक पादरीने उनकी मरहम पट्टीकर रक्षा की। इन्होंने भारतीयोंका अपमान अपनी आंखों केवल देखा ही नहीं था बल्कि स्वयं मार खाकर अनुभव भी किया था, इसलिये मुकदमेका लक्ष्य छोड़ वैरिस्टरीको तिलाञ्जलि दे वहां भारतीयोंपर गोरी जाति द्वारा होते हुए अत्याचारको दूर करनेके लिये भिड़ गये। आपका एक मात्र अस्त्र अंहिसा है। आपको इसपर बड़ा विश्वास है। इसे आप अमोघ शक्ति समझते हैं। बात भी सत्य है। मनसा-वाचा-कर्मणा अहिंसा करते हुए, कष्टसमूह झेलते हुए काम करते चले जाओ तो कामके अग्रसर होनेमें किसी प्रकारकी रुकावट नहीं

विचारपतिने लोकमान्यके विरुद्ध फैसला दिया और उक्त बातको अपने फैसलेमें लिख दिया। इतनी दूर जाकर कई लाख रुपयोंकी हानि उठाकर लोकमान्यको यद्यपि वही फल मिला जो यहां मिल चुका था, तथापि वहां जानेके साथ ही, इनने भारतकी सच्ची अवस्था व्याख्यानों एवं छोटी पुस्तिकाओंके प्रकाशनके जरिये सबोंके कानमें डाल दी, अपने ध्येयको भी जनाया, भारतमें बनाकर प्रचलित किये गये सारे कानूनोंकी त्रुटियांतक लोगोंको दिखलायीं जिनमें स्वार्थपरताकी मात्रा बेतरह भरी हुई थी। शेषमें लौटकर आप भारत आये और अपने ध्येयमें दत्तचित्त हुए। जो काम आजतक किसीने नहीं किया था उसे लोकमान्यने सो भी वहां जाकर—कर दिखाया। इससे बढ़कर देशसेवा क्या होगी?

लोकमान्यके इंगलैंड चले जानेपर शासकमण्डलीने वह रौलट ऐक्ट पास करना चाहा जिसका जिक्र पहले हो चुका है। यदि लोकमान्य यहां रहते तो वे भी इसके विरुद्ध आवाज अवश्य उठाते; क्योंकि यह स्वतंत्रताका एकदम नाश करनेवाला था। पर उनकी अनुपस्थितिमें भी सारे देशने एक स्वरसे उस दुष्ट कानूनका विरोध किया और अन्तमें महात्मा गांधी इस युद्धमें कूद पड़े जिसका फल यह हुआ कि अमृतसरका जलियानवालाबाग भारतीय हिन्दू-मुसलमानोंके खूनसे रंगा गया और इसलिये यह एक बड़ा राष्ट्रीय तीर्थ बन गया।

दूसरे नेता जिनकी उपमा चन्द्रमासे दी गयी है, स्वनामधन्य हृदय-सम्राट् श्रीयुक्त मोहनदास कर्मचन्द गांधी हैं जिनकी देश-

सेवाओंसे सन्तुष्ट हो भारतीय जनताने उन्हें कर्मवीरकी उपाधि दे डाली। महात्मा गांधी यथार्थमें कर्मवीर, धर्मवीर और राष्ट्र-वीर हैं। देशसेवा करनेमें जो कर्मवीरता आपने दिखलायी, उसका परिचय मैं यहांपर भलीभांति देता हूं।

महात्मा गांधी गुजरात प्रान्तके अहमदाबादके रहनेवाले हैं। जिस समय इन्होंने अपनी भाषाकी शिक्षा प्राप्त की और अंगरेजी पढ़कर बैरिस्टरीकी उपाधिसे भूषित हो अदालतमें वकालत करने लगे; तभीसे आपका झुकाव सत्यकी ओर बराबर रहता था। तात्पर्य यह है कि जितने मुकदमे आप लेते थे वे सब सच्चे ही होते थे। एक बार आपको एक मुकदमा लेकर अफ्रिका जाना पड़ा। वहां जानेपर निर्दिष्ट रास्ता छोड़कर अन्य मार्ग द्वारा चलनेके लिये इन्हें काला आदमी देख भारतीय समझकर गोरोंने बूटोंकी ठोक-रोंसे मारा,सीढ़ीपरसे ढकेल दिये गये। ये जैसे कमजोर हैं मर ही जाते पर एक पादरीने उनकी मरहम पट्टीकर रक्षा की। इन्होंने भारतीयोंका अपमान अपनी आंखों केवल देखा ही नहीं था बल्कि स्वयं मार खाकर अनुभव भी किया था,इसलिये मुकदमेका लक्ष्य छोड़ बैरिस्टरीको तिलाञ्जलि दे वहां भारतीयोंपर गोरी जाति द्वारा होते हुए अत्याचारको दूर करनेके लिये भिड़ गये। आपका एक मात्र अस्त्र अहिंसा है। आपको इसपर बड़ा विश्वास है। इसे आप अमोघ शक्ति समझते हैं। बात भी सत्य है। मनसा-वाचा-कर्मणा अहिंसा करते हुए, कष्टसमूह झेलते हुए काम करते चले जाओ तो कामके अग्रसर होनेमें किसी प्रकारकी रुकावट नहीं

विचारपतिने लोकमान्यके विरुद्ध फैसला दिया और उक्त बातको अपने फैसलेमें लिख दिया। इतनी दूर जाकर कई लाख रुपयोंकी हानि उठाकर लोकमान्यको यद्यपि वही फल मिला जो यहां मिल चुका था, तथापि वहां जानेके साथ ही, इनने भारतकी सभी अवस्था व्याख्यानों एवं छोटी पुस्तिकाओंके प्रकाशनके जरिये सबोंके कानमें डाल दी, अपने ध्येयको भी जनाया, भारतमें बनाकर प्रचलित किये गये सारे कानूनोंकी त्रुटियांतक लोगोंको दिखलायीं जिनमें स्वार्थपरताकी मात्रा बेतरह भरी हुई थी। शेषमें लौटकर आप भारत आये और अपने ध्येयमें दत्तचित्त हुए। जो काम आजतक किसीने नहीं किया था उसे लोकमान्यने-सो भी वहां जाकर—कर दिखाया। इससे बढ़कर देशसेवा क्या होगी?

लोकमान्यके इंगलैंड चले जानेपर शासकमण्डलीने वह रौलट ऐक्ट पास करना चाहा जिसका जिक्र पहले हो चुका है। यदि लोकमान्य यहां रहते तो वे भी इसके विरुद्ध आवाज अवश्य उठाते; क्योंकि यह स्वतंत्रताका एकदम नाश करनेवाला था। पर उनकी अनुपस्थितिमें भी सारे देशने एक स्वरसे उस दुष्ट कानूनका विरोध किया और अन्तमें महात्मा गांधी इस युद्धमें कूद पड़े जिसका फल यह हुआ कि अमृतसरका जलियानवालाबाग भारतीय हिन्दू-मुसलमानोंके खूनसे रंगा गया और इसलिये वह एक बड़ा राष्ट्रीय तीर्थ बन गया।

दूसरे नेता जिनकी उपमा चन्द्रमासे दी गयी है, स्वनामधन्य हृदय-सम्राट् श्रीयुक्त मोहनदास कर्मचन्द गांधी हैं जिनको देश-

सेवाओंसे सन्तुष्ट हो भारतीय जनताने उन्हें कर्मवीरकी उपाधि दे डाली। महात्मा गांधी यथार्थमें कर्मवीर, धर्मवीर और राष्ट्र-वीर हैं। देशसेवा करनेमें जो कर्मवीरता आपने दिखलायी, उसका परिचय मैं यहांपर भलीभांति देता हूं।

महात्मा गांधी गुजरात प्रान्तके अहमदाबादके रहनेवाले हैं। जिस समय इन्होंने अपनी भाषाकी शिक्षा प्राप्त की और अंगरेजी पढ़कर बैरिस्टरीकी उपाधिसे भूषित हो अदालतमें वकालत करने लगे; तभीसे आपका झुकाव सत्यकी ओर बराबर रहता था। तात्पर्य यह है कि जितने मुकदमे आप लेते थे वे सब सच्चे ही होते थे। एक बार आपको एक मुकदमा लेकर अफ्रिका जाना पड़ा। वहां जानेपर निर्दिष्ट रास्ता छोड़कर अन्य मार्ग द्वारा चलनेके लिये इन्हें काला आदमी देख भारतीय समझकर गोरोंने बूटोंकी ठोकरोंसे मारा,सीढ़ीपरसे ढकेल दिये गये। ये जैसे कमजोर हैं मर ही जाते पर एक पादरीने उनकी मरहम पट्टीकर रक्षा की। इन्होंने भारतीयोंका अपमान अपनी आंखों केवल देखा ही नहीं था बल्कि स्वयं मार खाकर अनुभव भी किया था,इसलिये मुकदमेका लक्ष्य छोड़ बैरिस्टरीको तिलाञ्जलि दे वहां भारतीयोंपर गोरी जाति द्वारा होते हुए अत्याचारको दूर करनेके लिये भिड़ गये। आपका एक मात्र अस्त्र अंहिसा है। आपको इसपर बड़ा विश्वास है। इसे आप अमोघ शक्ति समझते हैं। बात भी सत्य है। मनसा-वाचा-कर्मणा अहिंसा करते हुए, कष्टसमूह झेलते हुए काम करते चले जाओ तो कामके अग्रसर होनेमें किसी प्रकारकी रुकावट नहीं

उस नासूरकी नहीं है, इसीसे भारत चंगा होगा यही आशा लोगोंको है।

कई जगहोंमें दंगे भी हुए हैं जिन्हें सरकार असहयोगियोंपर थोपती है और ये उन्हींपर उत्तेजना देनेका दोष लगाते हैं। पर महात्माजीने दुःखी होकर इन दंगोंके कारण अनशन भी किया और जनताने जिसमें हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पार्सी आदि भी हैं उन्हें भोजन भी कराया और आपसमें सब मिल जुल गये।

असहयोगमें सरकारसे सहयोग करना मना है। इसीलिये असहयोगी विदेशी वस्तुओं, अदालतों, सरकारी नौकरियों और संस्थाओं तथा उपाधियोंतकका वहिष्कार करते हैं। यही कारण था कि सारे देशने सम्राट्के चचा और पुत्र युवराजके आगमन-तकका भलीभांति वहिष्कार किया, इसलिये, उनके भारत आनेके उपलक्ष्यमें उत्सव फलीभूत नहीं हुए। यह काम स्वयंसेवकोंने किया था, इसलिये वे वेतरह जेलोंमें ठूंसे गये जिनमें कितने ही स्वर्गलोकके अतिथि हुए। आज दिन सेवाके लिये जेल जाना पुण्य समझा जाता है और मरना तो देशोद्धारके लिये पुनर्जन्म पाकर इसको स्वतन्त्र बनाना ही असहयोगी मान बैठे हैं। मरना इनका निरर्थक नहीं;क्योंकि यह किये गये अत्याचारके प्रति घृणामें परिवर्त्तित होगा और देश-स्वतन्त्रताकी खोजमें आगे बढ़ेगा।

जैसे सभी देश उत्पीड़न पाकर असहयोग करते हुए स्वत-

और निष्क्रिय प्रतिरोध करनेपर तुले हुए थे और लोगोंको सरकारी मालगुजारी न देनेके लिये कहनेको थे,जेलके अतिथि बनाये गये। बहुत सम्भव था कि ऐसे हृदय-सम्राट्के लिये जनता अपनी जानें दे डालती, क्योंकि उत्तेजित होना उसके पक्षमें स्वाभाविक था, पर महात्माके उपदेशने उसे टससे मस नहीं होने दिया। ऐसे अहिंसा-व्रतके व्रती महात्माको जेलकी सजा जो मिली थी इससे सारा सभ्य संसार व्यथित हुआ था। इसीका नाम अनुकरणीय जीवनका आदर्श है, इसीका नाम सच्ची देशसेवा है! महात्माजीके शरीरमें बल बिलकुल नहीं है; वे दुर्बल हैं, इतनी आदर्शमें कमी है, पर मानसिक बलने उसे पूर्ण कर लिया है। उनका देशसेवाका जो आदर्श है वह एक सच्चे भक्तका है जिसे मैंने, खड्गविलास प्रेस, बांकीपुर (पटना) से प्रकाशित होनेवाली साप्ताहिक पत्रिका "शिक्षा" के खण्ड २१, संख्या १२ में, 'सच्चे भक्तकी जांच' शीर्षक कवितामें; व्यक्त किया है। प्यारे भारतीयो! आप कृपा कर उसे अवश्य पढ़ें और वैसा ही आदर्श अपना रक्खें। कविता इस प्रकार है—

१—विनययुत रसीली स्नेह-वाक्यावलीसे
सुजन-समितिमें जो स्वर्ग-गङ्गा बहाता,
उचित पथ दिखाके लोकको जो चलाता,
उस बुध जनने ही भक्ति-सर्वस्व पाया।

२—अहह! अमित रोगी आज क्या कष्टमें हैं!
किस विधि उन सबका दुःख हो दूर शीघ्र!
यह अनुभव करके अश्रु जो है बहाता,

कुछ सम्मतियोंका सार

पू० पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी—"मालव-मयूर" बहुत अच्छा निकला। छपाई और कागज उत्तम है। भाषा और विषय-योजना भी ठीक है।

सरदार माधवराव विनायक किबे—मेरा यह दृढ़ विश्वास हो गया है कि यह एक उच्च कोटिका मासिक-पत्र है।

सर्वेन्ट आव् इंडिया—......ने एक महत्वपूर्ण पत्रकी वृद्धि की है। मासिक-पत्रका सम्पादन वे विशेष योग्यता और पूरी जिम्मेवारीके साथ करते हैं जो कि हमें महात्मा गांधीको प्रत्यक्ष देख-भालमें तालीम पाये सज्जनोंमें दिखाई देती है।

प्रताप—"मालव-मयूर" में मौलिकता और सात्विकता है। अधिक विचार और विवेकके साथ चुनी हुई बहुतसी टिप्पणियां इसमें रहती हैं। हमें विश्वास है कि "मयूर" का मीठा और सात्विक ढंग अपना रंग अवश्य लावेगा और उससे म० भा० और रा० पु० के लोगोंकी अत्यन्त निर्बल और निर्जीव आत्माको बल मिलेगा।

मतवाला—सभी संख्यायें एकसे एक बढ़कर हैं। कवितायें और लेख बड़े ही सुन्दर, सरस और निर्दोष होते हैं। संपादकीय अंश अत्यन्त प्रशंसनीय होता है। अधिक पृष्ठ-संख्या वाले पत्र 'मयूर' से शिक्षा ग्रहण करें।

जयाजी प्रताप—लेख उच्च कोटिके हैं। उनपर दृष्टि रखते हुए अगला नंबर पिछलेसे बढ़ा चढ़ा मालूम होता है।...की टिप्पणियोंमें sense of proportion और sense of responsibility होती है, जिसकी इस समयके बहुतसे संपादकोंमें कमी नजर आती है।

कविकौमुदी—इसके सम्पादक हिन्दीके अच्छे और विचारशील लेखकोंमें हैं। संपादकीय नोटोंमें, उनकी स्पष्ट-वादिता, निर्भीकता और उत्तम विचारशैली देखकर चित्त प्रसन्न होता है।

लागत मूल्यपर हिन्दी पुस्तकें प्रकाशित करनेवाली
एक मात्र सार्वजनिक संस्था

सस्ता-साहित्य-प्रकाशक-मंडल, अजमेर

उद्देश्य—हिन्दी साहित्यमें उच्च और शुद्ध साहित्यके प्रचारके उद्देश्यसे इस मण्डलका जन्म हुआ है। विविध विषयोंपर सर्वसाधारण और शिक्षित समुदाय, स्त्री और बालक सबके लिए उपयोगी और सस्ती पुस्तकें इससे प्रकाशित होंगी।

इस मण्डलके सदुद्देश्य, महत्व और भविष्यका अन्दाज पाठकोंको होनेके लिए हम सिर्फ उसके संस्थापकोंके नाम दे देते हैं—

मंडलके संस्थापक—(१) सेठ जमनालालजी बजाज वर्धा, (२) सेठ घनश्यामदासजी बिड़ला कलकत्ता (सभापति) (३) स्वामी आनन्दजी (४) बाबू महावीरप्रसादजी पोद्दार (५) डा० अम्बालालजी दधीच (६) पं० हरिभाऊ उपाध्याय (७) बा० जीतमल लूणिया अजमेर (मन्त्री)

पुस्तकोंका मूल्य—(१) प्रथम श्रेणीके स्थाई ग्राहकोंके लिये लगभग लागत मात्र रहेगा अर्थात् उन्हें लगभग १६०० पृष्ठोंकी पुस्तकें ३) में मिलेंगी। इस तरह उन्हें १) में ५०० से ६०० पृष्ठों तककी पुस्तकें मिलेंगी। अर्थात् पुस्तकपर छपे मूल्यसे पौनी कीमतसे भी कुछ कममें उन्हें मिलेंगी। (२) द्वितीय श्रेणीके स्थाई ग्राहकोंसे पुस्तकपर छपे मूल्यपर (सर्वसाधारणके लिये) तीन आना रुपिया कमीशन कम करके मूल्य लिया जायगा अर्थात् उन्हें १) में लगभग साढ़े चारसो पृष्ठोंकी पुस्तकें मिलेंगी (३) सर्वसाधारणको १) में लगभग चारसो पृष्ठोंकी पुस्तकें मिलेंगी। सचित्र पुस्तकोंका कुछ मूल्य अधिक रहेगा।

हमारे यहांसे प्रकाशित होनेवाली दो मालाएं

हमारे यहांसे सस्ती साहित्य माला और सस्ती प्रकीर्णक पुस्तक माला ये दो मालाएँ निकलती हैं। वर्ष भरमें प्रत्येक मालामें लगभग सात आठ पुस्तकें (कम या ज्यादा) निकलती हैं और इन सब पुस्तकोंकी पृष्ठ-संख्या मिलाकर लगभग १६०० पृष्ठोंकी होती है।

प्रथम श्रेणीके स्थाई ग्राहक

स्थाई ग्राहक होनेके नियम

नोट—मालासे निकली हुई पूर्व प्रकाशित पुस्तकें चाहे वे लें या न लें पर आगे प्रकाशित होनेवाली पुस्तकोंकी एक एक प्रति उन्हें अवश्य लेनी होगी।

(१) वार्षिक ग्राहक—चूँकि प्रत्येक पुस्तक वी० पी० से भेजनेमें पोस्टेज के अलावा ।) प्रति पुस्तक वी० पी० खर्च ग्राहकोंको अधिक लग जाता है अतएव यह सोचा गया है कि वार्षिक ग्राहकोंसे प्रति वर्ष ४) पेशगी लिया जाय अर्थात् तीन रुपया १६०० पृष्ठोंकी पुस्तकोंका मूल्य और १) डाक खर्च । वार्षिक ग्राहक जिस वर्षके ग्राहक बनेंगे उस वर्षकी सब प्रकाशित पुस्तकें उन्हें लेनी होंगी।

(२) जो सज्जन ॥) प्रवेश फीस देंगे उनका नाम भी स्थाई ग्राहकोंमें उसके लिये लिख लिया जायगा और ज्यों ज्यों पुस्तकें निकलती जावेंगी वैसे वैसे पुस्तकका लागत मूल्य और पोस्टेज खर्च जोड़कर वी० पी० से भेज दी जावेंगी।

नोट—इस तरह प्रत्येक पुस्तक वी० पी० से भेजनेमें वर्ष भरमें कोई ढाई रुपया पोस्टेजका खर्च ग्राहकोंको लग जायगा।

हमारी सलाह है कि आप वार्षिक ग्राहक ही बनें।

क्योंकि इससे आप बार बार वी० पी० छुड़ानेके झंझटसे बच जावेंगे और पोस्टेजमें भी आपको बहुत ही किफायत रहेगी। और स्थाई ग्राहक फीसके आठ आने भी आपसे नहीं लिये जावेंगे।

द्वितीय श्रेणीके स्थाई ग्राहक

(१) जो सज्जन मालासे निकलनेवाली सब पुस्तकें न लेना चाहें, अपने मनकी पुस्तकें लेना चाहें वे ऊपर लिखे नं० २ के प्रवेश फीस वाले ग्राहक हो सकते हैं। पर उन्हें वर्षभरमें कमसे कम २) मूल्यकी पुस्तकें जिस मालाके वे ग्राहक बनें उस मालाकी लेनी होगी।

नोट—आप जिस मालाके जिस श्रेणीके वार्षिक या प्रवेश फीस वाले ग्राहक बनना चाहें खूब स्पष्ट लिखें। दोनों मालाओंके बनना चाहें तो वैसा लिखें।

सस्ती साहित्य मालासे प्रकाशित पुस्तकें (प्रथम वर्ष)

(१) द० आफ्रिकाका सत्याग्रह (म० गांधी) पृष्ठ २७२ मूल्य ॥) (२) शिवाजीकी योग्यता-पृष्ठ १२२ मूल्य ।≈) (३) दिव्य जीवन पृष्ठ १३६ मूल्य ।≈) (४) भारतके स्त्री रत्न-पृष्ठ ४०१ मूल्य १≈) (५) व्यावहारिक सभ्यता-पृष्ठ १०८ मूल्य ।)॥ (६) आत्मोपदेश पृष्ठ ११२ मूल्य ।-)

सस्ती प्रकीर्णक पुस्तक मालासे प्रकाशित पुस्तकें (प्रथम वर्ष)

(१) कर्मयोग-पृष्ठ १५२ मूल्य ।≈) (२) सीताजीकी अग्नि-परीक्षा-पृष्ठ १२४ मूल्य ।-) (३) कन्या शिक्षा-पृष्ठ ९६ मूल्य ।) (४) यथार्थ आदर्श जीवन-पृष्ठ २६४ मूल्य ॥-) (५) स्वाधीनताके सिद्धान्त (टेरेन्स मेक्सविनी) पृष्ठ २०८ मूल्य ॥)

☞ स्थाई ग्राहकोंसे पिछले पृष्ठपर दिये हुए "पुस्तकोंका मूल्य" इसके अनुसार ही मूल्य लिया जायगा।

पता—सस्ता साहित्य प्रकाशक मंडल, अजमेर

क्या करें?

(प्रथम भाग)

महात्मा टाल्सटाय

वर्ष १] सस्ती-साहित्य-माला [पुस्तक ७

क्या करें ?

(प्रथम भाग)

महात्मा टाल्स्टाय की 'What shall we do then' का हिन्दी अनुवाद

अनुवादक—

क्षेमानन्द 'राहत'

प्रकाशक—

सस्ता-साहित्य-प्रकाशक मण्डल

अजमेर

प्रथम बार] १९२६. [मूल्य ॥=)

सजिल्द प्रति का मूल्य १)

॥=)॥

प्रकाशक—
जीतमल लूणिया, मंत्री
सस्ता-साहित्य-प्रकाशक मंडल, अजमेर

हिंदी प्रेमियों से अनुरोध

इस सस्ता-मंडल की पुस्तकों का विषय, उनकी पृष्ठ-संख्या और मूल्य पर ज़रा विचार कीजिये। कितनी उत्तम और साथ ही कितनी सस्ती हैं। मण्डल से निकली हुई पुस्तकों के नाम तथा स्थायी ग्राहक होने के नियम पुस्तक के अंत में दिये हुए हैं, उन्हें एकबार आप अवश्य पढ़ लीजिये।

* ग्राहक नम्बर

* यदि आप इस मंडल के ग्राहक हैं तो अपना नम्बर यहाँ लिख रखिये ताकि आपको याद रहे। पत्र देते समय यह नंबर ज़रूर लिखा करें।

मुद्रक
गणपति कृष्ण गुर्जर,
श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, काशी।

समर्पण

बहिन गोपी !

प्रेम-पूर्वक मैं यह पुस्तक तुम्हारे उन हाथों में समर्पित करता हूँ कि जिनमें, तुमने, एक बार तलवार पकड़ने की बात कह कर मेरी आँखों में ज्योति और हृदय में गुद्गुदी पैदा कर दी थी ! तुम्हारी वह बात मुझे कभी नहीं भूली।

उस दिन मैंने सोचा—कौन कहता है कि स्त्री असहाय है ? मैं मानता हूँ, प्यारी बहिन, कि तुम लोग शक्ति की खान हो, यदि बहिनें उठें तो तुम्हारी जैसी पवित्र बहिनों के भाई क्या कभी गिरे हुए रह सकते हैं ?

ऐ मेरी प्यारी प्यारी बहिन ! तुम्हें नमस्कार है। तुम जगो और जगा दो, अपने सोते हुए भाइयों को। आओ, हम सब भाई और बहिन मिलकर, माता के चरणों की पूजा करें और उसके दुःखों को दूर करने के लिये हँसते हँसते अपने को उसके ऊपर निसार कर दें।

तुम्हारा एक भाई—

क्षेमानन्द 'राहत'

लागत का ब्योरा

कागज़			४२०) रु०
छपाई ...	...	...	३५०) ,,
बाइंडिंग ...	...	...	६८) ,,
लिखाई, व्यवस्था, विज्ञापन आदि खर्च		...	४७२) ,,
			१३१०) रु०

कुल प्रतियाँ ३०००

लागत मूल्य प्रति संख्या ।≈)

मनोव्यथा

(श्री दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर)

Who touches this book, touches a man.

वाल्ट विटमन

यह किताब नहीं, मनुष्य का हृदय है।

प्रस्तावना का सामान्य उद्देश्य तो पुस्तक और उसमें वर्णित विषय का परिचय कराना ही होता है; परन्तु 'हम क्या करें?' यह पुस्तक नहीं बल्कि एक अत्यन्त समभावी हृदय का मन्थन है, जीवन-शुद्धि की रहस्य-भेदी शोध है और महावीर को भी शोभा दे ऐसा एक आर्य-सङ्कल्प है। थोड़े में कहिये तो कारुण्य, औदार्य, गाम्भीर्य, और माधुर्य की एक ओजस्वी रसायन है। इसका परिचय नहीं दिया जा सकता, इसकी उपासना होती है, इसका सेवन होता है।

टाल्स्टाय शक्तिशाली कला-विज्ञ थे। इनकी प्रत्येक कृति में औचित्य और प्रसाद-गुण तो होता ही है, पर हृदय को अस्वस्थ बना देने वाली समवेदना ही इनकी कला की विशेषता है। 'हम क्या करें'—यह टाल्स्टाय की सर्वोच्च कोटि की कृति समझी जाती है। जैसा शब्द-चित्रण, भाव-प्रदर्शन और लोक-जीवन का अवगाहन उपन्यासों में होता है वह सब इसमें है। फिर भी कला की दृष्टि से देखने पर इसमें औचित्य भङ्ग है, इसमें हीनता है, इसमें धर्म-जीवन का अपमान है। सीता का विलाप, द्रौपदी की भीड़, सती का चितारोहण यह प्रसङ्ग काव्य कला के लिये नहीं होते। ये तो जीवन को दीक्षा देने के लिये होते हैं। धर्म-पूत हृदय से ही हमें इनका दर्शन करना चाहिये। केवल कला की ही आँखें हों तो ऐसे प्रसङ्गपर उन्हें मींच लेना चाहिये।

टाल्स्टाय के वर्णित प्रसङ्ग काल्पनिक नहीं हैं, इनके द्वारा की हुई मीमांसा केवल 'तात्त्विक' नहीं है और इन्होंने जो जीवन में परिवर्तन

किया था वह भी क्षणिक न था। पुस्तक का प्रारम्भ तो मार्ग में भटकते हुए भिखारियों के सुख-दुःख से होता है पर इसका मुख्य विषय तो समस्त मानव-समाज का कल्याण है।

पुराणों में हम लोग पृथ्वी का भार बढ़ने की बातें सुनते हैं। क्या लोक-संख्या बढ़ने से पृथ्वी का भार बढ़ता होगा? या जंगलों की वृद्धि से अथवा हिमालय जैसा पहाड़ पानी में से उछर आने से? ऐसी बातों से तो पृथ्वी का भार बढ़ने का कोई कारण नहीं। पृथ्वी पर भार होता है आलस का, काहिली का, पाप का, अनाचार का, द्रोह का। टाल्स्टाय ने देखा कि आजकल पृथ्वी पर बहुत भार बढ़ रहा है, और यह असह्य हो रहा है; अब कोई न कोई उत्पात होगा। ज्वालामुखी फूट पड़ेगा अथवा दावानल प्रज्वलित होगा। यह दुःख किस प्रकार टले, इस महान विनाश से समाज कैसे बचे—इसी की विवेचना इसमें है।

इन्होंने देखा कि रूस में, युरोप में, सारे संसार में प्रतिष्ठित अकर्मण्य लोगों की संख्या बेहद बढ़ गई है—बढ़ती जाती है और किसी तरह भी रोके नहीं रुकती। इनका आमोद प्रमोद, इनकी वासनायें, इनके भोग भोगने के साधन बढ़ते ही जाते हैं। ये मस्तराम प्रजा का खून चूसे जा रहे हैं और बदले में समाज को कुछ देते नहीं। इतना ही नहीं, सरकारी जबरदस्ती और पैसे के जाल से प्रसित लोगों को सिर उठाने में भी असमर्थ बनाये दे रहे हैं, अपने मन को फुसलाने के लिये और दुनिया को बहलाने के लिये तरह तरह की फिलासफियों की रचना करते हैं, हमारी स्थिति जैसी होनी चाहिये वैसी ही है, इसी में सब का कल्याण है ऐसा सिद्ध करने के लिये कृत्रिम धार्मिक सिद्धान्तों का आविष्कार करते हैं, समाज-शास्त्र गढ़ते हैं और विज्ञान तथा कला को भ्रष्ट करते हैं। इन बातों को उखाड़ कर फेंक देना कुछ सहल बात नहीं है। विचारों को जन्म देने तथा उनका प्रचार करने का जिनका इजारा है ऐसे समस्त मनुष्य-समूह से—जिसमें हम लोग भी सम्मिलित हैं—यह अभिमन्यु

जैसा अ-समान युद्ध—एकाकी युद्ध है। परन्तु टालस्टाय की लेखन-शक्ति और हरिश्चन्द्र के समान अटल श्रद्धा इस नाम को लक्ष्य तक पहुँचाने के योग्य ही निकली। वह जानते थे दुनियादार अक्लमन्द लोग चाहे कितने ही क्यों न हों फिर भी उनका बल अपर्याप्त है और हम खुद अकेले ही हों तब भी सत्य स्वरूप जगदीश के साथ होने से हमारा बल पर्याप्त है।

और टाल्स्टाय ने पृथ्वी का भार हलका करने का उपाय भी कैसा बताया? सनातन काल से जो उपाय बताया गया है, वही—'त्यक्तेन भुञ्जीथाः। मागृधः कस्यस्विद्धनम्' टाल्स्टाय ने यह उपाय केवल किताब लिख कर ही बताया हो सो बात नहीं पर स्वयं सब कुछ त्याग कर अकिञ्चन बन कर यथा-शक्ति अपरिग्रह व्रत का पालन करके और अन्त में महा-अभिनिष्क्रमण करके लोगों को रास्ता दिखाया।

टाल्स्टाय की कीर्ति योरप में खूब बढ़ी चढ़ी थी। इनकी साहित्य कला के ऊपर योरप न्योछावर हो रहा था। पर जब टाल्स्टाय ने निष्पाप जीवन व्यतीत करने के लिये सर्वस्व छोड़ा तब योरप में हाहाकार मच गया। नट, विदूषक और गणिका के रूप में प्रसिद्ध बने बैठे लोगों को तो ऐसा लगा कि कला की हत्या हो गई! टाल्स्टाय ने कला की मर्यादा छोड़ दी! सत्य में प्रवेश किया! 'अति सर्वत्र वर्जयेत'—कला का यह सर्वोच्च नियम भङ्ग किया। कला ही जीवन सर्वस्व है, ऐसा मानने वाले लोगों को भास हुआ कि टाल्स्टाय जीवन के प्रति बेवफ़ा निकला। पशु के साथ जो अपनी समानता है उसे छोड़ने से हम संकुचित ही तो हो जायँगे? पर सच्चे जीवन-कलाविदों ने देखा कि टाल्स्टाय के हाथ से कला कृतार्थ ही हुई है।

कितनों ही ने तो यह निदान निकाला कि टाल्स्टाय ने जब से मांसाहार छोड़ा तभी से उसकी कला का आवेश धीमा पड़ गया और प्रतिभा क्षीण हो गई। संसार-सुधार का मार्ग छोड़ कर उसने जंगली पन को ही आदर्श मान लिया। इस प्रकार के अनेक आक्षेपों का टाल्स्टाय

किया था वह भी क्षणिक न था। पुस्तक का प्रारम्भ तो मार्ग में भटकते हुए भिखारियों के सुख - दुःख से होता है पर इसका मुख्य विषय तो समस्त मानव-समाज का कल्याण है।

पुराणों में हम लोग पृथ्वी का भार बढ़ने की बातें सुनते हैं। क्या लोक-संख्या बढ़ने से पृथ्वी का भार बढ़ता होगा? या जंगलों की वृद्धि से अथवा हिमालय जैसा पहाड़ पानी में से उछर आने से? ऐसी बातों से तो पृथ्वी का भार बढ़ने का कोई कारण नहीं। पृथ्वी पर भार होता है आलस का, काहिली का, पाप का, अनाचार का, मोह का। टाल्स्टाय ने देखा कि आजकल पृथ्वी पर बहुत भार बढ़ रहा है, और वह असह्य हो रहा है; अब कोई न कोई उत्पात होगा। ज्वालामुखी फूट पड़ेगा अथवा दावानल प्रज्वलित होगा। यह दुःख किस प्रकार टले, इस महान विनाश से समाज कैसे बचे—इसी की विवेचना इसमें है।

इन्होंने देखा कि रूसमें, युरोप में, सारे संसार में प्रतिष्ठित अकर्मण्य लोगों की संख्या बेहद बढ़ गई है—बढ़ती जाती है और किसी तरह भी रोके नहीं रुकती। इनका आमोद प्रमोद, इनकी वासनायें, इनके भोग भोगने के साधन बढ़ते ही जाते हैं। ये मस्तराम प्रजा का खून चूसे जा रहे हैं और बदले में समाज को कुछ देते नहीं। इतना ही नहीं, सरकारी जबरदस्ती और पैसे के जाल से ग्रसित लोगों को सिर उठाने में भी असमर्थ बनाये दे रहे हैं, अपने मन को फुसलाने के लिये और दुनिया को बहलाने के लिये तरह तरह की फिलासफियाँ की रचना करते हैं; हमारी स्थिति जैसी होनी चाहिये वैसी ही है, इसी में सब का कल्याण है ऐसा सिद्ध करने के लिये कृत्रिम धार्मिक सिद्धान्तों का आविष्कार करते हैं, समाज-शास्त्र गढ़ते हैं और विज्ञान तथा कला को भ्रष्ट करते हैं। इन बातों को उखाड़ कर फेंक देना कुछ सहल बात नहीं है। विचारों को जन्म देने तथा उनका प्रचार करने का जिनका इजारा है ऐसे समस्त मनुष्य-समूह से—जिसमें हम लोग भी सम्मिलित हैं—यह अभिमन्यु

जैसा अ-समान युद्ध—एकाकी युद्ध है। परन्तु टाल्स्टाय की लेखन-शक्ति और हरिश्चन्द्र के समान अटल श्रद्धा इस नाम को लक्ष्य तक पहुँचाने के योग्य ही निकली। वह जानते थे दुनियादार अक्लमन्द लोग चाहे कितने ही क्यों न हों फिर भी उनका बल अपर्याप्त है और हम खुद अकेले ही हों तब भी सत्य स्वरूप जगदीश के साथ होने से हमारा बल पर्याप्त है।

और टाल्स्टाय ने पृथ्वी का भार हलका करने का उपाय भी कैसा बताया? सनातन काल से जो उपाय बताया गया है, वही—'त्यक्तेन भुञ्जीथाः। मागृधः कस्यस्विद्धनम्' टाल्स्टाय ने यह उपाय केवल किताब लिख कर ही बताया हो सो बात नहीं पर स्वयं सब कुछ त्याग कर अकिञ्चन बन कर यथा-शक्ति अपरिग्रह व्रत का पालन करके और अन्त में महा-अभिनिष्क्रमण करके लोगों को रास्ता दिखाया।

टाल्स्टाय की कीर्ति योरप में खूब बढ़ी चढ़ी थी। इनकी साहित्य कला के ऊपर योरप न्योछावर हो रहा था। पर जब टाल्स्टाय ने निष्पाप जीवन व्यतीत करने के लिये सर्वस्व छोड़ा तब योरप में हाहाकार मच गया। नट, विदूषक और गणिका के रूप में प्रसिद्ध बने बैठे लोगों को तो ऐसा लगा कि कला की हत्या हो गई! टाल्स्टाय ने कला की मर्यादा छोड़ दी! सत्य में प्रवेश किया! 'अति सर्वत्र वर्जयेत'—कला का यह सर्वोच्च नियम भङ्ग किया। कला ही जीवन सर्वस्व है, ऐसा मानने वाले लोगों को भास हुआ कि टाल्स्टाय जीवन के प्रति बेवफ़ा निकला। पशु के साथ जो अपनी समानता है उसे छोड़ने से हम संकुचित ही तो हो जायँगे? पर सच्चे जीवन-कलाविदों ने देखा कि टाल्स्टाय के हाथ से कला कृतार्थ ही हुई है।

कितनों ही ने तो यह निदान निकाला कि टाल्स्टाय ने जब से मांसाहार छोड़ा तभी से उसकी कला का आवेश धीमा पड़ गया और प्रतिमा क्षीण हो गई। संसार-सुधार का मार्ग छोड़ कर उसने जंगली पन को ही आदर्श मान लिया। इस प्रकार के अनेक आक्षेपों का टाल्स्टाय

ने इस पुस्तक में ज़बरदस्त निराकरण किया है। किन्तु—'लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणं किं करिष्यति ?' तटस्थ रह कर विचार करने वाला टाल्स्टाय का चरित्र-लेखक मॉड ठीक ही कहता है कि टाल्स्टाय के सिद्धान्तों के विरुद्ध लिखना और कहना तो अभी तक किसी को सूझा ही नहीं। जो निकलता है सो यही कहता है कि टाल्स्टाय का कथन लोक-विचक्षण है—इनका उपदेश आचरण में डालने योग्य नहीं है, टाल्स्टाय जो चाहते हैं वैसा करने से तो यही अव्यवस्था मच जायेगी।" पर इसका प्रतिवाद करने वाले जो असंख्य पवित्र जीवनप्रद लोग प्रत्यक्ष देखते हैं उनका विचार ही नहीं करते। मनुष्य ऐसा समझ बैठता है कि जो सुधार हम से नहीं हो सकता वह सभी मनुष्यों के लिये अशक्य होगा। टाल्स्टाय का दृढ़ विश्वास है कि जिस प्रकार लोगों ने गुलामी की प्रथा को उड़ा दिया है उसी प्रकार धन और सत्ता की यह प्रथा भी अवश्य ही उड़ जायगी। सरकार, जायदाद, पैसा, आलसी लोग और इनका दौरदौरा कायम रखने तथा गरीबों को कुचल डालने के लिये खड़ी की हुई सेनायें—यह सब मनुष्य की ही निर्माण की हुई आपत्तियाँ हैं। निष्पाप तथा समृद्ध जीवन व्यतीत करने के लिये इनमें से एक संस्था की भी जरूरत नहीं। बुद्धिमान मनुष्य को सादगी से रहते हुए समाज की अधिक सेवा करनी चाहिये। अधिक ऐशो आराम में रहना और जोंक की तरह समाज का लोहू पीना बुद्धिमान के लिये योग्य नहीं है—इसी एक मुख्य तत्व को टाल्स्टाय ने इस पुस्तक में समझाने का उद्योग किया है। विज्ञान और कला से उनका कहना है कि जिनका नमक खाकर तुम जीते हो उनका ही तिरस्कार करके तुम जीवित नहीं रह सकते। प्रजा की कुछ तो सेवा करो। अरे कुछ नहीं तो असेवा करते तो लजाओ !

टाल्स्टाय का यह धर्म प्रबोध लोगों को पसन्द न आया और परिणाम यह हुआ कि इसी पुस्तक में टाल्स्टाय ने स्पष्ट शब्दों में जो चेतावनी दी थी वह आज तीस वर्ष के अन्दर बिल्कुल सत्य निकली। मज़दूर दल

का धैर्य छूटा, प्रजाक्षोभ छूटा और प्रजा के ही कंधे पर बैठकर प्रजा को लात मारने वाला वर्ग भुरकुस हो गया।

फिर भी गरीबों का दुःख दूर नहीं हुआ। हिंसा का दुःख क्या हिंसा से मिटेगा? लोहू से सना हुआ हाथ क्या लोहू से धोने से साफ़ हो सकेगा?

टाल्स्टाय का उपदेश रूस की बनिस्बत हिन्दुस्तान को अधिक लागू होता है। जब तक प्रजा का बोझ हल्का नहीं होता और जबरदस्ती का दौरदौरा मिटता नहीं तब तक देश की राजनैतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक उन्नति हो ही नहीं सकती। यह बात, देश का ख्याल रखने वाले मनुष्यों के हृदय में, यह पुस्तक पढ़ते समय, आये बिना रहती नहीं। पैसा यह अज्ञात जबरदस्ती का बड़े से बड़ा वाहन है, यह मान लेने के पश्चात् हिन्दुस्तान का प्रश्न अधिक स्पष्ट हो जायेगा।

यदि कोई ऐसा समझता हो कि हिन्दोस्तान में रूस की तरह उत्पात् होही नहीं सकता तो यह उसकी भूल है। साथ ही यह भी ठीक है कि रूस जैसा विस्फोट हिन्दुस्तान में भी होगा ही ऐसी बात भी नहीं है। हिन्दुस्तान में संत-फकीरों का राज्य अन्य देशों की अपेक्षा अधिक फैला हुआ है। हमारी बुद्धि कितनी ही भ्रष्ट क्यों न हो गई हो पर आज भी अपने हाड़ में द्रोह नहीं है, हिंसा नहीं है। अपने आद्य आचार्यों ने शारीरिक श्रम का महत्व समझाया है। परिश्रम छोड़ने से सत्य की हानि होती है। मनुष्य अथवा पशु के कन्धे पर बैठ कर की हुई जीवन-यात्रा निष्फल है, पातक है, यह हम जानते हैं।

यल्लभसे निज कर्मोपात्तं वित्तं तेन विनोदय चित्तं।

अर्थमनर्थं भावय नित्यं, मूढ़ जहीहि धनागमतृष्णां॥

यह उपदेश अभी केवल पोथी का बन्द कीड़ा ही नहीं है। रुपया पैसा यह खराब मैली चीज़ है यह बात भी टाल्स्टाय ने नई नहीं कही है।

द्रव्यं तु मुदितं स्पृष्ट्वा त्रिरात्रेण शुचिर्भवेत्।

ऐसे ऐसे वचन अपने यहाँ पड़े हुए हैं। पर हम लोगों ने यह सब

धर्म-तत्व साधु संन्यासियों के सुपुर्द कर दिये और धर्म को अपने से दूर रक्खा। पर धर्म टालने से क्या टलने वाला था? मछली के लिये जैसा जल है वैसा ही मनुष्य के लिये धर्म है। राजी खुशी न समझेंगे तो मजबूर हो कर तो समझना पड़ेगा। पाप कुछ सिक्कों में—सफेद या पीली चमकती हुई मिट्टी के गोल टुकड़ों में नहीं बल्कि समाज के हृदय में होता है, यह ठीक है। फिर भी आज यह सिक्के लोभी निर्दय और ज़बरदस्त लोगों के हाथ के अस्त्र-शस्त्र बन गये हैं, यह बात कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। टालस्टाय का कहना है कि नीरोग मनुष्य को दवा की जितनी आवश्यकता होती है बस उतनी ही निष्पाप जीवन व्यतीत करने वाले समाज को रुपये की जरूरत हो सकती है।

पर टालस्टाय की यह पुस्तक? यह बहुत ही खराब किताब है। यह अपने को जागृत करती है, अस्वस्थ करती है, धर्मभीरु बनाती है। यह पुस्तक पढ़ने के बाद भोगविलास तथा आनन्दोल्लास में पश्चात्ताप का कड़वा कंकड़ पड़ जाता है। अपना जीवन सुधारने पर ही यह मनोव्यथा कुछ कम होती है। और जो इन्सानियत का ही गला घोंट दिया जाये तब तो कोई बात ही नहीं।

इस पुस्तक का पढ़ना सरल नहीं है। यह संस्कारी अथवा सात्विक वृत्ति वाले मनुष्य को अन्त तक न छोड़े ऐसी है। योरोपीय समाज को लक्ष्य में रख कर लिखे जाने के कारण ईसाइयों की तौरेत तथा इन्जील में से खूब उदाहरण दिये गये हैं। कॉन्ट, हेगल, वॅगनर आदि पाश्चात्य दार्शनिकों और कला-कोविदों की मीमांसा आती है, इन सब बातों को समझना ज़रा मुश्किल तो जरूर है पर भाषान्तरकार योग्य * मिलने से बहुत सी मुश्किलें दूर हो गई हैं। गुजरात आज अपने साधु-सन्तों की अपेक्षा अपनी द्रव्यार्जन शक्ति पर घमण्ड करती हो तो गुजरात को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये। कुछ तो विचार करना ही पड़ेगा।

* गुजराती भाषान्तरकार के लिये यह लिखा गया है।

"क्या करें ?"

[लेखक—महात्मा टाल्स्टाय]

'क्या करें' ?

और लोग उनसे पूछने लगे कि फिर हम करें क्या ?

उन्होंने उत्तर दिया—जिसके पास दो कोट हैं वह एक कोट उसे दे दे कि जिसके पास एक भी नहीं है और जिसके पास भोजन है वह भी ऐसा ही करे।

❀ ❀ ❀ ❀

इस पृथ्वी पर अपने लिये धन जमा मत करो क्योंकि काई और कीड़े उसे नष्ट कर देते हैं अथवा चोर उसे चुरा ले जाते हैं।

किन्तु तुम अपने लिये स्वर्ग में धन जमा करो कि जहाँ न काई लगती है और न कीड़े खाते हैं और न चोर ही दरवाजा तोड़ कर उसे चुरा ले जा सकते हैं।

फिर, जहाँ तुम्हारा धन होगा, वहीं तुम्हारा दिल भी रहेगा।

❀ ❀ ❀ ❀

आँख शरीर का दीपक है; इसलिये यदि तुम्हारी आँख स्थिर है तो तुम्हारा सारा शरीर प्रकाश से पूर्ण होगा।

किन्तु यदि तुम्हारी आँख में बुराई है तो तुम्हारे शरीर भर में अन्धकार का साम्राज्य होगा और यदि तुम्हारी अन्तरज्योति

ही तिमिरावृत्त है तब तो फिर तुम्हारे अन्दर कितना गहरा अन्धकार होगा ?

❀ ❀ ❀ ❀

कोई भी दो मालिकों की नौकरी कर नहीं सकता क्योंकि या तो वह एक से घृणा करेगा और दूसरे से प्रेम या वह एक की सेवा करेगा और दूसरे की उपेक्षा। तुम ईश्वर और माया दोनों के होकर नहीं रह सकते !

❀ ❀ ❀ ❀

इसीलिये मैं तुमसे कहता हूँ कि अपने जीवन में यह चिन्ता मत करो कि मैं क्या खाऊँगा और क्या पिऊँगा और न शरीर के लिये यह सोचो कि इसे क्या पहिनाऊँगा ! क्या जीवन स्वयं ही भोजन से बढ़कर और काया कपड़ों से अधिक मूल्यवान् नहीं है ?

❀ ❀ ❀ ❀

बस तुम ईश्वर के राज्य और उसके धर्म-मार्ग की ही खोज करो और बाकी ये सब चीजें तुम्हें स्वयं ही मिल जायेंगी।

❀ ❀ ❀ ❀

सुई के नकुए में से ऊँट का निकल जाना तो सम्भव है किन्तु अमीर आदमी के लिये स्वर्ग में प्रवेश करना असम्भव है ।

(१)

जीवन का अधिकांश भाग देहात में व्यतीत करने के बाद आखिरकार सन् १८८१ में मास्को में निवास करने के लिये मैं आया और उस नगर की हद से बढ़ी हुई दरिद्रता को देख कर मैं दुःखित और चकित हुआ। वैसे तो देहात के ग़रीब आदमियों के कष्टों से मैं भली भाँति परिचित था किन्तु मुझे इसका ज़रा भी ख्याल न था कि नगरों में उनकी कैसी दुर्दशा है।

मास्को की किसी भी सड़क से कोई मनुष्य गुज़रे, उसे एक विचित्र प्रकार के भिखारी मिलेंगे जो उन भिखारियों से बिलकुल भिन्न होंगे कि जो झोली लेकर क्राइस्ट के नाम पर देहातों में भीख माँगते हैं। मास्को के भिखारी न तो झोली लेकर चलते हैं और न भीख माँगते हैं। प्रायः जब वे किसी से मिलते हैं तो उसकी आँख से आँख मिलाने की कोशिश करते हैं और उसके मुख का भाव देख कर उसके अनुसार व्यवहार करते हैं।

मैं इस प्रकार के एक भिखारी को जानता हूँ—वह एक दिवालिया सद्गृहस्थ है। वह वृद्ध है, धीरे २ चलता है और दोनों पैरों से लँगड़ाता है। जब कोई पास से निकलता है तो वह लँगड़ा कर चलता है और सलाम करता है। यदि जाने वाला ठहर जाता है तो वह अपनी टोपी उतार लेता है फिर झुक कर सलाम करता है और माँगता है। यदि वह आदमी नहीं ठहरता है तब कुछ नहीं वह केवल लँगड़ाने का बहाना करता है और उसी तरह लँगड़ाता हुआ

चलता रहता है। यह मास्को के एक असली और अनुभवी भिक्षुक का नमूना है।

पहिले तो मैं यह समझ ही नहीं सका कि ऐसे भिक्षुक खुले तौर पर क्यों नहीं माँगते। किन्तु पीछे मुझे यह मालूम हुआ हालां कि उसका कारण नहीं समझ पाया। एक दिन मैंने देखा कि एक पुलिस का सिपाही एक फटे कपड़े वाले आदमी को जिसका बदन सूजा हुआ है तांगे में बिठाये लिये जा रहा है। मैंने जब पूछा कि इसने क्या किया है तब पुलिस वाले ने कहा—

'भीख माँगता था।'

मैंने पूछा—'तो क्या भीख माँगना मना है ?'

उसने उत्तर में कहा—'ऐसा ही मालूम होता है।' पुलिसवाला उसको लिये जा रहा था। मैं भी एक किराये की गाड़ी करके उसके पीछे हो लिया। मैं यह मालूम करना चाहता था कि क्या भीख माँगना वास्तव में मना है और यदि है तो क्यों ? मेरी तो यह समझ ही में नहीं आता था कि यह किस तरह सम्भव हो सकता है कि किसी आदमी से कुछ माँगना वर्जित करा दिया जाय और खास कर एक यह सन्देह मेरे मन में था कि जिस नगर में इतने भीख माँगने वाले हैं वहाँ भीख माँगना नियम-विरुद्ध कैसे हो सकता है ?

मैं कोतवाली के अन्दर गया कि जहाँ उस भिक्षुक को सिपाही ले गया था। मेज के पास बैठे हुए एक कर्मचारी से जो तलवार और तमंचे से सज्जित था, मैंने पूछा कि यह क्यों गिरफ्तार किया गया है। उस कर्मचारी ने तेजी से मेरी ओर देख कर कहा—'तुम्हें इससे क्या मतलब ?' किन्तु शायद यह समझ कर कि कुछ

जवाब देना जरूरी है उसने कहा—'सरकार का हुक्म है कि ऐसे लोगों को गिरफ्तार कर लिया जाय। इसीलिये मैं समझता हूँ कि ऐसा करना जरूरी है।'

मैं चला आया। पुलिस वाला जो उस आदमी को पकड़ कर लाया था एक कोठरी की खिड़की में बैठा हुआ अपनी नोट बुक देख रहा था। मैंने उससे कहा—

'क्या वास्तव में यह सच है कि गरीब आदमियों को ईसा-मसीह के नाम पर माँगने की इजाजत नहीं हैं?'

वह आदमी चौंका, मानों नींद से जगा हो, उसने एक बार घूर कर मेरी ओर देखा और फिर गहरी लापरवाही के साथ खिड़की की चौखट पर जमकर कहा—

'सरकार की ऐसी ही आज्ञा है और इसलिये ऐसा करना जरूरी है।'

चूँकि वह फिर अपनी नोट बुक पढ़ने में मग्न हो गया, मैं नीचे उतर कर अपनी गाड़ी के पास चला आया।

गाड़ी वाले ने पूछा—'क्यों, क्या उसे बन्द कर दिया?' मालूम होता था उसे भी कुछ दिलचस्पी थी।

मैंने कहा—'हाँ, उन्होंने बन्द कर दिया है।' सुन कर गाड़ीवान ने सिर हिलाया।

मैंने पूछा—'तो क्या मास्को में भीख माँगना वर्जित है?

'नहीं, मैं बता नहीं सकता'—उत्तर में उसने सिर्फ इतना ही कहा।

मैंने फिर कहा—'किन्तु ईसामसीह के नाम पर भीख माँगने से किसी को क़ैद कैसे किया जा सकता है?'

उसने उत्तर दिया—'आजकल स्थिति बदल गई है, बस मतलब यह है कि वह मना है।'

तब से मैंने अक्सर पुलिस वालों को भिखारियों को पकड़ कर कोतवाली और वहाँ से कारखाने ले जाते हुए देखा। एक दिन तो मैंने इन दीन जीवों की टोली की टोली देखी, कुल मिला कर लगभग ३० आदमी थे और उनके आगे और पीछे सिपाही थे। मैंने पूछा—'क्या बात है ?'

जवाब मिला—'भीख माँगते थे।'

ऐसा प्रतीत होता है कि नियम के अनुसार मास्को में भीख माँगना वर्जित है यद्यपि सड़कों पर भिखारियों की बड़ी संख्या दिखाई पड़ती है और पूजा के समय, गिरजाघरों के सामने, उनकी क़तार की क़तार होती है, खास कर श्मशान यात्रा के अवसर पर। लेकिन यह क्या बात है कि कुछ तो पकड़ कर क़ैद कर दिये जाते हैं और बाकी आज़ाद फिरते रहते हैं ? मैं इस बात का पता न लगा सका। या तो क़ानूनी और ग़ैरक़ानूनी दो तरह के भिखारी होते हैं या उनकी संख्या इतनी बढ़ी हुई है कि सबको गिरफ्तार करना असम्भव है या शायद यह बात है कि कुछ लोग पकड़े जाते हैं तो दूसरे उनकी जगह पैदा हो जाते हैं।

मास्को में भिखारियों की कई श्रेणियाँ हैं। कुछ तो ऐसी हैं कि जिनका पेशा ही भीख माँगना है। कुछ ऐसी भी हैं कि जो सचमुच ही नितान्त कंगाल हैं, किसी तरह मास्कोमें आ पड़ी हैं और वास्तव में बड़ी मुसीबत में हैं।

पिछली श्रेणी में वह स्त्री और पुरुष हैं कि जो गाँवों से आये हुए दीखते हैं। मैं कई बार इनसे मिला हूँ। कुछ लोग ऐसे थे कि

जो बीमार पड़ गये थे और अच्छे हो जाने पर अस्पताल छोड़ने के बाद उनके पास न तो खाने को कुछ था और न मास्को से चले जाने का साधन और उनमें से कुछ को तो शराब पीने की भी चाट पड़ गई थी। कुछ तन्दुरुस्त थे पर घर से निकाल दिये गये थे या अति वृद्ध थे या बच्चों वाली विधवा अथवा परित्यक्ता स्त्रियाँ थीं और कुछ तो खूब हृष्ट पुष्ट और हर तरह से काम करने लायक़ थे।

इन हृष्ट-पुष्ट लोगों से मुझे खास दिलचस्पी पैदा हो गई थी। इसलिये और भी अधिक कि मास्को में आने के बाद व्यायाम के लिये स्पैरो पहाड़ी पर जाने की मेरी आदत सी पड़ गई थी और मैं वहाँ लकड़ी चीरने वाले कृषकों के साथ काम भी करता था। यह लोग ठीक उन भिखारियों की तरह थे कि जो प्रायः मुझे सड़कों पर मिलते थे। एक का नाम पीटर था, वह कालूंगा का रहने वाला था और सैनिक रह चुका था। दूसरे का नाम साइमन था और वह लादिमीर प्रान्त का था। पहिने हुए कपड़ों के सिवा उनके पास कुछ न था, खूब मेहनत करने पर प्रतिदिन उन्हें चालीस पैंतालीस कोपक अर्थात् ८ या ९ शिलिंग मिलते थे। इसमें से वे कुछ बचत कर लेते थे—कालूंगा का सिपाही तो गरम कोट खरीदना चाहता था और लादिमीर का कृषक गाँव को वापिस जाने का इरादा करता था।

इसी तरह के ग्रामवासियों को सड़क पर भीख माँगते देख कर मेरा ध्यान इनकी ओर विशेष रूप से आकर्षित हुआ और मेरे मन में यह कौतूहल हुआ कि ये लोग भीख क्यों माँगते हैं जब कि ये दोनों काम करते हैं ?

जब कभी मैं इस प्रकार के भिक्षुक से मिलता तो मैं पूछता कि उसकी यह दशा कैसे हुई ? एक बार मैं एक बलिष्ठ और स्वस्थ कृषक से मिला जो भीख माँगता था। मैंने उससे पूछा तुम कौन हो और कहाँ से आये हो ?

उसने बताया कि काम की तलाश में वह कालूंगा से आया था। पहिले तो उसे ईंधन चीरने का कुछ काम मिल गया, लेकिन जब काम खत्म हो गया तो उसने और उसके साथी ने बहुत ढूंढा पर दूसरा कोई काम न मिला। उसका साथी उसे छोड़कर चला गया और उसके पास जो कुछ था वह उदर-पूर्ति के लिये बेच डाला। यहाँ तक कि अब उसके पास लकड़ी चीरने का सामान खरीदने तक के लिये कुछ न था।

आरा खरीदने के लिये मैंने उसे रुपया दिया और काम के लिये स्थान भी बता दिया। पीटर और साइमन से मैंने पहिले ही कह रक्खा था कि एक आदमी को वह रख लें और उसके लिये एक साथी तलाश कर लें।

चलते समय मैंने उससे कहा—'देखो आना जरूर ! करने के लिये वहाँ काम बहुत है'।

'विश्वास रखिये, मैं अवश्य आऊँगा। क्या आप समझते हैं कि इस तरह दर दर भीख माँगते फिरने में मुझे कोई आनन्द आता है जब कि मैं काम कर सकता हूँ ?'

उस आदमी ने आने का पक्का वादा किया था; वह ईमान्दार मालूम पड़ता था और सचमुच ही काम करने के लिये तैयार था।

दूसरे दिन जब मैं अपने मित्र पीटर और साइमन के पास गया, तो उनसे पूछा कि क्या वह आदमी आया था। उन्होंने

कहा, नहीं आया और सचमुच वह नहीं आया था। इस तरह मैंने कई बार धोखा खाया।

मुझे कुछ ऐसे लोगों ने भी ठगा कि जिन्होंने मुझ से कहा कि घर जाने के लिये टिकट खरीदने भर के लिये रुपये की जरूरत है। मैंने उन्हें रुपया दिया किन्तु कुछ दिनों बाद फिर मुझे वे सड़कों पर मिले। उनमें से बहुतों को तो मैं अच्छी तरह जान गया था और वे भी मुझे पहचानते थे। लेकिन कभी भूल से वे मेरे पास आते और फिर वही झूठा किस्सा दुहराते, लेकिन मुझे पहचान कर उलटे पाँव चले जाते।

इस तरह मैंने देखा कि इस श्रेणी के लोगों में भी बहुत से धूर्त हैं। किन्तु ये कंगाल धूर्त भी बहुत ही दयनीय अवस्था में थे। वे सब भूखे और फटे चीथड़े पहने थे और उन्हीं तरह लोगों में से थे कि जो सर्दी से ठिठुर कर सड़क पर मरे हुए मिलते हैं, या जीवन की इस दुर्दशा से बचने के लिये फाँसी लगा कर मर जाते हैं जैसा कि बहुधा समाचारपत्रों में हम पढ़ते हैं।

जब कभी मैं नगर के लोगों से इस बीभत्स दरिद्रता का जिक्र करता कि जो उनके चारों ओर फैली हुई थी, तो वे सदा यही उत्तर देते–ओह तुमने अभी देखा ही क्या है ? यदि तुम असली भिखारियों के 'सुनहले मण्डल' को देखना चाहते हो तो जरा खित्रोफ मार्केट में जाकर वहाँ की स्थिति को देखो।

मेरे एक मसखरे मित्र ने संशोधन पेश करते हुए कहा कि इन भिखारियों की संख्या इतनी बढ़ गई है कि उसे 'सुनहला मण्डल' न कह कर 'सुनहला दल' कहा जा सकता है।

मेरे हास्यप्रिय मित्र का कथन सत्य था। पर उनका कथन सत्य के और भी निकट होता यदि वे कहते कि मास्को में इन लोगों का मण्डल नहीं, दल भी नहीं बल्कि एक पूरी सेना की सेना है–और यह सेना, मेरा ख्याल है, लगभग पचास हजार लोगों की है।

नगर निवासी जब मुझ से शहर की गरीबी का जिक्र करते तो उन्हें कुछ हर्ष या अभिमान सा होता हुआ दिखाई देता था। और वह शायद इसलिये कि उनके मन में यह भावना पैदा होती कि वे वस्तुस्थिति से इतने अधिक परिचित हैं। मुझे याद है, जब मैं लंडन गया था तो वहाँ के नागरिक भी अपने नगर की दरिद्रता का वर्णन करते समय एक प्रकार का सन्तोष सा अनुभव करते थे मानो यह कोई गर्व की बात हो।

जिस दरिद्रता के सम्बन्ध में, मैंने इतनी बातें सुनी थीं उसे

आँख से देखने की मेरी इच्छा थी। कई बार मैं खित्रोफ हाट की ओर चला भी, किन्तु हर दफा लज्जा और पीड़ा की सी अनुभूति का मुझे अनुभव हुआ। मेरे अन्तर में किसी ने कहा—'जिन्हें तुम सहायता नहीं पहुँचा सकते उनके कष्टों को देखने क्यों जाते हो?' इसके उत्तर में आवाज आई—'जब तुम यहाँ रहते हो और नागरिक जीवन की सभी सुन्दर और आनन्दप्रद बातों को देखते हो तो जाकर उन बातों को भी देखो कि जो दुःख-प्रद हैं।'

बस एक दिन दिसम्बर मास में जब कि खूब सर्दी थी और तेज हवा चल रही थी मैं नगर की दरिद्रता के केंद्र—खित्रोफ मार्केट की ओर गया। वह छुट्टी का नहीं; काम काज का दिन था और शाम के चार बजे थे। मैंने दूर से ही देखा कि अनेकों आदमी विचित्र कपड़े पहने हुए हैं—स्पष्ट ही मालूम होता था कि वे कपड़े उनके लिये नहीं बनाये गये थे—और उनके जूते तो और भी विचित्रतापूर्ण थे। उनके चेहरे कान्तिहीन और रोग की छाया से ग्रसित थे और सभी की मुखाकृति से ऐसा मालूम होता था कि उनके चारों ओर जो कुछ हो रहा है उससे वे बिल कुल उदासीन हैं—उससे मानो उन्हें कुछ मतलब ही नहीं।

इनकी वेश-भूषा इतनी विचित्र और नितान्त बेढंगी होने पर भी वह सब के सब निश्चिन्त भाव से एक ही ओर को चले जा रहे थे। उन्हें इस बात का तो जरा भी ख्याल होता दिखाई न देता था कि उनके विचित्र वेष को देख कर लोग अपने मन में क्या कहेंगे। मुझे रास्ता मालूम न था, फिर भी मैंने पूछा नहीं। बस, इन लोगों के पीछे चलता रहा और खित्रोफ बाजार में जा पहुँचा। वहाँ पहुँच कर मैंने देखा कि बहुत सी स्त्रियाँ भी वैसी ही

बेहूदी पोशाकें पहिने हुए हैं। उनकी टोपी, लबादे, बण्डी, और बूट आदि फटे हुए हैं लेकिन फिर भी वे निसङ्कोच भाव से बैठी हुई थीं, इधर उधर घूमती थीं, सौदा करती थीं और एक दूसरे को गालियाँ देती थीं—इनमें तरुणी और वृद्धा सभी तरह की स्त्रियाँ थीं।

मालूम होता था कि बाजार का समय खत्म हो गया था; क्योंकि वहाँ अधिक लोग न थे और जो थे उनमें से अधिकांश बाजार में से हो कर पहाड़ी पर जा रहे थे। मैं भी उनके पीछे हो लिया। मैं ज्यों ज्यों आगे बढ़ता था उसी एक सड़क पर जाने वाले लोगों की संख्या बढ़ती जाती थी। बाजार से निकल कर मैं एक गली में आया तो मुझे दो स्त्रियाँ मिलीं। उनमें एक जवान थी और दूसरी बूढ़ी। दोनों भूरे रंग के कुछ फटे कपड़े पहने हुए थीं। वे चलती जाती थीं और किसी काम के सम्बन्ध में बात-चीत करती जाती थीं।

प्रत्येक बात के साथ एक न एक वाहियात शब्द भी वे अवश्य बोलती थीं। नशे में कोई भी न थी पर दोनों को अपने २ काम की धुन थी। आने जाने वाले लोग तथा आगे पीछे चलने वाले उनकी बातों पर ज़रा भी ध्यान न देते; पर मेरे कानों को तो वह बड़ी ही विचित्र और कटु मालूम होती थीं। मालूम होता है, उस तरफ के लोगों की बातचीत का ढङ्ग ही यही था। भीड़ के कुछ लोग तो बाईं तरफ के मकानों में घुस गये और बाकी लोग पहाड़ी पर चढ़ कर एक बड़े मकान की ओर जा रहे थे। मेरे साथ जो लोग चल रहे थे उनमें से अधिकांश तो इस मकान में चले गये। इस मकान के आगे तरह तरह के आदमी थे, कुछ

खड़े थे कुछ बैठे थे। कुछ तो फुट-पाथ पर थे और कुछ खुली हुई जगह में जहाँ बर्फ पड़ रही थी।

द्वार के दाहिनी तरफ स्त्रियाँ थीं और बाईं ओर थे पुरुष। मैं कभी तो आदमियों के पास से होकर निकला और कभी औरतों के पास से कि जो सैकड़ों की संख्या में थीं और जहाँ पर यह भीड़ समाप्त होती थी वहीं जाकर मैं ठहर गया। जिस मकान के पास हम लोग खड़े थे वह 'ल्यापिन अनाथावास' था। भीड़ उन लोगों की थी जो रात्रि में सोने के लिये अन्दर जाना चाहते थे। शाम को पाँच बजे मकान का द्वार खुलता है और भीड़ को अन्दर जाने दिया जाता है। मैं जिन लोगों के पीछे पीछे आ रहा था, प्रायः वे सभी लोग यहीं आ रहे थे।

जहाँ पर मनुष्यों की पंक्ति समाप्त होती थी, मैं वहीं पर खड़ा रहा। जो लोग मेरे पास थे वे गौर से मेरी ओर देख रहे थे यहाँ तक कि मेरा ध्यान भी उनकी ओर आकर्षित हुआ। उनके शरीर पर जो चीथड़े थे वे विभिन्न प्रकार के थे, लेकिन उन सभों की आँखों का भाव तो एक ही सा था। उनकी आँखें मानों कह रही थीं—'ऐ दूसरी दुनिया के मनुष्य! तुम यहाँ हमारे साथ क्यों खड़े हो? तुम कौन हो? क्या तुम कोई आत्म-तुष्ट धनिक हो कि जो हमारी दुर्दशा देख कर अपने को प्रसन्न करने अपने राग रंग का मजा बदलने के लिये तथा हमें चिढ़ाने के लिये आये हो? और या तुम वह हो कि जो कहीं होता ही नहीं और जिसका होना सम्भव भी नहीं—एक दयालु मनुष्य कि जिसके हृदय में हमारे लिये कुछ करुणा या कुछ ममता हो?'

सभी के चेहरों पर यही प्रश्न था। उनमें से हर एक मेरी

ओर देखता था, मेरी नजर से नजर मिलाता था और फिर मुँह फेर लेता था। मैंने चाहा कि मैं कुछ लोगों से बात करूँ पर कुछ देर तक तो मुझे ऐसा करने का साहस नहीं हुआ। किन्तु योंही एक दूसरे की नजरों ने धीरे २ हम लोगों का परिचय करा दिया और हम लोगों ने महसूस किया कि हमारी सामाजिक स्थिति कितनी ही विभिन्न क्यों न हो फिर भी हम भाई भाई हैं—मनुष्य हैं—धीरे २ हम लोगों का भय जाता रहा।

मेरे पास ही एक किसान खड़ा था, जिसकी दाढ़ी लाल थी और मुँह सूजा हुआ था। उसकी बंडी फटी हुई थी, और फटे हुए फुलबूट में से उसके पाँव निकले हुए थे हालाँ कि बर्फ खूब पड़ रहा था। तीसरी या चौथी बार हमारी नजर मिली और मेरा मन उसकी ओर ऐसा खिंच गया कि अब उससे बोलने में नहीं, न बोलने में लज्जा थी। मैंने पूछा—'तुम्हारा घर कहाँ है ?'

उसने उत्सुकता पूर्वक उत्तर दिया—'मैं स्मालेस्क से काम की तलाश में आया था। कर चुकाने तथा खाने को चीजें मोल लेने के लिये रुपये की जरूरत थी।'

इस बीच में लोग हमारे पास इकट्ठे होने शुरू हो गये।

उसने कहा—'आज कल कोई काम नहीं मिलता। सारा काम सिपाहियों ने ले लिया है। मैं इधर उधर भटकता फिरता हूँ और ईश्वर जानता है कि दो दिन से मैंने कुछ भी नहीं खाया है।'

उसने लजाते हुए, कुछ हँसने की चेष्टा करते हुए यह अंतिम बात कही थी। पास ही स्बिटन बेचने वाला एक बूढ़ा सिपाही खड़ा था मैंने उसे बुलाया। उसने स्बिटन* का एक प्याला भरा।

* चाय की तरह का पीने का पदार्थ

ग्राम-वासी ने गरम गरम प्याला हाथ में लेकर पीना शुरू किया। पहले तो उसने उससे अपने हाथ सेके क्योंकि इतनी मँहगी गर्मी को वह व्यर्थ कैसे जाने दे सकता था? इस तरह हाथ सेंकते सेंकते उसने अपने अनुभवों का वर्णन करना शुरू किया।

इन लोगों की जीवन-घटनायें या कम से कम वे कहानियाँ कि जो ये लोग सुनाते हैं प्रायः सदा ही एक सी होती हैं। उसे कुछ काम मिला था, वह समाप्त हो गया, और यहाँ अनाथावास में उसका बटुआ किसी ने चुरा लिया जिसमें उसके रुपये और पासपोर्ट आदि थे। अब वह मास्को से बाहर जाने में असमर्थ है।

उसने कहा कि दिन में तो वह किसी सदावर्त में ठंडा बासी जो कुछ थोड़ा बहुत मिल जाता है वही खाकर और ताप कर समय व्यतीत करता है और रात में इसी ल्यापिन गृह में पड़ा रहता है, जहाँ उसे कुछ देना नहीं पड़ता। उसने यह भी कहा कि वह तो गश्त लगाने वाले सिपाहियों की प्रतीक्षा ही कर रहा है; ताकि वह आवें और पासपोर्ट न होने के कारण उसे गिरफ्तार कर ले जायँ। इस तरह वह अपनी ही जैसी स्थिति वाले लोगों के साथ सरकारी खर्च से अपने जन्म-स्थान को भेज दिया जायगा।

'सुनते हैं कि बृहस्पतिवार को निरीक्षण होने वाला है, उसी दिन मैं पकड़ लिया जाऊँगा, बस तब तक किसी न किसी तरह मुझे गुजर करना है। (जेलखाना और उसकी वह अनिवार्य यात्रा तो मानो उसे स्वर्ग जैसी ही मालूम होती थी) जब वह ये बातें कह रहा था; भीड़ में से दो तीन आदमियों ने कहा कि उनकी भी ठीक वही स्थिति है।

एक लम्बी नाक वाला पतला दुबला युवक, जिसके जिस्म पर

केवल एक कुर्ता था और वह भी कन्धों के पास फटा हुआ था, सिर पर फटी टूटी टोपी रक्खे हुए, भीड़ में से निकल कर, मेरे पास आया। वह बुरी तरह काँप रहा था और ज्यों ही हमारी नजरें मिलीं उसने कृषक की ओर देख कर तिरस्कारपूर्ण भाव से हँसने की चेष्टा की और वह शायद इसलिये कि वह दिखाना चाहता था कि मैं कृषक से बड़ा हूँ।

मैंने उसे भी स्बिटेन का एक गिलास दिलाया। पहले मनुष्य की भाँति उसने भी गिलास से अपने हाथ सेंके, किन्तु ज्यों ही उसने बोलना शुरू किया एक ऊँचे श्यामवर्ण के मनुष्य ने आकर उसे एक ओर हटा दिया। उसकी नाक तोते की तरह टेढ़ी और सर नंगा था, पतली कमीज और वास्कट पहिने हुए था। उसने भी पीने की के लिये स्बिटन माँगा।

इसके बाद जो आदमी स्बिटन पीने आया वह पतली दाढ़ी वाला लम्बे क़द का एक बूढ़ा था जो ओवरकोट पहिने हुए था, और एक डोरी कमर में लिपटी हुई थी। उसके जूते छाल के थे और वह पिये हुए था।

इसके पीछे एक लड़का आया जिसका मुँह सूजा हुआ था और आँखें तर थीं। वह एक छोटा सा भूरा कोट पहिने हुए था फटी हुई पतलून में से उसके घुटने बाहर निकल रहे थे और मारे सर्दी के एक दूसरे से टकरा रहे थे। वह इतना ठिठुर गया था और इतना काँप रहा था कि वह गिलास को पकड़ न सका और सारा स्बिटन उसके कपड़ों पर गिर पड़ा। दूसरे लोग उसे गालियाँ देने लगे, पर वह बिचारा काँप रहा था और करुणार्द्र भाव से हँस रहा था।

ग्राम-वासी ने गरम गरम प्याला हाथ में लेकर पीना शुरू किया। पहले तो उसने उससे अपने हाथ सेंके क्योंकि इतनी मँहगी गर्मी को वह व्यर्थ कैसे जाने दे सकता था ? इस तरह हाथ सेंकते सेंकते उसने अपने अनुभवों का वर्णन करना शुरू किया।

इन लोगों की जीवन-घटनायें या कम से कम वे कहानियाँ कि जो ये लोग सुनाते हैं प्रायः सदा ही एक सी होती हैं। उसे कुछ काम मिला था, वह समाप्त हो गया, और यहाँ अनाथावास में उसका बटुआ किसी ने चुरा लिया जिसमें उसके रुपये और पास-पोर्ट आदि थे। अब वह मास्को से बाहर जाने में असमर्थ है।

उसने कहा कि दिन में तो वह किसी सत्रावर्त में ठंडा बासी जो कुछ थोड़ा बहुत मिल जाता है वही खाकर और ताप कर समय व्यतीत करता है और रात में इसी ल्यापिन गृह में पड़ा रहता है, जहाँ उसे कुछ देना नहीं पड़ता। उसने यह भी कहा कि वह तो गश्त लगाने वाले सिपाहियों की प्रतीक्षा ही कर रहा है; ताकि वह आवें और पासपोर्ट न होने के कारण उसे गिरफ्तार कर ले जायँ। इस तरह वह अपनी ही जैसी स्थिति वाले लोगों के साथ सरकारी खर्च से अपने जन्म-स्थान को भेज दिया जायगा।

'सुनते हैं कि बृहस्पतिवार को निरीक्षण होने वाला है, उसी दिन मैं पकड़ लिया जाऊँगा, बस तब तक किसी न किसी तरह मुझे गुजर करना है।' (जेलखाना और उसकी वह अनिवार्य यात्रा तो मानो उसे स्वर्ग जैसी ही मालूम होती थी) जब वह ये बातें कह रहा था, भीड़ में से दो तीन आदमियों ने कहा कि उनकी भी ठीक वही स्थिति है।

एक लम्बी नाक वाला पतला दुबला युवक, जिसके जिस्म पर

केवल एक कुर्ता था और वह भी कन्धों के पास फटा हुआ था, सिर पर फटी टूटी टोपी रक्खे हुए, भीड़ में से निकल कर, मेरे पास आया। वह बुरी तरह काँप रहा था और ज्यों ही हमारी नजरें मिलीं उसने कृषक की ओर देख कर तिरस्कारपूर्ण भाव से हँसने की चेष्टा की और वह शायद इसलिये कि वह दिखाना चाहता था कि मैं कृषक से बड़ा हूँ।

मैंने उसे भी स्बिटेन का एक गिलास दिलाया। पहले मनुष्य की भाँति उसने भी गिलास से अपने हाथ सेंके, किन्तु ज्यों ही उसने बोलना शुरू किया, एक ऊँचे श्यामवर्ण के मनुष्य ने आकर उसे एक ओर हटा दिया। उसकी नाक तोते की तरह टेढ़ी और सर नंगा था, पतली कमीज और वास्कट पहिने हुए था। उसने भी पीने की के लिये स्बिटन माँगा।

इसके बाद जो आदमी स्बिटन पीने आया वह पतली दाढ़ी वाला लम्बे क़द का एक बूढ़ा था जो ओवरकोट पहिने हुए था और एक डोरी कमर में लिपटी हुई थी। उसके जूते छाल के थे और वह पिये हुए था।

इसके पीछे एक लड़का आया जिसका मुँह सूजा हुआ था और आँखें तर थीं। वह एक छोटा सा भूरा कोट पहिने हुए था फटी हुई पतलून में से उसके घुटने बाहर निकल रहे थे और मारे सर्दी के एक दूसरे से टकरा रहे थे। वह इतना ठिठुर गया था और इतना काँप रहा था कि वह गिलास को पकड़ न सका और सारा स्बिटन उसके कपड़ों पर गिर पड़ा। दूसरे लोग उसे गालियाँ देने लगे, पर वह बिचारा काँप रहा था और करुणार्द्र भाव से हँस रहा था।

इसके बाद एक भद्दी सूरत का, विकृत अंगों वाला आदमी आया जो चीथड़े पहिने था और नंगे पाँव था। फिर तो तरह २ के लोग मेरे नजदीक आने लगे; कोई तो राजकर्मचारी जैसा था, कोई पादरी के समान था, और एक के तो नाक ही न थी। पर ये सब भूखे, शीतपीड़ित, अत्यन्त दीन और कारुण्य मूर्ति थे। सब मेरे पास आकर स्विटन माँगने लगे। जब स्विटन समाप्त हो गई तब एक ने कुछ पैसे माँगे, उसकी देखा देखी दूसरे ने। फिर तीसरे ने और फिर तो सभी पैसे माँगने लगे। इतने में पड़ोस के मकान वाले चौकीदार ने डपट कर कहा, 'हमारे घर के सामने से हट जाओ'—लोग सुनते ही चुप चाप वहाँ से हट आये। उस मण्डली में से कुछ लोगों ने स्वयं-सेवक बन कर मेरी रक्षा का भार अपने ऊपर लिया। वे मुझे भीड़ में से निकाल कर ले जाना चाहते थे लेकिन जो समूह अभी दूर तक फुटपाथ पर फैला हुआ था वह अब सिमट कर धक्का मुक्की करता हुआ मेरे पास आने की चेष्टा करने लगा। हर एक मेरी तरफ़ देखता था और माँगता था। ऐसा प्रतीत होता था कि प्रत्येक मनुष्य की मुखाकृति दूसरे की अपेक्षा अधिक करुणोत्पादक और दीन हीन थी। मेरे पास जो कुछ था वह सब मैंने उन्हें दे दिया—सब मिला कर लग भग २० रुबल होंगे। भीड़ के साथ ही मैं भी अनाथालय में घुसा।

यह मकान खूब बड़ा सादा था और उसमें चार भाग थे। छत के ऊपर आदमियों के रहने का स्थान था और नीचे स्त्रियों के लिये। पहिले मैं स्त्रियों के वास-गृह में गया। यह एक बड़ा कमरा था जिसमें रेल के तीसरे दर्जे की बैठकों की तरह, ऊपर

नीचे दो क़तारों में सोने के लिये तख्ते लगे हुए थे। फटे पुराने कपड़े पहने, विचित्र आकृति प्रकृति की स्त्रियाँ, बूढ़ी और जवान, आ आकर अपना अपना स्थान ग्रहण करने लगीं, कुछ तो नीचे के विभाग में और कुछ ऊपर के तख्तों पर चढ़ गईं। कुछ प्रौढ़ा स्त्रियाँ हाथ से क्रास बना कर ईश्वर को याद करके उस मकान के बनाने वाले को दुआ देने लगीं और कुछ यों ही हँसी मजाक और गाली-गलौज करने लगीं।

मैं दूसरी मंजिल पर गया। वहाँ पुरुषों ने इसी प्रकार अपना अपना स्थान ग्रहण किया था। उनमें से एक आदमी को मैंने पहचाना जिसे मैंने कुछ रुपया दिया था। उसे देखते ही मेरे मन में बड़ी लज्जा उत्पन्न हुई और मैं फौरन ही वहाँ से भाग आया। घर आते हुए मुझे ऐसा मालूम हुआ जैसे मैंने कोई अपराध किया हो। क़ालीन से ढके हुए जीने से होता हुआ मैं हॉल में आया जिसके फ़र्श पर सुन्दर ग़ालीचा बिछा हुआ था और वहाँ अपना कोट उतार कर पाँच प्रकार के पकवानों का भोजन करने बैठा जिसे सफ़ेद टाई और सफ़ेद दस्ताने तथा वर्दी पहिने हुए दो नौकर आ आकर परोस रहे थे।

उसी समय विगत काल की एक स्मृति का मन में उदय हुआ। तीस वर्ष पहिले पेरिस में हजारों आदमियों की उपस्थिति में जल्लादों द्वारा एक आदमी का सर कटते हुए देखा था। मैं जानता था कि वह आदमी भयंकर अपराधी है और इस प्रकार के अपराध के लिये मृत्यु-दण्ड देने के पक्ष में जो दलीलें पेश की जाती हैं उनसे भी मैं परिचित था। मैं जान बूझ कर इस प्राण-दण्ड के दृश्य को देखने गया था, किन्तु जिस समय तेज तलवार

से उस आदमी का सिर धड़ से अलग किया गया मैं जैसे सन्नाटे में आ गया और जैसे नस नस में मुझे वह अनुभव होने लगा कि मृत्यु-दण्ड के पक्ष की जितनी दलीलें मैंने अभी तक सुनी हैं वह सब झूठी और शैतानियत से भरी हुई हैं और चाहे कितने ही आदमी इसको कानूनन जायज़ समझें और भले ही उसे किसी भी नाम से पुकारें; मैं तो यही कहूँगा कि यह और कुछ नहीं शुद्ध नर-हत्या है और आज इस प्रकार इन्होंने वही नर-हत्या— संसार का सब से बड़ा और सब से भयंकर पाप किया है; और मैं, चुपचाप, बिना किसी प्रकार की आपत्ति किये, खड़ा खड़ा, देखता रहा और इस प्रकार इस बीभत्स कुकृत्य के करने में सहायक तथा इस महान् पाप का भागी हुआ।

और अब, जब कि लोगों के कष्ट—हजारों मानव बन्धुओं की भूख और शीत की पीड़ा और दुर्दशा मैंने अपनी आँखों से देखी तब, उसी प्रकार का विश्वास मेरे मन में फिर पैदा हुआ। न केवल मेरे मस्तिष्क ने ही बल्कि मेरी आत्मा के कण कण ने इस बात को महसूस किया कि मास्को में इस प्रकार के हजारों दुःखित प्राणियों के होते हुए भी अन्य लाखों मनुष्यों की तरह मैं प्रतिदिन तरह तरह के सुन्दर और स्वादिष्ट पक्वान्नों से अपना पेट भरता हूँ, अपने घोड़ों तक की बड़ी देख भाल रखता हूँ और इतना ही क्यों मैं अपने फ़र्श को भी मखमली कालीनों से ढँक कर रखता हूँ। संसार के बुद्धिमान् और विद्वान् लोग चाहें कुछ ही क्यों न कहें और जीवन का यह प्रवाह लोगों को कितना ही अपरिवर्तनीय क्यों न मालूम पड़े—मैं तो यही कहूँगा कि उपर्युक्त प्रकार का एक महान् अपराध संसार में बराबर किया जा रहा

है और मैं भी अपनी आराम तलबी और ऐश पसन्दी की आदतों द्वारा उस अपराध में भाग ले रहा हूँ।

इन दोनों अपराधों में अन्तर है तो सिर्फ इतना ही कि प्राण-दण्ड वाले मामले में मुझ से जो कुछ बन सकता था वह इतना ही था कि हत्या-यंत्र के पास खड़े होकर मैं चीख कर चिल्ला कर जल्लादों से कहता कि तुम हत्या कर रहे हो और यह जानते हुए भी कि मेरी सारी चेष्टायें विफल होंगी उसके कृत्य को रोकने का मुझे हर तरह से यत्न करना चाहिये था। किन्तु इस दूसरे मामले में उन्हें पीने के लिये स्बिटन तथा उस समय मेरे पास जो रुपये थे उन्हें ही देकर मुझे सन्तोष करना पड़े—ऐसी बात न थी। बल्कि, मैं चाहता तो अपने शरीर पर का कोट और मेरे घर में जो कुछ था वह सब उन्हें दे डाल सकता था! लेकिन मैंने ऐसा नहीं किया। इसीलिये उस समय मैंने महसूस किया, अब भी महसूस करता हूँ और सदा ही महसूस करता रहूँगा कि संसार में निरन्तर होते रहने वाले एक महान् पाप में, मैं भी भाग ले रहा हूँ और सचमुच ही मैं इस पाप का भागीदार बना रहूँगा जब तक कि दूसरों के भूखे रहते हुए मेरे पास आवश्यकता से अधिक भोजन है और जब तक कि एक भी कोट-विहीन मनुष्य के रहते हुए मैं अपने पास दो कोट रखता हूँ।

जिस दिन मैं स्यापिन के अनाथावास को देख कर आया उसी रोज शाम को एक मित्र से मैंने अपने विचार प्रकट किये। मेरे वह मित्र उसी शहर के रहने वाले थे। उन्होंने मेरी बातें सुनकर एक प्रकार के शांत और सन्तोषपूर्ण भाव से कहा कि इसमें तो अनोखी कोई बात ही नहीं, यह तो नागरिक जीवन की एक अत्यन्त साधारण और स्वाभाविक बात है। कस्बों में रहने के कारण ही सम्भवतः मुझे इसमें विचित्रता दीखती है अन्यथा यह स्थिति तो सदा से रही है और सदा बनी रहेगी। क्योंकि सभ्यता का यह एक अनिवार्य अङ्ग है। उन्होंने अन्य बातों के साथ यह भी बताया कि लंडन में तो इससे भी खराब स्थिति है, इसलिये उन्होंने मुझे विश्वास दिलाना चाहा कि इसमें दुखी या परेशान होने की कोई बात नहीं है।

मैं अपने मित्र से बहस करने लगा लेकिन इतनी गर्मी और तेजी के साथ कि पास के कमरे से दौड़ कर मेरी स्त्री पूछने आई कि मामला क्या है? मालूम पड़ता है, अनजान में ही, तीव्र दुःखित स्वर में, हाथ झटकते हुए, मैं चिल्ला कर बोल उठा था—"हम इस तरह अपने जीवन को कैसे व्यतीत कर सकते हैं? न तो हमें ऐसा करना ही चाहिये और न हमें ऐसा करने का अधिकार है"। अनावश्यक उत्तेजना के लिये मेरी भर्त्सना की गई और मुझे बताया गया कि मैं बड़ी जल्दी गरम हो उठता हूँ—शान्तिपूर्वक किसी विषय पर मैं बात ही नहीं कर सकता। मुझे यह भी

सुझाया गया कि मैंने जिस प्रकार के दारिद्र्य और दुःख देखे हैं उनका अस्तित्व हमारे पारिवारिक जीवन को विषाक्त बनाने का कारण नहीं हो सकता।

मैंने देखा कि बात तो ठीक है, इसीलिये मैं चुप रह गया। किन्तु आत्मा के किसी निगूढ़ स्थल में मुझे ऐसा भास होता था कि मेरा विचार ठीक है और अपने आत्मा की इस अस्पष्ट स्वर लहरी को मैं किसी प्रकार शान्त न कर सका।

नागरिक जीवन जो पहिले मुझे असंगत और विचित्र सा मालूम होता अब मुझे ऐसा घृणित प्रतीत होने लगा कि विलासी जीवन के जो आमोद-प्रमोद पहिले मुझे आनन्द देते थे। अब मेरी यातना के कारण बन गये।

मैं जिस प्रकार का जीवन व्यतीत कर रहा था उसे निर्दोष सिद्ध करने के लिये मैं मन ही मन कितनी ही चेष्टा क्यों न करूँ पर जब कभी मुझे अपने या दूसरों के सजे सजाये बैठकखानों, तरह तरह के अमीराना पकवानों से भरे हुए दस्तरख्वानों, या शानदार घोड़ों और सुसज्जित कोचवान वाली गाड़ियों का ध्यान आता था—जब कभी मैं दुकानों, नाटकों और भोजों का ख्याल करता तो मुझे क्रोध आये बिना न रहता। जब कभी मुझे इनका ध्यान आता उसी समय उस अनाथावास के दरिद्र शीत से काँपते हुए दीन हीन अभागे मनुष्यों की मूर्तियाँ मेरे सामने आ खड़ी होतीं। मैं इस विचार को तो अपने मन से कभी दूर ही न कर सका कि इन दोनों विषम परिस्थितियों का परस्पर अत्यन्त घनिष्ट, कार्य-कारण का सा सम्बन्ध है। मुझे याद है कि अपने को अपराधी समझने की भावना जो मेरे मन में उदय हुई थी वह

कभी दूर नहीं हुई किन्तु इसके साथ ही एक दूसरी भावना आ मिली जिससे पहिली भावना कुछ मन्द हो गई।

ल्यापिन-गृह की जो छाप मेरे हृदय पर पड़ी थी उसका जब कभी मैं अपने मुलाकातियों और मित्रों से जिक्र करता तो वे सदा वही एक ही तरह का उत्तर देते और प्रायः मेरी दयालुता और स्निग्धता की प्रशंसा करते हुए कहते कि मुझे जो इसका ख्याल हो रहा है इसका कारण यह है कि मैं, लियो टालस्टाय, बजाते खुद नेक और रहमदिल हूँ; और मैं भी उनकी इस बात का विश्वास करने लगा।

इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि आत्मभर्त्सना और लज्जा की जो तीव्र भावना मेरे हृदय में पैदा हुई थी वह अब कुन्द पड़ गई और उसके बजाय मुझे एक प्रकार से अपने गुणों पर सन्तोष सा होने लगा और इस बात की इच्छा होती थी कि लोग मेरे इन गुणों को जानें। मैंने दिल में कहा—'सच्ची बात तो शायद यह है कि यह मेरे विलासमय जीवन का दोष नहीं है, बल्कि संसार की परिस्थिति ही कुछ ऐसी है; और वह अनिवार्य है। इसलिये मेरे अपने जीवन में परिवर्तन करने से वह बुराई, जिसे मैंने देखा है, दूर न हो सकेगी।

मैंने यह भी सोचा कि अपने जीवन की शैली में परिवर्तन कर देने से कोई लाभ न होगा। बुराई तो जैसी है, वैसी ही बनी रहेगी, उल्टे मेरे आत्मीयों का जीवन दुःखमय हो जायगा। इसलिये जैसा कि मैंने समझा था जीवन शैली को बदलना अब मेरा उद्देश्य न होना चाहिये बल्कि इस बात की चेष्टा करनी चाहिये कि जहाँ तक मुझ से बन सके इन अभागे लोगों की

स्थिति को सुधारा जाय। मैंने सोचा कि सारी बातों का निष्कर्ष यह है कि मैं एक अत्यन्त दयालु और नेक आदमी हूँ और अपने भाइयों को उपकार करना चाहता हूँ।

बस मैं परोपकारी कार्यों की एक योजना तैयार करने लगा कि जिसके द्वारा मुझे अपने समस्त गुणों को प्रदर्शित करने का अवसर मिले। यहाँ पर इतना तो मुझे कह ही देना चाहिये कि जिस समय में इस तरह के पारोपकारों की योजना रच रहा था, उस समय भी हृदय के निगूढ़तम भाग में मुझे ऐसा प्रतीत होता था कि मैं जो कुछ कर रहा हूँ वह ठीक नहीं है; किन्तु जैसा कि प्रायः होता है मेरी बुद्धि और कल्पना ने आत्म-विवेक की आवाज का गला घोंट दिया।

इसी समय मर्दुम-शुमारी का काम हो रहा था। मैंने सोचा उस परोपकार-कार्य को प्रारम्भ करके अपनी इच्छा को चरितार्थ करने का यह अच्छा अवसर है। मैं बहुत सी परोपकारी संस्थाओं तथा सभाओं से परिचित था जो मास्को में पहिले ही से स्थापित थीं; किन्तु उन सब की कार्यवाही मुझे अपने सोचे हुए कामों के आगे बिलकुल तुच्छ मालूम देती थी और मैं समझता था कि उनका संचालन भी ग़लत रास्ते पर हो रहा है।

गरीबों के प्रति अमीरों की सहानुभूति को आकर्षित करने के लिये मैंने यह तरकीब निकाली। मैंने रुपया एकत्रित करना प्रारम्भ किया और ऐसे आदमियों की सूची तैयार करने लगा कि जो मर्दुम-शुमारी के अफसरों के साथ घूम २ कर गरीबों के अड्डे देखें, उनके साथ मिलजुल कर उनकी आवश्यकताओं को मालूम करें, जिन्हें धन की जरूरत हो उन्हें धन दें; जो लोग काम चाहते

हों उन्हें काम दिलायें और जो मास्को में काम चाहते हों उनके भेजने का प्रबन्ध करना, उनके लड़कों को विद्यालयों में भरती करना और वृद्धों तथा स्त्रियों को अनाथालय आदि में रखना।

मैंने यह भी सोचा कि जो लोग इस काम को करेंगे उन्हीं की एक स्थायी समिति बना ली जायगी, जो मास्को के विभिन्न भागों में अपने २ लिये काम बाँट लेंगे और इस बात का यत्न करेंगे कि अब आगे कोई परिवार अथवा व्यक्ति दरिद्रता के चंगुल में न फँसने पाये और इस तरह पहिले ही से खबरगीरी रखते हुए थोड़ा थोड़ा करके दरिद्रता का मूल से ही नाश कर डाला जायगा।

मैं तो अभी से स्वप्न देखने लगा कि भविष्य में भिक्षा-वृत्ति तथा दरिद्रता का नामोनिशान भी नहीं रहा है और इस सुन्दर स्थिति को अस्तित्व में लाने का कारण भी मैं ही हूँ। मैं सोचने लगा कि तब हम लोग जो कि अमीर हैं, मेज में पहिले ही की तरह आनन्दमय जीवन व्यतीत करेंगे, शानदार मकानों में रहेंगे, पाँच प्रकार के भोजन करेंगे, गाड़ियों में बैठकर भोजों तथा नाटकों में सम्मिलित होने जायँगे और फिर कभी ऐसे दृश्यों से हमारे मजे में खलल न पड़ेगा कि जैसा ल्यापिंस्की गृह में मैंने देखा था।

यह तरकीब सोचकर मैंने उसपर एक लेख लिखा और उसे छपने के लिये भेजने से पहले ही मैं उन मित्रों से मिलने गया कि जिनसे मुझे सहयोग की आशा थी, और उस दिन जितने लोगों से मैं मिला सभी से, खासकर धनिक लोगों से, मैंने उन बातों का जिक्र किया कि जिनको पीछे से मैंने लेख में प्रकाशित कराया था।

मैंने यह प्रस्ताव लोगों के सामने रक्खा कि अभी जो मनुष्य-गणना होने वाली है, उससे लाभ उठाकर हम मास्को की दरिद्रता का अध्ययन करें और उसे जड़-मूल से उखाड़ फेंकने में तन, मन, धन से सहायता दें। फिर इसके बाद निर्द्वन्द्व चित्त हो हम अपने आमोद-प्रमोद में मग्न हो सकते हैं। प्रत्येक मनुष्य ने बड़ी गम्भीरता के साथ ध्यानपूर्वक मेरी बातों को सुना, लेकिन हर जगह मैंने देखा कि मेरे श्रोता जिस समय यह समझ पाते कि मैं क्या कहना चाहता हूँ तो वह उन्हें एक तरह की परेशानी सी होने लगती और उनकी यह परेशानी, मुझे विश्वास है, प्रायः मेरे ही लिये होती थी; क्योंकि मैं जो कुछ कहता था उसे वे केवल मूर्खता ही समझते थे। ऐसा मालूम होता था कि मेरी बात को तो वे पसन्द न करते थे, लेकिन किसी बाह्य कारण-वश क्षण भर के लिये मेरी उन मूर्खतापूर्ण बातों से सहमत होने के लिये मजबूर से हो जाते।

लोग कहते—"हाँ, हाँ, बेशक, यह तो बड़ा ही अच्छा है। यह असम्भव है कि किसी मनुष्य को आपकी योजना से सहानुभूति न हो। आपका विचार बड़ा सुन्दर है, मेरे मन में भी यह ख्याल उठा था...लेकिन क्या करें, यहाँ के लोग बड़े उदासीन हैं। इसीलिये बड़ी सफलता की आशा करना भी व्यर्थ है। लेकिन हाँ, मुझसे जो कुछ बन सकेगी, इस काम में सहायता देने के लिये तैयार हूँ"।

प्रायः सभी से मुझे इसी प्रकार का उत्तर मिला। वे अपनी इच्छा से या मेरी दलीलों से क़ायल होकर मेरी बात मानते हों यह बात नहीं, बल्कि ऐसा मालूम होता था कि किसी दूसरी ही

वजह से, शायद मेरे व्यक्तित्व के कारण, मेरी बात को अस्वीकार करना उनके लिये बड़ा ही कठिन हो रहा था।

यह मैं इसलिये कहता हूँ कि जिन लोगों ने आर्थिक सहायता देने का वचन दिया था उन्होंने यह न बताया कि वे कितना धन देंगे और इसलिये खुद मुझे ही कहना पड़ता था—तो क्या मैं आशा करूँ कि आपसे इतने रुपयों की सहायता मिलेगी? और उनमें से एक ने भी रुपया प्रदान नहीं किया। बात यह है कि जिस चीज को हम पसन्द करते हैं उसके लिये हम फौरन ही रुपया देने को तैयार हो जाते हैं। लेकिन यहाँ जिन लोगों ने सहानुभूति प्रकट की अथवा धन देने को कहा उनमें से एक ने भी रुपया निकाल कर दिया नहीं। बस जो रक़म मैंने मुँह से कह दी, उसे ही चुपचाप मंजूर कर लिया।

उस दिन, सबसे अन्त में, जिस घर में मैं गया था वहाँ एक बड़ी-सी मित्र-मण्डली एकत्र थी। घर की मालकिन बहुत वर्षों से परोपकार के कामों में योग दिया करती थी। कई गाड़ियाँ द्वार पर खड़ी थीं और हॉल के अन्दर कीमती वर्दियाँ पहिनें चपरासी बैठे हुए थे। विशाल बैठकखाने में जवान और बूढ़ी महिलायें अमीराना पोशाक और जवाहिरात पहने हुए नवयुवकों से बातें कर रही थीं और साथ ही ग़रीबों की सहायता के निमित्त लाटरी के लिये गुड़ियाँ सजाती जाती थीं।

एकत्र हुई मण्डली तथा बैठकखाने के इस दृश्य से मेरे हृदय को बड़ी चोट पहुँची। एक तो खुद इन लोगों की सम्पत्ति ही करोड़ों की थी, दूसरे इनके वस्त्राभूषणों, गाड़ी-घोड़ों, नौकरों-चाकरों आदि पर जो रक़म खर्च हुई है उसका

सूद भी इन महिलाओं के कार्य के मूल्य की अपेक्षा सैकड़ों गुना अधिक होगा और यदि हम यह न गिनें तब भी कह सकते हैं कि इन लोगों के एकत्र होने में तथा आज के आतिथ्य में जो कुछ व्यय किया होगा, वह भी इन महिलाओं की कृति द्वारा उपार्जित धन की अपेक्षा कहीं अधिक होगा।

इन सब बातों को देखकर ही मुझे समझ जाना चाहिये था कि कमसे कम, यहाँ मुझे अपनी योजना के लिये सहानुभूति प्राप्त करने की आशा न करनी चाहिये; किन्तु मैं तो एक प्रस्ताव रखने आया था और यह काम चाहे कितना ही अप्रीतिकर प्रतीत हो, मुझे तो करना ही था। इसलिये अपने लेख के शब्दों को ही लगभग दोहराते हुए मैंने वह प्रस्ताव उनके समक्ष रक्खा।

एक महिला ने कुछ आर्थिक सहायता देने का वचन दिया। मिज़ाज कमजोर होने के कारण गरीबों को देखने के लिये जाने में तो वे असमर्थ थीं, पर धन से सहायता करना चाहती थीं। लेकिन वह कितना रुपया देंगी और कब देंगी इसका कुछ भी ज़िक्र न किया। एक दूसरी महिला तथा एक नवयुवक ने कहा कि वे गरीबों को देखने जायेंगे; किन्तु उनकी इस कृपा का लाभ मुझे मिला नहीं। वह मुख्य सज्जन कि जिन्हें सम्बोधित करके मैंने सब बातें कहीं, बोले कि साधनों का अभाव होने के कारण अब कुछ अधिक कर सकने की सम्भावना नहीं है। बात यह है कि मास्को के तमाम धनिक, जिनसे इस कार्य में सहायता की आशा की जा सकती थी अपने २ इच्छानुसार दान कर चुके हैं और उसके उपहार-स्वरूप उन्हें खिताब, तमगे तथा अन्य मान-सूचक बातें भी प्राप्त हो चुकी हैं। धनिक लोगों से रुपया निका-

लने को यही एक जबरदस्त साधन है; किन्तु अधिकारीगण अब फिर से मान-वर्षा करें, यह कठिन है।

उस दिन घर लौटकर जब मैं बिस्तर पर लेटा तब मुझे केवल इतना ही ख्याल न था कि मेरे इस विचार से कुछ होने वाला नहीं है, बल्कि मेरे मन में कुछ ऐसी लज्जा-जनक भावना थी कि जैसे मैं सारे दिन कोई हेय और घृणित कार्य करता रहा होऊँ। किन्तु फिर भी मैं अपने काम से बाज न आया।

पहिली बात तो यह थी कि काम शुरू कर दिया था और अब झूठी लज्जा-वश उसे छोड़ते न बनता था। दूसरे, यदि मैं सफल हो जाऊं तब तो कोई बात ही न थी और नहीं तो फिर भी मैं जब तक इस काम में भाग लेता रहता तब तक अपने जीवन को उसी तरह आनन्दपूर्वक बिता सकता था जैसा कि अब तक करता आया था। किन्तु इस योजना के असफल हो जाने पर तो मुझे अपनी जीवन-शैली को छोड़कर दूसरी शैली खोजने के लिये मजबूर होना पड़ता और इस बात से अनजान में ही मैं कुछ डरता सा था। इसलिये मैंने अपने अन्तर की आवाज की अवहेलना करके जो काम शुरू किया था उसे जारी रक्खा।

मैंने अपना लेख छपने के लिये भेज दिया और मनुष्य-गणना से सम्बन्ध रखने वाली टाउनहाल की एक सभा में झिझकते और लजाते हुए उसकी एक प्रूफ कापी पढ़कर सुनाई। उस समय मारे लाज के मेरा चेहरा लाल हो रहा था, मैं ख़ुद परेशान था और मैंने देखा कि मेरे श्रोतागण भी उतने ही परेशान थे।

मैंने जब पूछा कि क्या मनुष्य-गणना के प्रबन्धक मेरे इस प्रस्ताव को पसन्द करेंगे कि वे अपने पदों को इसलिये स्वीकार

करें कि वे सभ्य-समाज तथा दीन-वर्ग को आपस में मिलाये रखने के लिये कड़ी का सा काम कर सकें, तो मैंने देखा कि मेरे प्रश्न के उत्तर में केवल एक भद्दी-सी खामोशी छा गई।

तब दो उपस्थित महानुभावों ने वक्तृता दी; जिससे मेरे प्रस्तावों का भद्दापन कुछ सुधरता सा दिखाई दिया। वक्ताओं ने साधारणतः मेरी योजना को पसन्द करते हुए उससे सहानुभूति प्रकट की, किन्तु साथ ही उसकी अव्यावहारिकता की ओर भी निर्देश किया। इससे तत्काल ही लोगों को कुछ सन्तोष होता हुआ दिखाई दिया, लेकिन यह समझकर कि शायद मैं अब भी सफल हो जाऊँ मैं पूछ बैठा कि क्या जिला-प्रबन्धक अलग अलग इस काम को करने के लिये राजी हो जायेंगे और मनुष्य-गणना के समय दीनों की आवश्यकताओं को समझ कर बाद को भी उनकी सेवा करने के लिये अपने अपने पदों पर बने रहेंगे? इस प्रश्न ने तो फिर सबको गड़बड़ी में डाल दिया। उनकी नजरें मानों कह रही थीं—'तुम्हारी इन मूर्खतापूर्ण बातों को, सिर्फ तुम्हारी खातिर अब तक हमने सुन लिया। लेकिन तुम फिर भी नहीं मानते।'

उनके मुख पर तो यही भाव था लेकिन जबान से उन्होंने स्वीकृति प्रकट की और इसके बाद दो जनों ने कहा—'यह तो हमारा नैतिक कर्तव्य है।' यह शब्द उन्होंने कहे तो अलग अलग, लेकिन इस ढङ्ग से कहे गये कि जैसे दोनों ने पहले ही से सलाह कर रक्खी हो। मनुष्य-गणना के लिये लेखकों का काम करने के लिये जिन विद्यार्थियों ने अपनी सेवायें अर्पित की थीं उनपर भी मेरी बातों का वैसा ही असर पड़ा। मैंने उन्हें सम-

कराना चाहा कि इस प्रकार परिस्थिति का वैज्ञानिक ढङ्ग से अध्ययन करने के साथ ही वे परोपकार भी कर सकेंगे।

मैंने देखा कि जब मैं उनसे बातें कर रहा था तब वे एक प्रकार की घबराहट के साथ निर्निमेष दृष्टि से मेरी ओर देख रहे थे जैसा कि किसी भले आदमी को अर्थहीन बातें करते देखकर अवाक् होकर हम उसकी ओर देखते रह जाते हैं।

पत्र-सम्पादक को जब मैंने अपना लेख दिया तब उस पर भी वैसा ही असर पड़ा और मेरे पुत्र पर, मेरी स्त्री पर तथा अन्य अनेक जनों पर भी मेरी बात का एकदम यही प्रभाव हुआ।

हर एक आदमी सुनकर कुछ परेशान सा हो जाता था, किन्तु मेरे इस विचार को अच्छा बताना प्रत्येक मनुष्य आवश्यक समझता था और अपनी पसंदगी जाहिर करने के बाद फौरन ही योजना की सफलता के सम्बन्ध में सन्देह प्रकट करने लग जाता था और न जाने क्यों सभी लोग, बिना किसी अपवाद के, समाज की उदासीनता तथा लोगों की उत्साह-हीनता को बुरा भला कहने लगते, पर उनके ढङ्ग से मालूम होता था कि जिनकी चर्चा हो रही है उनमें वे खुद शामिल नहीं हैं।

मेरी अन्तरात्मा अब भी कहती थी कि मैं ठीक काम नहीं कर रहा हूँ, इससे कुछ लाभ न होगा। फिर भी मैंने अपना लेख छपाया और मनुष्य-गणना के काम में भाग लेने लगा। आरम्भ में तो मैंने प्रकृति को खींच कर खड़ा किया था किन्तु अब वह बरबस मुझे खींचे लिये जाती थी।

---

(४)

मेरे प्रार्थनानुसार खमोवनिचेस्की नाम का विभाग मनुष्य-गणना के लिये मुझे सौंप दिया गया। यह विभाग स्मोलेन्स्की मार्केट के नजदीक, प्रोटोचनी लेन में शोर ड्राइव और निकोल्स्की लेन के मध्य में स्थित है। इस विभाग में वे मकानात हैं जो ज़नोफ भवन अथवा ज़नोफ गढ़ कहलाते हैं। पुराने ज़माने में ज़नोफ नामी व्यापारी के वे मकानात थे, पर अब ज़ीनिन नामी व्यापारी के क़ब्ज़े में हैं। मैंने सुन रक्खा था कि यह विभाग दरिद्रता और व्यभिचार का केन्द्र है और इसीलिये मनुष्य-गणना के प्रबंधकों से मैंने इस केन्द्र को माँगा था। मेरी इच्छा पूर्ण हुई।

नगर-सभा की ओर से नियत हो जाने पर, गणना का कार्य प्रारम्भ होने से कुछ दिन पहले, एक दिन मैं अकेला ही अपने केन्द्र का निरीक्षण करने गया। एक नक्शे की मदद से मैंने शीघ्र ही ज़नोफ भवन का पता लगा लिया। पहिले एक गली में से होकर जाना पड़ता था और जहाँ पर वह गली खतम होती थी वहीं पर निकोल्स्की लेन की बाई तरफ़ एक शोभा-हीन तमोमय इमारत घनी हुई थी जिसमें कोई द्वार भी दिखाई न देता था। उसकी शक्ल देखकर ही मैं समझ गया कि यही मकान है कि जिसकी मैं तलाश कर रहा हूँ। गली में घुसते ही दस से चौदह वर्ष की उम्र के छोटे २ कोट पहिने हुए कुछ लड़के मिले जो बरफ़ पर

से सरकने का खेल खेल रहे थे; उनमें से कुछ तो पैरों ही पर खिसकते थे और कुछ लकड़ी की घोड़ी पर (skate)।

लड़के फटेहाल किन्तु शहरी बालकों की तरह तेज और दबङ्ग थे। मैं खड़े होकर उनकी ओर देखने लगा। इतने ही में उधर से एक बूढ़ी स्त्री निकली कि जो फटे हुए कपड़े पहने थी और जिसके गाल सूखकर लटक गये थे। वह पहाड़ी पर चढ़कर स्मोलेन्स्की मार्केट को जा रही थी और थके हुए घोड़े की नाई बुरी तरह हाँफ रही थी। और कोई जगह होती तो यह बुढ़िया भीख माँगती किन्तु यहाँ तो वह सिर्फ बातें करने लगी।

खेलते हुए बालकों की ओर इशारा करके वह बोली—जरा इनकी ओर तो देखो! बस हर वक्त धूम मचाते रहते हैं। जैसे इनके बाप थे बस वैसे ही निखट्टू पनोफ यह भी निकलेंगे।

ओवरकोट और टूटी टोपी जो लड़का पहिने हुए था उसने बुढ़िया की बात सुन ली और खड़े होकर कहा—चुप रह री! तू खुद पनोफ वाली भूतनी है।

मैंने लड़के से पूछा 'क्या तुम यहीं रहते हो' ? हाँ; और यह भी यहीं रहती है। इसी ने तो बूट चुराये थे'—यह कह कर वह बर्फ पर से नीचे खिसक गया।

अब तो उस बूढ़ी औरत ने गालियों की झड़ी ही लगा दी। बीच २ में खाँसी की वजह से उसे रुक जाना पड़ता था। यह झगड़ा हो ही रहा था कि उसी गली में फटे कपड़े पहने हाथ हिलाता हुआ एक बुड्ढा आदमी आ निकला। उसके एक हाथ में कुछ बिस्कुट थे और मालूम होता था अभी अभी उसने शराब का एक गिलास चढ़ाया है। उसने बूढ़ी औरत की गालियाँ सुन

ली थीं और उसका ही पक्ष लेकर चिल्लाते हुए कहने लगा—अरे शैतान के बच्चो, जरा खड़े तो रहो।

यह कहकर धमकाने के लिये उनके पीछे दौड़ा और मेरे पीछे से निकलकर फुटपाथ पर चढ़ गया। यदि आप आर्टेट नामी शहर की फैशनेबल गली में इसे देखते तो इसकी अपङ्गता, दुर्बलता और दरिद्रतासूचक चेष्टा से दङ्ग रह जाते। यहाँ तो वह ऐसा मालूम होता था जैसे कोई खुशहाल हँसमुख मजदूर काम करके शाम को घर वापस जा रहा है।

मैं इस आदमी के पीछे हो लिया। वह नुक्कड़ पर से मुड़ कर बाईं ओर प्रोटोचनी गली में घुसा और घर के सामने से होता हुआ एक सराय के अन्दर घुसकर अदृश्य हो गया। इस गली में उस सराय के अलावा, एक पब्लिक हाउस और कई छोटे २ भोजनालय थे। यही जनोफ भवन था। यहाँ की इमारतें, रहने के कमरे, सहन और आदमी—सभी गन्दे, भद्दे और बदबूदार थे। जिनसे मैं मिला उनमें से अधिकांश अर्धनग्न और फटे हुए कपड़े पहने थे। कुछ लोग जा रहे थे और कुछ इस दरवाजे से उस दरवाजे की ओर दौड़ रहे थे। दो जने कुछ चिथड़ों का सौदा कर रहे थे। मैंने घूमकर सारी इमारत को देखा और एक गली और एक आँगन में से होता हुआ जनोफ भवन के महराबदार रास्ते पर आकर खड़ा हुआ।

मेरी इच्छा तो हुई कि मैं अन्दर जाकर देखूँ कि वहाँ क्या हो रहा है, किन्तु इससे मुझे बड़ी झिझक मालूम हुई। मैंने सोचा कि यदि कोई पूछ बैठे कि तुम यहाँ क्यों आये हो तो मैं क्या उत्तर दूँगा। फिर भी थोड़ी देर तक सङ्कोच करने के बाद मैं अन्दर

घुसा तो सही। जिस समय मैंने अन्दर प्रवेश किया मुझे बड़ी ही जघन्य दुर्गन्ध मालूम पड़ी। आँगन की गन्दगी तो महा भयानक थी। कोने के पास से जब मैं मुड़ा तो मैंने गैलरी के पास और जीने के नीचे दौड़ते हुए लोगों के पाँव की आहट सुनी।

पहले एक पतली दुबली स्त्री, जिसकी आस्तीनें चढ़ी हुई थीं, दौड़ती हुई बाहर आई। उस स्त्री की पोशाक किरमजी थी पर उसका रङ्ग उड़ गया था। पैरों में वह जूते पहिने थी पर मोजे नहीं थे। स्त्री के पीछे मोटे बालों वाला एक आदमी दौड़ता हुआ आया। वह लाल क़मीज पहिने हुए और लहगे की तरह बहुत ही चौड़ा पायजामा तथा पैरों में रबड़ के जूते-पोश पहिने हुए था। उस आदमी ने जीने के नीचे औरत को जा पकड़ा और हँस कर कहा—तुम मुझ से भागकर नहीं जा सकती।

'जरा इन हज़रत की बातें तो सुनो'!—इस तरह उस औरत ने बात छेड़ी! वह मनुष्य उसके पीछे भागा २ फिरता है इससे वह अप्रसन्न भी मालूम न देती थी। किन्तु इतने ही में मुझे देखकर उसने क्रुद्ध स्वर में कहा—किसे देखते हो? चूँकि मैं किसी व्यक्ति-विशेष के लिये वहाँ नहीं गया था इसलिये उसका प्रश्न सुनकर मैं कुछ गड़बड़ा-सा गया और वहाँ से चला आया।

इस छोटी सी घटना ने जो स्वतः कुछ विशेष महत्व-पूर्ण न थी, मैं जो काम करने चला था उसे एक बिलकुल नये ही रूप में मेरे सामने लाकर रक्खा। उस गाली देने वाली बूढ़ी औरत

हँसमुख वृद्ध, और बरफ़ पर खिसकने वाले लड़कों के उस दृश्य ने, खास कर मुझपर एक नया ही असर डाला। मैंने सोचा था कि मास्को के धनिक-वर्ग की सहायता से मैं उनका उपकार करूँगा। आज पहिली बार मैंने यह समझा कि इन दीन-हीन अभागों के लिये सिर्फ यही प्रश्न नहीं है कि वे किसी प्रकार दुख-सुख के साथ भूख और सर्दी की मुसीबतों को झेल लें, बल्कि उनके सामने एक समस्त जीवन है। उनके लिये भी प्रत्येक दिन में चौबीस घण्टे होते हैं जिन्हें किसी न किसी तरह उन्हें बिताना ही पड़ेगा। मैं अब समझा कि खाने पीने और सर्दी आदि के प्रबन्ध के अतिरिक्त भी उन्हें अपने जीवन का अधिकांश समय हमी लोगों की तरह बिताना है कि जिस समय में हमारी ही तरह उन्हें कभी क्रोध आ सकता है और थकावट और सुस्ती भी हो सकती है जिसे वे दूर करने के लिये हँसना बोलना चाहेंगे और किसी भी समय या तो वे उदास होंगे या प्रसन्न रहेंगे।

यह बात कितनी ही विचित्र क्यों न मालूम पड़े किन्तु मुझे कहना ही पड़ेगा कि आज पहली बार मैं अच्छी तरह यह समझ सका कि मैं जिस काम को लेकर चला हूँ वह सिर्फ इतने ही पर समाप्त नहीं हो सकता कि भेड़ों की तरह खिला पिलाकर उन्हें बाड़े में बन्द कर दिया जाय—इनके खाने और पहनने का प्रबन्ध कर देने भर से ही कुछ न होगा, हमें अन्दर उतर कर इनके साथ मिल जुलकर इनके दिल को समझाना होगा। जब मैंने देखा कि ये लोग केवल भिखारी ही नहीं हैं बल्कि इनमें से प्रत्येक व्यक्ति मेरी ही तरह एक मनुष्य है कि जिसके सुख दुख का एक

इतिहास है, जिसमें उद्दीप्त आकांक्षाओं, प्रलोभनों, भूलों और जीवन की प्रहेलिकाओं का समावेश है—तब उस समय एकाएक मुझे मालूम पड़ा कि मेरा काम बड़ा भारी है और उसकेस ामने मैं बहुत ही तुच्छ और नितान्त असहाय हूँ। किन्तु काम शुरू हो गया था और अब तो उसको चलाना ही था।

मनुष्य-गणना में मुझे सहायता पहुँचाने के लिये जो विद्यार्थी नियत हुए थे, वे तो निश्चित तिथि को सबेरे ही अपने घर से रवाना हो गये किन्तु मैं जो अपने को परोपकारी आदमी समझता हूँ दोपहर से पहले काम में शरीक न हो सका, और मैं इस से पहिले शरीक भी कैसे होता ? दस बजे तो मैं बिस्तर से उठा। उसके बाद काफ़ी पी और फिर हाजमा ठीक करने के लिये तम्बाकू पी और तब कहीं बारह बजे जाकर मैं जिनोफ़ भवन में पहुँचा।

गणना-लेखकों ने अपने मिलने का स्थान एक होटल बताया था। वहाँ पुलिस के आदमी ने पहुँचा दिया। मैं अन्दर घुसा तो देखा कि स्थान बहुत गन्दा और वाहियात है। ठीक मेरे सामने पैसा वसूल करनेवाले का स्थान था। बाईं ओर एक छोटा कमरा था, जिसमें मैले कपड़े से ढकी हुई मेज़ें थीं। दाहिनी ओर खम्भों वाला एक बड़ा कमरा था जिसमें खिड़कियों के पास दीवाल से लगी हुई वैसी ही मेज़ें रक्खी हुई थीं। कुछ लोग इधर उधर बैठे चाय पी रहे थे जिनमें से कुछ तो फटेफटाये कपड़े पहिने हुए थे और कुछ लोगों की पोशाक अच्छी थी। मालूम होता था कि या तो वे मज़दूर थे या छोटे छोटे दूकानदार। कुछ स्त्रियाँ भी वहाँ थीं। होटल गन्दा था, लेकिन फिर भी होटल वाले की व्यवहार-कुशल मुद्रा और नौकरों की मुस्तैदी और खुश-मिजाजी

से मालूम होता था कि होटल का काम खूब चल रहा है। मैं ज्योंही अन्दर घुसा एक आदमी मेरे पास आ पहुँचा और वह ओवरकोट उतारने में मदद देने के लिये तैयार हुआ। वह उत्सुकतापूर्वक मेरी फर्माइश सुनने के लिये खड़ा था जिससे वह यह बात प्रकट कर रहा था कि इस होटल के लोग जल्दी और मुस्तैदी के साथ काम करने के आदी हैं।

जब मैंने पूछा कि गणना-लेखक कहाँ हैं तो इसके उत्तर में एक आदमी ने, जो विदेशी भेष में था और हिसाब की मेज के पीछे वाली अल्मारी में कुछ चीजें सजाकर रख रहा था आवाज लगाकर पुकारा यह पुकारने वाला ही होटल का मालिक था। यह कालूगा का रहने वाला आइवन फिडोटिच नाम का एक किसान था, जिसने आधे मकानात किराये पर लेकर दूसरों को अपनी ओर से किराये पर उठा दिये थे। उसकी आवाज सुनते ही एक १८ वर्ष का पतला दुबला लड़का तेजी से सामने आया। उसका चेहरा लम्बा था और नाक अन्त पर कुछ झुकी हुई थी। होटल के मालिक ने कहा—इन महाशय को मुहर्रिरों के पास ले जाओ, वे लोग कुँए के पास वाले बड़े मकान में हैं।

लड़के ने तौलिया रख दिया, सफेद कमीज और पायजामा के ऊपर एक कोट डाँट लिया, एक बड़ा-सा टोप उठाया और फिर पीछे के दर्वाजे से निकाल कर इमारत को पार करते हुए छोटे २ तेज कदमों से मेरे आगे २ चला। एक गन्दे दुर्गन्धयुक्त रसोई घर के दरवाजे पर हमें एक बूढ़ी औरत मिली जो एक चिथड़े में होशियारी के साथ लपेटे हुए कुछ गला-सड़ा माँस

लिये जा रही थी। हम लोग एक सहन में पहुँचे जिसके चारों ओर पत्थर की नींव पर लकड़ी के मकानात बने हुए थे। बड़ी ही बुरी दुर्गन्ध आ रही थी और ऐसा मालूम होता था कि वह पाखाने में से निकल रही थी कि जहाँ बराबर बहुत से आदमी निवृत्त होने के लिये जाते रहते हैं। लोग इस काम के लिये उसे इस्तेमाल करने लगे थे इसीलिये वह स्थान पाखाना कहलाता था। सहन में से गुजरते समय किसी का भी ध्यान उसकी ओर आकर्षित हुए बिना नहीं रह सकता था, क्योंकि अन्दर घुसते ही उसमें से दुस्सह दुर्गन्ध आती थी।

इस बात का ख्याल रखते हुए कि कहीं उसका सफेद पायजामा मैला न हो जाय, जमे हुए कूड़े से बचते बचाते वह लड़का होशियारी से मुझे उन मकानों तक ले गया। जो लोग सहन या गैलरी में से होकर जा रहे थे सब मुझे देखने के लिये ठहर गये। साफ मालूम होता था कि स्वच्छ वस्त्रों से सज्जित मनुष्य यहाँ के लिये एक विचित्र बात है!

उस लड़के ने एक औरत से पूछा कि क्या वह बता सकती है कि गणना-कर्मचारी किस मकान में गये हैं? प्रश्न सुनते ही तीन आदमी एक साथ बोल उठे—किसी ने कहा कि वे कुँए के पास हैं, दूसरे ने बताया कि वे वहाँ गये तो थे किन्तु अब निकिता आइवनोविच के घर चले गये हैं।

आँगन के मध्य में एक बूढ़ा आदमी खड़ा था, जो सिर्फ एक कमीज पहिने हुए था। उसने कहा कि वे लोग नम्बर ३० में हैं। यह निश्चय करके कि अन्तिम सूचना ही अधिक ठीक मालूम होती है लड़का मुझे नम्बर ३० के मकान की ओर ले

चला। रास्ता निचले और अँधेरे स्थल में से होकर था जिसमें आँगन की गन्ध से विभिन्न प्रकार की दुर्गन्ध निकलती थी।

एक अँधेरे रास्ते से हम लोग नीचे की ओर चले जा रहे थे कि इतने में एकाएक एक द्वार खुला और उसमें से कमीज़ पहने हुए एक वृद्ध शराबी निकला। उसकी सूरत किसानों की सी न थी। एक धोबिन आस्तीनें चढ़ाये हुए साबुन से भरे हुए हाथों से, चिल्ला २ कर उसे कमरे से बाहर ढकेल रही थी। मेरे पथ-प्रदर्शक बनिये ने उस आदमी को एक ओर हटा कर कहा—यों झगड़ा करने से काम न चलेगा—और फिर अफसर होकर !

जब हम नम्बर ३० पर पहुँचे तो बनिये ने दरवाजे को खींचा तो वह भीगे हुए तख्ते की सी आवाज़ के साथ खुल गया और उसके खुलते ही साबुन से भरी भाप और तम्बाकू तथा शराबखाने की गन्ध की झरफ निकली। उसके अन्दर बिलकुल अँधेरा था। खिड़कियाँ दूसरी ओर थीं। हम लोग एक टेढ़े-मेढ़े दालान में पहुँचे, जिसमें कभी दाईं और कभी बाईं ओर जाना पड़ता था। विविध कोणों पर कुछ कमरे थे जो यों ही तख्ते लगाकर बना लिये गए थे और उन तख्तों पर ठीक २ सफ़ेदी भी न की गई थी।

बाईं ओर के अँधेरे कमरे में एक स्त्री नाँद में कपड़े धोती हुई सी दिखाई पड़ रही थी। एक दूसरी स्त्री दाहिनी ओर के एक दरवाजे में खड़ी देख रही थी। एक खुले हुए द्वार के पास लाल चर्मवाला एक किसान कोच पर बैठा था, उसके जिस्म पर बहुत सारे बाल थे और छाल के जूते पहने हुए था। उसके हाथ घुटनों पर रक्खे हुए थे और पैरों को हिलाते हुए ग़मगीनी

के साथ अपने जूतों की ओर देख रहा था। रास्ते के अन्त पर एक कमरे का छोटा द्वार मिला और यहीं पर कर्मचारीगण थे। यह ३० नम्बर के मकान की मालकिन का कमरा था जो उसने सारा का सारा आइवन फिडोटिन से किराये पर ले लिया था और स्थायी रूप से रहनेवालों अथवा रात में ठहरनेवालों को अपनी ओर से भाड़े पर उठा दिया था।

इस छोटे से कमरे में एक विद्यार्थी खिड़की के पास अपने कागज-पत्र फैलाये हुए बैठा था और मजिस्ट्रेट की भाँति एक आदमी का बयान ले रहा था। यह आदमी एक कमीज और एक वास्कट पहने था और मालकिन के मित्र की हैसियत से उसकी तरफ से जवाब दे रहा था। मकान की मालकिन—जो एक बुढ्ढी स्त्री थी—खुद मौजूद थी और उसके साथ ही दो किरायेदार भी तमाशा देखने के लिये आ खड़े हुए थे।

मैं जब कमरे में घुसा तो कमरा खूब भरा हुआ था। मैं इन लोगों के बीच में से होता हुआ मेज तक पहुँचा और उस विद्यार्थी से हाथ मिलाया। विद्यार्थी ने अपने प्रश्न जारी रक्खे और मैं वहाँ के रहनेवाले लोगों से मिल कर अपने मतलब की बातें पूछने लगा।

लेकिन मालूम हुआ कि यहाँ ऐसा कोई आदमी नहीं कि जिस पर मैं अपनी परोपकार-वृत्ति चरितार्थ करूँ। इन कमरों की मालकिन, नगर की दरिद्रता को देखते हुए खुशहाल कही जा सकती थी। हालां कि उसके कमरे निहायत गन्दे और वाहियात थे और मैं जिस भवन में रहता था उससे मुकाबिला करने पर तो यह एक दम ही मुझे हेय जँचे। किन्तु यदि माम्य दरिद्रता से

मुकाबिला करें तो कह सकते हैं कि वह ऐशो-आराम से रहती थी। उसके पास परों का बिछौना था, उसके ऊपर एक चादर थी, एक चायदानी, एक रुआँदार कोट, और तश्तरियों और कटोरियों से सजी हुई एक आलमारी भी थी। गृहस्वामिनी का मित्र भी देखने में वैसा ही खुशहाल मालूम होता था और उसके पास एक घड़ी और चेन भी दिखाई पड़ती थी। किरायेदार ग़रीब थे सही, पर उनमें से भी कोई ऐसा न था कि जिसे तात्कालिक सहायता की आवश्यकता हो।

सिर्फ तीन व्यक्तियों ने सहायता के लिये प्रार्थना की। एक तो उस कपड़े धोने वाली स्त्री ने कि जिसने कहा कि उसके पति ने उसे छोड़ दिया है। दूसरे एक वृद्ध विधवा ने कि जिसके पास रोज़ी का कोई सहारा न था और तीसरे उस किसान ने जो कि छाल के जूते पहिने हुए था और जिसने कहा कि उस दिन उसे कुछ भी खाने को नहीं मिला था। किन्तु अधिक जाँच पड़ताल करने पर यह बात मालूम हुई कि इनमें से किसी को भी मदद की खास ज़रूरत नहीं है और इनको वास्तविक सहायता पहुँचाने के लिये यह आवश्यक था कि इनका घनिष्ट परिचय प्राप्त किया जाय।

जिस स्त्री का पति उसे छोड़ कर चला गया था उसके बच्चों को किसी आश्रम में रखने का जब मैंने ज़िक्र किया तब तो वह घबड़ाई, कुछ देर तक सोचती रही और फिर मुझे धन्यवाद देकर चुप रह गई। साफ़ मालूम होता था कि यह बात उसे पसन्द न आई। हाँ, वह प्रसन्न होती यदि उसे कुछ रुपया मिल

जाता। उसकी बड़ी लड़की कपड़े धोने में मदद देती थी और छोटी लड़की बच्चे को खिलाती थी।

वह जो दूसरी वृद्ध स्त्री थी, उसने अनाथालय में रहना स्वीकार किया। पर जब उसके घर को देखा तो मालूम हुआ कि वह बहुत ज्यादा तकलीफ में नहीं है। उसके पास एक सन्दूक में कुछ माल था, एक चायदानी, दो प्याले और कुछ डब्बे थे जिनमें चाय और शक्कर रक्खी थी। वह मोजे, और दस्ताने बुनती थी और किसी महिला से उसे कुछ वजीफा भी मिलता था।

किसान को भोजन की अपेक्षा पीने की ही ज्यादा इच्छा थी। उसे जो कुछ भी दिया जाता वह कलाल के घर ही जाकर ठहरता। इसलिये मैंने देखा कि इन कमरों में रहने वाला ऐसा एक भी नहीं है कि जिसे कुछ धन देकर मैं अधिक सुखी बना सकूँ। वहाँ सब ग़रीब ही ग़रीब रहते थे किन्तु उनकी ग़रीबी एक विचित्र प्रकार की थी।

मैंने उस वृद्ध स्त्री का, धोबिन का और किसान का नाम अपनी नोट-बुक में लिख लिया और निश्चय कर लिया कि कुछ न कुछ इनके लिये करना होगा। किन्तु मेरा विचार था कि पहले उन लोगों को मदद दूँगा कि जो विशेष रूप से अभागे हैं और इस मकान में आगे चलकर मिलेंगे। मैंने यह भी विचार किया कि हम जो सहायता देने वाले हैं उसको वितरण करने के लिये एक पद्धति बनानी होगी, जिससे पहले उनको सहायता पहुँचाई जाय कि जो बहुत ज्यादा हाजतमन्द हैं और उसके बाद इस प्रकार के लोगों के पास पहुँचा जैसे कि अभी मिले थे।

किन्तु मैं जहाँ जहाँ गया वहाँ मैंने यही स्थिति देखी। उन्हें

सहायता देने से पहले उनकी स्थिति का विशेष अध्ययन करने की आवश्यकता थी। ऐसा तो मुझे एक भी नहीं मिला कि जिसे केवल आर्थिक सहायता देकर सुखी बनाया जा सकता हो।

मेरा यह कथन कितना ही लज्जाजनक क्यों न हो, किन्तु सच तो यह है कि मैंने जो बात अपने मन में समझ रक्खी थी वैसा न होने से मुझे एक प्रकार की निराशा-सी हुई। लेकिन जब मैं सभी स्थानों पर घूम आया तब मुझे विश्वास हो गया कि यहाँ के रहने वाले, मैंने जैसा सोचा था वैसे नितान्त कंगाल नहीं हैं बल्कि मैं जिन लोगों में रहता हूँ उनसे बहुत-कुछ मिलते जुलते हैं।

जैसा कि हम लोगों में होता है वैसा ही इनके यहाँ भी था। इनमें भी कुछ तो नेक आदमी थे और कुछ बुरे, कुछ सुखी थे और कुछ दुखी। उनमें जो दुखी थे वे हम लोगों में रहने पर भी वैसे ही दुखी रहते क्योंकि उनके दुःख का कारण बाहर नहीं उनके ही अन्दर था और ऐसा था जो रुपये से दूर नहीं किया जा सकता।

इन मकानों के रहने वाले शहर के सब से नीची श्रेणी के लोग थे और मास्को में उनकी संख्या लगभग एक लाख के थी। यहाँ सभी प्रकार के लोग रहते थे। छोटे छोटे व्यापारी और गृह-स्वामी, जूते बनाने वाले मोची और ब्रश बनाने वाले कारीगर, बढ़ई और तोंगे हाँकने वाले, दरजी और अन्य लोग जो खुद अपनी ही तरफ से स्वतंत्र धन्धा करते थे, वहाँ दिखाई पड़ते थे। कपड़े धोनेवाली स्त्रियाँ, खुमचे वाले तथा पुरानी चीजों को बेचने वाले, सूद पर रुपया उठाने वाले, तथा मजदूरी करने वाले लोगों के साथ २ इसी मकान में भिखारी और वेश्यायें भी रहती थीं।

यहाँ पर ऐसे भी बहुत से लोग रहते थे, जैसे कि मैंने ल्यापिन-गृह के सामने देखा था। किन्तु इस जगह वे मजदूरों में बिलकुल मिल-जुल गये थे। यहाँ पर मैंने जिन लोगों को देखा था उनकी बुरी दशा थी, जो कुछ उनके पास था वह सब खाने पीने में उड़ा दिया था और होटल में से निकाले जाने पर भूख से दुखी और सर्दी से काँपते हुए ल्यापिन-गृह में घुसने की इस प्रकार प्रतीक्षा कर रहे थे जैसे कोई स्वर्ग में प्रवेश करने के लिये तपस्या करता है। और वे सदा इस बात की आशा लगाये रहते थे कि कोई आये और गिरफ्तार करके उन्हें जेल भेज दे ताकि वे सरकार के खर्चे से घर पहुँच जायँ। उसी तरह के आदमियों को यहाँ मैंने अधिक संख्यक मजदूरों में मिला हुआ देखा जिनके पास

थान का किराया देने के लिये कुछ कोपक थे और खाने पीने के लिये शायद एक दो रुबल भी उनकी जेब में पड़े हुए थे।

एक खास बात यह थी कि ल्यापिन-गृह में जो भावनायें मेरे हृदय में जागृत हुई थीं वे यहाँ न मालूम हुईं; बल्कि इसके प्रतिकूल पहले चक्कर में मेरे और विद्यार्थियों के मन पर जो असर पड़ा वह तो एक प्रकार से आनन्दमय था—किन्तु एक प्रकार से आनन्दमय था ऐसा क्यों कहूँ ? यह तो ठीक नहीं है। इन लोगों के सहवास से जो भाव हृदय में उत्पन्न हुआ था वह विचित्र भले ही लगे—सरासर आनन्द से परिपूर्ण था। इनके सम्बन्ध में पहली बात तो मेरे मन में यह पैदा हुई कि यहाँ रहने वाले लोगों में अधिकांश मजदूर हैं और वे प्रायः बहुत ही नेक तबियत के हैं। मैंने इन लोगों को प्रायः काम करते ही पाया, धोबिनें नाँद में कपड़े धो रही थीं, बढ़ई बसूले चला रहे थे और मोची जूते बनाने में लगे हुए थे। छोटे २ कमरे लोगों से भरे हुए थे और हँसी-खुशी तथा फुर्ती के साथ काम हो रहा था। मजदूरों के पास पसीने की, मोचियों के पास चमड़े की और बढ़इयों के पास लकड़ी के छोल की गन्ध आ रही थी। कभी कभी किसी राग की ध्वनि भी हमारे कान में आ पड़ती थी और मजबूत खुले हुए हाथ फुर्ती और होशियारी के साथ खटाखट काम कर रहे थे।

जहाँ कहीं हम गये लोगों ने प्रसन्नतापूर्वक हमारा स्वागत किया और सब हमसे मेहरबानी से पेश आये। खुशहाल लोगों के यहाँ जब जाते हैं तो वे अपनी महत्ता और कारगुजारी दिखाने तथा आगन्तुकों की वास्तविक स्थिति जाँचने की चेष्टा करते हैं। पर, यहाँ काम के समय, जब हम उनके सामने जा खड़े हुए

तो उनमें इस प्रकार की कोई उत्सुकता दिखाई न पड़ी, बल्कि इसके प्रतिकूल उन्होंने हमारे प्रश्नों का उत्तर बड़ी ही शान्ति के साथ दिया। हाँ, कभी २ इस प्रकार का मज़ाक़ जरूर करते थे कि गणना किस हिसाब से की जाय—अमुक मनुष्य तो दो के बराबर है और अमुक दो मनुष्यों को मिलाकर एक में लिखना चाहिये।

बहुत से लोगों को हमने भोजन करते अथवा चाय पीते हुए पाया और जब कभी हम जाकर सलाम करते तो हर जगह से यही आवाज़ आती 'आइये कुछ नाश्ता कीजिये' और उनमें से कुछ लोग तो इधर उधर हटकर हमारे लिये स्थान भी कर देते थे। हमने तो समझा कि यहाँ खाना-बदोशों की बस्ती होगी किन्तु कुछ कोठरियाँ तो ऐसी थीं कि जिनमें वे ही किरायेदार सुख से रहते चले आते थे। एक बढ़ई और उसका नौकर तथा एक मोची एक दूसरे कारीगर के साथ जब जिस कोठरी में रहते हैं उसी में बराबर दस वर्ष से रह रहे हैं। मोची के यहाँ कूड़ा बहुत था और जगह के लिहाज़ से आदमियों की भीड़ भी ज्यादा थी, फिर भी काम करने वाले खुश थे। एक मजदूर के साथ बात करके मैंने यह बात जाननी चाही कि उसकी स्थिति कैसी है और अपने मालिक का वह कितना कर्ज़दार है, किन्तु वह मेरा मतलब न समझ कर अपने सुख और स्वामी के सद्व्यवहार की चर्चा करने लगा।

एक कोठरी में कोई बूढ़ा आदमी अपनी स्त्री के साथ रहता था, वह फल बेचने का रोजगार करता था। उसका कमरा साफ़, गर्म और सामान से सजा हुआ था। फ़र्श पर चटाई बिछी थी, जो

वह अपने फलों के भण्डार से उठा लाये थे। कुछ सन्दूकें, एक आलमारी, एक चायदानी और कुछ बर्तन भी थे। घर के एक कोने में कई मूर्तियाँ थीं, जिनके सामने दो चिराग़ जल रहे थे। दीवाल की खूटियों पर सुन्दर कोट टँगे हुए थे और उन पर कपड़ा ढँका हुआ था। उस वृद्धा के मुँह पर झुर्रियाँ पड़ गई थीं, वह दयालु और बातूनी तबियत की थी और अपने शान्त सुव्यवस्थित जीवन से सन्तुष्ट और सुखी मालूम पड़ती थी।

होटल तथा इन मकानों का मालिक आइवन फिडोटिन घर में से निकल कर कुछ दूर तक हमारे साथ आया। वह प्रसन्न वदन हो किरायेदारों से मज़ाक करता, उनका नाम अथवा उपनाम लेकर पुकारता और संक्षेप से उनका जीवन-चरित्र सुनाता जाता था। ये सब हमारे ही जैसे मनुष्य थे। मार्टिन सिमेनो विचीज़, पीटर पेट्रोविचीज़, मार्या इवान बनास इनमें से कोई भी अपने को दुखी नहीं समझता था और वास्तव में हम में और उनमें कोई अन्तर भी न था।

हम तो घर से यह सोचकर निकले थे कि कुछ भयंकर दृश्य हमें देखने पड़ेंगे, किन्तु यहाँ हमने जो कुछ देखा वह भयंकर तथा अशान्तिकर नहीं, बल्कि आदरणीय था। इस प्रकार के सुखी लोग वहाँ इतनी अधिक संख्या में थे कि कुछ दुर्दशाग्रस्त, फटे चीथड़े पहिने, बे रोज़गार मनुष्य जो वहाँ कभी २ दिखाई पड़ते थे, उनसे हमारे हृदय-पट पर अङ्कित चित्र का प्रभाव नष्ट न होता था। किन्तु इन बातों का जो असर मेरे दिल पर पड़ता था, वह विद्यार्थियों पर न होता था। वे तो केवल समाज-शास्त्र का एक उपयोगी कार्य समझ कर उसे कर रहे थे और साथ

ही साथ कभी २ टीका-टिप्पणी भी करते जाते थे। पर मैं तो परोपकारी था, मैं तो यह सोच कर आया था कि इस मकान में जो दीन-दुखी, अनाथ और पतित मनुष्य रहते होंगे, मैं उनकी मदद करूँगा। किन्तु यहाँ आया तो दीन-दुखी, अनाथ और पतित मनुष्यों के बदले एक दम शान्त, सन्तोषी, सुखी, नेक और मेहनती आदमी देखने को मिले।

मुझे यह देखकर और भी आश्चर्य हुआ कि जिन लोगों को किसी प्रकार की सहायता की जरूरत थी उन्हें सहायता पहुँचाने वाला कोई न कोई माई का लाल मिल गया है और यह सहायता पहुँचाने वाले हैं कौन ? कोई बाहर के आदमी नहीं बल्कि सहायता पहुँचाने वाले यही लोग थे कि जिन्हें दीन दुखी और पतित जानकर मैं उबारने आया था। और यह सहायता कुछ दी भी इस ढङ्ग से गई थी कि वैसा करना मेरे लिये एक दम ही अशक्य था।

एक निचले छोटे कमरे में त्रिदोषज्वर से संतप्त एक बूढ़ा आदमी पड़ा था। इस संसार में उसका सगा-सम्बन्धी कोई न था। फिर भी एक स्त्री—एक विधवा स्त्री जिसके एक छोटी लड़की थी और जो बुड्ढे से बिलकुल अपरिचित थी और उसके सामने वाले कोने में रहती थी, उसकी सेवा-सुश्रूषा कर रही थी, और अपने पैसे खर्च करके उसकी चाय और दवादारू का प्रबन्ध करती थी।

एक दूसरे कमरे में एक औरत रोग-ग्रस्त अवस्था में पड़ी हुई थी। वेश्या-वृत्ति से गुजारा करने वाली एक शहरी औरत उसके बच्चे को खिलाती थी और उसे दूध पिलाने के लिये एक

शीशी भी ठीक कर ली थी और दो दिन से अपने अभागे धन्धे को बन्दकर रक्खा था। एक दर्जी ने, खुद के तीन बच्चे होते हुए भी, एक अनाथ लड़की को पालने के लिये घर में रख लिया था।

बस, तो अब दुखी लोगों में केवल इन्हीं की गणना की जा सकती थी—आलसी मनुष्य, बिना काम काज वाले कर्मचारी तथा नौकर, भिखारी, शराबी, वेश्यायें और बालक कि जिनकी स्थिति को पैसा देकर सुधारना असम्भव था। उन्हें सच्ची सहायता पहुँचाने के लिये यह जरूरी था कि किसी प्रकार की मदद देने के पहले उनकी परिस्थिति का गौर से अध्ययन किया जाय और फिर उनकी देख-रेख रखते हुए स्थिति के अनुसार उन्हें जिस प्रकार की सहायता की आवश्यकता हो, पहुँचाई जाय। मैं तो ऐसे दीन-दुखियों की तलाश में था कि जिन्हें अपने ढेर के ढेर धन में से कुछ देकर सहायता पहुँचाऊँ, किन्तु ऐसा कोई भी मुझे मिला नहीं कि जिसे केवल धन देकर मैं उसके जीवन को सुखी बना सकूँ। मैंने जितने आदमी देखे उनमें से कोई भी ऐसा न था कि जिनके लिये हार्दिक परिश्रम किये बिना और पर्याप्त समय दिये बिना केवल धन देकर ही उनका उद्धार किया जा सके।

मैंने जिन दुखी लोगों के नाम नोट किये थे मेरी कल्पना में उनकी तीन श्रेणियाँ बन गई थीं। एक तो वे लोग थे जो अपनी पहले की रोज़ी गँवा बैठे थे और उसे फिर से पाने के इच्छुक थे। (इस प्रकार के लोग ऊँची तथा नीची दोनों ही तरह की जातियों में थे) दूसरे नम्बर पर वेश्यायें थीं और इस मकान में उनकी संख्या बहुत अधिक थी। तीसरे वर्ग में बालक थे। मेरी नोट-बुक में सबसे अधिक संख्या पहली श्रेणी के लोगों की थी कि जो अपनी रोज़ी गँवा बैठे थे और उसे फिर से प्राप्त करने के इच्छुक थे। इस श्रेणी में भी विशेष भाग ऐसे लोगों का था कि जो परदेशी अथवा कर्मचारी थे। इन मकानों के मालिक आइवन फिडोटिविच के साथ हम लोग कई कमरों में गये और लगभग हर जगह ही वह हमसे कहता—"यहाँ गणना-पत्रक तुम्हें स्वयं न भरना पड़ेगा, फर्श आदमी यहाँ रहता है वह खाना पूरी कर देगा, बशर्ते कि पिये हुए न हो।"

आइवन फिडोटिविच इसके बाद, उस मनुष्य का नाम और उसके साथ ही उसके कुटुम्ब का नाम जोड़ कर पुकारता और प्रत्येक मनुष्य की सूरत से मालूम होता था कि पहले वह अवश्य अच्छी स्थिति में रहा होगा। आइवन फिडोटिविच की आवाज़ सुनकर दरिद्रावस्था को प्राप्त हुआ कोई सद्गृहस्थ अथवा कर्मचारी मकान के किसी अँधेरे कोने में से निकल कर आता।

प्रायः ये मनुष्य नशे में होते थे और ठीक तरह से कपड़े तो नहीं पहने होते थे। जो आदमी नशे में न होता, वह खुशी से सौंपे हुए काम को करने के लिये तैयार हो जाता। काम को बड़ी जल्दी समझ लेता और समझ गया है यह बताने के लिये अपना सर हिलाता, सामने नजर उठा कर विद्वत्तासूचक आलोचना भी करता और हमारा साफ़ छपा हुआ लाल रङ्ग का कागज काँपते हुए हाथ से लेकर पास खड़े हुए पड़ोसियों की ओर धिक्कार की दृष्टि से देखता, मानो बड़े गर्व के साथ वह कहता कि आज तक तुमने मेरी बड़ी अवहेलना की पर आज मेरी पढ़ाई का प्रताप देखो। जिस संसार में इस प्रकार के लाल कागज छपते हैं और जिसमें वह स्वयं पहले रहता था उसके साथ फिर से सम्बन्ध स्थापित होने से वह बहुत प्रसन्न है, यह स्पष्ट मालूम पड़ता था। ऐसे मनुष्य से उसके पूर्व जीवन के विषय में जब कभी मैं पूछता तो वह रटे हुए स्तोत्रों की भाँति उत्साह के साथ अपने सर पर आई हुई विपत्तियों का इतिहास सुना देता। खास कर इस बात का जिक्र वह अवश्य करता कि अपनी योग्यता के कारण पहले वह कितने ऊँचे पद पर था।

जिनोफ गृह में ऐसे लोगों की बस्ती जिधर देखो उधर फैली हुई थी। एक विभाग में तो ऐसे स्त्री पुरुष बहुत अधिक संख्या में थे। वहाँ जब हम लोग पहुँचे तो आइवन फिडोटिविच ने कहा—"यह हमारे सद्गृहस्थों का विभाग है।" मकान भरा हुआ था, सभी किरायेदार जिनकी संख्या लगभग ४० थी, वहाँ मौजूद थे। उस गृह भर में इस प्रकार के दीन-हीन वृद्ध और निस्तेज निराश युवक और कहीं देखने में न आये। मैंने कई एक से बात

की। सब की कहानी एक ही सी थी, बस अन्तर केवल इतना था कि किसी की कहानी अन्तिम सीढ़ी तक पहुँच गई थी और किसी की अभी अधर में ही थी। प्रत्येक मनुष्य या तो स्वयं मालदार था या उसका पिता, भाई, या चाचा धनवान् था, अथवा अब भी है, अथवा वह या उसका पिता किसी दिन किसी ऊँचे पद पर प्रतिष्ठित था और फिर पीछे से किसी दुश्मन की कारस्तानी से अथवा अपने ही दुर्भाग्य से या किसी आकस्मिक घटना के कारण वह अपना सर्वस्व गँवा बैठा और अब ऐसे वाहियात स्थान और दुष्ट परिस्थिति में आ पड़ा है कि जहाँ जूँ और खटमलों की हद नहीं, पहिनने को फटे कपड़े हैं, पड़ोसी शराबी और चोर हैं, खाने को सूखी रोटी और नमक के सिवा और कुछ नहीं। अब हाथ फैलाकर भीख माँगना—बस यही भाग्य में लिखा है।

इन लोगों के विचार, इनकी वासनायें और स्मृतियाँ सभी भूतकाल में लीन हैं। वर्तमान तो उन्हें एकदम अस्वाभाविक, तिरस्करणीय और मन में न लाने योग्य मालूम होता है। इनके लिये वर्तमान तो जैसे है ही नहीं। उनके पास भूतकाल की मधुर स्मृतियाँ हैं और भविष्य की भव्य भावनायें जो किसी दिन भी चरितार्थ हो सकती हैं और जिनको चरितार्थ करने के लिये बहुत थोड़ी सहायता की आवश्यकता है। किन्तु दुर्भाग्यवश वह थोड़ी सी सहायता उनकी पहुँच के बाहर है और वह किसी भी तरह नहीं मिलती; इसीलिये किसी का एक वर्ष, किसी के पाँच वर्ष और किसी के जीवन के पूरे तीस वर्ष व्यर्थ ही नष्ट हो गये।

एक आदमी के ऊपर किसी की मेहरबानी है बस उसको इतनी ही ज़रूरत है कि वह भले आदमियों की तरह कपड़े पहन

कर उसके पास पहुँच भर जाय। दूसरों को सिर्फ इस बात की तंगी है कि वह ठीक कपड़े पहन कर और अपना कर्ज़ा चुकाकर आरेल स्थान तक पहुँच जाय। तीसरा जायदाद वाला आदमी है, उसको छुड़ाने और अदालत में मुकदमा लड़ाने के लिये कुछ थोड़े से साधन की ही आवश्यकता है। यदि वह सहायता मिल जाय तो मुकदमा उसके हक़ में ही फैसल होगा। यह बात एक दम ही निश्चित है और इसके बाद तो फिर उसे किसी प्रकार का कोई दुःख नहीं। हर एक का यही कहना है कि अपनी असली और स्वाभाविक स्थिति को प्राप्त करने के लिये कुछ बाह्य सहायता की आवश्यकता है।

यदि मैं अपनी दानवीरता के अभिमान में चूर न होता तो यह बात समझ सकने के लिये कि इनकी दुर्दशा किसी प्रकार की बाह्य सहायता से दूर नहीं हो सकती मुझे इन वृद्ध और तरुण पुरुषों के दीन-हीन, विलास-क्षीण किन्तु दयालु मुखों की ओर ज़रा ध्यान से देखने भर की ही ज़रूरत थी। मैं समझ जाता कि चाहे कोई कितनी ही सहायता करे इनका जीवन कभी सुखमय हो नहीं सकता जब तक कि इनकी जीवन-सम्बन्धी भावनायें और कल्पनायें ऐसी ही बनी रहेंगी। मैं यह भी समझ लेता कि ये लोग किसी असाधारण परिस्थिति में आ पड़े हों या इनका दुःख सब से न्यारा और अनोखा हो यह बात नहीं है। बल्कि ये लोग बिलकुल हमारे ही जैसे हैं, इनके दुःख सुख भी हमारे ही समान हैं।

मुझे याद है कि इन ग़रीब लोगों के संसर्ग में आना मेरे लिये कितना दुःखमय हो उठा था और ऐसा क्यों हुआ यह मैं अब समझा हूँ! मैं शीशे की तरह उनके अन्दर अपने स्वरूप

को देखता था। यदि मैं अपने और अपनी श्रेणी के लोगों के जीवन पर ज़रा ध्यान देता तो मैं समझ जाता कि हम में और इन अभागे मनुष्यों में कोई वास्तविक अन्तर नहीं है।

मेरे पड़ोस में जो लोग रहते हैं वे जिनोफ़-गृह में न रहकर सिवसेव व्राजोक या दयिन्नोका मुहल्ले में रहते हैं और ज्वार की रोटी के बजाय भाँति भाँति के पकवान खाते हैं। इसीलिये वह पहले लोगों की भाँति दुःखी न हों—ऐसी कोई बात नहीं है। उनको भी अपनी वर्तमान स्थिति से इन्हीं लोगों की भाँति असन्तोष है, ये भी अपने भूतकालीन वैभव के लिये आँसू बहाते हैं और भविष्य की सुन्दर और सुस्निग्ध कल्पनायें करते हैं। इनकी भविष्य की सुन्दर स्थिति की कामनायें जिनोफ़-गृह के निवासियों की कामनाओं की ही तरह होती हैं अर्थात् ये सभी ऐसी स्थिति के इच्छुक हैं कि जिसमें इन्हें ख़ुद तो कम से कम काम करना पड़े और दूसरों की मेहनत से अधिक से अधिक लाभ वे उठा सकें। इनमें अन्तर केवल इतना ही था कि कोई अधिक परिमाण में आलसी जीवन व्यतीत करना चाहते थे और कोई कुछ कम परिमाण में!

मैं यदि कुछ विचार करता तो यह बात समझ जाता; पर दुर्भाग्यवश मैंने उस समय विचार नहीं किया और न यही समझा कि इन लोगों का भला मेरे दान से नहीं हो सकता। इनके सुधार के लिये तो जीवन और संसार के सम्बन्ध में इन्होंने जो विचार बना लिये हैं उनमें परिवर्तन कराने की ज़रूरत है। किन्तु किसी के जीवन में परिवर्तन कराने के लिये आवश्यक है कि उसके अपने

जीवन का एक आदर्श उसके सामने रक्खा जाय, किन्तु चूँकि मेरे जीवन का आदर्श उनसे ऊँचा न था—जिन भ्रमात्मक भावनाओं से उन्हें मुक्त करने की जरूरत थी उन्हीं में, अभी तक, मैं भी फँसा हुआ था, इसीलिये इस सम्बन्ध में मैं कुछ भी न कर सका।

यदि किसी उदाहरण द्वारा कहा जाय तो कह सकते हैं कि ये लोग इसलिये दुखी नहीं थे कि इनके पास केवल भोजन नहीं था, बल्कि इसलिये कि इनका मेदा बिगड़ गया था और उनको अब भोजन की नहीं, हाजमा दुरुस्त करने के लिये टानिक की जरूरत थी। मैं यह बात नहीं समझ सका कि इनको भोजन देने की जरूरत नहीं है बल्कि यह बात सिखाने की जरूरत है कि भोजन किस तरह किया जाय। वैसे तो यह बात आगे आवेगी, पर इतना तो मैं कह ही दूँ कि मैंने जिन लोगों के नाम नोट किये थे उनमें से किसी को भी सच्ची सहायता नहीं पहुँचा सका, हालाँ कि जिसने जो कुछ माँगा था वह उन्हें दिया गया था। इनमें से तीन लोगों से मैं विशेष रूप से परिचित हो गया। यह तीनों ही बहुत से उतार चढाव देखकर आज तीन वर्ष पीछे फिर अपनी पहली ही जैसी असहाय अवस्था को प्राप्त हो गये हैं।

को देखता था। यदि मैं अपने और अपनी श्रेणी के लोगों के जीवन पर ज़रा ध्यान देता तो मैं समझ जाता कि हम में और इन अभागे मनुष्यों में कोई वास्तविक अन्तर नहीं है।

मेरे पड़ोस में जो लोग रहते हैं वे जिनोफ़-गृह में न रहकर सिवसेव ब्राजोक या दयिज्ञोफ़ा मुहल्ले में रहते हैं और ज्वार की रोटी के बजाय भाँति भाँति के पकवान खाते हैं। इसीलिये वह पहले लोगों की भाँति दुःखी न हों—ऐसी कोई बात नहीं है। उनको भी अपनी वर्तमान स्थिति से इन्हीं लोगों की भाँति असन्तोष है, ये भी अपने भूतकालीन वैभव के लिये आँसू बहाते हैं और भविष्य की सुन्दर और सुस्निग्ध कल्पनायें करते हैं। इनकी भविष्य की सुन्दर स्थिति की कामनायें जिनोफ़-गृह के निवासियों की कामनाओं की ही तरह होती हैं अर्थात् ये सभी ऐसी स्थिति के इच्छुक हैं कि जिसमें इन्हें खुद तो कम से कम काम करना पड़े और दूसरों की मेहनत से अधिक से अधिक लाभ ये उठा सकें। इनमें अन्तर केवल इतना ही था कि कोई अधिक परिमाण में आलसी जीवन व्यतीत करना चाहते थे और कोई कुछ कम परिमाण में !

मैं यदि कुछ विचार करता तो यह बात समझ जाता; पर दुर्भाग्यवश मैंने उस समय विचार नहीं किया और न यही समझा कि इन लोगों का भला मेरे दान से नहीं हो सकता। इनके सुधार के लिये तो जीवन और संसार के सम्बन्ध में इन्होंने जो विचार बना लिये हैं उनमें परिवर्तन कराने की जरूरत है। किन्तु किसी के जीवन में परिवर्तन कराने के लिये आवश्यक है कि उसके अंधे

जीवन का एक आदर्श उसके सामने रक्खा जाय, किन्तु चूँकि मेरे जीवन का आदर्श उनसे ऊँचा न था—जिन भ्रमात्मक भावनाओं से उन्हें मुक्त करने की जरूरत थी उन्हीं में, अभी तक, मैं भी फँसा हुआ था, इसीलिये इस सम्बन्ध में मैं कुछ भी न कर सका।

यदि किसी उदाहरण द्वारा कहा जाय तो कह सकते हैं कि ये लोग इसलिये दुखी नहीं थे कि इनके पास केवल भोजन नहीं था, बल्कि इसलिये कि इनका मेदा बिगड़ गया था और उनको अब भोजन की नहीं, हाजमा दुरुस्त करने के लिये टानिक की जरूरत थी। मैं यह बात नहीं समझ सका कि इनको भोजन देने की जरूरत नहीं है बल्कि यह बात सिखाने की जरूरत है कि भोजन किस तरह किया जाय। वैसे तो यह बात आगे आवेगी, पर इतना तो मैं कह ही दूँ कि मैंने जिन लोगों के नाम नोट किये थे उनमें से किसी को भी सच्ची सहायता नहीं पहुँचा सका, हालाँ कि जिसने जो कुछ माँगा था वह उन्हें दिया गया था। इनमें से तीन लोगों से मैं विशेष रूप से परिचित हो गया। यह तीनों ही बहुत से उतार चढाव देखकर आज तीन वर्ष पीछे फिर अपनी पहली ही जैसी असहाय अवस्था को प्राप्त हो गये हैं।

इन अभागों के दूसरे वर्ग में वेश्याएँ थीं कि जिनको मदद देने का मैंने विचार किया था। इन स्त्रियों की जिनोफ गृह में बड़ी भारी संख्या थी और उनमें स्त्रियों से कुछ २ मिलती जुलती किशोर लड़कियों से लेकर महा-वृद्ध भयंकर मुखाकृति वाली स्त्रियाँ तक थीं कि जिनमें मनुष्यता का कोई नामोनिशान तक न था। इन स्त्रियों को सहायता पहुँचाने की इच्छा पहले मेरे मन में न थी, पर पीछे से हुई। उसके उदय होने का कारण यह है।

जब हम लोग अपना काम समाप्त करने पर आये तो उस समय तक हमारे कार्य की एक नियमित पद्धति बन गई थी। नये मकान में घुसते ही हम मकान के मालिक को बुलाते और हम में से एक आदमी लिखने के लिये स्थान ठीक करके बैठ जाता और दूसरा उस कमरे के स्त्री-पुरुषों के पास जा जाकर प्रश्न करता और उसकी सूचना लिखने वाले आदमी को दे जाता।

इस प्रकार हम एक निचले विभाग के कमरे में जब पहुँचे तो विद्यार्थी मालिक मकान की तलाश करने लगा और मैं उस जगह पर जो लोग मौजूद थे उनसे प्रश्न करने लगा। इस विभाग की रचना इस प्रकार की थी। मकान चार गज लम्बा और चार गज चौड़ा था और उसके मध्य में अँगीठी थी। अँगीठी के पास से चार पर्दे डाल कर चार कमरे निकाले गये थे। इनमें से पहले कमरे में दो दरवाजे और चार पलंग थे और एक बूढ़ा आदमी

तथा एक स्त्री थी। इसके बाद एक लम्बा किन्तु तङ्ग सा कमरा था जिसमें मकान का मालिक रहता था जो ऊन का भूरा कोट पहने था। उसका रङ्ग फीका था, किन्तु वह देखने में सुन्दर मालूम होता था, और अभी जवान था। पहले विभाग के बाईं ओर तीसरी कोठरी थी जिसमें कोई आदमी पड़ा ऊँघ रहा था और शायद पिये हुए भी था। उसी कमरे में एक स्त्री थी जो लाल रङ्ग का गाउन पहिने हुए थी। चौथी कोठरी उस स्थल के पीछे थी कि जहाँ से विभाग शुरू होते थे और उसमें गृह-स्वामी के कमरे में से होकर जाना होता था।

विद्यार्थी अन्तिम कमरे में चला गया और मैं पहले ही कमरे में उस पुरुष तथा स्त्री से बातें करने लगा। वह वृद्ध पुरुष पहले कम्पोजिटर था पर अब जीविका उपार्जन का कोई साधन उसके पास न था। वह स्त्री किसी रसोइया की पत्नी थी।

मैं तीसरे कमरे में गया और गाउन वाली स्त्री से उस सोने वाले आदमी के निस्बत दरियाफ्त किया।

उसने जवाब दिया कि वह उसका मिलने वाला है?

मैंने पूछा—तुम कौन हो?

उसने उत्तर दिया—मैं मास्को की रहने वाली एक किसान ी लड़की हूँ।

जब मैंने पूछा 'तुम्हारा पेशा क्या है'? तो उसने कोई उत्तर दिया; चुपचाप हँसने लगी।

यह समझ कर कि शायद उसने मेरे प्रश्न को समझा नहीं। ने फिर पूछा—तुम्हारी गुजर किस तरह होती है?

वह बोली–मैं कोठे पर बैठती हूँ।

उसकी बात नहीं समझा, इसीलिये एक बार फिर पूछा- तुम अपनी गुजर के लिये क्या करती हो ?

उसने कोई जवाब न दिया, केवल हँसती रही। चौथे कमरे से भी जहाँ कि हम लोग अभी नहीं गये थे, कुछ स्त्रियों के हँसने की आवाज आ रही थी।

गृहस्वामी अपने घर से निकल कर हमारे पास आया। उसने मेरे प्रश्न और उस स्त्री के उत्तर, मालूम पड़ता है, सुन लिये थे। उसने तीव्रता से उसकी ओर देखा और मेरी ओर घूम कर कहा—'यह वेश्या है'! उसके ढङ्ग से मालूम पड़ता था कि वह इस बात से खुश था कि वह इस सरकारी शब्द से परिचित है और उसका शुद्ध उच्चारण कर सकता है। यह कह कर और सन्तोषपूर्ण मुस्कयान के साथ मेरी ओर देख कर वह औरत की तरफ फिरा और उसकी तरफ मुँह फिरते ही उसके चेहरे का भाव बदल गया। अत्यन्त घृणा-सूचक और तेज स्वर में जैसे कि कोई कुत्ते को दुतकारता है, उसकी ओर बिना देखे ही कहा—क्यों मूर्खों की सी बातें करती है! यह न कह कर कि मैं कोठे पर बैठती हूँ सीधी तरह यह क्यों नहीं कहती कि मैं वेश्या हूँ। क्या तुझे अपना नाम भी मालूम नहीं ?

उसके बात करने के ढङ्ग से मुझे चोट लगी।

मैंने कहा—उसे लज्जित करना हमें शोभा नहीं देता। यदि हम सब ईश्वर की आज्ञानुसार जीवन व्यतीत करते तो इस प्रकार का कोई व्यक्ति ही न होता।

गृहस्वामी ने कृत्रिम हँसी के साथ कहा—हाँ, बात तो ठीक है।

इसी लिये उनकी भर्त्सना न कर के हमें उन पर दया करनी चाहिये। इसमें उनका क्या अपराध है ?

मुझे यह ठीक याद नहीं कि मैंने उस समय क्या कहा पर यह याद है कि उसकी तिरस्कार पूर्ण बातें सुन कर मुझे बड़ी अरुचि हुई। जिस घर में वे स्त्रियाँ थीं उसी में खड़े होकर वह उन्हें वेश्या कह रहा था। मुझे उस स्त्री पर भी दया आई और अपने मन के ये दोनों ही भाव मैंने उस समय व्यक्त किये।

ज्यों ही मैंने ये बातें कहीं त्योंही उस कमरे में कि जिसमें से औरतों के हँसने की आवाज़ आ रही थी चारपाई की चरचराहट सुनाई दी और पर्दे के ऊपर कि जो छत तक न लगा था एक बिखरे हुए बालों वाली स्त्री का सिर दिखाई दिया। उसकी आँखें छोटी और सूजी हुई थीं, चेहरा लाल अंगारा था। उसके बाद दूसरा और फिर तीसरा सिर दिखाई दिया। वह अपनी चारपाइयों पर खड़ी हुई थीं और तीनों जनीं गर्दन उचकाये, साँस रोके, चुपचाप ध्यानपूर्वक मेरी ओर देख रहीं थीं।

इसके बाद थोड़ी देर तक दुःखजनक स्तब्धता रही। विद्यार्थी जो अभी तक हँस रहा था इस घटना के बाद गम्भीर हो गया, गृहस्वामी गड़बड़ा गया और अपनी आँखें नीची कर लीं और स्त्रियाँ इस आशा से मेरी ओर देख रही थीं कि देखें अब यह क्या कहता है।

किन्तु मैं सब से अधिक घबड़ाया हुआ था। मुझे ज़रा भी ख्याल न था कि साधारण बालचाल में आये हुए शब्द का इतना प्रभाव पड़ेगा। मेरा वह कहना क्या था, क़बरिस्तान में, मानों, किसी देवता ने अमृत सिञ्चन किया हो जिससे मुर्दा हड्डियाँ फिर से जागृत

होने लगीं। मैंने तो यों ही प्रेम और करुणा से पूर्ण एक शब्द कह दिया था जिसका इन सब पर ऐसा असर पड़ा मानो फिर से सजीव हो उठने के लिये वे इसी शब्द की प्रतीक्षा कर रही थीं।

वे बराबर मेरी ओर देख रही थीं मानो सोच रही थीं देखें अब मेरे मुँह से क्या निकलता है। मानो वे इस बात की प्रतीक्षा कर रही थीं कि मैं उन शब्दों को कहूँ और उन कामों को करूँ कि जिनसे ये हड्डियाँ इकट्ठी होनी शुरू हो जायँगी—माँस से आच्छादित होकर पुनर्जीवन प्राप्त करेंगी।

किन्तु हाय मेरे पास अब न तो ऐसे शब्द थे और न ऐसे काम और न मैं बातचीत के उस ढङ्ग को ही क़ायम रखने में समर्थ था। मेरे अन्तरात्मा में मुझे ऐसा भास होने लगा कि मैंने झूठ बोला है, मैं खुद भी उन्हीं की तरह हूँ, मुझे अधिक कुछ कहने का अधिकार भी नहीं और इसीलिये मैं पत्रक पर वहाँ के रहने वालों का नाम और पेशा लिखने लगा।

इस घटना ने मुझे एक दूसरी ही ग़लती में ला फँसाया। मैं यह सोचने लगा कि इन अभागे जीवों को भी सहायता पहुँचाई जा सकती है। अपने गुमान में मैंने समझा था कि यह काम हो भी बड़ी आसानी से जायगा। मैंने दिल में सोचा, अभी तो हम इन स्त्रियों के नाम लिखे लेते हैं और पीछे से जब हम सब कुछ लिख लेंगे तब इन लोगों के लिये कोशिश करेंगे। लेकिन उस समय मैंने यह न सोचा कि यह 'हम' हैं कौन? मैंने कल्पना की कि हम लोग अर्थात् वही आदमी कि जो पुश्त दर पुश्त से ऐसी स्त्रियों को इस दुर्दशा में लाते रहे और अब भी ऐसा करते हैं। एक दिन, शुभ मुहूर्त में, अचानक, हम अपनी इस

मोहनिद्रा से जागृत होकर सारी स्थिति को सुधार डालेंगे। किन्तु यदि मैं उस वार्तालाप का स्मरण करता कि जो उस पतित स्त्री के साथ हुआ था कि जो बीमार माँ के बच्चे की शुश्रूषा कर रही थी तो मैं समझ जाता कि मेरी यह कल्पना कितनी मूर्खता-पूर्ण है।

हमने पहले पहल जब उस स्त्री को बच्चे की सेवा करते देखा तो समझा कि यह लड़का उसी का है, लेकिन जब हमने उसके विषय में पूछा तो उसने साफ़ साफ़ कह दिया कि मैं बाजार में बैठने वाली औरत हूँ। उसने 'वेश्या' शब्द नहीं कहा। उस भयंकर शब्द का प्रयोग करना तो उस मकान के मालिक के हिस्से में था।

यह औरत बच्चेवाली है, इस कल्पना से उसकी वर्तमान स्थिति से उद्धार करने का विचार मेरे दिल में पैदा हुआ।

मैंने पूछा—क्या यह तुम्हारा बच्चा है ?

उसने उत्तर दिया—'नहीं, यह उस स्त्री का है'

'तो, तुम क्यों उसकी शुश्रूषा कर रही हो' ?

'उसने मुझ से कहा है। वह मर रही है'

यद्यपि मेरी धारणा ठीक न निकली फिर भी मैं उसी ढङ्ग से बातचीत करता रहा। मैंने उससे पूछा कि वह कौन है और वह इस दशा को कैसे प्राप्त हुई। उसने खुशी से और साफ़ साफ़ अपनी कहानी मुझे सुना दी। वह मास्को के रहने वाले किसी कारखाने के कारीगर की लड़की थी। उसको अकेली छोड़ कर उसके माता-पिता मर गये। उसकी चाची ने अपने घर

ले जाकर उसे पाला पोसा। चाची के घर से वह अक्सर बाजार में आने जाने लगी। वह चाची भी अब मर गई थी।

मैंने पूछा—अपने इस जीवन को बदल डालने की क्या तुम्हारी इच्छा नहीं होती? मालूम होता था मेरे इस प्रश्न ने उसके मन को जरा भी आकर्षित नहीं किया। यदि कोई बिलकुल ही असम्भव सी बात कहे तो उसकी ओर किसी का ध्यान क्योंकर आकर्षित हो?

जरा मुँह बना कर उसने कहा—लेकिन इस पीले टिकट* वाली को रक्खेगा कौन?

मैंने कहा—किन्तु यदि मैं तुम्हारे लिये रसोई बनाने का या कोई ऐसा ही दूसरा काम तलाश कर दूँ तो कैसा रहे?' यह बात मैंने इसलिये कही थी कि उसका शरीर रसोई बनाने वाली स्त्रियों की तरह ही मोटा ताजा था और उसका चेहरा गोल तथा भोला था।

मेरी यह बात उसे अच्छी नहीं मालूम पड़ी। उसने कहा—'रसोई बनाना! किन्तु मुझे रोटी पकाना तो आता ही नहीं'। उसने किञ्चित हास्य के साथ यह बात कही थी किन्तु उसके चेहरे के भाव से स्पष्ट प्रकट होता था कि इस बात के लिये वह राजी नहीं है; इतना ही नहीं रसोई बनाने का काम वह अपनी मर्यादा के विरुद्ध समझती है।

यह स्त्री, जो बाईबिल की विधवा की तरह उपरोक्त बीमार स्त्री की सेवा में अपना सर्वस्व लगा रही थी वही अपनी हमपेशा दूसरी स्त्रियों की भाँति मेहनत मजदूरी के काम को नीच, तुच्छ

---

* पीला टिकट वेश्याओं के रजिस्ट्री का सार्टिफिकेट होता था।

तथा तिरस्कारयोग्य समझती थी। काम किये बिना ही निर्वाह करती हुई वह छोटे से बड़ी हुई थी और उसका यह जीवन उसके आस पास रहने वाले सभी लोगों की दृष्टि में बिलकुल ही स्वाभाविक था। यही उसका दुर्भाग्य था। इसी दुर्भाग्य के कारण वह इस दुर्दशा को प्राप्त हुई थी और अब भी उसी में पड़ी हुई थी। इसी के कारण वह बाजारों में घूमी फिरी। हम में ऐसा कौनसा पुरुष अथवा स्त्री है कि जो जीवन सम्बन्धी उसकी इस भावना को बदल सके। क्या हम में ऐसे कोई आदमी हैं कि जिनका विश्वास हो कि आलस्यमय जीवन की अपेक्षा मेहनत मजदूरी का जीवन अधिक सम्मानपूर्ण है और जो अपने इस विश्वास के अनुसार ही अपने जीवन का निर्वाह करते हैं, जो इसी सिद्धान्त को आदर और सम्मान की कसौटी बनाते हैं ?

यदि मैंने इस विषय में सोचा होता तो मैं समझ जाता कि न तो मैं और न मेरी जान में कोई दूसरा ही आदमी ऐसा है कि जो किसी मनुष्य को इस रोग से मुक्त कर सके।

मैं समझ गया होता कि पर्दे के ऊपर उन स्त्रियों के जो आश्चर्य चकित उत्सुक मुख दिखाई पड़े थे उनसे केवल आश्चर्य ही प्रकट हो रहा था। अपने जीवन को सुधारने की उनमें कोई इच्छा न थी। यह उनकी समझ में ही नहीं आता कि इसमें पाप की कौन सी बात है। यह तो वे देखती थीं कि लोग उन्हें धिक्कारते हैं, उनसे घृणा करते हैं पर लोग क्यों उनका तिरस्कार करते हैं यह उनकी समझ में न आता। इस प्रकार की स्त्रियों ने बचपन से ही इसी तरह अपना जीवन व्यतीत किया है और वे जानती हैं कि इस प्रकार की स्त्रियाँ सदा रही हैं, अब भी हैं और

वे समाज के लिये आवश्यक हैं। इतना ही नहीं सरकार की तरफ से इस बात के लिये कर्मचारी नियत हैं कि वे इस बात की देख-रेख रक्खें कि ऐसी स्त्रियाँ सरकार के नियमों का पालन करें।

इसके अतिरिक्त वे यह भी जानती हैं कि अन्य स्त्रियों की अपेक्षा उनका मनुष्यों पर अधिक प्रभाव है और वह उन्हें अपने वश में भी अधिक रख सकती हैं। वे यह देखती हैं कि यद्यपि वे दूषित समझी जाती हैं फिर भी समाज के स्त्री और पुरुष और खुद सरकार, समाज में उनके स्थान को स्वीकार करती है। और इसीलिये वे यह समझ भी नहीं सकतीं कि वे किस बात के लिये पश्चात्ताप करें और सुधार किस बात का करें।

एक रोज जब हम काम के लिये निकले तो विद्यार्थी ने मुझे खबर दी कि एक कोठरी में कोई स्त्री रहती है जो अपनी तेरह वर्ष की लड़की को बाज़ार में बैठने के लिये भेजती है। उस लड़की को बचाने की इच्छा से मैं फ़ौरन उसके घर गया।

माँ-बेटी बड़ी ग़रीबी से रहती थीं। माँ ४० वर्ष की ठिंगनी काले रङ्ग की वेश्या थी, जो केवल बदसूरत ही नहीं बल्कि बड़ी भद्दी शक्ल की थी। बेटी भी देखने में लगभग वैसी ही थी। मैंने घुमा फिरा कर उनके जीवन के सम्बन्ध में कई प्रश्न किये, पर, माँ ने उन सबके बात उड़ाने के ढङ्ग के जवाब दिये। उसके चेहरे से स्पष्ट प्रकट होता था कि वह यह समझती है कि हम लोग वैर-भाव से उन्हें हानि पहुँचाने आये हैं। लड़की तो माँ की ओर देखे बिना कोई उत्तर ही न देती थी, उसे तो अपनी माँ के ऊपर पूर्ण विश्वास था।

इन लोगों को देख कर मेरे हृदय में दया नहीं, उल्टी घृणा-

पैदा हुई, किन्तु मैंने निश्चय किया कि इस लड़की की रक्षा करना आवश्यक है और इसके लिये ऐसी महिलाओं को ढूँढकर इनके पास भेजना चाहिये कि जिनके हृदय में इनकी शोचनीय दशा के प्रति दया तथा सहानुभूति हो।

किन्तु यदि मैंने इस बात पर विचार किया होता कि इस लड़की की माँ का पूर्व जीवन किस प्रकार व्यतीत हुआ, उसने लड़की को जन्म किस प्रकार दिया और किस प्रकार बिना किसी बाह्य सहायता के बड़े भारी आत्मत्याग के साथ उसने लड़की को पालापोसा और बड़ा किया, यदि मैंने सोचा होता कि जीवन सम्बन्धी किस प्रकार की धारणाएँ उसके मन में धीरे धीरे बन गई हैं तो मैं समझ गया होता कि माता के इस व्यवहार में किसी प्रकार का कोई भी अनौचित्य अथवा पाप नहीं है; क्योंकि वह बिचारी तो अपनी बुद्धि के अनुसार अच्छा से अच्छा जो कुछ अपनी लड़की के लिये कर सकती थी वही कर रही थी।

लड़की को जबरदस्ती माँ के पास से छीन ले जाना तो सम्भव था, किन्तु लड़की के धर्म और शील को इस प्रकार बेचने में कोई बुराई है यह बात लड़की की माँ को समझा देना एकदम अशक्य था। सब से पहली और जरूरी बात तो यह प्रतीत हुई कि इस माँ की रक्षा की जाय, उसे जीवन की इस दूषित भावना की लहर से बचाया जाय कि जिसे प्राय: सभी उपयुक्त समझते हैं और जिसके अनुसार यह उचित समझा जाता है कि कोई स्त्री बिना ब्याह किये, अर्थात् बिना सन्तान उत्पन्न किये, तथा बिना ही काम किये केवल विषय वासना को तृप्त करने का साधन बन कर रह सकती है।

यदि मैंने इस स्थिति पर विचार किया होता तो मैं आसानी

से समझ गया होता कि मैं जिन महिलाओं को इस लड़की के रक्षार्थ भेजना चाहता हूँ उनमें से अधिकांश न केवल स्वयं ही गार्हस्थ्य कर्तव्यों से बचती रहने की चेष्टा करती हैं और आलस्य-मय तथा विषयी जीवन व्यतीत करती हैं, बल्कि जान बूझ कर वह अपनी लड़कियों को भी इसी प्रकार का जीवन व्यतीत करने की शिक्षा देती हैं। यदि वह माँ अपनी लड़की को बाजार में भेजती है तो दूसरी बॉल—अर्थात् नाच में, तथा विलासी समाज में, अपनी लड़कियों को जाने के लिये प्रोत्साहित करती हैं। इन दोनों ही का दृष्टिकोण एक है; दोनों ही यह समझती हैं कि स्त्री इसीलिये बनी है कि वह पुरुषों की विषय-वासना को तृप्त करे; और इसके उपलक्ष्य में स्त्री के लिये अन्न-वस्त्र की योजना करनी चाहिये और उसकी देखभाल रखनी चाहिये। जब स्थिति ऐसी है तब फिर भला हमारे घर की महिलाएँ किस प्रकार उस स्त्री का तथा उसकी कन्या का सुधार तथा उद्धार कर सकेंगी ?

-

मैंने बालकों के लिये जो कुछ किया वह और भी विचित्र था। परोपकारी की हैसियत से मैंने बालकों की ओर भी ध्यान दिया। इस पाप-गुफा में निर्दोष बालकों को नष्ट होने से बचाने की मेरे मन में इच्छा हुई और यह सोचकर कि पीछे से इनलोगों के उद्धार के लिये मैं कुछ करूँगा मैंने उनके नाम लिख लिये।

उन बालकों में १२ वर्ष के शीरोजा नामक बालक की ओर मेरा ध्यान विशेष रूप से आकर्षित हुआ। यह चतुर और बुद्धिमान् बालक एक जूते बनाने वाले के पास रहता था। किन्तु उस मोची के जेल चले जाने के कारण अब वह बिलकुल निस्सहाय और निराश्रित था। मुझे उस पर बड़ी दया आई और उसके साथ कुछ भलाई करने की इच्छा उत्पन्न हुई।

इस बालक के उद्धार करने की जो चेष्टा मैंने की थी उसका क्या फल हुआ वह बात अब मैं यहाँ पर कहूँगा; क्योंकि, इस बालक की गाथा से मेरे परोपकारीपने की पोल जितनी स्पष्टता से समझ में आवेगी उतनी और किसी तरह नहीं। मैं उस बालक को अपने घर ले आया और उसे बबरची खाने में रक्खा। उस पाप गुफा से लाये हुए एक दीन बालक को मैं अपने बच्चों के साथ भला कैसे रख सकता था? मैंने तो उसे अपने नौकरों के पास लाकर

रख दिया। इतने ही से मैंने मन में सोचा कि मैंने उस बालक पर बड़ी दया की। मैंने सोचा कि मैं बड़ा भारी परोपकारी सद्गृहस्थ हूँ क्योंकि मैंने उसे पहनने के लिये अपने कुछ पुराने कपड़े दे दिये थे और खाने के लिये भोजन, हाँलाकि, यह सब किया मेरे बबर्ची ही ने, स्वयं मैंने कुछ नहीं किया। बालक लगभग एक सप्ताह मेरे घर रहा।

एक सप्ताह भर जो वह मेरे यहाँ रहा इस बीच में दो बार मैं उससे मिला और उसके पास से गुज़रते हुए दो चार शब्द भी उससे कहे और जब घूमने निकला तो एक जाने पहिचाने मोची के पास जाकर उस लड़के को उम्मेदवार की तरह अपने पास रख लेने का प्रस्ताव किया। एक किसान ने, जो घर पर मिलने आया था, उस लड़के से उसके गाँव में जाकर एक परिवार में काम करने के लिये कहा किन्तु उस ने अस्वीकार कर दिया और उसी सप्ताह वह कहीं भाग गया।

उसको तलाश करने के लिये मैं जिनोफ भवन गया। वह वहीं लौट गया था किन्तु जिस समय मैं वहाँ गया था उस समय वह वहाँ नहीं था। किसी सरकस में नौकरी करते उसे दो दिन हो गये थे। वहाँ एक हाथी को लेकर चित्र-विचित्र कपड़े पहन कर उसे जलूस के साथ चलना होता था। उन दिनों कोई तमाशा हो रहा था।

मैं उससे मिलने फिर गया किन्तु वह ऐसा कृतघ्न था कि वह जान बूझ कर मेरे पास न आया। यदि मैंने उस बालक के और स्वयं अपने जीवन पर विचार किया होता तो मैं समझ गया होता कि सुखी और आलसी जीवन का मजा चखने के कारण उसकी

आदत बिगड़ गई है और वह काम करने का अभ्यास खो बैठा है। मैं उसका उपकार तथा सुधार करने के लिये उसे अपने घर ले गया। पर मेरे घर जाकर उसने क्या देखा ? उसने मेरे बच्चों को देखा जिनमें कुछ उससे बड़े थे, कुछ छोटे थे और कुछ उसके बराबर थे और यह सब बालक सिर्फ इतना ही नहीं कि स्वयं कुछ काम न करते थे बल्कि दूसरों से जितना अधिक काम हो सकता था लेते थे। उनके आस पास जो कुछ होता उसे वह नष्ट-भ्रष्ट कर देते। सब प्रकार के स्वादिष्ट पदार्थ उड़ाते और रकाबियों को तोड़ फोड़ डालते और जो चीजें उस बालक के लिये नियामत जैसी मालूम होतीं उन्हें इधर उधर बखेर देते अथवा कुत्तों को डाल देते। एक निकृष्ट स्थान से लाकर उसे एक सम्मानित गृह में जब रक्खा, तब, यह बिलकुल स्वाभाविक था कि उस घर में जीवन सम्बन्धी जो धारणायें लोगों की थीं उन्हें वह भी ग्रहण करे और इन धारणाओं के अनुसार उसने यही समझा कि सम्मानित गृह में इस प्रकार रहना जरूरी है कि जिससे कोई काम तो न किया जाये बस खाना पीना और मौज उड़ाना अपना लक्ष रहे।

यह सच है कि वह यह नहीं जानता था कि मेरे बच्चों को लैटिन और ग्रीक भाषाओं के व्याकरण सीखने में बहुत श्रम करना पड़ता है और न वह इस कार्य की उपयोगिता को ही समझ सकता था। किन्तु यह निस्सन्दिग्ध है कि यदि उपयोगिता को वह समझ भी गया होता तो मेरे बालकों के उदाहरण से उस पर और भी अधिक उल्टा प्रभाव पड़ता। तब वह यह समझ गया होता कि उनको शिक्षा ही इस प्रकार की दी जाती है कि अभी काम न करते हुए, पीछे भी, वह यथासम्भव कम से कम काम करें

और अपनी उपाधियों के बल पर जीवन का आनन्दोपभोग करें।

लेकिन वह जो कुछ समझा उससे वह उस किसान के घर जाकर ढोर चराने और आलू खाकर तथा क्वास* पीकर गुजारा करने पर राजी न हुआ बल्कि सरकस में जंगली आदमी की पोशाक पहिन कर ६ पेंस रोज पर हाथी दौड़ाना उसने अधिक पसन्द किया। मुझे समझ जाना चाहिये था कि जो आदमी अपने बच्चों को आलस्य और विलास के वातावरण में शिक्षा दे उसके लिये यह कितनी बड़ी मूर्खता की बात है कि वह दूसरे आदमियों तथा उनके बच्चों को सुधारने का दम भरे और जिनोफ-गृह में, कि जिसे मैं निकृष्ट स्थानों में गिनता हूँ, उन्हें पतन और आलस्य से सुरक्षित रखने की चेष्टा करे हालाँकि उस स्थान के तीन चौथाई मनुष्य अपने लिये तथा दूसरों के लिये काम करते हुए जीवन निर्वाह करते हैं।

जिनोफ गृह में अनेकों बालक बड़ी बुरी दशा में थे। उनमें वेश्याओं के बच्चे थे, अनाथ बालक थे और कुछ ऐसे लड़के थे जिन्हें भिखारी साथ लेकर सड़क पर घूमते थे। उन सभी की बड़ी दुर्दशा थी। किन्तु शीरोजा के अनुभव ने मुझे यह बता दिया था कि जब तक मैं इस प्रकार का आलस्य और विलास पूर्ण जीवन व्यतीत करता रहूँगा उस समय तक उनको वास्तविक सहायता पहुँचाना मेरे लिये असम्भव था।

मुझे याद है कि वह लड़का जब तक हमारे पास रहा मैंने इस बात की बड़ी चेष्टा की कि वह हमारी और खास कर हमारे

* एक प्रकार की पीने की चीज।

बच्चों की जीवन-पद्धति जान न पाये। मुझे ऐसा महसूस होता था कि मेरे और मेरे बच्चों के जीवन के उदाहरण के कारण उस बालक को अच्छे और उद्योगी जीवन की शिक्षा देने की मेरी सारी चेष्टायें विफल हो रही हैं। किसी वेश्या या भिखारी से बालक को छीन ले जाना सरल है। यदि किसी के पास धन हो तो उसे नहलाना धुलाना, अच्छे कपड़े पहिनाना, अच्छा खाना खिलाना और भाँति भाँति की विद्यायें आदि पढ़ाना भी बहुत ही सरल है, किन्तु ऐसी शिक्षा देना कि वह खुद अपनी मेहनत से रोजी कमाये—यह हम लोगों के लिये, कि जो खुद ऐसा नहीं करते हैं बल्कि जिनका आचरण बिलकुल इसके विपरीत है, केवल कठिन ही नहीं, असम्भव है; क्योंकि अपने उदाहरण से और अपनी रुचि के अनुसार उसके जीवन में जो बाह्य आडम्बरपूर्ण परिवर्तन हम लोग करते हैं उससे उसको बिलकुल उल्टी ही शिक्षा मिलती है।

किसी कुत्ते को लेकर उसे चुमकारना पुचकारना, खिलाना पिलाना और चीजें उठाकर ले चलने की शिक्षा देना और उसके करतबों को देख देख कर प्रसन्न होना ठीक हो सकता है, पर मनुष्य के सम्बन्ध में ठीक वैसी ही बात नहीं है—उसे पाल पोस कर बड़ा करना और भीक सिखा देना ही पर्याप्त नहीं है। उसे तो सिखाना होगा कि वास्तव में जीया किस तरह जाता है, अर्थात् किस तरह दूसरों से कम से कम लेकर बदले में उन्हें अधिक प्रदान किया जाय। किन्तु हम अपनी जीवन-शैली से तो उसे बिलकुल उल्टी ही बातें सिखाते हैं। उसे चाहे हम घर में रक्खें अथवा किसी संस्था में, हमारे जीवन से वह यही सीखेगा कि किस तरह कम से कम सेवा करके दूसरों से अधिक सेवा करायी जाय।

ल्यापिन-गृह में मनुष्यों के प्रति करुणा और अपने प्रति घृणा का जो भाव मेरे मन में उदय हुआ था उसका वैसा तीव्र अनुभव फिर मुझे कभी नहीं हुआ। मैंने जो योजना प्रारम्भ कर दी थी उसी को पूर्ण करने की मुझे धुन थी और मैं चाहता था कि जिन लोगों से मैं मिला था उनका कुछ उपकार करूँ।

साधारणतः ऐसा समझा जाता है कि किसी के साथ भलाई करना और हाजतमन्दों को आर्थिक सहायता देना अच्छा काम है और इससे मनुष्यों में विश्व-प्रेम की भावना उत्पन्न होनी चाहिये; किन्तु कहते आश्चर्य होता है कि मेरे ऊपर बिलकुल उल्टा असर पड़ा, मेरे मन में तो उससे लोगों के प्रति कटुता और उन्हें बुरा भला कहने की इच्छा उत्पन्न हुई। पहले ही दिन के भ्रमण में ल्यापिन-गृह की तरह का सा एक दृश्य देखने में आया, किन्तु उस समय जो प्रभाव मेरे दिल पर पड़ा वह पहिले जैसा नहीं बल्कि उससे बिलकुल विभिन्न था। उसका प्रारम्भ इस तरह हुआ। एक कोठरी में कोई दुखिया स्त्री पड़ी हुई थी जिसने दो दिन से कुछ भी भोजन नहीं किया था। उसके लिये तात्कालिक सहायता की आवश्यकता थी।

इस बात का पता मुझे इस प्रकार चला। एक बड़े से रिक्त-प्राय अनाथावास में एक वृद्धा से मैंने पूछा कि यहाँ कोई ऐसा व्यक्ति भी है जिसे खाने को कुछ न मिला हो। थोड़ी देरतक वह

झिझकी और उसके बाद उसने दो नाम बताये, किन्तु फिर एकाएक जैसे उसे अकस्मात् याद आ गई हो वह बोली—हाँ, उनमें एक तो यहीं पड़ी हुई है। एक चारपाई की ओर इशारा करके उसने कहा—इसके पास तो सचमुच ही खाने को कुछ भी नहीं है।

"ऐसी बात है, यह है कौन ?"

वह एक भ्रष्ट स्त्री रही है और चूँकि अब उसके पास कोई नहीं आता इसलिये वह कुछ पैदा नहीं कर सकती। घर की मालकिन ने अब तक तो दया करके उसे रहने दिया किन्तु अब वह उसे निकाल बाहर करना चाहती है। बुढ़िया ने चिल्ला कर पुकारा 'अगाफिया ओ अगाफिया'।

हम लोग कुछ आगे बढ़े और चारपाई पर से कुछ उठता हुआ दिखाई पड़ा। वह, सफेद बिखरे बालों वाली स्त्री क्या थी—फटी हुई मैली कमीज पहिने मानो हड्डियों का एक ढांचा था। उसकी गतिविहीन आँखों में एक विचित्र प्रकार की चमक थी। उसने आँखें फाड़ कर हमारी ओर देखा, नीचे खिसकी हुई जाकेट को खींच कर उसने अस्थि-शेष छाती को ढँकने की चेष्टा की और उसके बाद कुत्ते की तरह गुर्रा कर बोली—क्या है ? क्या है ?

मैंने पूछा—तुम्हारी गुजर कैसे होती है। कुछ देर तक तो वह मेरा मतलब ही न समझ सकी, अन्त में बोली—मुझे खुद नहीं मालूम वह मुझे निकाल देना चाहते हैं।

मैंने फिर पूछा—और यह लिखते मुझे कितनी लज्जा मालूम होती है—मैंने पूछा कि क्या यह सच है कि तुम भूखों मर रही हो ? उसी उत्तेजित क्षुब्ध स्वर में वह बोली—मुझे कल भी कुछ खाने को नहीं मिला और न आज कुछ खाने को मिला है।

इस स्त्री की दुर्दशा देखकर मेरे दिल पर गहरा असर हुआ किन्तु स्थापिन-गृह के दृश्य को देखकर जो असर मुझ पर पड़ा था उससे यह बिलकुल विभिन्न था। स्थापिन-गृह में तो लोगों पर दया करके मैं स्वयं लज्जित और कुण्ठित हो रहा था; किन्तु यहाँ मुझे इस बात की खुशी थी कि जिस बात की खोज थी वह चीज़ अर्थात् एक भूखा जीव अन्ततः मुझे मिल गया।

मैंने उसे एक रुबल दिया और मुझे याद है कि लोगों ने वह रुबल देते हुए मुझे देखा इससे मुझे प्रसन्नता हुई। तुरन्त ही उस बूढ़ी स्त्री ने भी मुझ से पैसा माँगा। उस समय दान करना इतना अच्छा मालूम होता था कि मैंने बिना इस बात का विचार किये कि उसे देना जरूरी है कि नहीं उसे भी कुछ दे ही दिया। वह द्वार तक मुझे पहुँचाने आई और जो लोग दालान में खड़े थे उन्होंने यह सुन लिया कि वे मुझे खूब आशीर्वाद दे रही हैं। मैंने दरिद्र आदमियों के लिये जो पूछा था इससे शायद इन लोगों के दिल में कुछ आशा पैदा हो गई थी क्योंकि कुछ निवासी जहाँ जहाँ हम जाते हमारे पीछे २ घूमते थे।

माँगने वाले लोगों में, मैंने देखा कि शराब पीने वाले लोग हैं और इस से मेरे दिल पर बड़ा ही बुरा असर पड़ा, किन्तु उस वृद्धा को एक बार देखने के बाद मैंने समझा कि इन्हें मना करने का मुझे कोई अधिकार नहीं है और इसलिये मैं उन लोगों को भी देने लगा। इससे तो माँगने वालों की संख्या में और भी वृद्धि हो गई और समाम अनाथावास में धूम सी मच गई। सीढ़ियों पर तथा गैलरियों में लोग मेरे पीछे आते दिखाई दिये।

जब मैं सदन के बाहर निकला एक लड़का जल्दी २ सीढ़ी पर

से उतरता और लोगों को ढकेलता हुआ वहाँ आया। उसने मुझे देखा नहीं और चिल्लाकर कहने लगा—

'अगाफिया को उसने एक रूबल दिया है!'

फर्श पर पहुँच कर वह भी मेरे पीछे चलने वाली भीड़ में मिल गया। इतने में, मैं बाहर सड़क पर आ गया। हर प्रकार के आदमी इकट्ठे होकर पैसे माँगने लगे। मेरे पास जितने फुट-कर पैसे थे वे जब समाप्त हो गये तो मैं एक दूकान में गया और उसके मालिक से दस रूबल की रेजगारी माँगी।

ल्यापिन-गृह में जैसा दृश्य देखने में आया था वैसा ही दृश्य यहाँ उपस्थित हुआ। भयानक गड़बड़ मच गई। बूढ़ी स्त्रियाँ, कंगाल, सद्‌गृहस्थ, किसान और बच्चे आकर दुकान के पास जमा हो गये और पैसे माँगने के लिये हाथ फैलाने लगे। मैंने उन्हें दान दिया और कुछ लोगों से मैंने उनका नामादि पूछकर नोटबुक में दर्ज कर लिया। दुकानदार अपने कोट के बालों वाले कालर को ऊपर की ओर लौटाकर बुत की तरह खामोश बैठा था। कभी वह भीड़ की ओर देख लेता था और कभी दूर किसी चीज़ पर नजर डालता। अन्य सभी लोगों की भाँति वह भी सोच रहा था कि यह सब कितनी बड़ी बेवकूफी है किन्तु ऐसा कहने की उसे हिम्मत न होती थी।

ल्यापिन गृह में लोगों की दरिद्रता और दुर्दशा देखकर मेरे दिल को गहरी चोट पहुँची। मैंने समझा कि इनकी इस अवस्था के लिये अपराधी मैं हूँ और इसीलिये मेरे हृदय में यह भावना जागृत हुई थी कि मैं अच्छा आदमी बन सकता हूँ। यहाँ पर भी दृश्य यद्यपि वैसा ही था किन्तु उसका बिलकुल विभिन्न प्रभाव

मेरे ऊपर पड़ा। एक तो मुझे उन लोगों पर क्रोध आया कि जो मुझे घेर कर तङ्ग कर रहे थे और दूसरे मुझे इस बात की चिन्ता थी कि यह दूकानदार और दरबान अपने मन में क्या कहते होंगे।

जब मैं उस दिन घर लौट कर आया तो मेरे चित्त पर एक बोझ सा था। मैं जानता था कि मैंने जो कुछ आज किया है वह मूर्खतापूर्ण और मेरे सिद्धान्तों के विरुद्ध है; किन्तु जब मेरा अन्तरात्मा प्रताड़ित होने लगा तो सदा की भाँति मैं और भी जोर के साथ अपनी योजना के विषय में बातें करने लगा मानों उसकी सफलता में मुझे जरा भी सन्देह न था।

दूसरे दिन मैं अकेला उन लोगों के पास गया कि जिनके नाम मैंने अधिक दुखी समझ कर लिख लिये थे और जिन्हें, मैं समझता था कि सरलतापूर्वक सहायता पहुँचा सकूँगा। किन्तु जैसा कि मैं पहिले ही कह चुका हूँ मैं इनमें से किसी को भी कोई वास्तविक सहायता न पहुँचा सका। मैंने देखा कि जैसा मैंने समझा था उससे यह काम कहीं अधिक कठिन है। सारांश यह है कि इन लोगों के पास जाकर मैंने केवल उन्हें दुखी ही किया, सहायता किसी को भी न पहुँचा सका।

गणना का काम समाप्त होने से पहिले मैं कई बार जिनोफ गृह में गया और हर बार वही बात हुई। स्त्री और पुरुषों की भीड़ आकर मुझे चारों ओर से घेर लेती थी और मैं परेशान हो जाता था। मुझे ऐसा मालूम होने लगा कि इन माँगने वालों की संख्या इतनी बड़ी है कि मुझ से कुछ करते धरते न बन पड़ेगा। और यदि मैं उनमें से एक एक को लूं तो मेरे हृदय में उनके लिये

कोई सहानुभूति न थी क्योंकि मुझे मालूम होता था कि हर एक आदमी झूठ बोलता है, या कम से कम बिलकुल सची बात तो नहीं ही कहता। मैंने देखा कि हर एक मुझे रुपयों की थैली समझता है और उसमें से अधिक से अधिक रुपया निकाल लेने के लिये उत्सुक है। प्रायः मुझे ऐसा भी भास हुआ कि जो रुपया वे मुझसे ले जाते थे उससे उनकी दशा सुधरती नहीं, उल्टी बिगड़ती थी। इस मकान में मैं जितना ही अधिक आने जाने लगा, यहाँ के लोगों से जितना अधिक मेरा परिचय हुआ, उतना ही मुझे विश्वास होने लगा कि यह काम बनने का नहीं है। किन्तु मनुष्य-गणना की अन्तिम रात्रि के भ्रमण से पहिले तक मैंने अपने निश्चित किये हुए कार्य को छोड़ा नहीं।

इस अन्तिम दिन के भ्रमण को स्मरण करके मुझे विशेष लज्जा मालूम होती है। इससे पहिले मैं अकेला ही जाता था किन्तु आज हम २० जने इकट्ठे होकर गये। उस दिन जो लोग मेरे साथ जाने वाले थे वे सात बजते ही मेरे घर आ गये। उनमें से बहुत से अपरिचित थे—कुछ विद्यार्थी थे, एक कर्मचारी और मेरी श्रेणी के दो मेरे परिचित सज्जन थे। इन दोनों सज्जनों ने प्रचलित प्रथानुसार प्रणाम करके कहा—क्या हमें भी गणना-पत्रक भरनेवालों में दाखिल करने की कृपा करेंगे।

ये परिचित सज्जन शिकारी जाकेट और ऊँचे सफरी बूट पहने हुए थे। ऐसी पोशाक शिकार के वक्त ही पहनने का रिवाज है। गरीबों के यहाँ जाते समय भी ऐसी ही पोशाक पहिनना उन्होंने उचित समझा होगा। वे अपने साथ सुन्दर नोट बुक और मोटी मोटी रङ्ग बिरङ्गी पेन्सिलें लेते आये थे। शिकार,

कुश्ती अथवा युद्ध के लिये जाते समय जिस प्रकार का उत्साह लोगों में होता है उसी प्रकार की भावना का अनुभव ये लोग कर रहे थे। इन लोगों को देखकर मैं अच्छी तरह समझ सका कि हमारा यह काम कितना व्यर्थ और मूर्खतापूर्ण है। किन्तु बाक़ी के हम लोगों की भी क्या वैसी ही हास्यास्पद स्थिति नहीं थी ?

घूमने के लिये निकलने से पहिले युद्ध-परिषद् के समान परामर्श के लिये एक सभा की और किस तरह काम शुरू किया जाय और किस तरह विभाग करके काम बाँट लिया जाय आदि बातों का निश्चय किया। ऐसी परिषदों तथा सभा-समितियों में जैसी चर्चा होती है ठीक वैसी ही चर्चा हम लोगों ने भी की। हम में से हर एक मनुष्य को कुछ न कुछ बोलना ही चाहिये, इसलिये नहीं कि कोई नई बात कहनी अथवा पूछनी है, बल्कि सिर्फ इसलिये कि दूसरे बोलते हैं और हम उनसे पीछे न रह जायँ। मैंने जो अभी तक बार बार परोपकार की बात कही थी, इस चर्चा में किसी ने उसका जिक्र तक नहीं किया। मुझे कहते लज्जा मालूम हुई, फिर भी सब को इस बात की याद दिलाना मैंने अपना कर्तव्य समझा कि गणना के काम के साथ ही साथ हमें परोपकार का काम भी करना है। अर्थात् जितने लोग दीन दशा में दिखाई पड़ें उनके नाम नोट कर लिये जायँ।

सभी ने मेरी बातों को ध्यानपूर्वक सुना और मालूम पड़ता है उनके दिल पर असर भी पड़ा और मुख से सभी ने अपनी सहमति और सहानुभूति भी प्रकट की। किन्तु यह स्पष्ट ही मालूम पड़ता था कि उनमें से प्रत्येक मनुष्य यह मानता है कि ये सब

बातें मूर्खतापूर्ण हैं, उनसे कुछ होगा नहीं और शायद इसीलिये वे तुरन्त ही दूसरे विषयों पर बातें करने लगे और उनकी वे बातें उस वक्त तक जारी रहीं जब तक कि हमारी रवानगी का समय न आ गया।

हम लोग उस अँधेरे मकान में पहुँचे। नौकरों को जगाया और अपने कागजों को छाँटने लगे। हमने जब सुना कि हमारे आने की खबर पाकर लोग बाहर चले जा रहे हैं तो हमने गृहस्वामी से कह कर दरवाजे में ताला लगवा दिया और फिर सहन में जाकर उन लोगों से ठहरने के लिये कहा कि जो भाग जाना चाहते थे। हमने उन्हें विश्वास दिलाया कि हम लोगों में से कोई भी तुम्हारे पासपोर्ट न माँगेगा। उन घबड़ाये हुए किरायेदार लोगों की मूर्तियों को देखकर मेरे हृदय में जो विचित्र दुःखप्रद भावना जागृत हुई वह मुझे याद है। अर्धनग्न और मैले कुचैले तथा फटे पुराने कपड़े पहिने हुए वे लोग उस अन्धकारपूर्ण प्राङ्गण में, लालटेन की रोशनी में, बहुत लम्बे मालूम पड़ते थे। भय से भीत तथा भीषण बने हुए वे सब, दुर्गन्धपूर्ण टट्टी के पास खड़े हुए, हम लोगों के आश्वासन को सुन रहे थे; पर उन्हें उस पर विश्वास न होता था। स्पष्ट प्रतीत होता था कि शिकार के लिये घेरे हुए जानवरों की तरह अपनी जान बचाने के लिये वे सब कुछ कर गुज़रने पर उतारू हैं।

हर प्रकार के सहृदय, नागरिक तथा ग्राम्य पुलिसमैन, सरकारी कर्मचारी तथा न्यायाधीश उन्हें अपनी जिन्दगी भर नगरों तथा ग्रामों में, सड़कों तथा गलियों में, सरायों तथा अनाथावासों में ही नहीं, हर तरह सताते रहे हैं और आज रात को

एकाएक यह महानुभाव आकर दरवाजा बन्द कर देते हैं सो भी क्यों ? सिर्फ उनको गिनने के लिये। उन्हें इस बात पर विश्वास करना उतना ही कठिन प्रतीत होता था जितना खरगोशों को इस बात पर विश्वास करना मुश्किल मालूम होगा कि कुत्ते उन्हें पकड़ने के लिये नहीं केवल उन्हें गिनने के लिये आये हैं। हमने तो दरवाजे बन्द करा दिये थे इसलिये बेचारे डरे हुए लोग, अपनी २ जगह चले गये। हम लोगों ने टोलियाँ बनाकर काम शुरू कर दिया।

मेरे साथ मेरे वे दो परिचित सज्जन तथा दो विद्यार्थी थे। बान्या एक लम्बा कोट और सफेद पाजामा पहिने तथा लालटेन हाथ में लिये हमारे आगे २ चल रहा था। हम उन कमरों के अन्दर घुसे कि जिनसे मैं भली भाँति परिचित था। उस स्थान से मैं परिचित था और कुछ लोगों को भी जानता था; किन्तु अधिकांश लोग मुझे अपरिचित मालूम पड़े और यह दृश्य भी नया और भयानक था। ल्यापिन-गृह में जो दृश्य देखने में आया था उससे भी अधिक भयानक। सब कमरे तथा खाटें भरी हुई थीं और उन सब में प्रायः दो दो मनुष्य थे। मनुष्यों की भीड़ तथा स्त्री पुरुषों के अनियमित एकीकरण के कारण दृश्य भयानक मालूम होता था। जो स्त्रियाँ शराब के नशे में एक दम मदहोश न थीं वे सब पुरुषों के साथ सो रही थीं। बहुत सी स्त्रियाँ बच्चों को साथ लेकर तङ्ग खाटों पर अजनबी आदमियों के साथ सो रही थीं।

इन लोगों की दीनता, मलीनता, अर्धनग्नता तथा भीति से एक बड़ा ही भयानक दृश्य पैदा हो गया था और खास कर इसलिये कि इन विचित्र भयावह जीवों का एक बड़ा भारी जमघट यहाँ पर था।

एक कोठरी, फिर दूसरी, फिर तीसरी, दसवीं, बीसवीं—इस प्रकार की अनन्त कोठरियाँ थीं। सभी में वही दुर्गन्ध, वही मलिन वातावरण, वही भीति, शराब पीकर बेहोश पड़े हुए तथा परस्पर घुले मिले स्त्री पुरुषों का वैसा ही गड़बड़ाध्याय, सब के चेहरों पर वैसा ही भय, वैसी ही दीनता तथा अपराध की छाया थी। यह सब देखकर ल्यापिन-गृह की भाँति यहाँ भी मेरे मन में ग्लानि, दुःख और लज्जा पैदा हुई। और आखिरकार अब मैं समझा कि मैं जो कुछ करने जा रहा हूँ वह बड़ा ही अरुचिकर, मूर्खतापूर्ण तथा एकदम ही असम्भव है। यह समझ कर कि मेरी ये सब चेष्टायें व्यर्थ हैं, मैंने लोगों के नाम लिखना तथा उनसे प्रश्नादि पूछना छोड़ दिया।

इससे मेरे हृदय को बड़ी चोट पहुँची। ल्यापिन-गृह में तो सिर्फ इतनी ही बात थी कि जैसे किसी ने किसी दूसरे मनुष्य के शरीर पर कोई बीभत्स घाव देखा हो। उसे देखकर उस मनुष्य को दुःख होता है, उसे अभी तक सहायता न पहुँचायी इसके लिये लज्जा मालूम होती है किन्तु उसे फिर भी यह आशा रहती है कि वह उस दुखी मनुष्य की अब कुछ सहायता अवश्य कर सकेगा। किन्तु आज तो मेरी स्थिति उस डाक्टर की भाँति थी कि जो अपनी औषधियाँ लेकर मरीज़ के पास जाता है, ज़ख्म को खोलता है, दवा लगाता है किन्तु अन्त में देखता है कि उसने अभी तक जो कुछ किया वह सब व्यर्थ है। उसकी दवा से रोगी को कोई लाभ न पहुँच सकेगा।

इस भ्रमण ने मेरी कल्पनाओं की एकदम कलई खोल दी। अब यह स्पष्ट हो गया कि मैं जो कुछ करने जा रहा हूँ वह केवल व्यर्थ और मूर्खतापूर्ण ही नहीं, हानिकारक भी है। किन्तु यह सब कुछ समझने पर भी मुझे ऐसा मालूम हुआ कि अभी इस को जारी रखना ही मेरा कर्तव्य है और इसके कई कारण थे। पहला कारण तो यह था कि अपने लेख से तथा मुलाकातों से मैंने गरीब लोगों के दिल में आशा उत्पन्न कर दी थी। दूसरा कारण यह था कि उसी लेख तथा वार्तालाप से कुछ परोपकारी तथा दानी महाशयों की सहानुभूति इस काम के लिये प्राप्त कर ली थी और उनमें से कई लोगों ने स्वयं सहायता करने तथा धन देने का वचन भी दिया था। मैं आशा कर रहा था कि दोनों ही पक्ष विनती करते हुए मेरे पास आयेंगे और मुझे दोनों ही को यथा-शक्ति सन्तुष्ट करना चाहिये।

गरीब आदमियों की अर्जियों की जो मैं राह देख रहा था उसका विवरण इस प्रकार है:—मुझे १०० से ऊपर प्रार्थना-पत्र मिले और यदि मैं एक विचित्र शब्द का प्रयोग करूँ तो कह सकता हूँ कि यह सब 'धनिक दरिद्रों' की ओर से आये थे। इनमें से कुछ लोगों से तो मैं जाकर मिला और कुछ का जवाब नहीं दिया। किन्तु मैं किसी के लिये भी कुछ न कर सका। सभी अर्जियाँ ऐसे लोगों की तरफ से आई थीं कि जो एक समय अच्छी

स्थिति में थे। (अच्छी अथवा भाग्यशाली स्थिति से मेरा मतलब उस स्थिति से है कि जिसमें मनुष्य दूसरों से लेता अधिक है और उन्हें देता है कम) किन्तु अब उनकी हालत बिगड़ गई है और फिर वे अपनी पहली दशा में आना चाहते हैं।

एक को अपना व्यापार नष्ट होने से बचाने के लिये तथा बच्चों की शिक्षा के लिये दो सौ रुबल की जरुरत थी। दूसरे को फोटोग्राफी के लिये दूकान चाहिये थी। तीसरे को क़र्जा चुकाने तथा अपने अच्छे कपड़े गिरवी से छुड़ाने के लिये धन की आवश्यकता थी। चौथे को कुछ पियानो बजाना आता था, उसे पूरी तरह सीख कर उसके द्वारा कुटुम्ब का भरण पोषण करने के लिये एक पियानो चाहिये था। अधिकांश प्रार्थियों ने कितनी रक़म चाहिये उसका उल्लेख न किया था केवल सहायता माँगी थी, किन्तु जब मैंने इसका अन्दाज़ा लगाना चाहा कि उन्हें कितने रुपये की जरुरत है तो मैंने देखा कि सहायता के अनुसार उनकी आवश्यकतायें भी बढ़ती जाती हैं। मैं जो कुछ देता था उससे वे सन्तुष्ट न होते और हो भी नहीं सकते। मैं यह फिर कह देना चाहता हूँ कि यह सम्भव है कि दोष मेरी समझ का हो, किन्तु बहरहाल मैं किसी की सहायता न कर सका, हालाँ कि उन्हें सहायता पहुँचाने की मैंने पूरी कोशिश की।

अब उन परोपकारी सज्जनों का हाल सुनिये कि जिनके सहयोग की मैं आशा कर रहा था। उनका विचित्र हाल हुआ— ऐसा कि जिसकी मुझे बिलकुल ही आशा न थी। जिन लोगों ने धन से सहायता देने का वचन दिया था और जो रकम वे देना चाहते थे उसकी तादाद भी बता दी थी। उनमें से एक ने भी ग़रीबों

में वितरण करने के लिये कुछ न दिया। आर्थिक सहायता के जो वचन मुझे मिले थे उनका हिसाब लगाया जाय तो लगभग २ हजार रुबल होते हैं। किन्तु इन लोगों में से एक ने भी अपने वचन को याद न रक्खा और किसी ने एक कोपक भी मुझे न दिया। हाँ, केवल विद्यार्थियों ने लगभग १२ रुबल मुझे दिये थे, जो मनुष्य-गणना का कार्य करने के उपलक्ष्य में उन्हें मिले थे। मेरी जिस योजना के अनुसार धनी लोगों से लाखों रुबल एकत्रित करके सैकड़ों तथा हज़ारों मनुष्यों का दारिद्र्य तथा पाप से उद्धार करना था उसका यह अन्त हुआ कि विद्यार्थी लोगों ने जो कुछ रुबल दिये थे और सिटी कौन्सिल ने प्रबन्धक की हैसियत से काम करने के बदले में जो २५ रुबल मेरे पास भेजे थे उन सबको मिला कर यों ही फुटकर ग़रीब लोगों में तक़सीम कर दिया। मैं समझ ही न सका कि उन रुबलों का इसके सिवा मैं और क्या उपयोग करूँ।

इस प्रकार इस कार्य का अन्त हुआ। मास्को छोड़ कर गाँव जाने से पहिले, मेरे पास जो ३७ रुबल जमा थे उन्हें ग़रीबों में बाँट देने के विचार से एक दिन रविवार को मैं ज़िनोफ-गृह गया। मैं परिचित स्थानों में सभी जगह घूम आया, किन्तु मुझे एक ही अपाहिज आदमी मिला जिसे मैंने, मैं समझता हूँ ५ रुबल दिये। मुझे ऐसा और कोई नहीं मिला कि जिसे मैं कुछ देता। इसमें सन्देह नहीं कि मुझ से माँगा तो कई लोगों ने किन्तु चूँकि मैं उन्हें जानता नहीं था इसलिये मैंने यह उचित समझा कि बाकी ३२ रुबल वितरण करने के सम्बन्ध में होटल के मालिक आइवन फिदोटिच से सलाह ले लूँ।

वह त्योहार का दिन था। सभी लोग अच्छे कपड़े पहने हुए थे। खाने को भी खूब था और कुछ लोग तो पीकर मस्त हो रहे थे। मैदान में घर के कोने के पास पुराने कपड़े खरीदने वाला एक बुड्ढा आदमी खड़ा था जो किसानों का सा फटा हुआ कोट और खाल के जूते पहिने हुए था। वह हृष्ट पुष्ट और तन्दुरुस्त था। अपने कपड़ों को छाँटकर, लोहे की तथा चमड़े आदि की चीज़ों की अलहदा २ ढेरी बना रहा था और प्रसन्न होकर ऊँचे स्वर से एक गीत गा रहा था।

मैं उससे बातें करने लगा। उसकी अवस्था ७० वर्ष की थी। उसके कोई बन्धु बान्धव न थे। पुराने कपड़ों का व्यापार करके वह अपनी रोजी कमाता था। उसे किसी प्रकार की शिकायत तो थी ही नहीं बल्कि उसका कहना था कि ईश्वर की कृपा से उसके पास खाने पीने को काफी है–बल्कि कुछ बच रहता है। मैंने उससे पूछा कि यहाँ कोई गरीब आदमी भी है ? वह कुछ बिगड़ा और स्पष्टवादितापूर्वक बोला—काहिल और शराबी आदमियों के सिवा गरीब और कौन होगा ? किन्तु जब उसने मेरे पूछने का मतलब जान पाया तब तो वह भी प्याली चढ़ाने के लिये पाँच कोपक माँगने लगा और उन्हें पाते ही होटल की तरफ दौड़ गया।

पीछे से मैं भी बाकी रक़म को बँटवा देने के लिये आइवन फिडोटिच के पास होटल में गया। होटल खूब भरा हुआ था, लड़कियों का झुंड का झुंड बन ठन कर इधर उधर घूम रहा था, सारी मेजें भरी हुई थीं। कई लोग तो शराब पीकर मस्त हो रहे थे और छोटे से कमरे में कोई हारमोनियम बजा रहा था और

दो जने नाच रहे थे। मेरे सम्मान में आइवन फिडोटिच ने नाच गाना बन्द कर देने का हुक्म दिया और एक खाली मेज के पास मेरे साथ बैठ गया। मैंने कहा कि तुम अपने सभी किरायेदारों को जानते हो। इसलिये तुम बता सकते हो कि उनमें सब से ज्यादा गरीब कौन है ? गरीबों में बाँट देने के लिये मुझे एक छोटी सी रकम मिली है। उस दयालु मनुष्य ने (एक वर्ष पीछे इसकी मृत्यु हो गई) काम में लगे हुए होने पर भी मेरी खातिर न थोड़ी देर के लिये ग्राहकों को छोड़कर मेरे काम में मदद दी। वह बड़े ध्यान से इस विषय में सोचने लगा और उसकी मुद्रा से स्पष्ट होता था कि बड़ा परेशान है। एक पुराने नौकर ने हमारी बातचीत सुन ली थी, इसलिये वह भी इस चर्चा में शरीक हो गया।

वह एक एक करके अपने यहाँ रहने वालों का नाम ले गये जिनमें से कुछ से मैं भी परिचित था किन्तु कोई भी जँचा नहीं।

'परसा नोवना' नौकर ने याद दिलाई।

'हाँ, ठीक है। कभी २ उसे भूखा पड़ा रहना पड़ता है। किन्तु वह शराब बहुत पीती है।

'तो क्या हुआ ?'

'लेकिन हाँ, स्पिडन आइवनोविच, उसके बच्चे भी हैं। यह ठीक है।'

किन्तु आइवन फिडोटिज को आइवनोविच के सम्बन्ध में कुछ शंका थी।

'अकुलीना ! किन्तु उसे तो पेन्शन मिलती है। किन्तु, हाँ, याद आई, वह बुड्ढा आदमी'!

किन्तु उसके लिये खुद मैंने आपत्ति की। मैंने उसे अभी हाल ही में देखा था। यह बुड्ढा अस्सी वर्ष का था, सगा सम्बन्धी उसके कोई न था। इससे अधिक दीन अवस्था की कोई कल्पना भी नहीं कर सकता। किन्तु मैंने उसे अभी देखा था। परों के बिछौने पर वह शराब पिये हुए पड़ा था और अपेक्षाकृत छोटी उम्र की स्त्री उसके पास थी जिसे वह महा गन्दी वाहियात गालियाँ दे रहा था।

तब उन्होंने एक हाथवाले बालक और उसकी माँ का जिक्र किया। मैंने देखा कि आइवन फिडोटिच अपनी इमानदारी के कारण बड़ी मुश्किल में पड़ गया है क्योंकि वह जानता था कि जो कुछ दिया जायगा वह अन्त में जाकर उसके होटल में ही आएगा। किन्तु मुझे तो ३२ रुबल बाँटने थे इसलिये मैंने जोर देकर जिस किसी तरह उनके लिये आदमी खोज लिये। जिन लोगों को वे रुपये दिये गये, वे प्रायः अच्छे कपड़े पहिने हुए थे, और उन्हें ढूँढ़ने के लिये हमें दूर भी नहीं जाना पड़ा। वे सब वहीं होटल में मौजूद थे। बिना हाथ वाला लड़का जब आया, तो वह बढ़िया बूँट, लाल कमीज और एक वास्कट पहिने हुए था।

इस प्रकार मेरी परोपकार-वृत्ति की यह आयोजना समाप्त हुई। सभी से नाराज होकर, तथा दूसरों पर अपने दिल का गुबार निकालते हुए मैं गाँव चला गया। जब कभी कोई आदमी मूर्खता-पूर्ण तथा हानिकारक कार्य करता है तो सदा ही ऐसा होता है कि दूसरों को भला बुरा कहकर जी का गुबार निका-

लता है। मेरे इस कार्य का कोई भी फल न निकला। किन्तु मेरे दिल में इस कार्य से जो भाव तथा विचार जागृत हो गये थे वे बन्द न हुए, बल्कि द्विगुणित वेग से वे मेरे मन को आन्दोलित करने लगे।

किन्तु इस सब का अर्थ क्या है ?

मैं गाँव में रहता था, इसलिये ग़रीबों के साथ मेरा सम्बन्ध हो गया था। झूठी नम्रता के लिये नहीं, प्रत्युत अपनी भावनाओं तथा विचार-लहरी को ठीक २ हृदयङ्गम कराने के लिये यह कहना आवश्यक है कि गाँव में ग़रीबों के लिये मैंने बहुत ही थोड़ा काम किया और ग़रीब लोग मुझ से जो सहायता चाहते थे वही वास्तव में बहुत थोड़ी थी। किन्तु मैंने जो अत्यल्प अकिञ्चन सेवा की थी वह भी उपयोगी सिद्ध हुई, और उसके द्वारा मेरे और मेरे पास-पड़ोस में रहनेवाले लोगों के बीच में प्रेम और सहानुभूति का वातावरण पैदा हो गया था, और मुझे ऐसा प्रतीत होता था कि इन लोगों के मध्य में रहकर, विलासी जीवन के अनौचित्य से जो अन्तरात्मा में एक प्रकार की वेदना सी उठती थी, उसको भी शान्त कर देना बहुत कुछ सम्भव है।

मैंने सोचा था कि शहर के ग़रीब लोगों से भी मेरा वैसा ही सुन्दर सम्बन्ध स्थापित हो सकेगा। किन्तु वहाँ की तो परिस्थिति ही बिलकुल भिन्न थी। शहर की ग़रीबी में सत्य का अंश तो कम था किन्तु ग्राम्य दरिद्रता की अपेक्षा वह अधिक श्रम-साध्य तथा कटुता-पूर्ण थी। नागरीक दरिद्रता का जो भयानक असर मेरे दिल पर पड़ा, उसका ख़ास कारण यह था कि ढेर की ढेर दरिद्रता एक ही स्थल में एकत्र हो गई थी। ल्यापिन गृह

में जो कुछ मैंने देखा उससे मुझे मालूम पड़ने लगा कि मेरा यह विलासी जीवन एक महा भयानक बुराई है। किन्तु यह समझते हुए भी मैं अपने जीवन में यह क्रान्ति करने में सर्वथा असमर्थ था कि जिससे जीवन-शैली एकदम ही उलट पुलट देनी पड़ती। इस परिवर्तन का विचार करके ही मैं भयभीत हो उठता था। इसीलिये मैंने मध्यम मार्ग को ग्रहण किया। लोगों ने जो मुझे सलाह दी, और वास्तव में आदि काल से लोग जो कहते चले आये हैं, मैंने उसी बात को मान लिया। मैंने इस बात पर विश्वास कर लिया कि धन-वैभव तथा सुख-पूर्ण जीवन में कोई बुराई नहीं है, यह तो ईश्वर की दी हुई चीजें हैं। और सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करते हुए भी ग़रीबों को सहायता पहुँचाना सम्भव है। इस बात पर विश्वास करके इसी के अनुसार व्यवहार करने का मैंने निश्चय किया, और एक लेख लिखकर ग़रीबों की सहायता करने के लिये मैंने धनिकों का आह्वान किया। सभी धनिकों ने इस बात को तो स्वीकार किया कि ग़रीबों को सहायता देना उनका नैतिक कर्तव्य है। किन्तु किसी ने भी आगे बढ़कर कुछ काम करने अथवा दान देने का नाम नहीं लिया। शायद उनकी इच्छा न थी अथवा ऐसा करने की उनकी शक्ती न थी।

मैं ग़रीब लोगों से मिलने के लिये उनके घर जाने लगा, और वहाँ जो कुछ मैंने देखा उसके देखने की तो मुझे आशा ही न थी। जिन घरों को मैं अँधेरी कोठरी कहता था, उनमें मैंने ऐसे लोगों को देखा कि जिन्हें सहायता पहुँचाना मेरे लिये असम्भव था। क्योंकि वे मेहनत मजदूरी करने वाले लोग थे जो परिश्रम करने और भूख प्यास सहने के अभ्यस्त होते हैं। और इसी

लिए मेरी अपेक्षा उनका जीवन अधिक प्रौढ भित्ति पर स्थित था। वहाँ एक दूसरे प्रकार के लोग भी थे, जो बड़ी ही दुःखी दशा में थे; उनको भी मैं कोई सहायता न पहुँचा सकता था। क्योंकि वे भी बिलकुल मेरी ही जैसी स्थिति में थे। अधिकांश गरीबों की जो दुर्दशा मैंने देखी उसका कारण सिर्फ यह था, कि वे अपनी रोजी कमाने की शक्ति, इच्छा और आदत को खो बैठे थे। अर्थात् जैसा मैं आलसी और अकर्मण्य हूँ वैसे ही वे भी बन गये थे, और इसीलिये उनकी ऐसी दीन दशा भी थी।

भूखों मरती अगाफिया के सिवा ऐसा तो एक भी आदमी नहीं मिला कि जो रोग, शीत अथवा भूख से नितान्त पीड़ित हो, और जिसे तत्क्षण सहायता पहुँचायी जा सके। और मुझे तो निश्चय हो गया कि मैं जिन लोगों को सहायता पहुँचाना चाहता हूँ उनके जीवन से जबतक मैं अलग अलग रहता हूँ, जब तक उनके अन्तस्तल में बैठकर उनकी वेदना को, उनकी आवश्यकता को, समझने की चेष्टा नहीं करता तब तक उनके दुःखों को दूर कर देना मेरे लिये लगभग असम्भव है। इन पर जब कोई दुःख, या आपत्ति आती है तब यह दुखी जीव आपस में ही एक दूसरे के दुःखों का निवारण करने का यत्न करते हैं और अब तो यह मेरा मूल सिद्धान्त सा बन गया था कि ये लोग जो दुःखमय, पतित जीवन व्यतीत कर रहे हैं उसको पैसा देकर तो कभी सुधारा ही नहीं जा सकता।

इन सब बातों का मुझे विश्वास तो हो गया था; किन्तु जो काम उठाया था उसे यों ही अधूरा छोड़ने में लज्जा लगती थी और चूँकि मैं अपनी शक्तियों और गुणों के सम्बन्ध में धोखे में

पड़ा हुआ था, इसलिये मैंने अपनी उस योजना को जारी ही रक्खा, जब तक कि वह खुद ही स्वाभाविक मृत्यु की गोद में लीन न हो गई। इस तरह बड़ी मुश्किल से और आइवन फिडोटिच की सहायता से मैं उन्हीं रूबलों को, जिन्हें मैं अपना न समझता था, जिनोफ-गृह के होटल में लोगों को बाँटने में समर्थ हुआ था।

यदि मैं चाहता तो इसे धार्मिक कार्य का रूप देकर आगे चला सकता था। चाहता तो जिन लोगों ने चन्दा देने का वचन दिया था उनसे उतना रुपया वसूल कर लेता और कुछ और भी धन एकत्र करके बाँट सकता था, और इस प्रकार अपने मन को यह समझा कर कि मैंने भले आदमी की तरह भला काम किया है अपनी आत्मा को सन्तोष दे लेता। किन्तु मुझे विश्वास हो गया कि हम धनिक लोगों में अपने धन का थोड़ा सा भाग गरीबों को बाँट देने की इच्छा तथा प्रवृत्ति ही नहीं, और शायद ऐसा करने की शक्ति भी नहीं है। (क्योंकि हमारी अपनी ही आवश्यकतायें बहुत बढ़ी हुई हैं।) और दूसरे, यदि हम लोगों का सचमुच ही भला करना चाहते हैं, तो जिनोफ-गृह में जिस तरह पैसे हमने इधर उधर वितरण कर दिये थे उस तरह किसी को न देना चाहिये। इसलिये मैंने उस कार्य को बिलकुल ही बन्द कर दिया, और निराश तथा दुःखित होकर गाँव चला गया।

मैंने सोचा, गाँव जाकर एक लेख लिखूँगा जिसमें अपने अनुभवों का उल्लेख करते हुए यह दिखलाऊँगा कि मेरी योजना असफल क्यों हुई। मनुष्य-गणना सम्बन्धी लेख पर जो लोगों ने अनेक आक्षेप किये थे, उनका निराकरण करते हुए अपने पक्ष की सत्यता सिद्ध करूँगा और इसके साथ ही मेरा विचार था कि

इस सम्बन्ध में समाज की जो हृदय-हीन उपेक्षा-वृत्ति है उस पर भी कटाक्ष करूँगा। शहर की दरिद्रता के कारणों और उसको दूर करने के उपायों का भी उल्लेख करने की मेरी इच्छा थी। इस लेख को मैंने लिखना आरम्भ भी कर दिया। मैं समझता था कि मुझे कई महत्व-पूर्ण बातें प्रकाशित करनी हैं। किन्तु जब मैं लिखने लगा तो मुझ से लिखा ही न गया। मैंने अपने दिमाग पर बहुत जोर दिया और मेरे पास सामग्री भी बहुत काफी थी। किन्तु मेरी मनस्थिति क्षुब्ध होने के कारण थी और इस समस्या को ठीक तरह समझने की अनुभव-जन्य शक्ति का अभाव भी था। और खास कर इसलिये कि इस दीन अवस्था का कारण, जो कि वास्तव में मेरे ही अन्दर बद्ध-मूल था, सरल और स्पष्ट होते हुए भी, अभी तक मेरे हृदयङ्गम न हुआ था। मैं उस लेख को आगे न चला सका। फलतः प्रस्तुत वर्ष के आरम्भ तक वह लेख समाप्त न हो सका।

धार्मिक तथा नैतिक बातों के सम्बन्ध में एक अजीब बात दिखाई पड़ती है, जिस पर लोग इतना ध्यान नहीं देते। यदि मैं किसी अशिक्षित मनुष्य से भू-गर्भ-विद्या, ज्योतिष, इतिहास, पदार्थ-विद्या तथा गणित के सम्बन्ध में बातें करूँ, तो वह उन्हें बिलकुल नवीन समझता है और कभी यह नहीं कहता—"यह तो पुरानी बात है, इसमें नवीनता क्या है" ? किन्तु यदि किसी उच्च से उच्च कोटि के नैतिक सिद्धान्त की अत्यन्त सुन्दर और अपूर्व व्याख्या भी की जाय, तब भी प्रत्येक साधारण मनुष्य, जो कि नैतिक बातों में कोई रस नहीं लेता है, और खासकर वह मनुष्य जो कि उन्हें पसन्द नहीं करता है, तुरन्त ही कहने लगेगा—अजी यह कौन नहीं जानता ? आदि काल से सभी ऐसा कहते आये

हैं। और मजा तो यह है कि वह वास्तव में ऐसा ही विश्वास करता है। नैतिक सिद्धान्तों की जिन्हें परख है, जो उनकी क़ीमत जानते हैं, वही समझ सकते है कि वे कितने महँगे और बहुमूल्य हैं। कितने परिश्रम और अध्यवसाय के बाद कोई मनुष्य किसी नैतिक सिद्धान्त को विशद तथा बुद्धिगम्य रूप में प्राप्त करने में समर्थ होता है। और वास्तव में वही अनुभव कर सकते हैं कि किस प्रकार किसी अस्पष्ट धुँधले अनुमान तथा अनभिव्यक्त इच्छा में से धीरे धीरे विकसित तथा विस्फूर्त होते हुए कोई तत्व अन्ततः सुस्पष्ट स्थिर अविचल सिद्धान्त के रूप को प्राप्त होता है, कि जो तदनुसार मनुष्य को अपने आचरण में परिवर्तन करने के लिये अबाध्य रूप से आह्वान करता है।

हम लोगों को ऐसा समझ लेने की कुछ आदत सी पड़ गई है कि नैतिक सिद्धान्त बहुत ही तुच्छ और नीरस होते हैं कि जिनमें नवीन ज्ञान देने वाली अथवा रस लेने योग्य कोई बात हो ही नहीं सकती। किन्तु वस्तुतः बात तो यह है कि मानव-जीवन की राजनीति, विज्ञान, कला-कौशल आदि की जो विभिन्न जटिल क्रियायें हैं कि जिनका धर्म तथा नीति से कोई सम्बन्ध दिखाई नहीं देता, उनका वास्तव में इसके सिवा और कोई उद्देश्य ही नहीं कि वे अपने २ अनुभव से नैतिक सिद्धान्तों की पुष्टि करें तथा नई २ तरह से उनकी व्याख्या करके उन्हें लोगों के समझने योग्य बनावें।

मुझे याद है कि एक बार जब मैं मास्को की एक गली में जा रहा था मैंने देखा कि एक आदमी दुकान से उतरा और पत्थरों को गौर से देखने लगा और फिर उनमें से एक को चुन

कर उस पर बैठ गया और उसे खूब जोर जोर से घिसने तथा खुरचने लगा। मैंने दिल ही दिल में कहा—यह आदमी इस पत्थर का क्या कर रहा है ? किन्तु जब मैं नजदीक आया तो देखा कि वह आदमी क़साई की दुकान से उतरा है और सड़क के पत्थर पर छुरी को पैना रहा है। माँस काटने के लिये उसका छुरी को पैनाना जरूरी था किन्तु मुझे ऐसा मालूम पड़ा कि वह पत्थर का कुछ कर रहा है।

इसी तरह मनुष्य-जाति व्यापार, युद्ध, सुलह, विज्ञान, कला आदि में लग्न दिखाई पड़ती है किन्तु फिर भी इन सब में केवल एक ही बात महत्व-पूर्ण है और लोग उसी का सम्पादन करते हैं। इन सब प्रवृत्तियों द्वारा वे उन नैतिक सूत्रों का पता लगाते हैं कि जिनके अनुसार वे जीवन-यापन करते हैं। नैतिक सिद्धान्तों का अस्तित्व सदा से हैं, मानव-जाति उनका आविष्कार नहीं करती। केवल अपने अनुभव और अध्यवसाय से उन्हें ढूँढ़ निकालती है और नये रूप से उसकी व्याख्या करती है, यह व्याख्या उस मनुष्य को महत्व-पूर्ण नहीं मालूम पड़ती कि जिसे नैतिक सिद्धान्तों की जरूरत नहीं है। और जो उसके अनुसार जीवन-यापन नहीं करना चाहता। किन्तु समस्त मनुष्य-जाति का यह मुख्य कर्म हो इतना ही नहीं, बल्कि एक मात्र यही उसका काम है। गुट्ठल (भोंठी) तथा पैनी छुरी के भेद की तरह नैतिक सिद्धान्तों की विस्फूर्ति भी अदृश्य होती है। छुरी तो सदा ही छुरी है। जिसे उससे कुछ काटना नहीं है, उसके लिये गुट्ठल तथा पैनी छुरी एक सी है। वह उसके भेद को जान नहीं सकता। किन्तु जो समझता है कि छुरी के गुट्ठल अथवा पैने होने पर ही उसका जीवन अव-

लम्बित है उसके लिये उसका प्रत्येक घर्षण महत्व-पूर्ण है। वह जानता है कि छुरी को इस तरह पैनाने का अन्त ही नहीं हो सकता और छुरी उसी हालत में छुरी है कि जब वह पैनी है और जिस चीज को काटना है उसे वह काटती है।

मैं जब लेख लिखने बैठा तो मेरी भी यही दशा हुई। ल्यापिन-गृह के दृश्य से जो प्रभाव मेरे मन पर पड़ा, और उससे जो प्रश्न उदय हुए, उनके सम्बन्ध में मैंने समझा कि मैं सब कुछ जानता हूँ। किन्तु जब मैंने मन ही मन उन प्रश्नों का स्पष्टीकरण करना चाहा तो मालूम पड़ा कि छुरी गुठल है, उसे पैनाना होगा। आज दो तीन वर्ष के बाद मुझे कुछ ऐसा भास होता है, कि अब मेरी छुरी में इतनी धार है कि मुझे जो काटना है उसे वह काट सकती है। मैंने कोई नया ज्ञान प्राप्त किया हो, सो बात नहीं है! मेरे सारे विचार जैसे थे वैसे ही हैं, पर पहले वे धुँधले और अस्पष्ट थे, उन्हें एक जगह केन्द्रीभूत करना कठिन था वे तुरन्त ही इधर उधर बहक जाते थे उनमें क्रम नहीं था और आज जिस प्रकार सरल निश्छल निश्चय को पहुँचा हूँ वैसा पहले असम्भव सा प्रतीत होता था।

मुझे याद है कि नगर के दरिद्र लोगों की सहायता करने के निष्फल आयोजन के समय मुझे सदा ही ऐसा मालूम होता था कि जैसे मैं स्वयं दलदली जमीन पर खड़ा होकर दलदल में फँसे हुए मनुष्य को खींचकर बाहर निकालने की चेष्टा कर रहा हूँ। उसके निकालने के प्रत्येक प्रयत्न पर मुझे यह अनुभव होता कि जिस जमीन पर मैं खड़ा हूँ वह स्वयं कितनी अस्थिर है। मुझे ऐसा भास तो हुआ कि मैं खुद दलदल पर खड़ा हूँ किन्तु फिर भी मैंने अपने पैरों तले की जमीन की जाँच-पड़ताल नहीं की, बल्कि यह समझ कर कि सारे दुःखों का कारण मेरे से बाहर है, मैं दुःखों के निवारणार्थ किसी बाह्य साधन की ही खोज में सारा समय लगा रहा।

मुझे ऐसा लगता था कि मेरा जीवन खराब है, लोगों का इस प्रकार जीवन व्यतीत करना ठीक नहीं। किन्तु फिर भी, इस धारणा से तो सरल और प्रत्यक्ष सिद्धान्त निकलता है कि दूसरों के जीवन का सुधार किस तरह किया जाय इसको समझने के लिये पहले अपने जीवन को सुधारना अनिवार्य और आवश्यक है। इस सरल स्वाभाविक सिद्धान्त को मैंने नहीं पहचाना। और इसीलिये मैंने जो काम प्रारम्भ किया उसका ढङ्ग कुछ उल्टा सा था। मैं नगर में रहता था और वहाँ के निवासियों के जीवन को सुधारना चाहता था। किन्तु शीघ्र ही मुझे विश्वास हो गया कि यह काम करने की शक्ति मुझमें नहीं है और तब मैं नागरिक जीवन और नगर की दरिद्रता की खासियत पर विचार करने लगा।

"यह नागरिक जीवन तथा नागरिक दरिद्रता क्या चीज है ? शहर में रहते हुए भी क्या मैं शहर के गरीब लोगों की मदद नहीं कर सकता"—मैंने मन में यह प्रश्न किया। मेरे मन ने उत्तर दिया कि इनके लिये मैं कुछ भी नहीं कर सकता। इसका एक कारण तो यह है कि एक ही स्थल पर ऐसे लोग ढेर के ढेर इकट्ठे हो गये हैं। और दूसरी बात यह है कि इस शहर के गरीब, गाँव के गरीबों से, कुछ विभिन्न प्रकार के हैं। ये लोग इकट्ठे कैसे हुए होंगे ? और गाँव के गरीबों से विभिन्न ये किस बात में होंगे ? इन दोनों प्रश्नों का एक ही उत्तर है। यहाँ जो ये लोग इतनी बड़ी संख्या में एकत्रित हुए हैं इसका कारण यह है कि गाँव में जिन लोगों की गुजर का कोई साधन न रहा वे सब यहाँ आकर नगर के धनिकों के चारों ओर इकट्ठे हो गये। इनकी विशेषता यह है कि ये सब के सब गाँव छोड़ छोड़ कर गुजर बसर के लिये शहर में एकत्र हुए हैं। (ऐसे गरीब कि जिनका जन्म शहर में ही हुआ है और जिनके बाप दादा भी शहर में ही पैदा हुए उनके पूर्वज पूर्वकाल में आजीविका के लिये शहर में आये होंगे।)

'शहर में रोजी कमाना'—इस वचन का क्या अर्थ है ? इस वाक्य में कुछ विचित्रता सी मालूम पड़ती है और जब हम उस पर गहरा विचार करते हैं तो यह बात एक मजाक सी मालूम पड़ती है। ये लोग गाँव छोड़ कर जहाँ जंगल है, खेत हैं, अनाज हैं, पशु हैं, जहाँ भूमि की उर्वरता से उपार्जित समस्त वैभव है—उस स्थान को छोड़ कर रोजी कमाने के लिये ये लोग शहर में जाते हैं कि जहाँ इस प्रकार की कोई भी सुविधा नहीं है

केवल धूल और पत्थर भरे हैं। फिर भला शहर में रोजी कमाना—इस का क्या मतलब हो सकता है?

यह वाक्य नौकर और मालिक दोनों सदा ही व्यवहार में लाते हैं जैसे कि वह बिलकुल स्पष्ट और बुद्धि-गम्य हो। सैकड़ों और हजारों मनुष्यों से, जो सुख से अथवा तङ्गी से रहते थे मैंने शहर में आने के सम्बन्ध में चर्चा चलाई और मुझे याद है कि बिना किसी अपवाद के सभी ने कहा कि रोजी कमाने के लिये गाँव से यहाँ आये हैं। मास्को में खेती बाड़ी न होते हुए भी यहाँ बहुत धन है, और यहाँ वह धन मिल सकता है कि जिसकी गाँव में अनाज, मकान, घोड़े और जीवनोपयोगी अन्य आवश्यक सामग्री खरीद ने में जरूरत पड़ती है।

किन्तु वास्तव में ग्राम ही समस्त सम्पत्ति का मूल है। अनाज, लकड़ी, घोड़े और अन्य आवश्यक चीजें सभी गाँव में ही होती हैं। फिर जो गाँव में है उसे लेने के लिये शहर में क्यों जाया जाये? और सब से बड़ा सवाल तो यह है कि जिन चीजों की ग्रामों में आवश्यकता है उनको ग्रामों में से ले जाकर शहरों में क्यों इकट्ठा किया जाय—जैसे आटा, जौ, घोड़े और पशु?

शहर में रहने वाले किसानों से मैंने सैकड़ों बार इस विषय पर बातचीत की है और उनकी बातचीत से तथा अपने अवलोकन से मुझे स्पष्ट हो गया कि गाँव के लोग शहरों में आकर रहें यह कुछ अंशों में आवश्यक है क्योंकि इसके बिना उसकी गुजर नहीं हो सकती और कुछ स्वेच्छा से भी नागरिक जीवन के प्रलोभनों में फँसकर वहाँ आते हैं।

ग्रामवासियों तथा किसानों के सिर पर जो खर्चे आ पड़ते हैं

उनकी वजह से अपना अनाज तथा बैल आदि, यह समझते हुए भी कि उनके बिना काम चल नहीं सकता, उन्हें बेचने ही पड़ते हैं और इसके बाद फिर अन्न और बैल आदि खरीदने के लिये इच्छा न होते हुए भी उन्हें नगर की ओर जाना पड़ता है। ग्रामवासियों की ऐसी स्थिति है। यह सच है। किन्तु यह भी सच है कि गाँव की अपेक्षा कम मेहनत की कमाई तथा भोग-विलास से वे शहरों की ओर आकर्षित होते हैं और रोजी कमाने के बहाने वे शहरों में इसलिये जाते हैं कि वहाँ मेहनत कम करनी पड़ती है, अच्छा खाने को मिलता है, दिन में तीन बार चाय पीने को मिलती है, अच्छे कपड़े पहिने जाते हैं और शराब का चस्का लगा कर स्वच्छन्द-वृत्ति का भी अवसर मिलता है।

इस परिस्थिति का कारण यह है कि धन, पैदा करने वाले, किसानों के हाथ से निकल कर, दूसरों के हाथ में चला जाता है, और नगरों में जाकर एकत्र होता है। जब सर्दी का मौसम आता है तो गाँव धन से छलकते हुए दिखाई पड़ते हैं किन्तु तुरन्त ही तरह २ के खर्चे सामने आ खड़े होते है—लगान, किराया, फौजी कर उसके बाद मदिरा, विवाह, भोज, बिसाती आदि तरह २ के मोहजाल आ उपस्थित होते हैं। इस प्रकार एक न एक द्वार से यह सारा धन, भेड़ बकरी, बछड़े, गाय, घोड़े, मुर्गे, मुर्गी, मक्खन, सन, कपास, जौ, गेहूँ, तथा कपास के सब बीज किन्हीं अनजान आदमियों के हाथ में चले जाते हैं जो उन्हें शहरों में और शहरों से राजधानी में ले जाकर इकट्ठा करते हैं। ग्रामवासी को अपना खर्चा चलाने के लिये और शहर के प्रलोभनों के लिये यह सब कुछ बेच देना पड़ता है और फिर जब

जरूरत पड़ती है तो उसे शहर में जाना पड़ता है कि जहाँ उसका सारा धन खींच कर ले जाया गया है; वहाँ यह गाँव की खास २ जरूरतों को पूरा करने के लिये पैसा इकट्ठा करने का प्रयत्न करता है, और इस तरह नगर के प्रलोभनों में फँस कर अपने दूसरे साथियों के साथ एकत्र हुए धन का उपभोग करता है।

सारे रूस में और मैं समझता हूँ कि केवल रूस में ही नहीं बल्कि संसार भर में ऐसा ही होता है। गाँव वालों का धन, व्यापारी, जमींदार, सरकारी अफसर और कारखाने वालों के हाथ में चला जाता है। जो लोग इस धन को प्राप्त करते हैं, वह, उसका उपभोग भी करना चाहते हैं और उसका ठीक २ उपभोग करने के लिये उन्हें शहर में ही बसना चाहिये।

एक बात तो यह है कि गाँव छोटे होने के कारण अमीर अपनी सारी इच्छाएँ तृप्त नहीं कर सकते; क्योंकि वहाँ न तो बड़ी दूकानें होती हैं, न बैंक, न होटल-थियेटर तथा तरह तरह के मनोरंजन के सामान ही होते हैं। दूसरी बात यह है कि धन से मिलने वाला खास सुख जो अभिमान है, दूसरों से बढ़ कर रहने की, दूसरों को अपनी शान-शौकत से चकित कर देने की जो तृष्णा होती है वह थोड़ी बस्ती होने के कारण गाँव में पूरी नहीं की जा सकती। गाँव में भोग-विलास का रस लेनेवाले तथा उसे देख कर चकित तथा प्रसन्न होने वाले लोग नहीं होते। गाँव में रह कर कोई कितना ही अपने घर को सजाये; कितने ही चित्र तथा मूर्तियाँ लाकर रक्खे, कितने ही गाड़ी घोड़े खरीदे और चाहे कितनी ही शौक़ीनी से रहे, वहाँ उन्हें देख कर प्रसन्न होने वाले तथा ईर्ष्या से जलने वाले कोई ही मिलेंगे क्योंकि

ग्रामवासी इन बातों से अनभिज्ञ होते हैं। तीसरी बात यह है कि गाँव में विलासिता सहृदय मनुष्य के लिये अरुचिकर होती है और ऊँचे दिल वाले के लिये चिन्ता का कारण भी हो उठती है। पड़ोसी के बच्चों को तो पीने के लिये भी दूध नसीब न हो और हम दूध से नहाएँ और कुत्तों को पिलायें, यह बड़ा ही भद्दा और लज्जा-जनक प्रतीत होता है। इसी तरह गरीब आदमियों के पास रह कर कि जिनके पास रहने के लिये टूटे-फूटे झोपड़ों के सिवाय और कुछ नहीं होता और लकड़ी न मिलने के कारण जाड़े से ठिठुरते रहते हैं, ऊँचे २ महल तथा बगीचे बनाना भी अच्छा नहीं लगता।

यदि कोई मूर्ख अशिक्षित गँवार आदमी हमारे शौक़ की चीज़ों को आकर तोड़-फोड़ डाले तो उसे गाँव में रोकने वाला कौन है।

इसी कारण सारा धनिक वर्ग शहरों में जाकर बस जाता है, और अपनी ही जैसी वासनाओं वाले धनाढ्यों के पास रहना पसन्द करता है कि जहाँ तरह तरह के भोग-विलास स्वच्छन्दता पूर्वक निर्द्वन्द्व होकर भोगे जा सकते हैं। क्योंकि वहाँ इन लोगों की रक्षा के लिये बहुत सी पुलिस नियत होती है। शहर में खास तौर पर रहने वाले सरकारी कर्मचारी होते हैं, और उनके चारों ओर धनी, मानी, व्यापारी तथा कला-कौशल वाले लोग इकट्ठे हो जाते हैं। शहर में किसी चीज़ की इच्छा करने भर की देर है और वह धनी पुरुष के लिये तैयार है। धनी पुरुष को इसलिये भी शहर में रहना अच्छा लगता है कि वहाँ उसके अभिमान को पोषण मिलता है क्योंकि वहाँ भोग-विलास में दूसरों के साथ दौड़ की जा सकती है, अपने वैभव से उन्हें चकित और

पराजित भी किया जा सकता है। अमीर लोगों का शहर में रहने का एक खास कारण यह भी है कि गाँव में उनका जीवन इतना सुखमय नहीं हो सकता; अपने वैभव के कारण उन्हें भय भी लगा रहता है पर अब यहाँ भय तो दरकिनार, आस-पास के दूसरे लोग जिस प्रकार शान के साथ रहते हैं, उसी प्रकार यदि न रहा जाय तो उल्टा बुरा लगे। गाँव में जो भय-जनक था और भद्दा सा मालूम पड़ता था, वही यहाँ आवश्यक और अनिवार्य दिखाई पड़ता है।

अमीर लोग शहरों में एकत्र होते हैं, और अधिकारियों के संरक्षण में रह कर गाँव से जो कुछ आता है, आनन्द-पूर्वक उस-का उपभोग करते हैं। गाँव वाले नगर के धनाढ्यों के निरन्तर उत्सवों और भोजों से आकर्षित होकर कुछ बचा-खुचा मिल जाने की आशा से वहाँ जाते हैं, और धनिकों का चिन्ता-रहित, बिना मेहनत का आनन्द-मय जीवन जब वे देखते हैं, और देखते हैं कि प्रायः सभी उसे अच्छा समझते हैं, तो कभी कभी उनके मन में भी यह इच्छा जागृत होना स्वाभाविक ही है कि हम भी कम से कम परिमाण में काम करके दूसरों की मेहनत से अधिक से अधिक लाभ जिस प्रकार उठाया जा सके वैसा जीवन व्यतीत करें। आखिरकार वह धनी लोगों के पास ही ठहरने का निश्चय कर लेता है, और अपनी आवश्यक चीजों को उनसे प्राप्त करने की हर तरह चेष्टा करता है, और उसके बदले में अमीर लोग जो जो शर्तें पेश करते हैं उन्हें मान कर वह उनका आश्रित बन जाता है। उनकी सब प्रकार की विषय-वासनाओं को तृप्त करने में मदद देता है, स्नान-गृहों में, होटलों

में, कोचवान और वेश्या के रूप में ये गाँव के स्त्री पुरुष इनकी सेवा करते हैं। ये लोग गाड़ियाँ, खिलौने और कपड़े आदि बनाते हैं और धीरे धीरे अपने धनी पड़ोसियों की भाँति रहना सीख जाते हैं, जिसमें वास्तविक मेहनत तो करनी नहीं पड़ती किन्तु तरह तरह की चालाकियों से दूसरों का इकट्ठा किया हुआ धन उन्हें फुसला कर हरण कर लेते हैं, और इस प्रकार वह भ्रष्ट-चरित्र होकर नष्ट हो जाते हैं। शहर के धन से बिगड़े हुए यही लोग हैं कि जो शहर की दरिद्रता का कारण हैं, और जिन्हें सुधारने के लिये ही मैंने यह आयोजन रचा था, पर सफल न हुआ।

गाँव के ये लोग जो अन्न खरीदने के लिये अथवा कर चुकाने के वास्ते शहर में पैसा कमाने की दृष्टि से आते हैं, उनकी स्थिति पर यदि ज़रा विचार करें तो बस है। वे देखते हैं कि हजारों रुपया बड़ी ही बेपर्वाही से लोग उड़ा देते हैं, और सैकड़ों रुपया आसानी से कमाया भी जा सकता है जब कि गाँव में सख्त से सख्त मेहनत करने पर कहीं जाकर एक पैसा मिलता है। यह सब देखते हुए यह बात आश्चर्य-जनक प्रतीत होती है कि अब भी बहुत से लोग ऐसे हैं, जो मेहनत मजदूरी करके रोजी कमाते हैं और व्यापार करके, भीख माँग कर, व्यभिचार और बदमाशी द्वारा तथा चोरी और लूट मार करके] सरलता-पूर्वक धन कमाने की ओर नहीं झुक गये हैं।

नगरों में आनन्द-प्रमोद की जो निरन्तर रेल-पेल मची हुई है उसमें भाग लेने के कारण ही हमारी वृत्ति अजीब बन जाती है। हमें इसमें कोई विचित्र बात नहीं मालूम होती है कि एक

मनुष्य अपने लिये बड़े २ पाँच कमरे रक्खे, और उनको गरम रखने के लिये इतनी लकड़ी जलाए कि जिसमें २० परिवारों का भोजन बन सके, और उनके घर गरमाये जा सकें। हमें यदि आध मील जाना हो तो दो घोड़ों की बढ़िया गाड़ी चाहिये, और उसके साथ दो साईस भी होने चाहियें। अपने बेल-बूटेदार फर्श को गलीचों से ढकते हैं और नाच-गान की एक २ मजलिस में पाँच से दस हजार रुपया तक लगा देते हैं। बड़े दिन के पेड़ के लिये २५ रूबल खर्च कर डालते हैं, और इसी प्रकार के अन्य अन्धा-धुन्ध खर्च करते हैं। हमें ये बातें भले ही अस्वाभाविक न मालूम हों, किन्तु जिस आदमी को अपने कुटुम्ब का पेट भरने के लिये १० रुपये की जरूरत है या लगान के लिये बहुत मेहनत करके भी ७ रुपये न बचा सकने के कारण जिसकी अन्तिम भेड़ छीन ली गई हो, वह आदमी तो कभी इस भयङ्कर फिजूलखर्ची को समझ ही नहीं सकता।

हम लोग समझते हैं कि गरीब लोगों को ये बातें बिलकुल स्वाभाविक मालूम होती होंगी। और कुछ तो ऐसे हजरत हैं कि जो यह कहते हुए भी नहीं हिचकते कि हमारे राग-रङ्ग से गरीबों का भला होता है—उन्हें इससे रोजी मिलती है। किन्तु गरीब होने से उनमें बुद्धि न हो यह बात तो नहीं है। वह भी ठीक हमारी ही तरह विचार करते हैं। जब हम सुनते हैं कि किसी ने जुए में अपनी सम्पत्ति नष्ट कर दी या दस-बीस हजार रुपये गँवा दिये, तो तुरन्त हमारे मन में ख्याल आता है कि यह आदमी कैसा मूर्ख है। मुफ्त में इतने सारे रुपये बरबाद कर दिये। यदि मेरे पास इतनी रकम होती तो उसका कितना सदुपयोग करता!

मैं मकान बनवाता या जायदाद की तरक्की में उसे खर्च करता।

इन्हें व्यर्थ ही अपनी दौलत को नष्ट करते हुए देख कर गरीब लोगों के दिल में भी उसी प्रकार का विचार उठता है, बल्कि उनके मन में यह विचार और भी जोर के साथ उठता है। क्योंकि आमोद-प्रमोद के लिये नहीं किन्तु जीवन की अपरिहार्य आवश्यकताओं को जुटाने के लिये उन्हें इस धन की जरूरत है। इस प्रकार की विचारशक्ति रखते हुए भी गरीब लोग अपने चारों ओर फैली हुई विलासिता को उदासीनता और उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं, ऐसा समझ लेना भ्रमात्मक है।

यह बात तो इन्होंने कभी स्वीकार ही नहीं की, और स्वीकार कर भी नहीं सकते कि एक वर्ग तो मजे उड़ाये और दूसरा वर्ग भरपूर मेहनत करते हुए भी भूखों मरे। यह स्थिति इनको अच्छी लग ही नहीं सकती। पहले तो यह सब देख कर इन लोगों को आश्चर्य होता है, और बुरा भी मालूम होता है। किन्तु अधिक संसर्ग में आने से वे समझते हैं कि यह व्यवस्था तो उचित समझी जाती है तब वह भी मेहनत मजदूरी से पिंड छुड़ा कर इस राग-रङ्ग में भाग लेने का प्रयत्न करते हैं। उनमें से कितने ही सफल हो जाते हैं, और मजे उड़ाने में मग्न हो जाते हैं। कितने ही को यह स्थिति प्राप्त करने में देर लगती है, और कितने ही इच्छित स्थिति को प्राप्त करने से पहिले ही थक जाते हैं। किन्तु मेहनत-मजदूरी का अभ्यास छूट जाने से वे बदमाशी तथा वेश्या वृत्ति का आश्रय लेते हैं।

दो वर्ष पहिले एक किसान के बालक को अस्तबल में काम करने के लिये हम लाये। अस्तबल के दारोगा के साथ बक

झगड़ा किया। इसलिये थोड़े दिनों में उसे अलहदा कर दिया। वह एक व्यापारी के यहाँ नौकर हो गया और उसका कृपा-पात्र बन कर आज सुन्दर कोट पहनता है, सोने की चैन वाली घड़ी रखता है और चमचमाते हुए बूट पहनता है। इस लड़के की जगह हमने दूसरे किसान को नौकर रक्खा। यह विवाहित था। वह जुआ खेलने गया और रुपया हार आया। हमने तीसरा आदमी नौकर रक्खा, इसको शराब पीने की लत पड़ गई और उसके पास जो कुछ था वह सब उड़ा देने के बाद वह बहुत दिनों तक एक अनाथावास में पड़ा रहा। हमारा पुराना रसोई बनाने वाला शहर में आकर शराब पीने लगा और बीमार पड़ गया। हमारा साईस पहले बहुत शराब पीता था, किन्तु पाँच वर्ष तक गाँव में रह कर उसने शराब को छुआ भी नहीं किन्तु जब वह अपनी स्त्री को छोड़ कर कि जो उसकी देखभाल रखती थी, मास्को में आया, तब वह फिर पीने लगा और उसने अपना जीवन दुःखमय बना लिया। हमारे गाँव का एक छोटा लड़का मेरे भाई के बटलर के हाथ के नीचे है। उसका अन्धा और बुड्ढा दादा, जब मैं गाँव में रहता था, तब मेरे पास आया और कहने लगा कि किसी तरह मेरे पोते को समझा दो कि वह लगान अदा करने के लिये दस रूबल भेज दे क्योंकि ऐसा न हुआ तो गाय बेचनी पड़ेगी।

उस वृद्ध ने यह भी कहा, 'वह लड़का कहा करता है कि उसे भले आदमियों के से कपड़े पहनने पड़ते हैं जिसमें बहुत खर्च हो जाता है। उसने बड़े बूट खरीद लिये हैं। इतना ही बहुत है किन्तु मैं तो समझता हूँ कि वह अब घड़ी खरीदने की धुन में है।

वृद्ध ने ये बातें इस ढङ्ग से कहीं कि जिससे मालूम पड़ता

था कि उसकी दृष्टि में घड़ी खरीदने से बढ़ कर फिजूलखर्ची तथा मूर्खतापूर्ण बात कोई हो ही नहीं सकती, और इस विचारे का ख्याल ठीक भी था। इस वृद्ध को शीत-काल भर ज़रा भी घी या तेल खाने को नहीं मिला, और अब उसका सारा ईंधन नष्ट हुआ जा रहा है क्योंकि उसे कटाने के लिये सवा रुपया की ज़रूरत है, जो उसके पास नहीं है। वृद्ध ने जो बात व्यङ्ग के रूप में कही थी, वह निकली भी सत्य। वह लड़का एक सुन्दर काला ओवर-कोट और आठ रुपये वाले बूट पहन कर मेरे पास आया। कल ही मेरे भाई से दस रुपये लेकर उसने बूटों में खर्च कर दिये। मेरे बच्चे इस लड़के को बचपन से जानते थे। उन्होंने मुझ से कहा—इस लड़के को घड़ी की तो बड़ी ज़रूरत है। यह है बड़ा अच्छा पर यह समझता है कि यदि मेरे पास घड़ी न होगी तो लोग मुझ पर हँसेंगे। इसलिये घड़ी तो इसे चाहिये ही।

इस वर्ष १८ वर्ष की एक दासी का कोचमैन के साथ अनुचित सम्बन्ध हो गया और उसे छुट्टी दे दी गई। जब मैंने अपनी बूढ़ी धाय से यह बात कही तो उसने मुझे एक दूसरी लड़की की याद दिलाई, जिसे मैं भूल गया था। दस वर्ष पहिले जब हम मास्को में रहते थे यह लड़की हमारे यहाँ नौकर थी। वहीं वह साईस की मुहब्बत में फँस गई। इसे भी विदा कर दिया गया था और आखिरकार वह वेश्या-वृत्ति करने लगी। बीस वर्ष की भी वह होने न पाई कि घृणित रोग से पीड़ित होकर वह अस्पताल में मर गई। हमारे भोग-विलास के लिये जो मिल और कारखाने खुले हैं, उनमें जो हो रहा है उसे एक ओर छोड़कर हम अपने चारों ओर स्वतः अपनी विलासिता के कारण जो अनीति की

भयङ्कर बला फैला रहे हैं उसे यदि हम आँख उठाकर देखें तो हमारा हृदय दहले बिना न रहे।

इस प्रकार जिस नागरिक दरिद्रता को दूर करने में मैं असमर्थ रहा, उसका मूल कारण मुझे मिल गया। मैंने देखा कि हम लोग गाँव वालों के पास से उनकी जरूरत की चीजों को ला लाकर जो शहरों में भरते हैं, यह इस दुर्दशा का पहला कारण है और दूसरा कारण यह है कि इन नगरों में अपने भोग-विलास की खातिर इन एकत्र की हुई चीजों का अन्धाधुन्ध खर्च करके हम उन गाँव वाले किसानों को वैभव के प्रलोभनों में फँसाकर उनका जीवन नष्ट करते हैं, जो अपना अपना घर छोड़ शहर में से उन चीजों के कुछ अंश को ले जाने के लिये आते हैं जिन्हें हम गाँव में से उनसे छीन कर ले आये हैं।

एक दूसरे दृष्टि-कोण से विचार करने पर भी मैं उसी निर्णय पर पहुँचा। शहर के ग़रीबों के साथ, इस बीच में मेरा जो संसर्ग हुआ, उसे स्मरण करने पर मुझे मालूम हुआ कि ग़रीब लोगों की मदद न कर सकने का एक कारण यह था कि इन लोगों ने मुझसे अपनी सच्ची स्थिति से वञ्चित रखकर झूठी बातें कहीं। ये लोग मुझे मनुष्य नहीं, एक प्रकार का साधन समझते थे। मैंने देखा कि मैं उनके साथ घनिष्ट हार्दिक सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सकता, और मैं शायद ऐसा करना जानता ही न था। किन्तु सचाई के बिना तो सहायता करना असम्भव था। भला किसी आदमी को सहायता किस प्रकार पहुँचाई जा सकती है जब तक कि वह अपनी सारी परिस्थिति बता नहीं देता? पहले पहल तो मैं इस बात का दोष ग़रीबों पर ही रखने लगा। क्योंकि दूसरों के मत्थे दोष मढ़ना सरल और स्वाभाविक है। किन्तु सुटेफ़ नाम के एक विचक्ष[illegible] मुझ से मिलने

उन दिनों जब मैं आत्म-वञ्चना के चक्कर में पूरे तौर पर पड़ा हुआ था, मैं अपनी बहन के घर गया। सुटेफ़ भी वहीं था। मेरी बहिन मेरी योजना के सम्बन्ध में मुझ से प्रश्न करने लगी।

मैं सब बातें उसे बता रहा था, और जैसा कि अक्सर होता है, जब किसी आदमी को अपने काम में पूरा विश्वास नहीं होता है, तो वह खूब बना २ करके उसका जिक्र करता है। ठीक वैसे ही मैं भी बड़े जोश और उत्साह के साथ विस्तारपूर्वक अपने काम का और उसने होने वाले परिणामों का वर्णन करने लगा। मैं उसे बता रहा था कि मास्को में गरीबों की जो दशा हो रही है उसका हमें किस प्रकार ख्याल रखना चाहिये और अनाथों तथा वृद्ध मनुष्यों की किस तरह खबरगीरी रखनी चाहिये और गाँव के कंगाल लोगों को घर वापस भेजने तथा बिगड़े हुए लोगों को सुधारने के साधन किस प्रकार जुटाने चाहिये।

मैंने अपनी बहिन को समझाया कि यदि हम अपने कार्य में सफल हुए तो मास्को में एक भी ऐसा गरीब आदमी न होगा कि जिसे हम सहायता न पहुँचा सकें।

मेरी बहिन ने मेरे विचारों से सहानुभूति प्रकट की। किन्तु मैं जब बातें कर रहा था तो कभी २ सुटेफ की ओर देखता जाता था। मैं उसके धार्मिक जीवन से परिचित था, और जानता था कि वह दान सबन्धी बातों को कितना महत्व देता है। मुझे उससे सहानुभूति की आशा थी, और इसीलिये मैं इस ढङ्ग से बातें कर रहा था कि जिससे वह मेरी बातें समझ जाय। देखने को तो मैं अपनी बहिन से बातें कर रहा था, पर वास्तव में मेरी बातों की गति अधिकतर उसी की ओर थी।

काली भेड़ की खाल का कोट—जिसे किसान लोग घर में तथा बाहर पहना करते हैं—वह पहने हुए अचल और स्थिर भाव से बैठा हुआ था। ऐसा प्रतीत होता था कि वह हमारी बातें नहीं सुन रहा है बल्कि किसी और ही बात के ध्यान में है। बातें करते समय आँखों में जो एक प्रकार की चमक सी आ जाती है, वह उसकी छोटी छोटी आँखों में बिलकुल ही न थी बल्कि ऐसा मालूम होता था कि उसकी दृष्टि किसी अन्तर प्रदेश में विचरण कर रही है। जी भरकर बातें कर चुकने के बाद मैंने उसको सम्बोधित करके पूछा कि इस विषय में उसका क्या विचार है।

उसने कहा—यह सब व्यर्थ है!

मैंने पूछा—क्यों?

विश्वासपूर्ण स्वर में वह बोला—यह सारी योजना खोखली है, इससे कोई लाभ न होगा।

'किन्तु लाभ होगा क्यों नहीं? यदि हम हजारों सैकड़ों दुखी मनुष्यों को सहायता पहुँचाएँ तो इसे व्यर्थ कैसे कहा जा सकता है? नंगे को कपड़ा देना और भूखे को भोजन कराना क्या धर्म-शास्त्र की दृष्टि से बुरा है?

सुटेफ ने कहा—यह सब मैं समझता हूँ, किन्तु तुम जो कुछ कर रहे हो वह वैसा नहीं है। क्या इस प्रकार सहायता देना सम्भव है? सड़क पर जाते हुए तुम से कोई पैसा माँगता है, तुम उसे दे देते हो। क्या यह दान है? उस की आत्मा के कल्याण के लिये कुछ करो, उसे कुछ सिखाओ। कुछ पैसे फेंक कर तुम अपने सर से बला टालते हो। क्या यह भी दान में दान है?

मैंने कहा—नहीं, मैं हम यह नहीं कहते। हम पहले तो

उनकी आवश्यकताओं को मालूम करेंगे और फिर धन से अथव काम करके उनकी सहायता करेंगे। गरीबों के लिये हम कुछ काम भी खोज निकालेंगे।।

सुटेक ने कहा–इस प्रकार उनको कुछ भी सहायता न होगी।

मैं बोल उठा—तो क्या करें? क्या उन्हें भूखों मरने दें और शीत से ठिठुरने दें?

"मरने क्यों दें? ऐसे कुल कितने आदमी होंगे?"

"कितने आदमी होंगे? आप शायद जानते नहीं, कि अकेले मास्को में बीस हजार आदमी हैं, जो शीत और भूख की व्याधि से पीड़ित हैं; और फिर सेन्ट पीटर्सबर्ग तथा अन्य नगरों में कितने होंगे!?"

वह मुस्कराया—'सिर्फ बीस हजार! और रूस में कुल घर कितने होंगे? लगभग दस लाख तो होंगे ही।

"लेकिन इससे मतलब क्या है?"

"मतलब क्या है?" अब की बार कुछ गर्मी से उसने कहा और उसकी आँखें उत्साह से चमक उठीं। 'हमें इन लोगों को अपने साथ मिला लेना चाहिये। मैं खुद अमीर आदमी नहीं हूँ। लेकिन दो आदमी को अभी अपने पास रख लूँगा। तुमने अपने बावर्ची खाने में जो आदमी अभी रक्खा है मैंने उससे मेरे साथ चलने को कहा, किन्तु उसने अस्वीकार कर दिया। यदि इस से दसगुने भी होते तब भी हम सबको अपने परिवारों में शामिल कर लेते। हम सब साथ मिलकर काम करेंगे। वह हम लोगों को काम करते हुए देखेंगे और जीवन-निर्वाह करने का ढङ्ग सीखेंगे। हम लोग साथ बैठ कर एक सा भोजन करेंगे।

कभी मुझ से और कभी तुम से दो अच्छे शब्द इन्हें सुनने को मिलेंगे। यह दान है, यह उपकार है। आपकी योजना से कोई लाभ नहीं।"

इन सीधे सादे शब्दों से मैं प्रभावित हुआ। उसकी बात सच है, यह तो मानना ही पड़ा। पर उस समय मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि उसका कहना सच होने पर भी सम्भव है कि मेरी योजना से भी कुछ लाभ पहुँच सके किन्तु ज्यों ज्यों मेरा काम आगे बढ़ा और गरीब लोगों के संसर्ग में ज्यों ज्यों मैं अधिक आया त्यों त्यों मुझे इन शब्दों की याद अधिकाधिक आने लगी और वे अधिक अर्थ-पूर्ण मालूम होने लगे।

मैं रोएँदार क़ीमती कोट पहन कर निकलता हूँ, अथवा गाड़ी में बैठकर ऐसे आदमी के पास जाता हूँ जिसके पास पहिनने के लिये जूते भी नहीं हैं। वह देखता है कि मेरे घर की सजावट में हजारों रुपये खर्च होते हैं या बिना सोचे विचारे मैं किसी को पाँच रुपये केवल मन की लहर के कारण दे डालता हूँ। इन बातों को वह देखता है और इनका उसके दिल पर असर पड़े बिना नहीं रह सकता। वह सोचता है और समझ जाता है कि मैं जो इतना खर्च करता हूँ या इस प्रकार लोगों को रुपये दे डालता हूँ इसका कारण यह है कि मैंने बहुत सा रुपया इकट्ठा कर लिया है, जो मैं किसी को देना नहीं चाहता और जो मैंने दूसरों से बेदर्दी से छीन लिया है। मेरे विषय में इसके सिवा उसका और क्या ख्याल हो सकता है कि मैं उन मनुष्यों में से हूँ, जो बहुत सी ऐसी चीज़ों के मालिक बन बैठे हैं कि जो वास्तव में उसके पास होनी चाहियें। और मेरे प्रति, इसके

अतिरिक्त उसकी और भावना हो ही क्या सकती है कि मैंने उससे तथा अन्य लोगों से जो रुपये ले लिये हैं, उनमें से जितने जिस प्रकार हो सके वह वापस लेने की इच्छा करे ?

मैं उसके साथ घनिष्ट सम्बन्ध रखना चाहता हूँ और शिकायत करता हूँ कि उसका व्यवहार उतना सच्चा नहीं है। किन्तु साथ ही मैं उसके बिछौने पर बैठने से डरता हूँ कि कहीं कोई छूत का रोग न लग जाय, और उसे अपने कमरे में भी आने देना नहीं चाहता। यदि वह बेचारा अर्धनग्न अवस्था में मुझ से मिलने आता है, तो उसे घंटों इन्तजार करना पड़ता है, और उस समय यदि उसे ड्योढी में स्थान मिल गया तो यह उसका सौभाग्य है, नहीं तो बाहर सर्दी में खड़ा खड़ा ठिठुरा करे ! और फिर मैं कहता हूँ कि यह सब उसका दोष है कि मैं उसके साथ आत्मीयता स्थापित नहीं कर पाता, उसका हृदय साफ नहीं है।

कठोर से कठोर दिल वाले आदमी भी यदि पाँच प्रकार के पकवानों को लेकर ऐसे मनुष्यों के मध्य में खाने को बैठें कि जो भूखों मर रहे हैं या जिनके पास खाने को सूखी रोटी के सिवा और कुछ नहीं, तो निस्सन्देह किसी का जी खाने को न करेगा जब कि उसके चारों ओर भूखे लोग होठ चाटते हुए खड़े हों। इसलिये आधा पेट भोजन करने वाले लोगों के मध्य में रहकर अच्छी तरह खाने के लिये यह जरूरी है कि हम अपने को उनकी दृष्टि से छुपा लें और इस प्रकार खायें कि जिससे वे देख न सकें और सब से पहले हम यही बात करते भी हैं।

मैंने निष्पक्ष होकर अपने जीवन की गति-विधि का अध्ययन किया तो मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि गरीब लोगों के साथ हमारे

सम्बन्ध का घनिष्ट होना जो असम्भव सा हो रहा है यह केवल इत्तफ़ाक़ की बात नहीं है, बल्कि हम खुद अपने जीवन को ऐसे ढङ्ग पर ढाल रहे हैं कि जिससे हमारा उनका सम्पर्क असम्भव हो जाय। इतना ही नहीं, अपने जीवन को तथा धनी लोगों के जीवन को बाहर से देखने पर मैंने तो समझा कि हम लोग जिसे आनन्द या सुख समझते हैं वह जहाँ तक हो सके, इन ग़रीब लोगों से पृथक् होकर दूर रहने ही में है, अथवा किसी न किसी प्रकार इस वाञ्छित पृथकरण के सम्बन्धित है।

सची बात यह है कि भोजन, पोशाक, मकान और सफ़ाई से लेकर शिक्षा तक हमारी जीवन-सम्बन्धी सभी बातों का उद्देश्य ही यह मालूम पड़ता है कि हमारे और ग़रीबों के बीच में दीवार खड़ी कर दी जाय और भेद-भाव तथा पृथक्करण की इस दुर्लंघ्य दीवार को खड़ी करने में हम अपने धन का ९⁄१० हिस्सा खर्च करते हैं।

जब कोई आदमी धनवान् हो जाता है तो सबसे पहला काम वह यह करता है कि वह दूसरों के साथ खाना छोड़ देता है। वह अपने तथा परिवार के लिये खास भोजन बनवाता है, और अलहदा थालियाँ लगवाता है। वह अपने नौकरों को तो अच्छी तरह भोजन कराता है ताकि उनके मुँह में पानी न भर आये पर स्वयं अलहदा बैठ कर भोजन करता है। पर अकेले खाना अच्छा नहीं लगता इसलिये भोजन में यथासम्भव सुधार होता है और मेज को भी खूब सजाया जाता है। खुद खाने की पद्धति ही अभिमान और गौरव की बात हो जाती है, जैसा कि डिनर पार्टियों में देखने में आता है। उसके भोजन करने की

पद्धति मानो उसे दूसरे लोगों से अलहदा करने का एक साधन है। किसी गरीब आदमी को भोज में निमंत्रित करना तो धनी आदमी के लिये बिलकुल अचिन्त्य बात है। भोज में सम्मिलित होने के लिये महिला को मेज तक पहुँचाने की, सलाम करने की, बैठने की, खाने की हाथ मुंह धोने की तमीज तो होनी ही चाहिये और इन बातों को सिर्फ अमीर लोग ही ठीक तरह से करना जानते हैं।

पोशाक के सम्बन्ध में भी यही बात है। यदि कोई अमीर आदमी सादी पोशाक पहने तो शरीर को ढकने तथा शीत से सुरक्षित रखने के लिये उसे बहुत ही थोड़े कपड़ों की जरूरत हो; और यदि उसके पास दो कोट हों तो जिसके पास एक भी न हो उसे एक कोट दिये बिना उससे रहा ही न जाय। किन्तु अमीर आदमी ऐसी पोशाक पहनना शुरू करता है कि जिसमें बहुत सी चीजें होती हैं, जो विशिष्ट समय पर ही पहिनी जा सकती है और इसलिये वह गरीब आदमी के मतलब की नहीं होती। फैशनेबल आदमी के लिये शाम के पहनने के ड्रेस कोट, वेस्टकोट, फ्राककोट, पेटेन्ट लेदर बूट होने ही चाहिये। और उसकी स्त्री के पास भी ऊँची ऐड़ी के जूते, शिकारी और सिफरी जाकेट, बॉडिस और फैशन के मुताबिक तरह तरह की कई हिरसों की बनी हुई पोशाकें अवश्य चाहिये। ये सब चीजें केवल उन्हीं के काम आ सकती हैं कि जो दरिद्रता से बहुत दूर है। इस प्रकार हमारा पहरावा भी हमें जुदा करने का एक साधन हो जाता है। और फैशन तो अमीरों को गरीबों से दूर रखने का एक प्रमुख कारण है ही।

यही बात हमारे मकानों से और भी स्पष्ट रूप से सिद्ध होती है। एक आदमी दस कमरों का उपयोग कर सके इसके लिये हमें ऐसा प्रबन्ध करना पड़ता है कि वह ऐसे लोगों की दृष्टि से दूर रहे कि जो दस दस की संख्या में एक कमरे में रहते हैं। जितना ही अधिक कोई आदमी धनवान होता है उस तक पहुँचना भी उतना ही कठिन होता है। उतने ही अधिक दरबान ग़रीब आदमियों को उसके पास न पहुँचने देने के लिये तैनात होते हैं, और किसी ग़रीब आदमी का आतिथ्य-सत्कार करना उसे अपनी क़ालीनों पर चलने फिरने तथा मख़मली कुर्सियों पर बैठने देना भी उसके लिये उतना ही अधिक असम्भव हो जाता है।

सफ़र में भी यही बात होती है। बैलगाड़ी में बैठकर जाने वाला वह किसान बड़ा ही कठोर-हृदय होगा कि जो राह चलते थके हुए बटोही को अपनी गाड़ी में बिठाने से इन्कार कर दे। उसकी गाड़ी में काफ़ी जगह होती है और वह आराम से उसे बिठा सकता है। किन्तु गाड़ी जितनी ही अधिक ठाठदार और अमीराना होगी मालिक के सिवा किसी दूसरे आदमी को उसमें स्थान देना उतना ही अधिक असम्भव होगा। कुछ बहुत ह[ी] [श]ानदार गाड़ियाँ तो इतनी तङ्ग होती हैं कि उन्हें 'एकता' या [ए]कवादी' कहा जा सकता है।

स्वच्छता शब्द से हम जिस प्रकार की जीवन-शैली की ओर [नि]र्देश करते हैं, उसके सम्बन्ध में भी यही कहा जा सकता है। [स्]वच्छता !

उन मनुष्यों को ख़ास कर उन स्त्रियों को कौन नहीं जानता [कि] जो प्रायः स्वच्छता की दुहाई दिया करते हैं ? स्वच्छता के

के इन विभिन्न रूपों से भी कौन परिचित नहीं है ? इनकी कोई सीमा ही नहीं है जब तक कि ये दूसरों की मेहनत से प्राप्त होते हैं। स्वयं-निर्मित धनिकों में ऐसा कौन है जिसने यह अनुभव न किया हो कि अपने को उस स्वच्छता का अभ्यस्त बनाने में कितनी परेशानी और दर्दसरी उठानी पड़ती है, कि जो इस कहावत को चरितार्थ करती है—'उजले हाथों को दूसरों की मेहनत अच्छी लगती है।'

आज स्वच्छता इसमें है कि रोज कुर्ता बदला जाय, कल दिन में दो बार कुर्ते बदलने होंगे। पहले तो हाथ और मुँह धोना प्रति दिन आवश्यक होता है, फिर पैर भी रोजाना धोने होते हैं और फिर सारा शरीर और वह भी खास २ तरीकों से। एक साफ मेजपोश दो दिन तक काम देता है, फिर वह रोज बदला जाता है, और उसके बाद दिन में दो दो मेजपोश बदले जाते हैं। आज तो इतना ही काफ़ी समझा जाता है कि अर्दली के हाथ साफ हों पर कल उसे दस्ताने और सो भी साफ दस्ताने पहनने चाहियें और एक साफ तश्तरी में रखकर पत्र पेश करने चाहियें। इस स्वच्छता की कोई हद नहीं है और इसके सिवा इससे कोई लाभ नहीं है कि यह हमें दूसरे लोगों से जुदा कर दे, हाँला कि इस स्वच्छता के लिये हमें दूसरों ही की मेहनत पर निर्भर रहना पड़ता है।

इतना ही नहीं, मैंने जब इस बात पर गहरा विचार किया तो मैं इस परिणाम पर पहुँचा कि हम जिसे शिक्षा कहते हैं वह भी एक ऐसी ही चीज है। भाषा धोखा नहीं दे सकती, वह हर एक चीज को ठीक नाम से पुकारती है। फैशनेबल पोशाक, चटपटी बातचीत, उजले हाथ और स्वच्छता की कुछ मात्रा,

बस इसी को साधारण लोग शिक्षा कहते हैं। दूसरों से मुक़ाबला करते हुए जब वे उसकी विशेषता दिखाना चाहते हैं तो कहते हैं कि वह शिक्षित मनुष्य है। इससे कुछ उच्च श्रेणी के लोगों में भी शिक्षा का यही अर्थ समझा जाता है। किन्तु उनमें ये बातें और जोड़ दी जाती हैं—पियानो बजाना, फ्रांसीसी भाषा का ज्ञान, रूसी भाषा का शुद्ध लेख और स्वच्छता की कुछ अधिक मात्रा। इससे भी ऊँची श्रेणी में शिक्षा के अन्दर ये सब बातें होती ही हैं और इनके अलावा अंग्रेजी, शिक्षा सम्बन्धी किसी ऊँची संस्था का सर्टीफिकेट और स्वच्छता की और भी अधिक मात्रा, इन बातों का भी समावेश समझा जाता है। किन्तु इन तीनों ही श्रेणियों में शिक्षा का स्वरूप एकसा ही है।

शिक्षा से मतलब है वह आचार और विभिन्न प्रकार का ज्ञान जो मनुष्य को दूसरे मानव-बन्धुओं से पृथक् करता है। इसका भी वही उद्देश्य है कि जो स्वच्छता का है। अर्थात् हमें सर्व साधारण लोगों से पृथक् करना जिसे भूखों मरते और शात से ठिठुरते हुए लोग देख न सकें कि हम किस प्रकार मौज उड़ाते हैं। किन्तु हमारी ये बातें छिपी नहीं रह सकतीं, भेद खुल ही जाता है।

इस प्रकार मैं यह समझ गया कि हम अमीर लोग जो ग़रीबों की मदद करने में असमर्थ हैं इसका कारण यह है कि हमारा उनके साथ घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित होना अशक्य है, और यह बाधा हम स्वयं अपने धन तथा समस्त जीवन-चर्या के द्वारा खड़ी करते हैं। मुझे विश्वास हो गया कि हम अमीरों और ग़रीबों के बीच में हमारे ही द्वारा उठाई हुई शिक्षा और स्वच्छता की एक दीवाल

खड़ी हुई है और उसका आविर्भाव हमारे धन के द्वारा हुआ है। ग़रीबों को सहायता पहुँचाने के योग्य होने के लिये हमें सब से पहले इस दीवार को ही तोड़ना पड़ेगा और ऐसी परिस्थिति पैदा करनी होगी कि जिससे सुटेफ़ के बताये हुए प्रस्तावों को क्रियात्मक रूप दिया जा सके। अर्थात् ग़रीबों को हम अपने अपने घरों में ले लें। जनता की दरिद्रता के सम्बन्ध में अपनी विचारसरणी के द्वारा मैं जिस निष्कर्ष पर पहुँचा, एक दूसरे दृष्टि-कोण से भी मैं उसी परिणाम पर आया अर्थात् दरिद्रता का कारण हमारा धनाधिक्य है।

फिर तीसरी बार और अब की बिलकुल व्यक्तिगत दृष्टि से मैंने इस विषय पर विचार करना शुरू किया। मेरी उस परोपकारी प्रवृत्ति के समय एक बात ने मेरे दिल पर बड़ा असर किया, और वह बात मालूम भी बड़ी विचित्र होती है, किन्तु बहुत दिनों तक मैं उसका मतलब नहीं समझ सका।

घर पर या बाहर जब कभी मैंने किसी ग़रीब आदमी को उससे किसी प्रकार की बातचीत किये बिना ही उसे दो चार पैसे दिये तो मैंने देखा, या यों कहिये कि मुझे ऐसा मालूम पड़ा, कि उसके मुख पर प्रसन्नता और कृतज्ञता के भाव झलक रहे हैं और इस प्रकार के दान से खुद मुझे भी एक प्रकार के आनन्द का अनुभव होता था। किन्तु जब कभी मैंने उसके साथ बातचीत का सिलसिला शुरू किया, और उसके भूत तथा वर्तमान जीवन के सम्बन्ध में थोड़ी बहुत विस्तृत जानकारी प्राप्त करने की चेष्टा की, तो मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि इसको दो चार या दस बीस पैसे देकर चलता करना असम्भव है, तब मैं थैली में हाथ डालकर देर तक पैसों को टटोलता रहता और यह न समझ कर कि कितना देना यथेष्ट होगा, ऐसे अवसरों पर मैं सदा ही अधिक दिया करता था, किन्तु फिर भी मैं देखता कि वह ग़रीब असन्तुष्ट होकर मेरे पास से गया है। यदि मैं अधिक घनिष्टतापूर्वक उससे बातें करने लग जाता तो, कितना दान दूँ इस विषय

में मेरा सन्देह और भी बढ़ जाता और फिर ऐसी हालत में, मैं चाहे कितना ही क्यों न दूँ, उपकृत व्यक्ति अपेक्षाकृत अधिक निराश और असन्तुष्ट दिखाई पड़ता था।

यह एक साधारण नियम सा था कि जब कभी मैंने किसी गरीब आदमी से अच्छी तरह बातचीत कर के तीन रुपये या इससे भी कुछ अधिक दिया तो मैंने सदा ही उसके चेहरे पर, निराशा, असन्तोष और कभी २ क्रोध के भाव देखे और कुछ अवसरों पर तो मुझ से १० रुपये पाने के बाद भी मुझे धन्यवाद दिये बिना ही वह इस प्रकार मेरे पास से उठकर गया कि जैसे मैंने उसका अपमान किया हो।

ऐसे अवसरों पर मुझे सदा ही लज्जा और दुःख का अनुभव होता और ऐसा मालूम होता जैसे मैंने पाप किया हो। जब मैंने किसी गरीब आदमी की कुछ हफ्तों, महीनों या वर्षों तक देखभाल की, बातें कीं, अपने विचार उसके सामने प्रकट किये, और इस प्रकार कुछ घनिष्ठता हो गई तो कुछ दिनों में हमारा सम्बन्ध बड़ा दुःखदायी सा हो जाता और मैं देखता कि वह आदमी मुझ से घृणा करने लगा है और अन्तरात्मा में मुझे ऐसा भास होता कि उसका घृणा करना ठीक है। सड़क पर जाते हुए कोई भिखारी मुझ से एक पैसा माँगे और मैं उसे दे दूँ तो उसकी दृष्टि में मैं भी उन दयालु नेक मनुष्यों में आ जाता हूँ जो अन्य मनुष्यों की तरह एक २ तागा देकर उसके लिये कुर्ता बनवा देते हैं। उस समय वह मुझ से अधिक की आशा नहीं रखता सिर्फ एक धागा माँगता है और वह जब मैं उसे दे

देता हूँ तो वह हृदय से आशीर्वाद देता है। उस समय वह जानता है कि वह भिखारी है और मैं दाता हूँ।

किन्तु यदि मैं उसके पास ठहर कर मनुष्य के नाते भाई समझ कर उससे बातें करूं और उसे यह मालूम हो कि मैं यों ही रस्ते चलने वाला साधारण दाता नहीं हूँ, और, यदि जैसा कि अक्सर होता है, अपने दुख की कहानी वर्णन करते हुए वह रो उठे तब वह मुझे इत्तफाकिया दान देने वाला आदमी नहीं समझता, बल्कि जैसा कि मैं चाहता हूँ, वह मुझे एक दयालु सद्गृहस्थ समझता है और जब मैं दयालु हूँ तो मेरी दयालुता २० पैसे, या दस रुपये या दस हजार रुपये देकर भी खतम नहीं हो सकती। दयालुता की कोई सीमा नहीं।

कल्पना कीजिये कि मैं उसे बहुत सा धन दे देता हूँ। उसके लिये स्थान और वस्त्र का प्रबन्ध कर देता हूँ और उसे इस योग्य बना देता हूँ कि वह आप अपने पैरों खड़ा हो सके; बिना किसी की सहायता के खुद अपनी जीविका उपार्जन कर सके; किन्तु किसी न किसी कारण से, दैवी आपत्ति से अथवा अपनी दुर्बलता के कारण मैंने उसे जो कुछ दिया वह सब गँवा बैठता है। न उसके पास रुपया रहता है और न पहिनने को कपड़ा, वह भूखों मरता तथा शीत से ठिठुरता है और ऐसी हालत में वह फिर मेरे पास आता है तो मैं सहायता देने से इनकार कैसे करूँ। हाँ, यदि मेरी दयालुता का लक्ष्य यह होता कि मैं उसे कुछ रुपये दे दूँ और एक कोट बनवादूँ, तो इतना कर चुकने के बाद मैं निश्चिन्त होकर बैठ सकता हूँ। किन्तु मेरे कार्य का लक्ष्य तो यह न था। मेरी कामना, मेरी इच्छा तो यह थी कि मैं दयालु पुरुष बनूं अर्थात्

सब में अपनी आत्मा का अनुभव करूँ। दयालुता का अर्थ सभी ऐसा ही समझते हैं, अन्यथा नहीं।

इसलिये ऐसा आदमी यदि शराब पीने में सब कुछ उड़ा दे, तुम उसे बीस बार दो और बीसों बार वह सब स्वाहा कर डाले और फिर भूखा का भूखा और नंगा का नंगा रह जाय तो यदि तुम दयालु पुरुष हो तो उसे फिर रुपया दिये बिना नहीं रह सकते और तुम अपना हाथ उस समय तक नहीं खींच सकते जब तक कि तुम्हारे पास उससे अधिक सामग्री है। किन्तु यदि तुम हाथ खींच लेते हो तो तुम यह सिद्ध करते हो कि अभी तक तुमने जो सहायता दी वह इसलिये नहीं दी कि वास्तव में तुम दयालु हो बल्कि इसलिये दी कि दूसरे लोगों तथा उस आदमी का दृष्टि में ऐसे मालूम पड़ो कि लोग तुम्हें दयालु समझें। और चूँकि ऐसे अवसरों पर मैं हाथ खींच लेता था, सहायता देना बन्द कर देता था और इस प्रकार अपने करे धरे पर पानी फेर देता था इसीलिये मेरे हृदय में पीड़ा-जनक लज्जा की भावना जागृत हो उठती थी।

पर यह भावना थी क्या ?

ल्यापिन गृह तथा गाँव में और जब ग़रीबों को रुपया या कोई दूसरी चीज़ मैं देता था तब मैं इस अनुभूति का अनुभव करता था। शहर के ग़रीबों को देखने के लिये मैं जब जाता था, तब भी मुझे इसका अनुभव होता था। हाल ही में एक घटना हुई जिसने इस लज्जा की भावना को जोरों के साथ मेरे सामने ला रक्खा और मैं उसका कारण खोज निकालने के लिये उत्सुक हुआ।

यह घटना गाँव में हुई। एक यात्री को देने के लिये मुझे

२० कोपकों (रूसी सिक्का) की जरूरत थी। किसी से माँग लाने के लिये मैंने अपने पुत्र को भेजा। उसने कोपक लाकर उस यात्री को दिये और मुझ से कहा कि रसोइये से वह कोपक उधार लिये हैं। कुछ दिनों बाद दूसरे यात्री आये। मुझे फिर २० कोपक की जरूरत हुई। मेरे पास एक रुबल था। मुझे याद आया कि रसोइये को बीस कोपक देना है। यह सोच कर कि उसके पास और कोपक होंगे मैं भोजनगृह में गया और उससे कहा—

"मुझे २० कोपक तुमको देने हैं। पहले यह लो एक रुबल।"

मैंने बोलना समाप्त भी न किया कि रसोइये ने अपनी स्त्री को पास के कमरे से बुलाकर कहा—पार्शा, यह रुबल ले लो।

यह सोच कर कि मेरा मतलब यह समझ गई है मैंने उसे रुबल दे दिया। यहाँ यह कह देना जरूरी है कि रसोइये को हमारे यहाँ रहते हुए एक हफ्ता हो गया था, मैंने उसकी स्त्री को देखा था पर उससे कभी बात नहीं की थी।

बाकी वापस देने के लिये मैं उससे कहना ही चाहता था कि वह जल्दी से मेरे हाथ पर झुकी और यह समझ कर कि मैं यह रुबल उसे इनाम दे रहा हूँ कृतज्ञता प्रकाश करने के लिये वह मेरे हाथ को चूमने को उद्यत हुई। मैं कुछ गड़बड़ा कर रसोई-गृह से निकल भागा। मुझे बड़ी ही लज्जा मालूम हुई। ऐसी लज्जा मैंने बहुत दिनों से अनुभव नहीं की थी। मेरा शरीर उस समय काँप रहा था और मुँह सूख गया था। मानो लज्जा से कराहते हुए मैं वहाँ से भाग आया।

मैं समझता था कि इस भावना के मैं योग्य न था कि जो एकाएक आकर मेरे ऊपर सवार हो गई और जिसने मेरे ऊपर

गहरा असर किया। खासकर इसलिये कि बहुत दिनों से मुझे ऐसी अनुभूति न हुई थी, और इसलिये भी कि मैं समझता था कि मैं, बड़ा आदमी हूँ, और इस प्रकार शान्तिपूर्वक अपने जीवन को व्यतीत कर रहा हूँ। मेरे लज्जित होने का कोई कारण ही न था। इस घटना से मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मैंने अपनी स्त्री तथा अपने मित्रों से इसका जिक्र किया, और सभी ने कहा कि यदि यह घटना उनके साथ होती, तो उनका भी ऐसा ही हाल होता। मैं सोचने लगा—आखिर ऐसा हुआ क्यों ?

इसका उत्तर मास्को की एक घटना से मिला जो कुछ दिन पहिले मास्को में मेरे सामने हुई थी। मैंने इसके ऊपर विचार किया और रसोइये की स्त्रीवाली बात पर जो लज्जा मुझे प्रतीत हुई उसका अर्थ मैं समझा। मैं समझा कि क्यों मास्कों में परोपकार का कार्य करते हुए लज्जा की लहरें मेरे हृदय में दौड़ जाती थीं, जैसा कि पहले तथा अब भी होता है, जब कभी मैं फकीरों तथा यात्रियों को उस साधारण दान से कुछ अधिक देता हूँ कि जिसके देने की मुझे आदत है और जिसे मैं दान नहीं कहता, केवल सभ्यता और कुलीनता समझता हूँ। कोई आदमी दीया जलाने के लिये दीयासलाई माँगे और दियासलाई तुम्हारे पास हो तो तुम्हें अवश्य ही देनी चाहिये। यदि कोई आदमी २० या २५ कोपक या कुछ रुपये माँगता है और यदि तुम्हारे पास हैं, तो तुम्हें देना ही चाहिये। यह दान-पुण्य नहीं है। यह तो सभ्यता की बात है—शराफ़त का तक़ाज़ा है।

जिस घटना का मैंने उल्लेख किया है वह यह थी। मैं दो किसानों का जिक्र पीछे कर चुका हूँ जिनके साथ तीन वर्ष पहले मैं

लकड़ियाँ चीरा करता था। एक दिन रविवार की संध्या के झुटपुटे में, हम लोग शहर को वापस आ रहे थे। वे लोग अपने मालिक के पास अपनी मजदूरी लेने जा रहे थे। पुल को पार करने के बाद हमें एक बूढ़ा आदमी मिला। वह माँगने लगा। मैंने उसे २० कोपक दे दिये। मैंने ये कोपक यह सोच कर दिये थे कि साइमन पर, जिसके साथ मैं धार्मिक प्रश्नों पर बातें कर रहा था, इसका कितना असर पड़ेगा।

साइमन व्लादमीर का रहने वाला किसान था। इसके एक स्त्री और दो बच्चे गाँवों में रहते थे। वह भी ठहरा और अँगरखे का बटन खोल कर जेब में से अपनी थैली उसने निकाली और उस पर नज़र डालने के बाद तीन कोपक का एक सिक्का बाहर निकाल कर उस बुड्ढे को दिया और दो कोपक वापस माँगने लगा। उस बुड्ढे आदमी ने अपना हाथ पसार दिया जिसमें दो तीन-कोपक के सिक्के थे और अकेला एक कोपक। साइमन ने उनको ओर देखा, और उनमें से एक कोपक उठाना चाहा किन्तु फिर विचार बदल कर अपनी टोपी उतार कर बुड्ढे को सलाम किया और फिर प्रार्थना के रूप में हाथ से क्रास का चिह्न बना कर, दो कोपक मुझ से लिये बिना ही चल दिया।

साइमन की आर्थिक अवस्था से मैं खूब परिचित था। उसके पास न तो घर था और न कोई दूसरी जायदाद। जब उस बुड्ढे को तीन कोपक दिये तब उसके पास पाँच रूबल और पचास कोपक थे जो उसने बचाकर रक्खे थे और यह उसकी सारी पूँजी थी।

मेरी सम्पत्ति लगभग साठ लाख रूबल के होगी। मेरे प

स्त्री और दो बच्चे थे, सो साइमन के भी थे। वह मुझ से छोटा था। इसलिये उसके बच्चे संख्या में मुझ से कम थे किन्तु उसके बच्चे छोटे थे और मेरे बच्चों में से दो काफी बड़े थे, काम करने लायक़ थे और इस प्रकार सम्पत्ति के प्रश्न को छोड़ देने पर हमारी परिस्थितियाँ एक सी थीं, हाँला कि इस तरह भी मैं उससे अच्छा था।

उसने तीन कोपक दिये और मैंने बीस। अब देखिये कि हम दोनों के दान में क्या अन्तर था। जितना दान उसने किया था उतना दान करने के लिये मुझे कितना देना चाहिये था ? उसके पास ६०० कोपक थे, इनमें से उसने एक कोपक दिया और फिर दो, और मेरे पास ६०,००,००० रुबल थे। साइमन के बराबर दान करने के लिये मुझे तीन हजार रुबल देने चाहिये थे, और उस आदमी से दो हज़ार रुबल वापस देने के लिये कहना था। और यदि उसके पास चिल्लर न होता तो यह दो हज़ार भी उसके पास छोड़ कर क्रास बना कर शान्तिपूर्वक वहाँ से चल देता और इस प्रकार की बातें करता जाता कि मिलों और कारखानों में लोग किस प्रकार रहते हैं और स्मालेन्स्क् मार्केट में चीजों की क्या कीमत है।

इस विषय पर उस समय मैंने गौर किया किन्तु इस घटना से जो अनिवार्य परिणाम निकलता है वह बहुत देर बाद मेरी समझ में आया। यह परिणाम गणित की तरह निस्सन्दिग्ध और शुद्ध होते हुए भी इतना असाधारण और विचित्र है कि उसको समझने में समय लगता है। आदमी के हृदय में यह भावना उठती है कि शायद इसमें कहीं कुछ गल्ती है, पर वास्तव में उसमें गल्ती है नहीं। यह गल्ती का जो ख्याल हमें आता है इसका कारण यह है, कि हम लोग भ्रम के भयङ्कर अन्धकार में रहते हैं।

लकड़ियाँ चीरा करता था। एक दिन रविवार की सायंकाल के झुरमुरे में, हम लोग शहर को वापस आ रहे थे। वे लोग अपने मालिक के पास अपनी मजदूरी लेने जा रहे थे। ड्रैगोमिलर पुल पार करने के बाद हमें एक बूढ़ा आदमी मिला। वह माँगने लगा। मैंने उसे २० कोपक दे दिये। मैंने ये कोपक यह सोच-कर दिये थे कि साइमन पर, जिसके साथ मैं धार्मिक प्रश्नों पर बातें कर रहा था, इसका कितना अच्छा असर पड़ेगा।

साइमन वाल्डमीर का रहने वाला किसान था। उसके एक स्त्री और दो बच्चे मास्को में रहते थे। वह भी ठहरा और अँगरखे का बन्द खोल कर जेब में से अपनी थैली उसने निकाली और उस पर नज़र डालने के बाद तीन कोपक का एक सिक्का बाहर निकाल कर उस बुड्ढे को दिया और दो कोपक वापस माँगने लगा। उस बुड्ढे आदमी ने अपना हाथ पसार दिया जिसमें दो तीन-कोपक के सिक्के थे और अकेला एक कोपक। साइमन ने उनकी ओर देखा, और उनमें से एक कोपक उठाना चाहा किन्तु फिर विचार बदल कर अपनी टोपी उतार कर बुड्ढे को सलाम किया और फिर प्रार्थना के रूप में हाथ से क्रास का चिह्न बना कर, दो कोपक बूढ़े से लिये बिना ही वह चल दिया।

साइमन की आर्थिक अवस्था से मैं खूब परिचित था। उसके पास न तो घर था और न कोई दूसरी जायदाद। जब उसने बुड्ढे को तीन कोपक दिये तब उसके पास पाँच रूबल और पचास कोपक थे जो उसने बचाकर रक्खे थे और यह उसकी सारी पूँजी थी।

मेरी सम्पत्ति लगभग साठ लाख रूबल के होगी। मेरे एक

स्त्री और दो बच्चे थे, सो साइमन के भी थे। वह मुझ से छोटा था। इसलिये उसके बच्चे संख्या में मुझ से कम थे किन्तु उसके बच्चे छोटे थे और मेरे बच्चों में से दो काफ़ी बड़े थे, काम करने लायक थे और इस प्रकार सम्पत्ति के प्रश्न को छोड़ देने पर हमारी परिस्थितियाँ एक सी थीं, हाँला कि इस तरह भी मैं उससे अच्छा था।

उसने तीन कोपक दिये और मैंने बीस। अब देखिये कि हम दोनों के दान में क्या अन्तर था। जितना दान उसने किया था उतना दान करने के लिये मुझे कितना देना चाहिये था? उसके पास ६०० कोपक थे, इनमें से उसने एक कोपक दिया और फिर दो, और मेरे पास ६०,००,००० रुबल थे। साइमन के बराबर दान करने के लिये मुझे तीन हजार रुबल देने चाहिये थे, और उस आदमी से दो हजार रुबल वापस देने के लिये कहना था। और यदि उसके पास चिल्लर न होता तो यह दो हजार भी उसके पास छोड़ कर क्रास बना कर शान्तिपूर्वक वहाँ से चल देता और इस प्रकार की बातें करता जाता कि मिलों और कारखानों में लोग किस प्रकार रहते हैं और स्मालेन्स्क् मार्केट में चीजों की क्या कीमत है।

इस विषय पर उस समय मैंने गौर किया किन्तु इस घटना से जो अनिवार्य परिणाम निकलता है वह बहुत देर बाद मेरी समझ में आया। यह परिणाम गणित की तरह निस्सन्दिग्ध और शुद्ध होते हुए भी इतना असाधारण और विचित्र है कि उसको समझने में समय लगता है। आदमी के हृदय में यह भावना उठती है कि शायद इसमें कहीं कुछ गल्ती है, पर वास्तव में उसमें गल्ती है नहीं। यह गल्ती का जो ख्याल हमें आता है इसका कारण यह है, कि हम लोग भ्रम के भयङ्कर अन्धकार में रहते हैं।

जब मैं इस परिणाम पर पहुँचा और मैंने उसकी वास्तविकता को समझा, तब उस लज्जा का कारण मेरी समझ में आया कि जो रसोइये की स्त्री के समक्ष तथा दूसरे गरीबों को दान देते समय मुझे मालूम हुआ करती थी, और अब भी होती है जब कभी मैं उस प्रकार का दान देता हूँ। वास्तव में यह रुपया है क्या कि जो मैं गरीबों को देता हूँ और जिसे रसोइये की स्त्री ने समझा था कि मैं उसे दे रहा हूँ ? मैं जो दान देता हूँ वह प्रायः मेरी आय का इतना छोटा हिस्सा होता है कि साइमन तथा रसोइये की स्त्री यह नहीं समझ सकती कि वह मेरी सम्पत्ति का कितना अंश है—बहुधा करोड़वाँ हिस्सा या इसके लगभग होता होगा। मैं जो देता हूँ वह इतना थोड़ा होता है कि मेरा दान, दान या त्याग नहीं कहला सकता। यह तो गोया एक प्रकार का दिलबहलाव है, और सच पूछिये तो रसोइये की स्त्री ने ऐसा ही समझा भी था। यदि राह चलते किसी अजनबी को मैं एक रूबल या २० कोपक दे देता हूँ तो उसे भी एक रूबल क्यों नहीं दे सकता ? उसके लिये रुपये का यह वितरण ऐसा ही है जैसे कोई धनीगृहस्थ लोगों में रेवड़ियाँ बँटवाये। यह तो उन लोगों का मनोरंजन है कि जिनके पास बहुत सा मुफ्त का पैसा है। रसोइये की स्त्री की भूल ने मुझे यह बात स्पष्ट रूप से बतला दी कि उसका तथा और गरीब लोगों का मेरे विषय में कैसा ख्याल है—यही कि मैं मुफ्त का पैसा लोगों में बाँटता फिरता हूँ अर्थात् वह पैसा कि जिसे मैंने मेहनत करके नहीं कमाया है। और इसीलिये उस दिन मुझे शर्म मालूम हुई थी।

वास्तव में यह रुपया है क्या और मुझे कैसे मिला ?

उसका एक हिस्सा तो मैंने लगान के रूप में जमा किया कि जिसे अदा करने के लिये बेचारे किसानों को अपनी गायें या भेड़ बेचनी पड़ीं। मेरे धन का दूसरा हिस्सा मेरी लिखी हुई पुस्तकों के द्वारा मुझे मिला। यदि मेरी पुस्तकें हानिकारक हैं और फिर भी बिक जाती हैं तो इसका कारण यही हो सकता है कि उनके अन्दर कोई दूषित प्रलोभन है, और इसलिये उन पुस्तकों से जो रुपया मुझे मिलता है वह बुरे रूप से पैदा किया हुआ रुपया है। किन्तु यदि मेरी पुस्तकें लाभकारी हैं तब तो और भी बुरी बात है। मैं अपनी पुस्तकें लिखकर वह ज्ञान लोगों को दान दे कर नहीं देता बल्कि कहता हूँ—मुझे इतने रुपये दो तो मैं इसे तुम्हारे हाथ बेच दूँगा।

लगान के लिये जैसे किसान को अपनी भेड़-बकरी बेचनी पड़ती है, किताब के लिये गरीब विद्यार्थी तथा शिक्षक को भी वैसा ही करना पड़ता है। प्रत्येक गरीब आदमी को, जो किताब खरीदता है, मुझे रुपया देने के लिये कोई न कोई आवश्यक चीज छोड़ देनी पड़ती है। और अब जब कि मैंने इतना रुपया कमा लिया है तो मैं इसका क्या करूँ? मैं उसे शहर में ले जाता हूँ और गरीब आदमियों को देता हूँ। लेकिन तभी कि जब वे मेरी इच्छाओं की पूर्ति करते हैं, और शहर में आकर मेरे फर्श को, लैम्पों और जूतों को साफ करते हैं, मेरे कारखानों में काम करते हैं और इसी प्रकार की अन्य सेवायें। और इन रुपयों के द्वारा जो मैं उन्हें देता हूँ मुझे उनसे जो कुछ मिलता है सब ले लेता हूँ। मैं इस बात की कोशिश में रहता हूँ कि मैं उन्हें दूँ वो कम से कम, किन्तु ले लूँ वह सब। जितना कि लिया जा सकता हो

ऐसा करने के बाद, अब, अचानक ही, मैं यह रुपया मुफ्त में ही गरीबों को देना शुरू करता हूँ किन्तु मैं सबको नहीं, जिसको इच्छा होती है उसीको देता हूँ। तब फिर क्यों न प्रत्येक गरीब आदमी यह आशा करे कि सम्भव है आज मेरी भी बारी आ जाय और मेरी भी उन लोगों में गणना हो कि जिनमें अपना 'मुफ्त का रुपया' बाँट कर मैं अपना दिल बहलाता हूँ ?

बस, हर एक आदमी मुझे ऐसा ही समझता है कि जैसा स्वोइपे की स्त्री ने समझा था। किन्तु मैं तो यह समझ रहा था कि मैं जो एक हाथ से हजारों रुपये छीन कर दूसरे हाथ से अपनी पसन्द के लोगों के आगे कुछ कौपक फेंकता रहता हूँ यह दान है—पुण्य है। तब इसमें क्या आश्चर्य कि मुझे लज्जा मालूम हुई ? किन्तु बेशक इसके कि मैं परोपकार करने के योग्य बनूँ, मुझे इस बुराई को छोड़ देना होगा और अपने को ऐसी स्थिति में रखना होगा, कि जिसमें उस बुराई के पैदा होने का कारण न बनूँ। किन्तु मेरा तो सारा जीवन ही इस बुराई से परिपूर्ण है। यदि मैं १० लाख रुपये भी दे डालूँ, तब भी तो मैं परोपकार करने योग्य अवस्था को प्राप्त नहीं हो सकता। क्योंकि फिर भी मेरे पास ५० लाख बाकी रह जायँगे।

थोड़ासा भी उपकार कर सकने के योग्य मैं तभी होऊँगा जब कि मैं अपने पास कुछ भी न रक्खूँगा। उदाहरण के लिये उस गरीब वेश्या को लीजिये कि जिसने तीन दिन तक एक बीमार स्त्री और उसके बच्चे की सेवा-शुश्रूषा की थी। किन्तु उस समय उसका यह काम मुझे कितना छोटा मालूम पड़ा ? और मैं परोपकार करने की कोशिशें कर रहा था। उस समय की बात

एक बात सत्य निकली जिसका अनुभव पहले पहल ल्यापिन गृह के बाहर भूखे और शीत से ठिठुरते हुए लोगों को देखकर मुझे हुआ था—अर्थात् मैं ही इस पाप का भागी हूँ। और जिस प्रकार का जीवन मैं व्यतीत कर रहा हूँ वह असम्भव, बिलकुल असम्भव है ! तब फिर हम क्या करें ? अगर अब भी किसी को इसका उत्तर देने की आवश्यकता है, तो ईश्वर की आज्ञा से, विस्तार-पूर्वक मैं उसका उत्तर दूँगा ।

पहले तो इस बात को स्वीकार करना मुझे बड़ा कठिन मालूम हो रहा था, किन्तु जब इस सत्य का मुझे विश्वास हो गया तब यह सोचकर मैं भयभीत हो उठा कि अभी तक मैं कैसे भयङ्कर भ्रम में पड़ा हुआ था! मैं खुद सर से लेकर पाँव तक दलदल में फँसा हुआ था। किन्तु फिर भी मैं दूसरों को दलदल से निकालने की चेष्टा कर रहा था।

वास्तव में, मैं चाहता क्या हूँ? मैं परोपकार करना चाहता हूँ। मैं ऐसा उपाय ढूँढ निकालना चाहता हूँ कि कोई मानव-प्राणी भूखा और नंगा न रहे। और मनुष्य, मनुष्य की तरह, अपना जीवन व्यतीत कर सके। मैं चाहता तो यह हूँ। किन्तु मैं देखता हूँ कि जुल्म और ज़बरदस्ती तथा तरह तरह की तरकीबों द्वारा, जिनमें मैं भी भाग लेता हूँ, ग़रीब मज़दूरों से अत्यन्त आवश्यकता की चीजें भी छीन ली जा रही हैं, और श्रम न करने वाले अमीर लोग, जिनमें मेरी भी गणना है, दूसरों की मेहनत पर मौज उड़ाते हैं।

मैं देखता हूँ कि दूसरे लोगों की मेहनत के फल से लाभ उठाने का ऐसा प्रबन्ध किया गया है कि जो मनुष्य जितना अधिक चालाक है, और उसके द्वारा अथवा उसके उन पूर्वजों के द्वारा कि जिनसे विरासतमें उसे जायदाद मिली है, जितने ही अधिक छल-प्रपंच रचे जायँ, उतना ही अधिक वह दूसरों के श्रम का

उपयोग करके लाभ उठा सकता है और उसी परिमाण में वह खुद मेहनत करने से बच जाता है।

अमीर उमरा, धनी, सराफ, व्यापारी, बड़े २ जमीन्दार, सरकारी अफसर पहले वर्ग में हैं। उनके बाद कुछ कम पैसे वाले बैंकर, व्यापारी और मेरे जैसे जमीन्दारों का नम्बर आता है। इनके बाद छोटे २ दूकानदारों, होटलवालों, सूदखोरों, पुलिस सारजन्टों, इन्स्पेक्टरों, शिक्षकों, पुरोहितों और लेखकों का नम्बर है। फिर इनके भी पश्चात् दरबान, साईस, कोचमैन, भिश्ती, गाड़ी हाँकनेवाले तथा फेरी लगानेवाले बिसाती हैं, और तब कहीं सब से अन्त में जाकर बारी आती है—मजदूरों, कारखाने के काम करने वालों और किसानों की, हालाँ कि इस वर्ग की संख्या अन्य वर्गों की अपेक्षा दसगुनी अधिक है।

इन श्रमजीवियों के नव दशांश का जीवन ही ऐसा है कि जिसमें खूब मेहनत और मजदूरी करनी पड़ती है। कोई भी स्वाभाविक जीवन ऐसा ही होता है—यह सच है। पर जिन तरकीबों से इन लोगों के पास से जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं की सामग्री छीन ली जाती है उनके कारण इन बेचारों का जीवन-निर्वाह प्रतिवर्ष अधिक कठिन और कष्टमय बनता जा रहा है। और इसके साथ ही हम लोगों का जीवन, कि जो किसी प्रकार का श्रम न करने से आलसी वर्ग कहा जा सकता है, कला और विज्ञान के सहयोग से प्रतिवर्ष अधिक आनन्दमय, आकर्षक और निश्चिन्त होता जा रहा है, और इस कला तथा विज्ञान का लक्ष्य भी यही है कि हमारे जीवन को परिश्रमहीन और सुखमय बना दे।

मैं देखता हूँ कि आजकल मेहनत मजदूरी करने वालों का जीवन—विशेषतः इस वर्ग के बुड्ढों, बालकों और स्त्रियों का जीवन—दिन प्रति दिन बढ़ती हुई मेहनत और उसके परिमाण में उनको भोजनादि न मिलने के कारण बिलकुल नष्ट होता जा रहा है। अत्यन्त आवश्यक जीवनोपयोगी चीजें भी तो उन्हें नहीं मिलती हैं। और साथ ही साथ मैं देखता हूँ कि आलसी वर्ग का जीवन, कि जिसमें मैं भी सम्मिलित हूँ, प्रतिवर्ष अधिकाधिक वैभव और विलास से परिपूर्ण तथा निश्चिन्त हो रहा है। धनी लोगों के जीवन की निश्चिन्तता तो अब उस अवस्था को पहुँच गई है कि जिसका स्वप्न पुराने जमाने में लोग देव और परियों की कहानियों में देखा करते थे। उनकी दशा उस आदमी की सी है जिसे ऐसी जादू की थैली मिल गई हो, जिसमें धन कभी घटता ही नहीं। जीवन-रक्षा के निमित्त प्रत्येक मनुष्य के लिये श्रम करने का जो स्वाभाविक नियम है, उससे वे एकदम मुक्त हो गये हैं। सिर्फ इतना ही नहीं, बल्कि बिना श्रम किये जीवन के समस्त सुखों का उपयोग करने में वे समर्थ हैं और अन्त में अपने बच्चों को अथवा जिस किसी को भी चाहें, वे 'अक्षय निधि' वाली यह जादू की थैली विरासत में दे जा सकते हैं।

मजदूरों की मेहनत का फल उनके हाथ से निकल कर रोज रोज अधिकाधिक परिमाण में मेहनत न करनेवाले लोगों के हाथ में चला जा रहा है। सामाजिक संगठन के पिरामिड का पुनर्निर्माण कुछ इस ढङ्ग से किया जा रहा है कि अभी तक नींव में जो पत्थर लगे थे वे अब चोटी पर पहुँच रहे हैं और इस परिवर्तन का वेग दिन दूना और रात चौगुना होता जा रहा है।

चिंउटियाँ यदि अपने साधारण नियम को भूल जायें, और उन में से कुछ ऐसा करने लगें कि जिस मिट्टी को ला ला कर बाँबी की नींव बनाई गई थी, उसी नींव की मिट्टी को उठा कर चोटी पर ले जाने लगें, और इस प्रकार नींव अधिकाधिक छोटी बनाते हुए शिखर को बड़ा बना दें और इस तरीके से नींव की चिंउटियों को चोटी पर पहुँचाने की चेष्टा करें तो उस बाँबी का जो हाल होगा, मैं देखता हूँ लगभग वैसा ही कुछ हमारे समाज के अन्दर भी हो रहा है।

मैं देखता हूँ परिश्रमी जीवन के स्थान पर मनुष्यों ने अक्षय निधि वाली थैली का आदर्श अब अपने सामने रक्खा है। मैं और मेरे जैसे धनी लोग इस अक्षय निधि को प्राप्त के करने लिये तरह २ की तरकीबें करते हैं। और उसका उपभोग करने के लिये हम लोग शहरों में आ बसते हैं जहाँ पैदा कुछ नहीं होता किन्तु सफाया सब चीजों का अवश्य हो जाता है। अमीर लोगों को यह जादू की थली मिल सके इसके लिये गाँव का गरीब आदमी लूटा जाता है और वह गरीब निरुपाय हो कर उनके पीछे दौड़ा हुआ शहर को आता है, और वह भी वैसी ही चालाकियों से काम लेता है, और ऐसा प्रबन्ध करता है जिससे वह काम थोड़ा करता है और मजे खूब उड़ाता है। (और इस प्रकार अन्य काम करने वालों पर काम का और भी अधिक बोझ आ पड़ता है) या इस स्थिति को प्राप्त करने से पहले ही वह अपने को बरबाद कर के देशों में रहने वाले नंगे और भूखे लोगों की लगातार तेजी से बढ़ने वाली संख्या में और एक आदमी की भरती करता है।

मैं उन लोगों में से हूँ जो तरह तरह की तरकीबों से मेहनत करने वालों की आवश्यक जीवनोपयोगी चीजों को छीने लेते हैं और इस प्रकार अपने लिये जादू की अक्षय निधि तैयार करते हैं जो कि फिर ग़रीबों को प्रलोभनों में फँसाने का कारण होती है।

मैं लोगों की सहायता करना चाहता हूँ, इसलिये यह स्पष्ट है कि सब से पहले एक ओर तो मुझे इन लोगों को लूटना बन्द कर देना चाहिये जैसा कि मैं अब तक कर रहा हूँ और दूसरी ओर उन्हें ललचाने वाली बातें न करनी चाहियें। किन्तु सदियों से प्रचलित, अत्यन्त गूढ़, चालाकियों से पूर्ण और दुष्ट तरकीबों द्वारा मैं इस अक्षयनिधि का मालिक बन बैठा हूँ। अर्थात् मैंने अपनी स्थिति ऐसी बना ली है कि कभी किसी प्रकार का श्रम किये बिना ही मैं सैकड़ों हजारों मनुष्यों को मेरा काम करने के लिये मजबूर सकता हूँ, और सच पूछिये तो अपने इस विचित्र अधिकार का मैं उपभोग भी कर रहा हूँ किन्तु फिर भी मैं सदा यही समझता हूँ कि मैं इन दीन लोगों पर दया कर के उन्हें सहायता पहुँचाने के लिये उत्सुक हूँ।

मैं एक आदमी की पीठ पर सवार हो गया हूँ और उसे असहाय तथा निर्बल बना कर मजबूर करता हूँ कि वह मुझे आगे ले चले। मैं उसके कन्धों पर बराबर सवार हूँ फिर भी मैं अपने को तथा दूसरों को यह विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि इस आदमी की दुर्दशा से मैं बहुत दुःखी हूँ और उसका दुःख दूर करने में मैं भरसक कुछ उठा न रक्खूँगा—किन्तु उसकी पीठ पर से मैं उतरूँगा नहीं।

बात बिलकुल स्पष्ट है। यदि मैं ग़रीबों की मदद करना

चाहता हूँ अर्थात् चाहता हूँ कि गरीब लोग गरीब न रहें तो मुझे लोगों को गरीब न बनाना चाहिये। फिर भी मैं बिगड़े हुए लोगों को बिना विचारे ही रुपया दे देता हूँ और जो लोग अभी बिगड़े नहीं हैं उनसे बीसों रुपया छीन लेता हूँ—इस प्रकार मैं लोगों को गरीब तो बनाता ही हूँ साथ ही साथ उन्हें भ्रष्ट भी करता हूँ।

इतनी सीधी और सरल बात होते हुए भी उसका समझना पहले मेरे लिये बड़ा कठिन हो रहा था, और यदि मैं उसे मानता भी तो किसी न किसी रूप में मेरी स्थिति का समर्थन करने वाले कारण मुझे अवश्य सूझ जाते। किन्तु जब एक बार मैं अपनी भूल को समझ गया तो पहले जो कुछ मुझे विचित्र, गूढ़, अस्पष्ट और अगम्य मालूम होता था, वही अब बिलकुल सरल और समझ में आने लायक मालूम होने लगा। और खास बात तो यह थी कि यह व्याख्या जिस प्रकार का जीवन बनाने का सङ्केत करती थी वह जीवन अब मुझे एकदम सरल, स्पष्ट और मधुर मालूम होने लगा। पहले की तरह उलझन भरा, गूढ़ और दुखदायी न मालूम पड़ता था।

और, लोगों की दशा का सुधार करने की इच्छा रखने वाला मैं हूँ कौन ? मैं दूसरों को सुधारना चाहता हूँ, फिर भी रात भर रोशनी से जगमगाते हुए कमरे में ताश खेलता हूँ, और फिर दो पहर तक पड़ा सोता रहता हूँ। मैं, एक दुर्बल, पौरुषहीन मनुष्य, जिसको खुद अपनी सेवा के लिये सैकड़ों आदमियों की सहायता की जरूरत होती है—वही मैं, दूसरों को सहायता देने निकलता हूँ और सहायता भी उन लोगों को जो सबेरे पाँच बजे उठते हैं, जमीन पर सोते हैं, रूखी सूखी रोटियाँ खाकर रह

जाते हैं और जो जोतना, बोना, लकड़ी काटना, कुल्हाड़ी में डंडा डालना, घोड़ों को जोतना और कपड़े सीना आदि कार्य करना जानते हैं और जो शक्ति में, दृढ़ता में, कार्य-कुशलता और आत्म-संयम में मुझ से सैकड़ों दर्जे बढ़चढ़ कर हैं। ऐसे लोगों को सुधारने का भार लिया था मैंने!

ऐसे लोगों के संसर्ग में आकर मैं लज्जित न होता तो और क्या होता ? उनमें सब से अधिक दुर्बल एक शराबी है जो जिनोफ भवन में रहता है और जिसे सब लोग 'अहदी' या 'आलसी' कहते हैं। वह भी तो मेरी अपेक्षा कहीं अधिक मेहनती है। मैं लोगों से कितना लेता हूँ और बदले में कितना देता हूँ और वह दूसरों से कितना लेकर उन्हें कितना देता है इस बात की यदि तुलना की जाय तो वह मुझ से हजारों दर्जे अच्छा निकलेगा। वह मेहनत करता है, कमा कर दुनिया को देता है और फिर भी अपने लिये बहुत थोड़ा खर्च करता है और मैं मेहनत तो बिलकुल नहीं करता, मगर दुनिया भर के भोग-विलासों का मैं मजे से उपभोग करता हूँ।

ऐसा होने पर भी मैं गरीबों का सुधार करने का दम भरता हूँ। मगर हम दोनों में अधिक दीन कौन है ? मुझ से अधिक दीन और कोई न होगा। मैं एक अशक्त और नितान्त निकम्मा जीव हूँ जो दूसरों का खून चूसता हूँ और बिलकुल खास खास मेहालतों ही जीवित रह सकता हूँ। जब हजारों आदमी मेहनत करें तभी यह जीवन टिक सकता है कि जो दूसरों के किसी भी मसरफ व मतलब का नहीं। वृक्ष के पत्तों को खा डालने वाला मैं एक कीड़ा हूँ। फिर भी मैं ऐसी इच्छा रखता हूँ कि मेरे

ताकि उस वृक्ष का रोग दूर हो और वह खूब फूले फले।

मैं अपना जीवन किस प्रकार व्यतीत करता हूँ ? मैं खाता हूँ, बातें करता हूँ, बातें सुनता हूँ। मैं फिर खाता हूँ; लिखता हूँ या पढ़ता हूँ, जो बातें करने तथा सुनने का रूपान्तर मात्र है। मैं फिर भोजन करने बैठता हूँ और खेलता हूँ, फिर खाता हूँ। बातें करता हूँ, सुनता हूँ और अन्त में खाकर सो जाता हूँ। इसी प्रकार मेरे सारे दिन बीतते हैं। मैं और न तो कुछ करता ही हूँ और न करना जानता हूँ। मैं इस प्रकार का जीवन व्यतीत कर सकूँ इसके लिये दरबान चौकीदारों, किसानों, सईसों, कोचमैनों, भोजन बनाने वाले स्त्री-पुरुषों और धोबी-धोबिनों को सुबह से लेकर रात तक काम करना पड़ता है, और इन को काम के लिये जिन औजारों की जरूरत होती उन्हें बनाने तथा कुल्हाड़ी, पीपे, ब्रश, तश्तरियाँ, लकड़ी तथा काँच का सामान, जूतों की पालिश, मिट्टी का तेल, घास, लकड़ी और भोजन आदि सामान तैयार करने में जो मेहनत होती है उसका हिसाब ही अलहदा है। इन सब स्त्री पुरुषों को रात दिन कड़ी मेहनत इसलिये करनी पड़ती है कि मैं मजे से खाऊँ, बातें करूँ और सोऊँ! और मैं, एक महा निकम्मा आदमी, यह सोच रहा था कि जो लोग मेरी सेवा कर रहे हैं मैं उनका उपकार कर रहा हूँ! मैं किसी का कोई भला नहीं कर सका और मुझे लज्जित होना पड़ा, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। आश्चर्य तो यह है कि ऐसी मूर्ख धारणा मेरे मन में बँध गई कि मैं दूसरे लोगों का उपकार कर रहा हूँ और कर भी सकता हूँ।

यह स्त्री जो उस अपरिचित बूढ़े और बीमार आदमी की सेवा

कर रही थी, उसने वास्तव में उस वृद्ध रोगी की सहायता की। किसान की स्त्री जो अपने हाथ से पैदा किये हुए नाज की रोटी में से एक टुकड़ा काट कर भूखे को देती है वही सच्ची सहायक है। और साइमन ने अपनी मेहनत से कमाये हुए तीन कोपक जो यात्री को दिये थे वह उसका सच्चा दान था। क्योंकि इन कामों के अन्दर पवित्र परिश्रम और त्याग की स्वर्गीय भावना है; किन्तु मैंने न तो किसी की सेवा की और न किसी के लिये कोई काम किया। और मैं जानता हूँ कि जो रुपया मेरे पास है और जिसमें से कुछ मैं दूसरों को दे दिया करता हूँ—वह मेरे परिश्रम का परिचायक नहीं है।

मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, कि रुपये में अथवा रुपये के मूल्य में और उसके इकट्ठा करने में ही कोई दोष है, कोई बुराई है, और मैंने समझा कि मैंने जो बुराइयाँ देखी हैं उनका मूल कारण यह रुपया ही है और मैं उसी रुपये का मालिक हूँ। तब मेरे मन में प्रश्न उठा—यह रुपया है क्या ?

रुपया ! यह रुपया क्या है ?

कहा जाता है, रुपया परिश्रम का पारितोषिक है ! मैं ऐसे शिक्षित लोगों से मिला हूँ जो जोर देकर कहते हैं कि रुपया जिन लोगों के पास है वह उनके किये हुए परिश्रम का प्रतिफल है। मैं स्वीकार करता हूँ कि पहिले मेरी भी ऐसी ही धारणा थी, हालाँकि ठीक तरह स्पष्ट रूप से मैं उसे समझता न था। किन्तु अब तो यह मेरे लिये आवश्यक हो गया कि मैं अच्छी तरह समझ लूं कि यह रुपया क्या चीज है, और ऐसा करने के लिये मैं अर्थ-शास्त्र की ओर प्रेरित हुआ।

अर्थ-शास्त्र कहता है कि पैसे में ऐसी कोई बात नहीं है कि जो अन्याययुक्त अथवा दोषपूर्ण हो। सामाजिक जीवन का वह एक स्वाभाविक परिणाम है और एक तो विनियम की सुगमता के लिये, दूसरे चीजों का मूल निश्चित करने वाले साधन के रूप में, तीसरे संचय के लिये और चौथे लेन देन के लिये अनिवार्य रूप से रुपया आवश्यक है।

यदि मेरी जेब में मेरी आवश्यकता से अधिक तीन रूबल पड़े हों तो किसी भी सभ्य नगर में जाकर जरा सा इशारा करने भर की देर है कि ऐसे सैकड़ों आदमी मुझे मिल जायँगे कि जो उन तीन रुबलों के बदले में चाहूँ जैसा भद्दे सा भद्दा, मंदा घृणित और अपमानजनक कृत्य करने को तैयार हो जायँगे।

पर कहा जाता है कि इस विचित्र स्थिति का कारण रुपया नहीं है। विभिन्न जातियों के आर्थिक जीवन की विषम अवस्था में इसका कारण मिलेगा।

एक आदमी का दूसरे आदमी के ऊपर शासनाधिकार हो, यह बात रुपये से पैदा नहीं होती। बल्कि इसका कारण यह है कि काम करने वाले को अपनी मेहनत का पूरा प्रतिफल नहीं मिलता है। और परिश्रम का पूरा प्रतिफल न मिलने का कारण पूँजी, सूद, किराया, मजदूरी और धन की उत्पत्ति तथा खपत की जो बड़ी ही टेढ़ी और गूढ़ व्यवस्था है—उसमें समाया हुआ है।

सीधी भाषा में यह कहा जा सकता है कि पैसा, बिना पैसे वालों को अपनी उँगली पर नचा सकता है। किन्तु अर्थशास्त्र कहता है कि यह भ्रम है। प्रत्येक प्रकार की पैदावार में तीन बातें काम में आती हैं—जमीन, संचित श्रम अर्थात् पूँजी और श्रम। थोड़े आदमी बहुतों के ऊपर शासन करें यह बात पैदावार के इन तीनों साधनों के विभिन्न सम्बन्धों से पैदा होती है। क्योंकि पहिले दो साधन, जमीन और पूँजी, काम करने वाले मजदूरों के हाथ में नहीं हैं। इस स्थिति और इस स्थिति के परिणाम स्वरूप जो विभिन्न संयोग उपस्थित होते हैं, उनके कारण बहुत से लोगों को एक विशिष्ट वर्ग की तावेदारी करनी पड़ती है।

अन्याय और क्रूरता से हम सबको चौंका देने वाली द्रव्य की यह साम्राज्य-शक्ति आती कहाँ से है? एक वर्ग के लोग दूसरों के ऊपर पैसे की सहायता से किस प्रकार शासन करते हैं? शास्त्र कहता है कि इसका कारण उत्पत्ति के साधनों के

विभाग में तथा उनसे होने वाले विभिन्न योगों में ही है, और इन्हीं की वजह से मजदूरों पर जुल्म होता है।

मुझे यह उत्तर सुनकर सदा ही आश्चर्य हुआ है। केवल इसी लिये नहीं कि प्रश्न का एक भाग बिलकुल छोड़ ही दिया गया—इस पर विचार ही नहीं किया गया कि परिस्थिति पर पैसे का कैसा और कितना प्रभाव पड़ता है ? बल्कि उत्पत्ति के साधनों का जो विभाग किया गया है वह भी मेरे आश्चर्य का विशेष कारण है। और किसी भी निष्पक्ष मनुष्य को यह विभाग कृत्रिम और वास्तविकता से असम्बद्ध प्रतीत होगा।

ऐसा कहा जाता है कि द्रव्य की उत्पत्ति में तीन साधन काम में आते हैं—जमीन, पूँजी और मजदूरी। और इस वर्गीकरण के सम्बन्ध में यह समझ लिया जाता है कि जो कुछ पैदा होता है वह अब द्रव्यों के रूप में—उसका मूल्य—इन्हीं तीनों साधनों के मालिकों में विभक्त हो जाता है। और वह होता है इस प्रकार-भाड़ा अर्थात् जमीन की कीमत जमीन्दार को, सूद पूँजीपति को, और मजदूरी काम करने वाले को मिलती है।

किन्तु क्या यह बात सच है ? पहले तो हमें यही देखना है कि क्या उत्पत्ति के सदा तीन ही साधन होते हैं ? क्या यह सच है ? मैं जब बैठा हुआ यह लिख रहा हूँ तो मेरे चारों ओर घास की पैदावार का काम हो रहा है। इसकी उत्पत्ति में कौन कौन से साधन काम में आते हैं ? कहा जाता है कि जिस पर यह घास उगाई गई है वह जमीन और इसको काट कर घर तक लाने में हँसिया, पंजेठी, दाँतिया और गाड़ी आदि जिस सामान की जरूरत होती है वह पूँजी,

और तीसरी मजदूरी—यही तीन साधन काम में आते हैं। किन्तु मैं स्पष्ट देखता हूँ कि यह बात सच नहीं है। जमीन के अलावा और भी कई बातें काम में आती हैं। सूर्य की गरमी, पानी, सामाजिक व्यवस्था जिससे यह घास पैरों तले रौंद नहीं डाली जाती, अथवा ढोरों द्वारा लोग उसे चरा नहीं डालते, मजदूरों की कार्य-कुशलता, भाषा का ज्ञान आदि कई बातें हैं जो घास की उत्पत्ति में काम आती हैं। पर कौन जाने किस लिये इन सब बातों की अर्थ-शास्त्री गणना नहीं करते।

प्रत्येक पदार्थ की उत्पत्ति के लिये सूर्य का ताप जमीन के समान ही उपयोगी बल्कि उससे ज्यादा जरूरी है। कल्पना कीजिये कि शहर में किसी वर्ग के लोग दीवाल अथवा वृक्षों के द्वारा दूसरे लोगों को सूर्य के प्रकाश से वञ्चित रक्खें तो उनकी कैसी स्थिति होगी ? फिर इसको उत्पत्ति के अंगों में क्यों नहीं गिनते ? पानी दूसरा साधन है। यह भी जमीन के ही समान महत्व-पूर्ण है। हवा का भी यही हाल है। एक वर्ग के लोग यदि हवा और पानी का सम्पूर्ण स्वत्वाधिकार ले लें तो दूसरे वर्ग के लोगों की हवा पानी के बिना कैसी स्थिति होगी इस की भी कल्पना की जा सकती है। सामाजिक व्यवस्था द्वारा संरक्षण भी एक स्वतंत्र अङ्ग है। मजदूरों के लिये खुराक और कपड़ा भी उत्पत्ति के महत्व-पूर्ण साधन हैं। और कुछ अर्थशास्त्रियों ने इस बात को स्वीकार भी किया है। शिक्षा अर्थात् बोलने और समझने की शक्ति जिससे एक काम में से निकल कर दूसरे काम में पड़ने की समझ पैदा होती है, यह भी एक अलहदा उत्पत्ति का साधन है।

इस प्रकार उत्पत्ति के साधनों की यदि मैं गणना करने बै

तो एक पूरी पुस्तक भर जाय। तब फिर शास्त्रज्ञों ने ये तीन ही साधन क्यों पसन्द किये ? और अर्थशास्त्र-मूल भित्ति के रूप में इन को ही स्वीकार करने का क्या कारण हो सकता है ? सूर्य के प्रकाश और जल को भी जमीन की तरह उत्पत्ति के पृथक् २ साधनों की तरह गिन सकते हैं ? मजदूरों की खुराक और कपड़े, ज्ञान और बोलने की शक्ति यह सभी उत्पत्ति के स्वतन्त्र साधन माने जा सकते हैं। पर इन्हें न मानने का कारण यही है कि सूर्य की कीरणों, वर्षा, भोजन, भाषा और बोलने की शक्ति के उपभोग करने का जो मनुष्य का अधिकार है, उसमें बहुत कम हस्तक्षेप करने का अवसर आता है और जमीन तथा औजारों के लिये समाज में प्रायः झगड़ा होता रहता है।

इस वर्गीकरण का यही,एक आधार है। और उत्पत्ति के साधनों का केवल तीन विभागों में वर्गीकरण भी अनियमित और स्वेच्छा-प्रेरित है और वस्तुस्थिति पर अवलम्बित नहीं है। लेकिन सम्भव है, यह कहा जाय कि यह वर्गीकरण मनुष्य के लिये अनुकूल और सुविधाजनक है। और जहाँ कहीं आर्थिक सम्बन्ध स्थापित होता है, वहाँ तुरन्त ही ये तीनों बातें सामने आ खड़ी होती हैं। हमें देखना चाहिये कि क्या यह बात वास्तव में सच है ?

हमारे सामीप्य में रहने वाले रूसी उपनिवेशकों को ही लीजिये। लाखों की संख्या में वे मुद्दत से रहते चले आते हैं। वे किसी स्थान को जाते हैं, वहाँ बसते हैं, और काम करणा प्रारम्भ कर देते हैं। उस समय यह बात उनके ख्याल में भी नहीं आती कि एक आदमी जिस ज़मीन का उपयोग नहीं करता वह उसका मालिक बन सकता है; और ज़मीन तो यह कहती ही नहीं कि मुझ पर

अमुक का अधिकार है। बल्कि उपनिवेशक विवेकतः यह समझते हैं कि जमीन पर सारे समाज का समान अधिकार है और जो कोई जहाँ कहीं भी चाहे जोते और बोये।

खेती-बारी के लिये और मकान आदि बनाने के लिये उपनिवेशक तरह तरह के आवश्यक औजारों को इकट्ठा करते हैं, पर यह वे कभी नहीं सोचते कि यह औजार स्वतः ही मुनाफ़ देने वाले हो सकते हैं। और ये औजार (अर्थात् पूँजी) कभी या दावा ही नहीं करते कि हमारा भी कोई अधिकार है। इसके प्रतिकूल उपनिवेशक तो विवेकपूर्वक ऐसा मानते हैं—आपस में एक दूसरे से औजार, अनाज अथवा जो रुपया उधार लिया जाता है उसके लिये सूद लेना अनुचित है।

ये लोग स्वतंत्र जमीन पर अपने निजी औजारों से अथवा बिना-सूदी माँगे हुए औजारों से काम करते हैं। ये लोग या तो अपना २ अलहदा काम करते हैं, या सब मिलकर सामान्य हित के लिये उद्योग प्रारम्भ करते हैं। ऐसे समाज में लगान या भाड़ा सूद और मजदूरी का अस्तित्व भी सिद्ध नहीं किया जा सकता। ऐसे समाज का उल्लेख करते समय मैं काल्पनिक बातें नहीं कहता बल्कि उस वस्तुस्थिति का दिग्दर्शन कराता हूँ कि जो न केवल रूसी उपनिवेशकों में, बल्कि सभी जगह सभी लोगों में मौजूद रहती है जब तक कि मानवी स्वभाव की मौलिक पवित्रता को बिगाड़ नहीं दिया जाता ? मैं यह बात कह रहा हूँ कि जो प्रत्येक मनुष्य को स्वाभाविक तथा बुद्धिगम्य मालूम होती है। मनुष्य जब किसी जगह बसते हैं तो उनमें से प्रत्येक अपनी २ अभि-

रुचि के अनुसार काम पसन्द कर लेते हैं और आवश्यक साधनों को प्राप्त करके अपना २ कार्य प्रारम्भ कर देते हैं।

यदि इन लोगों को साथ मिलकर काम करने में आसानी मालूम होती है तो ये काम करने वालों का एक मण्डल बना लेते हैं। किन्तु न तो कौटुम्बिक प्रथा में, और न सम्मिलित संस्थाओं में ही उत्पत्ति के ये साधन अलग अलग प्रकट होंगे जब तक कि मनुष्य ज़बरदस्ती कृत्रिम रूप से उन्हें विभक्त न कर डालें। उस समय केवल मेहनत और उससे सम्बन्ध रखने वाली आवश्यक चीज़ों की ही ज़रूरत होती है—गरमी और प्रकाश के लिये सूरज की, साँस लेने के लिये हवा की, पीने के लिये पानी की, जोतने बोने के लिये ज़मीन की, पहनने के लिये कपड़े की और पेट के लिये भोजन की, तथा काम करने के लिये हल कुदाली आदि औज़ारों की आवश्यकता होती है। यह स्पष्ट ही है कि न तो सूर्य की किरणें, न तन के कपड़े, न हल कुदाली और फावड़े जिनसे हरएक आदमी काम करता है और न वे मशीनें जिनसे कि संघ में मिलकर काम किया जाता है उन लोगों के सिवा किसी और की हो सकती हैं कि जो सूर्य की किरणों का उपभोग करते हैं, हवा में सांस लेते हैं, शरीर को कपड़ों से ढँकते हैं और हल तथा मशीन आदि से काम करते हैं; क्योंकि इन चीज़ों की केवल उन्हीं को ज़रूरत होती है कि जो इनका उपयोग करते हैं।

मनुष्यों की आरम्भिक आर्थिक परिस्थिति का जब मैं विचार करता हूँ तब मैं यह नहीं मान सकता कि उत्पत्ति के साधनों को तीन श्रेणियों में विभक्त करना स्वाभाविक है। बल्कि मैं तो यह कहूँगा कि यह न तो स्वाभाविक ही है और न विवेक-

पूर्ण। पर शायद आदिम मानव समाज में इन तीन विभागों की आवश्यकता न हुई होगी और जैसे [आबादी बढ़ती है, और सभ्यता का विकास होने लगता है यह विभाग अनिवार्य हो उठते होंगे। और हमें यह बात माननी ही होगी कि यह विभाग योरोपियन समाज में मौजूद है।

पर देखें इस बात में कहाँ तक सत्य है। यह कहा जाता है कि योरोपियन समाज में उत्पत्ति के साधनों का ऐसा ही वर्गीकरण प्रचलित है। अर्थात् एक आदमी जमीन का मालिक है, दूसरे के पास काम करने के औजार हैं, और तीसरे के पास न जमीन है और न औजार। हम लोग यह बात सुनने के ऐसे अभ्यस्त हो गये हैं कि हमें अब इसमें कोई विचित्रता ही नहीं मालूम होती। किन्तु इस कथन के अन्दर ही उसका आन्तरिक खण्डन मौजूद है। मजदूर शब्द की कल्पना में यह भाव आ जाता है कि उसके पास जमीन है, जिस पर वह रहता है, और औजार हैं जिनसे वह काम करता है। यदि उसके पास रहने को जमीन और काम करने के लिये औजार नहीं है तो वह मजदूर ही नहीं हो सकता। जमीन और औजारों से रहित मजदूर न तो आज तक कभी रहा और न कभी रह सकता है। ऐसा कोई भी मोची नहीं हो सकता जिसके पास जमीन पर बना हुआ मकान पानी, हवा और काम करने के औजार न हों।

यदि किसान के पास जमीन, हल बैल, पानी और हँसिया आदि नहीं हैं; यदि मोची के पास मकान, पराती और सुई नहीं है तो इसका यही अर्थ है कि किसी ने जमीन से उसे हटा दिया है या जबरदस्ती उससे छीन ली है अ र उसका मकान, गाड़ी, हल

बैल और सुई आदि भी धोखा देकर उससे ले लिये गये हैं। किन्तु इसका यह अर्थ तो कभी हो ही नहीं सकता कि हँसिया रहित किसान या सुई बिना मोची का भी अस्तित्व संसार में हो सकता है।

मछली पकड़ने के सामान के बिना किसी आदमी को जमीन पर खड़े हुए देखकर हम यह नहीं समझ सकते कि यह माही-गीर है, जब तक हमें यह न मालूम हो कि किसी ने उसका जाल आदि छीन लिया है। इसी तरह हम किसी ऐसे मजदूर की कल्पना नहीं कर सकते, कि जिसके पास रहने के लिये मकान और काम करने के लिये औजार न हों, जब तक कि किसी ने उसकी जमीन से उसे मार कर भगा न दिया हो, और औजार उससे छीन या लूट न लिये हों।

ऐसे आदमी हो सकते हैं कि जिनको मारकर एक जगह से दूसरी जगह भगा दिया गया हो, और उनका सामान लूट लिया गया हो। इस प्रकार मजबूर हो कर वे दूसरों के लिये काम करने लगते हैं, और किसी तरह अपना भी गुजारा करते हैं किन्तु इसका यह अर्थ तो नहीं कि यह पैदाइश का मुख्य लक्षण है। इसका अर्थ सिर्फ यही है कि इस जगह उत्पत्ति की स्वाभाविक स्थिति को नष्ट किया गया है। किन्तु यदि हम उन सब बातों को उत्पत्ति का साधन मानें, जिनसे मजदूर को जबरदस्ती वञ्चित किया जा सकता हो तो फिर गुलाम के शरीर पर जो अधिकार का दावा किया जाता है, उसकी भी इन साधनों में गणना क्यों न की जाय ? वर्षा और सूर्य की किरणों पर अधिकार करने के दावे को भी हम क्यों न गिनें ?

एक आदमी ऊँची दीवाल खड़ी करके अपने पड़ोसी को धूप से वञ्चित कर सकता है, दूसरा कोई आदमी नदी के बहाव को अपने तालाब की ओर फेर कर उसे जहरीला बना सकता है; और तीसरा कोई किसी मनुष्य को अपनी सम्पत्ति बनाने का दावा कर सकता है। परन्तु बलात्कार पूर्वक यदि कोई ऐसा कर ले तो भी इन बातों के आधार पर उत्पत्ति के साधनों का वर्गीकरण नहीं हो सकता है। जमीन और औजारों के ऊपर लोगों ने जो अपने कृत्रिम अधिकार जमा रक्खे हैं, उनको उत्पत्ति का स्वतंत्र साधन मानना वैसा ही भ्रमात्मक है, जैसा कि धूप, हवा, पानी और मनुष्य के शरीर पर अधिकार रखने के इन नये निकाले हुए दावों को उत्पत्ति का साधन मानना।

ऐसे आदमी हो सकते हैं कि जो मजदूर की जमीन और औजारों पर अपना अधिकार बतावें, जैसे कि पुराने जमाने में लोग गुलाम के शरीर को अपनी सम्पत्ति समझते थे; या जैसे कि अब कोई नया निकले और सूर्य की किरणों, हवा और पानी पर अपना एकान्त अधिकार बतावे। ऐसे आदमी भी हो सकते हैं जो मजदूरों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर भगा दें, उसकी मेहनत से जो पैदावार हुई है उसे ले लें, और उसके काम करने के औजारों को भी छीन लें। फिर तो वह बिचारा अपने लिये नहीं बल्कि अपने मालिक के लिये काम करने पर मजबूर होता है जैसा कि फैक्टरियों और कारखानों में होता है। यह सब कुछ सम्भव है, किन्तु जमीन और औजार रहित मजदूर की कल्पना करना अब भी एक असम्भव सी बात है, और असम्भव है वैसे ही जैसे कोई मनुष्य प्रसन्नतापूर्वक किसी दूसरे की जंगम सम्पत्ति

होना स्वीकार कर ले, हालाँ कि पीढ़ियों तक दूसरे मनुष्यों को अपनी सम्पत्ति समझने का दावा किया भी गया है।

कोई मनुष्य यदि यह दावा करे कि अमुक मनुष्य का शरीर मेरी सम्पत्ति है, तो इसीसे उसका अङ्गीभूत यह अधिकार तो छिन नहीं जाता कि वह खुद अपने हिताहित का विचार करे और अपने मालिक के लिए नहीं बल्कि अपने हित के लिये जो उचित समझे वह काम करे। बस, इसी तरह, दूसरों की जमीन और औजारों पर जो एकान्त अधिकार का दावा है, वह मनुष्य की हैसियत से, जमीन पर रहने और अपने औज़ारों से अथवा सुगमता समझे तो समाज के सामान्य औजारों से, जो चाहे जो काम करने का जो मजदूर का स्वयं-सिद्ध अधिकार है, उससे उसे कभी वञ्चित नहीं कर सकता।

वर्तमान आर्थिक समस्या की विवेचना करते हुए अर्थ-शास्त्र केवल इतना ही कह सकता है, कि युरोप में मजदूरों की जमीन और औजारों पर दूसरे लोग अपना अधिकार बताते हैं। इसके परिणाम-स्वरूप कुछ ही मजदूरों के लिये—सब के लिये किसी हालत में नहीं—हाँ, कुछ ही मजदूरों के लिये उत्पत्ति के जो स्वाभाविक साधारण नियम हैं, वे विनष्ट और विकृत हो गये हैं। इसलिये वे जमीन और औज़ारों से वञ्चित होकर दूसरों के औज़ारों से काम करने के लिये मजबूर हो गये हैं। किन्तु इससे यह तो किसी हालत में सिद्ध नहीं होता कि उत्पत्ति के सहज साधारण नियमों का यह आकस्मिक उल्लंघन ही वास्तविक और मूल-भूत सत्य नियम है।

अर्थ-शास्त्री का यह कहना, कि उत्पत्ति के साधनों का यह

त्रिविध वर्गीकरण ही उत्पत्ति का मूल नियम है, ठीक ऐसा ही है जैसा कि कोई प्राणी शास्त्र का अध्ययन करने वाला बहुत से सिस-किन नाम के पक्षियों को पींजड़े में बन्द और उनके पंखों को कटा हुआ देखकर, यह कहने लगे कि पक्षियों के जीवन की यह आवश्यक और अनिवार्य स्थिति हैं, और पक्षी जीवन का निर्माण ही इसी ढङ्ग पर हुआ है।

कितने ही सारे पक्षी पंख काट कर और पींजड़े में बन्द कर के क्यों न रक्खे गये हों, कोई भी प्राणी-शास्त्री उन्हें देखकर यह नहीं कह सकता कि यह स्थिति, और घोड़िया के ऊपर रक्खी हुई पानी की छोटी सी रकाबी—यही बातें प्राणी-जीवन की वास्तविक स्थिति की परिचायक हैं। चाहे कितने ही मजदूरों का स्थान छुड़ा कर उनकी पैदा की हुई चीजों को और उनके औजारों तक को छीन लिया जाये मगर फिर भी जमीन पर रहने और अपने औजारों से काम करने का जो उनका स्वभाव-सिद्ध मानवी अधिकार है वह उनके लिये अनिवार्य है, आवश्यक है और सदा ऐसा ही रहेगा।

निःस्सन्देह ऐसे कुछ लोग हैं, जो मजदूरों की जमीन पर और उनके औजारों पर अपना अधिकार बताते हैं, जैसे कि पहिले जमाने में कुछ लोग दूसरों के शरीर को अपनी मिलकियत समझने का दावा करते थे। किन्तु कुछ भी हो, स्वामी और दास इन दो श्रेणियों में मनुष्य समाज का सच्चा वर्गीकरण हो ही नहीं सकता, जैसा कि प्राचीन काल में लोग इस वर्गी-करण की स्थापना कर देना चाहते थे। उत्पत्ति के साधनों का भी कोई सच्चा वर्गीकरण नहीं हो सकता, जैसा कि अर्थ-शास्त्री

जमीन और पूँजी आदि विभाग करके इस प्रकार का वर्गीकरण स्थापित करने की चेष्टा कर रहे हैं।

दूसरों की स्वतंत्रता का अपहरण करने वाले इन अन्यायपूर्ण दावों को अर्थ-शास्त्र 'उत्पत्ति के स्वाभाविक साधनों' के नाम से पुकारता है। मानव-समाज के स्वाभाविक गुणों को अपने सिद्धान्तों का आधार बनाने के बजाय, अर्थ-शास्त्र ने एक विशिष्ट स्थिति को देखकर, अपने नियमों की रचना कर डाली; और इस स्थिति को ठीक सिद्ध करने के लिये उसने उस जमीन पर जिसपर कि दूसरे लोग मेहनत करके अपनी रोजी कमाते हैं, और उन औजारों पर कि जिनके द्वारा अन्य लोग काम करते हैं, कुछ खास लोगों का अधिकार मान लिया। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि उसने एक ऐसी बात को अधिकार का स्वरूप दे दिया, कि जिसका अस्तित्व कभी था ही नहीं। जो कभी हो ही नहीं सकती और जो स्वयं अपना खण्डन करती है। क्योंकि जो आदमी जमीन का उपयोग नहीं करता उसका उस जमीन पर दावा करने का अर्थ वास्तव में इसके सिवा और कुछ नहीं हो सकता कि जिस जमीन का वह उपयोग नहीं करता पर उसके उपयोग करने का अधिकार चाहता है। और दूसरे लोगों के औजारों पर भी अपना अधिकार रखने का अर्थ इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है कि वह उन औजारों से काम लेने का अधिकार प्राप्त करना चाहता है जिन से कि वह स्वयं काम नहीं लेता।

पुराने जमाने में मनुष्यों को नागरिक और दास श्रेणी में विभक्त करके यह कहा जाता था कि दासता की अस्वाभाविक अवस्था ही जीवन की स्वाभाविक अवस्था है। ठीक इसी तरह

उत्पत्ति के साधनों का वर्गीकरण करके अर्थ-शास्त्र कहता है कि प्रत्येक मजदूर की—अर्थात् प्रत्येक मनुष्य की—यदि इस शब्द का सच्चे अर्थ में प्रयोग किया जाय—स्वाभाविक अवस्था उसकी यही वर्तमान अस्वाभाविक अवस्था है जिसमें कि वह रहता है।

वर्तमान अन्याय को ठीक सिद्ध करने के लिये ही अर्थ-शास्त्र ने जिस वर्गीकरण को स्वीकार किया है, और जिसे अपनी समस्त समीक्षा का उसने आधार माना है, वह वर्गीकरण ही इस बात के लिये जिम्मेवार है कि उक्त शास्त्र वर्तमान विचित्र परिस्थिति का खुलासा करने के लिये जी तोड़ कर कोशिश करता है, पर सफल नहीं हो पाता; और सामने आने वाले प्रश्नों का जो बिलकुल सीधा और सरल जवाब है उसे न मानकर ऐसे टेढ़े मेढ़े उत्तर देता है कि जिनका कोई अर्थ ही नहीं होता।

अर्थ-शास्त्र के सामने यह प्रश्न उपस्थित है—कि धन के द्वारा कुछ लोग जमीन और पूँजी पर एक प्रकार का काल्पनिक अधिकार प्राप्त कर लेते हैं, और जिनके पास धन नहीं है उन्हें वे चाहें तो अपना गुलाम बना सकते हैं। इसका क्या कारण है? साधारण विवेक को तो इसका उत्तर यही मालूम पड़ता है कि यह धन का परिणाम है, जिसका स्वभाव ही मनुष्यों को गुलाम बनाना है।

परन्तु अर्थ-शास्त्र इस बात से इन्कार करता है और कहता है यह बात धन के कारण नहीं होती बल्कि इसकी वजह यह है कि कुछ लोगों के पास जमीन और पूँजी है और कुछ लोगों के पास दोनों में से एक भी नहीं है।

हम पूछते हैं—जिन लोगों के पास जमीन और पूँजी है वे

उन लोगों को क्यों सताते हैं कि जिनके पास दो में से एक भी नहीं है । हमें जवाब मिलता है—उनके पास जमीन और पूँजी दोनों हैं ।

किन्तु यही तो हमारा प्रश्न था। जमीन और औजारों से किसी को वञ्चित कर देना ही क्या जबरदस्ती गुलाम बनाने के समान नहीं है? जीवन यह महत्वपूर्ण प्रश्न बार २ पूछता है, और अर्थशास्त्र भी यह देखता है और उसका जवाब देने की कोशिश करता है, पर सफल नहीं हो पाता। क्योंकि अपनी गलत भित्ति पर बने हुए सिद्धान्तों से चलकर वह एक ऐसे वाहियात चक्कर में पड़ जाता है, कि जिसमें से बाहर निकलने का कोई रास्ता ही नहीं है।

इस प्रश्न का सन्तोष-जनक उत्तर देने के लिये यह आवश्यक है, कि उत्पत्ति के साधनों का जो गलत विभाग उसने किया है उसे वह भूल जाये, हमारी विशिष्ट परिस्थिति के जो परिणाम हैं, उन्हें कारण मानना छोड़ दे और जिस विशिष्ट परिस्थिति के सम्बन्ध में प्रश्न उठाया गया है पहिले उसके समीपस्थ स्पष्ट कारणों की और फिर दूर के कारणों की तलाश करे।

अर्थ-विज्ञान को इस बात का उत्तर देना चाहिये कि ऐसा क्यों है कि कुछ आदमी जमीन और औजारों से वञ्चित हैं, और कुछ लोगों के पास ये दोनों ही मौजूद हैं ? या, जो लोग जमीन पर मेहनत करते हैं और औजारों से काम करते हैं उनसे जमीन और औजार ले लिये जाते हैं—इसका क्या कारण है ?

यदि अर्थ-विज्ञान गम्भीरतापूर्वक इस प्रश्न को अपने सामने रक्खेगा तो उसके सामने नये विचार आयेंगे, और मजदूर की खराब स्थिति का कारण उसकी खराब स्थिति है ऐसे विधानों की

भूल भुलैया में फिरने वाले झूठे विज्ञान की पहिली धारणायें सारी की सारी एकदम बदल जायेंगी।

सरल-चित्त लोगों के लिये इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता कि कुछ लोग दूसरे आदमियों के ऊपर जो अत्याचार करते हैं इसका स्पष्ट कारण धन है। पर विज्ञान इसे अस्वीकार करता हुआ कहता है—रुपया तो केवल विनिमय का साधन है, आदमियों को गुलाम बनाने से उसका कोई सम्बन्ध ही नहीं।

अच्छा तो हम लोग देखें कि ऐसा है कि नहीं।

रुपया अस्तित्व में आया कैसे ? किस स्थिति में जातियाँ हमेशा अपने पास पैसा रखती हैं, और वे कौन सी अवस्थायें है कि जिनमें जातियों को पैसे का उपयोग करने की आवश्यकता नहीं होती।

पुराने जमाने में सिथियन और ट्रेवलियन जिस प्रकार रहते थे, वैसे ही आज भी अफ्रीका तथा आस्ट्रेलिया में कुछ जातियाँ रहती हैं। वे पशु पाल कर, तथा खेती बारी करके अपनी गुजर करती हैं। इतिहास की प्रभात में ही हम उनकी चर्चा सुनते। पर इतिहास के कथानक का प्रारम्भ तो आक्रमणकारियों के उल्लेख से ही होता है, और ये आक्रमणकारी सदा एक ही रीति का अनुसरण करते आये हैं। वे विजित लोगों के पास से उनके पशु, अन्न और वस्त्र जो कुछ हाथ लगता है छीन लेते हैं, और वे बहुत से स्त्री-पुरुषों को कैद भी कर लेते हैं और उन्हें अपने साथ ले जाते हैं।

थोड़े दिनों पीछे वे फिर चढ़ाई करते हैं। किन्तु पहिले आक्रमण से अभी यह जाति पनपने नहीं पाती, और इसलिये लूट कर ले जाने लायक उसके पास कुछ भी नहीं होता। अतएव आक्रमणकारी जीती हुई कौम की शक्तियों से लाभ उठाने के लिये, दूसरी सुविधाजनक तरकीबें ढूँढ निकालते हैं।

ये तरकीबें इतनी सरल होती हैं, कि हर किसी को स्वभावतः

ही सूझ जाती हैं। पहली तरकीब तो यह है कि जीती हुई जाति के लोग गुलाम बना लिये जाते हैं। किन्तु इस पद्धति में सारी जाति की जाति से काम लेने की व्यवस्था करना और सब को खिलाने पिलाने का प्रबन्ध करना पड़ता है। यह एक बड़ी भारी अड़चन है। इसलिए सहज ही उन्हें एक दूसरी पद्धति सूझ जाती है। वह यह कि विजित जाति को उसकी जमीन पर रहने और काम करने देते हैं, पर उस जमीन पर अधिकार अपना रखते हैं, और उसे अपने प्रमुख सैनिकों में बाँट देते हैं, ताकि उनके द्वारा इन लोगों की मजदूरी का उपयोग किया जा सके। पर इस पद्धति में भी खराबी तो है ही। विजेता लोगों को विजित जाति की समस्त पैदावार पर दृष्टि रखनी पड़ती है। और इसलिये पहली दो पद्धतियों जैसी ही एक तीसरी जंगली पद्धति का अनुसरण किया जाता है। वह यह कि विजेता लोग विजित जाति पर एक प्रकार का अनिवार्य कर लगाते हैं जो उन्हें नियत समय पर अदा करना पड़ता है।

विजेताओं का उद्देश्य यह होता है कि वे विजित जाति से उनकी पैदावार का अधिक से अधिक भाग ले लें। और यह स्पष्ट ही है कि ऐसा करने के लिये विजेता लोग ऐसी ही चीजें ले जायेंगे, जो सबसे अधिक कीमती होंगी और जिन्हें ले जाने और सञ्चय करने में आसानी होगी। इसलिये वह पशुओं की खाल तथा सोना आदि ऐसी ही चीजें ले जाते हैं। इसके लिये वे प्रत्येक कुटुम्ब अथवा जमात पर खाल अथवा सोने का कर लगाते हैं जो नियमित समय पर उन्हें देना होता है और इस प्रकार सारी जाति की मेहनत से वे सरलतापूर्वक लाभ उठाते हैं।

खाल और सोना जब इस प्रकार उनसे ले लिया जाता है, तब फिर अपने मालिकों को देने के लिये अधिक खाल और सोना प्राप्त करने के लिये उन्हें अपनी अन्य सभी चीजें बेचनी पड़ती हैं और जब जायदाद बेचने को नहीं रहती है तो फिर वे अपने आपको और अपनी मेहनत को बेचने के लिये मजबूर होते हैं।

प्राचीन समय में और मध्य-युग में भी ऐसा ही होता था और अब भी ऐसा ही होता है। पुराने जमाने में एक जाति का दूसरी जाति पर आक्रमण करना और उसे जीतना प्रायः ही होता रहता था। और चूँकि उस समय इस भाव का अभाव था कि सब मनुष्य समान हैं, इसलिये लोगों को अधिकृत करने के लिये वैयक्तिक दासता की प्रथा को विशेष चलन थी। और इसी पर लोग ज्यादा जोर देते थे। मध्य काल में जागीर-पद्धति अर्थात् जमीन की मालिकी और उससे सम्बद्ध दूसरों से जबरदस्ती काम कराने की पद्धति कुछ अंशों में 'वैयक्तिक दासता' का स्थान ग्रहण करती है और इस प्रकार मनुष्य के बजाय जमीन, जोर और जुल्म का केन्द्र बन जाती है। आधुनिक काल में, अमेरिका की खोज के समय से और व्यापार के विकास तथा सुवर्ण की पैदाइश में वृद्धि होने से जो सारे जगत में विनिमय का साधन माना जाता है, कर आदि रुपये के रूप में लिये जाते हैं और राज्य-शक्ति की वृद्धि के साथ रुपये की किस्त लोगों को गुलामी में फँसाने का प्रमुख साधन बन गई है। और अब मनुष्यों के समस्त आर्थिक सम्बंध इसी के आधार पर चलते हैं।

'लिट्रेरी मिसेलेनी' में प्रोफेसर यान्जल का एक लेख प्रकाशित हुआ है, जिसमें फिजी द्वीप के आधुनिक इतिहास का वर्णन

है। यदि मैं एक ऐसे उदाहरण की खोज में होता कि जो यह बात दिखलाता कि किस प्रकार हमारे जमाने में रुपये की किस्त-बंदी दूसरे लोगोंको अपना गुलाम बनाने का जबरदस्त साधन बन गई है, तो मैं समझता हूँ कि हाल में होने वाली घटनाओं के विवरण पर बने हुए इस विश्वसनीय इतिहास से बढ़कर प्रभाव-शाली और स्पष्ट किसी दूसरे उदाहरण की मैं कल्पना भी नहीं कर सकता।

दक्षिण महासागर के पालिनेशिया-अंतर्गत द्वीपों में फिजी नाम की एक जाति रहती है। जिस स्थान पर ये लोग रहते हैं वह छोटे छोटे टापुओं का बना हुआ है, और उसका कुल क्षेत्रफल लगभग चालीस वर्गमील है। सिर्फ आधा ही मुल्क बसा हुआ है और उस में १५०००० मूल निवासी और १५०० गोरे हैं। इन लोगों को जङ्गली अवस्था छोड़कर सुधरे हुए बहुत दिन हो गये हैं और पालिनेशिया के अन्य निवासियों की अपेक्षा दिमागी ताकत में बढ़ चढ़कर हैं। ऐसा मालूम होता है कि उनमें काम करने की शक्ति और विकास की योग्यता है। क्योंकि थोड़े ही दिनों में कृषि और पशुपालन में उन्होंने अपनी दक्षता सिद्ध कर दिखाई है।

यह लोग खूब खुशहाल थे किंतु सन् १८५९ ई० में इनकी स्थिति बड़ी ही क्लिष्ट और निराशा-जनक हो उठी। फिजी जाति और उसके मुखिया ककोबो को रुपये की जरूरत पड़ी। अमेरिका का संयुक्त राज्य ४५००० डालर मुआविजे के रूपमें ककोबा से माँगता था। क्योंकि उसका कहना था कि फिजी लोगों ने अमेरिकन नागरिकों पर जुल्म किया है। यह रुपया वसूल करने के लिये अमेरिकनों

ने एक दल रवाना किया जिसने जमानत के बहाने, अचानक ही, कुछ उत्तमोत्तम टापुओं पर कब्जा कर लिया और यह धमकी दी कि यदि एक निश्चित तिथि तक मुआविजे की रकम अदा न कर दी जायगी तो उनके नगरों को गोले बारूद से उड़ा दिया जायगा।

मिशनरियों को लेकर अमेरिकन लोग फिजी द्वीप में बहुत पहले आकर बस गये थे। उस समय तक बहुत थोड़े ही उपनिवेशक वहाँ आ बसे थे। इन लोगों ने किसी न किसी बहाने से द्वीप की अच्छी से अच्छी जमीन अपने अधिकार में ले ली और कॉफी और कपास की खेती शुरू कर दी। इन्होंने ढेर के ढेर मूल निवासियों को अपने यहाँ नौकर रख लिया और ऐसी शर्तों में उन्हें बाँध लिया कि जो इन अर्ध-सभ्य लोगों को एकदम अज्ञात थीं। इसके अलावा वे अपना काम ऐसे ठेकेदारों के द्वारा चलाते थे कि जो मनुष्यों की खरीद फरोख्त का व्यापार करते थे।

इन मालिकों और मूल-निवासियों में, कि जिन्हें वे एक तरह से अपना गुलाम ही समझते थे, अनबन होना स्वाभाविक ही था। और किसी ऐसे ही झगड़े को उन्होंने फिजी लोगों से मुवाविजा माँगने का बहाना बना लिया।

खुशहाल होते हुए भी फिजी लोगों ने उस समय तक अपने यहाँ उसी स्वाभाविक विनिमय प्रथा को बनाये रक्खा, जो योरोप के अंदर मध्ययुग में प्रचलित थी। इन लोगों के अंदर सिक्के का चलन तो यों समझिये कि बिलकुल था ही नहीं। इनका सारा आधार वस्तु-विनिमय पद्धति पर चलता था—एक चीज देकर बदले में दूसरी चीज ले लेते थे। और जो थोड़े से सामाजिक और राज्य-कर देने पड़ते थे उन्हें वे स्थानीय पैदावार के द्वारा अदा

करते थे। भला फिजी लोग और उनका राजा ककोबो क्या कर सकता था जब कि अमेरिकन लोग ४५ हजार डालर माँग रहे थे और उन्हें बेतरह धमका रहे थे? इतने सारे डालर उन्होंने कभी देखे भी न थे। सिक्के तो क्या, यह संख्या ही उनके लिये कल्पनातीत थी। अन्य सामन्तों से परामर्श करने के बाद ककोबो ने पहले तो यह निर्णय किया कि इंग्लैण्ड की रानी से इन द्वीपों को अपनी संरक्षकता में ले लेने के लिये प्रार्थना की जाये। किंतु बाद को द्वीपों को अपने राज्य में मिला लेने के लिये इंग्लैण्ड से अनुरोध करने का उन्होंने निश्चय किया।

किंतु इस अर्ध-सभ्य राजा को उसकी मुसीबत के समय सहायता पहुँचाने की इंग्लैण्ड को ऐसी कोई उतावली तो थी ही नहीं इसलिये उसने इस प्रार्थना पर अत्यन्त सावधानी के साथ विचार करना शुरू किया। सीधा उत्तर देने के बजाय उन्होंने १८६० में फिजी द्वीप के सम्बंध में तहकीक़ात करने के लिये एक खास कमीशन भेजा, ताकि वह यह निश्चय कर सके कि फिजी द्वीप को इंग्लैण्ड में मिलाने और अमेरिकनों को सन्तुष्ट करने के लिये इतनी बड़ी रकम देने से कोई लाभ भी होगा कि नहीं

इस दरमियान में अमेरिकन सरकार रुपयों के लिये बराबर तक़ाजा करती रही और उसने जमानत के तौर पर उसने द्वीप कुछ उत्तमोत्तम भाग अपने कब्जे में ले लिये; और फिजी जाति की सम्पत्ति का ठीक हाल मालूम होने पर उन्होंने मुआविजे की रक़म बढ़ा कर ९०,००० डालर कर दी। साथ ही यह धमकी भी दी कि यदि रुपया फौरन ही अदा न किया गया तो यह रक़म और भी बढ़ा दी जायेगी। बेचारा ककोबो चारों ओर आपत्तियों से घि

हुआ था। लेनदेन के व्यवहार की योरोपीय पद्धति से वह बिलकुल ही अपरिचित था। इसलिये गोरे उपनिवेशकों की सलाह से उसने मेलबोर्न के व्यापारियों से पैसे लेने की चेष्टा की। यहाँ तक कि पैसे के लिये वह अपना राज्य तक प्राइवेट लोगों के हाथ में सौंपने को तैयार हो गया।

ककोबो की प्रार्थना के परिणाम स्वरूप मेलबोर्न में एक व्यापारिक मंडल की स्थापना हुई। 'पालिनेशियन कम्पनी' नामक इस मण्डल ने फ़िजी के सरदारों से बहुत ही लाभदायक शर्तें ठहरा कर एक दस्तावेज़ तैयार किया। कई किश्तों में रुपया अदा कर देने का वादा करके कम्पनी ने कर्ज़ा अपने ऊपर ले लिया। पहली सन्धि के अनुसार कम्पनी को पहले एक और दो हज़ार एकड़ बढ़िया ज़मीन प्राप्त हुई; सदा सर्वदा के लिये सब प्रकार के कर माफ हो गये और फ़िजी में बैंक स्थापित करने का उन्हें एकान्त स्वत्व तथा अमर्यादित संख्या में नोट बनाने का विशिष्ट अधिकार भी मिल गया।

यह सन्धि सन् १८६८ में निश्चित रूप से तय हो गई और तब से ककोबो की स्थानीय सरकार के साथ ही साथ एक दूसरी शक्ति का आविर्भाव हुआ। यह शक्ति उसी व्यापारिक मण्डल की थी, कि जिसके पास द्वीप भर में फैली हुई बहुत बड़ी जायदाद थी, और जिसका गवर्नमेंट पर काफ़ी ज़ोर और ज़बरदस्त असर था।

अभी तक तो ककोबो की गवर्नमेंट का काम स्थानीय पैदावार में से मिलने वाले अंश और थोड़े से आयात कर से चल जाता था, किंतु सन्धि और प्रभावशाली पालीनेशियन कम्पनी

के निर्माण से उसकी आर्थिक स्थिति में अन्तर पड़ा। द्वीप समूह की बहुत सी उत्तमोत्तम जमीन कम्पनी के हाथ में चली जाने से राज्य की आय कम हो गई। उधर कम्पनी को आने वाले तथा जाने वाले माल पर कर न देने की आज्ञा मिल गई थी। इसलिये माल की जकात की आमदनी भी बहुत घट गई। मूल निवासियों की ओर से तो जकात की आय वैसे ही बहुत कम थी। क्यों कि निन्यानवे फी सदी ये लोग कपड़ा और धातु की बनी हुई कुछ चीजों के अलावा बाहर से आयी हुई शायद ही किसी चीज का व्यवहार करते थे। किंतु कम्पनी के सब प्रकार के कर माफ़ हो जाने से और लोगों के मँगाये हुए माल के द्वारा जो जकात की आय होती थी वह एक दम बन्द हो गई। ककोबो को अब यह चिन्ता हुई कि आय में वृद्धि किस प्रकार की जाय?

इस मुश्किल को हल करने के लिये फिजी के राजा ने अपने गोरे मित्रों से सलाह पूछी। उन्होंने उस देश में पहिले पहल सीधा कर लगाने की राय दी, और कर-प्राप्ति की झंझट को यथा-सम्भव कम करने के लिये उन्होंने यह सलाह दी कि इस कर के सम्बन्ध में 'रोकड़ पैसा' वसूल किया जाय। यह कर समस्त राज्य में प्रत्येक मनुष्य पर लगाया गया। प्रत्येक पुरुष को एक पौंड और प्रत्येक स्त्री को चार शिलिङ्ग भरना पड़ते थे।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, फिजी के लोगों में अभी तक वस्तु विनिमय अर्थात् आपस में चीजें बदलने की पद्धति जारी है। शायद ही किसी मूल निवासी के पास कोई सिक्का हो। कच्चा माल और पशु ही उनका धन है, रुपया पैसा नहीं। किंतु प्रत्येक मनुष्य के हिसाब से इस नये कर को नियमित समय

पर चुकाने के लिये उनको बहुत से रुपयों की जरूरत महसूस होने लगी।

अभी तक लोगों को व्यक्तिगत रूप से सरकार का भार वहन करने का अभ्यास न था, हाँ, उसके लिये मेहनत मजदूरी कर देते थे। सरकार को जो कर देने होते थे वे सब उस गाँव अथवा जाति के द्वारा अदा किये जाते थे कि जिससे उसका संबंध होता था। सार्वजनिक सामान्य खेतों की पैदावार में से ही ये कर भरे जाते थे और लोगों की खास आमदनी भी इन्हीं खेतों के द्वारा होती थी। अब उनके लिये केवल एक ही मार्ग था और वह यह कि योरोपियन उपनिवेशकों से रुपया उधार लिया जाय अर्थात् या तो योरोपीय व्यापारी से रुपया माँगें अथवा योरोपीय कृषक प्लांटर से।

व्यापारियों के हाथ उन्हें अपनी चीज उन्हीं की शर्तों पर बेंच देनी पड़ती और कभी २ तो नियत समय पर कर अदा करने के लिये उन्हें अपनी आगामी फसल भी गिरवै रख देनी पड़ती थी और इससे व्यापारी लोग खूब मनमाना सूद वसूल करते थे। दूसरी सूरत यह थी कि वे प्लान्टरों से रुपया लेते थे और अपनी मेहनत उनके हाथ बेच देते थे। इस तरह वे कृषक न रह कर उनके नौकर हो जाते थे। फिजी द्वीप में मजदूरी भी बहुत ही कम थी और वह शायद इसलिये कि वहाँ आदमी काफी से ज्यादा मिलते थे। प्रत्येक वयस्क को प्रति सप्ताह एक शिलिङ्ग अथवा दो पौन्ड बारह शिलिङ्ग प्रति वर्ष से अधिक नहीं मिलते थे। परिणाम यह हुआ कि कुटुम्ब का भार तो अलहदा रहा, अपना व्यक्तिगत कर चुकाने के लिये फिजी लोगों को अपना घर बार और

अपनी जमीन छोड़ कर कभी २ बहुत दूर किसी दूसरे टापू में कम से कम ६ मास तक प्लान्टर की गुलामी करने के लिये जाना पड़ता था। और फिर कुटुम्ब के लोगों का कर अदा करने के लिये उसे दूसरे उपायों की शरण लेनी पड़ती थी।

इस स्थिति का परिणाम क्या हो सकता है इसे हम लोग आसानी से समझ सकते हैं। १५०००० की आबादी में से कमोबेश कुल ६००० पौन्ड इकट्ठा कर सका। अभी तक सख्ती और जुल्म से लोग अपरिचित थे किन्तु कर वसूल करने के लिये तरह २ का अत्याचार उन लोगों पर किया जाने लगा।

स्थानीय शासन जो अभी तक बिगड़ने न पाया था अब शीघ्र ही योरोपियन प्लान्टरों के साथ मिल गया और प्लान्टर लोग खूब अपना मतलब साधने लगे। कर न अदा कर सकने के अपराध में फिजी लोगों को अदालत में पकड़ बुलाया जाता था और उन्हें केवल खर्चा ही नहीं देना पड़ता था बल्कि जेलखाने भी जाना पड़ता था और वह भी ६ महीने से कम के लिये नहीं। यह जेल क्या था गोरे लोगों के लिये मजदूर प्राप्त करने का साधन था। जो गोरा सब से पहिले मुकदमे का खर्चा और अपराधी का कर अदा कर देता था वही उसको अपने काम पर लगाने का हकदार हो जाता। इस तरह गोरे प्रवासियों को मजदूरी बहुत ही सस्ती पड़ती।

पहिले तो इस अनिवार्य मजदूरी की अवधि ६ महीने से अधिक न होती थी पर पीछे से जज लोग रिश्वत ले लेकर १८ महीनों तक की सजा देने लगे और कभी कभी तो बाद को भी सजा बढ़ा देते।

बड़ी ही जल्दी, केवल थोड़े ही वर्षों में फिजी लोगों की सामाजिक अवस्था बिलकुल बदल गई। जिले के जिले जो पहिले खूब हरे भरे और आबाद थे अब बिलकुल कंगाल हो गये और उनकी आबादी भी आधी रह गई। बुड्ढों और बीमारों को छोड़ कर जितने मर्द थे सभी, कर अदा करने के लिये रुपये की खातिर अथवा अदालती फैसले के परिणाम स्वरूप घर से दूर, प्लान्टरों के खेतों में मेहनत मजदूरी करते थे। फिजी की स्त्रियों को खेतों में काम करने का अभ्यास न था इसलिये पुरुषों की अनुपस्थिति में घर की खेती बाड़ी का काम एकदम बन्द हो गया। कुछ ही सालों के अन्दर फिजी की आधी आबादी उपनिवेशकों की गुलाम बन गई।

अपनी इस दुर्दशा से छुटकारा पाने के लिये उन्होंने एक बार फिर इंग्लैण्ड से प्रार्थना की। एक नया प्रार्थना पत्र तैयार किया जिसमें बहुत से मुखिया लोगों तथा सरदारों ने हस्ताक्षर किये। यह दस्तावेज जिसमें फिजी द्वीप को इंग्लैण्ड में मिला लेने की प्रार्थना की गई थी, अङ्गरेजी राजदूत के हाथ में सौंप दिया गया। इस बीच में इंग्लैण्ड ने अपने भेजे हुए कमीशन द्वारा फिजी द्वीप की वर्तमान अवस्था का ज्ञान प्राप्त कर लिया। इतना ही नहीं बल्कि वैज्ञानिक ढङ्ग से उसने इन द्वीपों का निरीक्षण और उनकी पैमाइश भी करायी और दुनियाँ के एक कोने में पड़े हुए इस सुन्दर द्वीप समूह की प्रकृति-प्रदत्त सम्पत्ति को खूब पसन्द किया।

इन सब बातों के कारण फिजी लोगों को इस बार अपने उद्योग में पूर्ण सफलता मिली और सन १८७४ में इंग्लैण्ड ने

अपनी जमीन छोड़ कर कभी २ बहुत दूर किसी दूसरे टापू में कम से कम ६ मास तक प्लान्टर की गुलामी करने के लिये जाना पड़ता था। और फिर कुटुम्ब के लोगों का कर अदा करने के लिये उसे दूसरे उपायों की शरण लेनी पड़ती थी।

इस स्थिति का परिणाम क्या हो सकता है इसे हम लोग आसानी से समझ सकते हैं। १५०००० की आबादी में से कम्बोबो कुल ६००० पौन्ड इकट्ठा कर सका। अभी तक सख्ती और जुल्म से लोग अपरिचित थे किन्तु कर वसूल करने के लिये तरह २ का अत्याचार उन लोगों पर किया जाने लगा।

स्थानीय शासन जो अभी तक बिगड़ने न पाया था अब शीघ्र ही योरोपियन प्लान्टरों के साथ मिल गया और प्लान्टर लोग खूब अपना मतलब साधने लगे। कर न अदा कर सकने के अपराध में फिजी लोगों को अदालत में पकड़ बुलाया जाता था और उन्हें केवल खर्चा ही नहीं देना पड़ता था बल्कि जेलखाने भी जाना पड़ता था और वह भी ६ महीने से कम के लिये नहीं। यह जेल क्या था गोरे लोगों के लिये मजदूर प्राप्त करने का साधन था। जो गोरा सब से पहिले मुकद्दमे का खर्चा और अपराधी का कर अदा कर देता था वही उसको अपने काम पर लगाने का हकदार हो जाता। इस तरह गोरे प्रवासियों को मजदूरी बहुत ही सस्ती पड़ती।

पहिले तो इस अनिवार्य मजदूरी की अवधि ६ महीने से अधिक न होती थी पर पीछे से जज लोग रिश्वत ले लेकर १८ महीनों तक की सजा देने लगे और कभी कभी तो बाद को भी सजा बढ़ा देते।

बड़ी ही जल्दी, केवल थोड़े ही वर्षों में फिजी लोगों की सामाजिक अवस्था बिलकुल बदल गई। जिले के जिले जो पहिले खूब हरे भरे और आबाद थे अब बिलकुल कंगाल हो गये और उनकी आबादी भी आधी रह गई। बूढ़ों और बीमारों को छोड़ कर जितने मर्द थे सभी, कर अदा करने के लिये रुपये की खातिर अथवा अदालती फैसले के परिणाम स्वरूप घर से दूर, प्लान्टरों के खेतों में मेहनत मजदूरी करते थे। फिजी की स्त्रियों को खेतों में काम करने का अभ्यास न था इसलिये पुरुषों की अनुपस्थिति में घर की खेती बाड़ी का काम एकदम बन्द हो गया। कुछ ही सालों के अन्दर फिजी की आधी आबादी उपनिवेशकों की गुलाम बन गई।

अपनी इस दुर्दशा से छुटकारा पाने के लिये उन्होंने एक बार फिर इंग्लैण्ड से प्रार्थना की। एक नया प्रार्थना पत्र तैयार किया जिसमें बहुत से मुखिया लोगों तथा सरदारों ने हस्ताक्षर किये। यह दस्तावेज जिसमें फिजी द्वीप को इंग्लैण्ड में मिला लेने की प्रार्थना की गई थी, अङ्गरेजी राजदूत के हाथ में सौंप दिया गया। इस बीच में इंग्लैण्ड ने अपने भेजे हुए कमीशन द्वारा फिजी द्वीप की वर्तमान अवस्था का ज्ञान प्राप्त कर लिया। इतना ही नहीं बल्कि वैज्ञानिक ढङ्ग से उसने इन द्वीपों का निरीक्षण और उनकी पैमाइश भी करायी और दुनियाँ के एक कोने में पड़े हुए इस सुन्दर द्वीप समूह की प्रकृति-प्रदत्त सम्पत्ति को खूब पसन्द किया।

इन सब बातों के कारण फिजी लोगों को इस बार अपने उद्योग में पूर्ण सफलता मिली और सन १८७४ में इंग्लैण्ड ने

सरकारी तौर पर फिजी द्वीप को अपने अधिकार में लेकर अपने उपनिवेशों में मिला लिया, जिससे अमेरिकन प्लान्टरों को बड़ा असंतोष हुआ। ककोबो का देहान्त हो गया। उसके उत्तराधिकारियों को थोड़ी सी पेंशन दे दी गई और उन द्वीपों का शासन न्यूसाउथ वेल्स के गवर्नर सर हरक्यूलीज राबिंसन के हाथ में सौंप दिया गया। इंग्लैण्ड से सम्बन्धित होने के प्रथम वर्ष फिजी में स्वायत्त शासन न था बल्कि यह लोग सर हरक्यूलीज रोबिन्सन के द्वारा नियुक्त किये हुए शासक के अधीन थे।

द्वीप समूह को अपने हाथ में ले लेने के बाद, उनसे जो आशायें की गई थीं उन्हें पूरा करने का कठिन कार्य अब अङ्गरेज सरकार को करने के लिये तैयार होना पड़ा। फिजी लोगों की तो स्वभावतः ही सब से पहिली इच्छा यह थी कि वह घृणित मनुष्य कर हटा दिया जाये, और उपनिवेशकों का एक भाग अर्थात् अमेरिकन लोग अङ्गरेजी शासन को संदेह की दृष्टि से देखते थे; और दूसरा भाग अर्थात् अङ्गरेज जाति के लोग यह चाहते थे कि फिजी लोगों के ऊपर उनकी जो सत्ता और जो अधिकार हैं, उन सब को नियमित मान लिया जाये और जमीन पर कब्जा करने की आज्ञा उन्हें मिल जाये। किंतु अङ्गरेज सरकार इन सब बाधाओं का मुकाबिला करने में समर्थ निकली और उसने सबसे पहिला काम यह किया कि उस मनुष्य कर को सदा के लिये हटा दिया कि जिसके कारण कुछ उपनिवेशकों के लाभ के लिये फिजी लोगों में गुलामी की जड़ पड़ गई थी।

किन्तु इस कार्य में सर राबिन्सन को एक बड़े भारी भय

संजय का सामना करना पड़ा। जिस मनुष्य-कर को दूर करने के लिये फिजी लोगों ने अङ्गरेजों की सहायता माँगी थी उसको तो दूर करना ही था पर साथ ही साथ अङ्गरेजी औपनिवेशिक नीति के अनुसार उन्हें स्वावलम्बी बन कर अपने शासन का खर्चा आप निकालना चाहिये था। मनुष्य-कर हटा देने के बाद फिजी लोगों से जो आय हो सकती थी वह सब मिला कर ६ हजार पौन्ड से अधिक न थी और शासन खर्च के लिये प्रति वर्ष कम से कम ७० हजार पौन्ड की आवश्यकता थी।

रुपया का कर हटा कर सर राबिन्सन ने मजदूरी का कर लगाने की तरकीब सोची पर कर्मचारियों का भरण पोषण करने लायक आमदनी इससे भी न हुई। गार्डन नाम का नया गवर्नर जब तक न आया तब तक यह स्थिति नहीं सुधरी। गार्डन ने आते ही यह निश्चय किया कि फिजी में जब तक रुपये का काफी चलन न हो जायेगा तब तक वह रुपया न माँग कर फिजीवासियों से उनकी पैदावार की चीजें ले लेगा और उन्हें अपने प्रबन्ध से बेचेगा।

फिजी लोगों के जीवन का यह करुण प्रसङ्ग स्पष्ट और उत्तम रीति से यह बताता है कि वास्तव में पैसा क्या चीज है और उसका असर कहाँ तक पहुँच सकता है। इस उदाहरण में सभी आवश्यक अङ्गों का दिग्दर्शन हो जाता है—गुलामी की पहिली और मुख्य शर्त—बन्दूक, धमकियें, हत्यायें, और लूट पाट और अन्तिम चीज रुपया, जिसने लोगों को गुलाम बनाने के अन्य सब साधनों का स्थान ले लिया है। राष्ट्रों के आर्थिक विकास का इतिहास पढ़ कर, शताब्दियों तक की घटनाओं का क्रमानुसार अध्ययन करने के बाद हम जो बात मालूम कर पाते हैं वह

इस घटना में है कि जिसमें पैसे के सभी प्रकार के अन्यायों और अत्याचारों का खूब खुल कर खेल हुआ है—दस ही वर्ष के अन्दर ही अच्छी तरह प्रस्फुटित होती हुई देखते हैं।

नाटक इस प्रकार आरम्भ होता है—अमेरिकन सरकार फिजी द्वीप के लोगों को अपने अधीन करने के लिये बन्दूकों से भरे हुए जहाज भेजती है। बहाना है रुपया वसूल करने का पर यह करुणा प्रसङ्ग आरम्भ इस प्रकार होता है कि फिजी के समस्त अधिवासियों के ऊपर तोपें लगायी जाती हैं और इनमें स्त्री, बच्चे बूढ़े और जवान सभी तरह के लोग हैं और प्रायः सभी निर्दोष। 'रुपया दो या जिन्दगी से हाथ धोओ'—४५ हजार डालर और फिर ९० हजार अथवा कत्ल आम। परन्तु ९० हजार डालर उन्हें मिलते नहीं और यहीं से आरम्भ होता है दृश्य नम्बर दो। इसमें उस भयङ्कर खूनी और क्षण स्थायी पद्धति के स्थान पर एक नवीन यातना का आविष्कार होता है जो इतनी स्पष्ट तो दिखाई नहीं पड़ती पर उसका असर सब लोगों तक पहुँचता है और देर तक रहता है। फिजी के मूल निवासी नरहत्या के स्थान पर रुपये की गुलामी स्वीकार करते हैं। रुपया उधार लेते ही वह पद्धति शिक्षित सेना की तरह अपना काम आरम्भ कर देती है। पाँच वर्ष के अन्दर काम पूर्ण हो जाता है—मनुष्यों ने अपनी जमीन और जायदाद के उपयोग करने का अधिकार ही नहीं खो दिया बल्कि अपनी स्वतंत्रता भी खो बैठे—बस एक दम गुलाम बन गये।

अब तृतीय दृश्य प्रारम्भ होता है। स्थिति बड़ी ही दुःख जनक है। इन अभागों को सलाह दी जाती है कि वह मालिक

बदल कर दूसरे के गुलाम हो जावें। रुपये द्वारा गुलामी से मुक्त होने का उनके दिमाग़ में ख़याल तक नहीं। यह लोग एक दूसरे मालिक को बुलाते हैं और उससे अपनी स्थिति को सुधारने की प्रार्थना करके अपने को उसके हाथों में सौंप देते हैं। अङ्गरेज लोग आकर देखते हैं कि इन लोगों पर शासनाधिकार मिल जाने से वह अपनी जाति के आवश्यकता से अधिक बढ़े हुए निकम्मे जीवों के भरण पोषण का प्रबन्ध कर सकेंगे और इसलिये वह इन द्वीपों और उनके अधिवासियों को अपने अधिकार में ले लेते हैं।

किन्तु इंग्लैण्ड उन्हें गुलामों के रुप में नहीं लेता, उनकी जमीन को भी वह अपने कर्मचारियों में बाँट नहीं देता। इन पुरानी पद्धतियों की अब ज़रूरत नहीं, अब केवल एक बात की ज़रूरत है—टैक्स लगने चाहिये और ऐसे परियाप्त परिमाण में कि एक ओर तो वह किसानों को व्यावहारिक दासता के पाश से मुक्त न होने दें और दूसरी ओर बहुत से निकम्मे जीवों के लिये मजे से जीवन व्यतीत करने का प्रबन्ध किया जा सके। फ़िजी निवासियों को प्रति वर्ष सत्तर हज़ार पौंड अदा करने चाहिये—यह ख़ास शर्त है जिस पर इंग्लैण्ड फिजी निवासियों को अमेरिकन अत्याचार से बचाने के लिये राजी होता है और फिजी के लोगों को पूर्ण रुप से दासता के पाश में आबद्ध करने के लिये बस एक इसी बात की कमी रह गई थी। किंतु स्थिति कुछ ऐसी है कि फिजी द्वीप वाले यह सत्तर हज़ार पौंड किसी हालत में नहीं दे सकते, उनके लिये यह माँग बहुत बड़ी है।

अंगरेज कुछ काल के लिये अपनी माँग पर ज़ोर न देकर,

प्राकृतिक उपज का ही कुछ अंश लेकर चुप रहते हैं ताकि जब रुपये का चलन हो जाय तो वह पूरी रक़म वसूल कर सकें। वह पहिली कम्पनी की तरह व्यवहार नहीं करते—उस कम्पनी के व्यवहार को किसी देश में जंगली आक्रमण कारियों के प्रथम आगमन के समान कहा जा सकता है जब उनका मतलब सिर्फ इतना होता है कि जो कुछ मिले वह लूट कर चलते बनें। परन्तु इंग्लैंड का व्यवहार दूरदर्शी गुलाम बनाने वाले आदमी का सा होता है, वह सोने का अण्डा देने वाली मुर्गी को एक बार ही मार नहीं डालता बल्कि वह उसे पालता है ताकि वह बराबर अण्डे देती रहे। इंग्लैण्ड पहिले अपने मतलब को ढीला छोड़ देता है ताकि वह बराबर अण्डे देती रहे। इंग्लैण्ड पहिले अपने मतलब को ढीला छोड़ देता है ताकि बाद को इन लोगों से खूब कस कर काम निकाल ले। इस प्रकार बेचारे फिजी के लोगों को उसकी गुलामी के उस फन्दे में ला फँसाया कि जिसमें समस्त योरोपियन जाति इस समय फँसी हुई है और जिसमें से उनके निकलने की कोई सूरत भी नहीं दिखाई देती।

यही बात अमेरिका, चीन और मध्य एशिया में होती है और सभी विजित जातियों के इतिहास में ऐसी ही घटना पाई जाती है। रुपया बिनिमय का एक निर्दोष साधन है किन्तु उसी हालत में कि जब उसे वसूल करने के लिए निरीह निःशस्त्र लोगों के ऊपर तोपें नहीं लगाई जाती। किन्तु ज्योंही रुपया इकट्ठा करने के लिये तोपों और बन्दूकों का प्रयोग किया जायगा तो जो कुछ फिजी में हुआ वह अनिवार्य रूप से होकर रहेगा और ऐसा ही सदा सर्वत्र हुआ है।

जो लोग यह समझते हैं कि दूसरों के श्रम का उपभोग करना उनका उचित अधिकार है वह बलपूर्वक रुपया माँग कर अपना मतलब बनायेंगे और रुपये की इस माँग के द्वारा ही अत्याचारी लोग बिचारे दीन लोगों को गुलाम बनने के लिये मजबूर करते हैं। इसके अलावा आततायी लोग जितना रुपया जमा हो सकता है उससे सदा ही अधिक माँगेंगे जैसा कि इंग्लैण्ड और फिजी के सम्बन्ध में हुआ और यह अधिक रुपया इसलिये माँगा जाता है जिससे गुलाम बनाने की क्रिया जल्दी ही पूरी हो जाय। रुपये की माँग को उस समय तक अवश्य सीमा के अन्दर रक्खा जाता है जब तक कि उनके पास पर्याप्त धन और नैतिक भाव रहता है, जब इस नैतिक भाव का ह्रास हो जायेगा अथवा रुपयों की जरूरत होगी तो फिर इस सीमा की पर्वाह न की जायेगी रही गवर्न्मेंन्टों की बात, तो यह तो सदा ही सीमा से अधिक माँग करती हैं क्योंकि एक तो गवर्न्मेंन्टों के लिये न्याय अन्याय जैसी कोई नैतिक भावना ही नहीं होती, और दूसरे जैसा कि सभी जानते हैं युद्धों के कारण तथा मित्रों को देने के लिये उन्हें रुपयों की सदा ही जरूरत रहती है। सभी सरकारें दीवालिया होती हैं और अठारवीं शताब्दी के एक रूसी राजनीतिज्ञ की इस कथन के अनुसार ही व्यवहार करती है—"किसान की ऊन को काट ही लेना चाहिये ताकि कहीं वह बहुत ज्यादा २ न बढ़ जाय।" सभी हुकूमतें बुरी तरह कर्जदार होती हैं और प्रायः कर्ज की यह रफ्तार भयंकर गति से बढ़ रही है। इसी तरह बजट अर्थात् व्ययसूची भी बढ़ जाती है और इसका परिणाम यह होता है कि दूसरे आततायियों से झगड़ने और अपने आततायियों को पारितोषिक देने

की विशेष आवश्यकता होती है और इसके कारण जमीन के लगान में वृद्धि होती है।

मजदूरी में वृद्धि नहीं होती है और वह लगान के क़ानून के कारण नहीं बल्कि जबरदस्ती वसूल किये जाने वाले करों के कारण जिनका अस्तित्व ही केवल इसलिये होता है कि मनुष्यों के पास कुछ रहने न पावे ताकि मालिकों को सन्तुष्ट करने के लिये वह अपने को मेहनत करने के लिये बेंच डालने पर मजबूर हों—टैक्सों के लगाने का उद्देश्य यह होता है कि मजदूरों की मजदूरी का उपभोग किया जा सके।

मजदूरों की मजदूरी का उपभोग उसी हालत में किया जा सकता है कि साधारणत: जो कर लगाये जायँ वह इतने बड़े होने चाहिये कि मजदूर अपनी अनिवार्य आवश्यकताओं को पूरा करने के बाद उन्हें प्रदान कर पायँ। यदि मजदूरी में वृद्धि हो तो मजदूर के आगे चल कर दास बन जाने की सम्भावना ही नहीं रहती इसलिये जब तक जबरदस्ती का दौर दौरा रहेगा तब तक मजदूरी में वृद्धि कभी हो ही नहीं सकती। कुछ लोग जो दूसरे लोगों के साथ स्पष्ट खुले ढंग से जो अन्याय करते हैं उसे अर्थशास्त्रज्ञ लोहे के नियम के नाम से पुकारते हैं तथा जिस औजार के द्वारा अन्याय किया जाता है उसे यह लोग विनिमय साधन कहते हैं और यह निर्दोष विनिमय साधन जो मनुष्यों के पारस्परिक व्यापार के लिये आवश्यक है और कुछ नहीं रुपया ही है।

तब फिर ऐसा क्यों है कि जहाँ जबरदस्ती लगान रुपयों में वसूल नहीं किया जाता वहाँ रुपया अपने वास्तविक अर्थ में कभी

होता ही नहीं और न कभी हो ही सकता है बल्कि या तो भेड़, अनाज, खाल आदि पदार्थों का परस्पर विनिमय होता है या सीप, घोंघे जैसे किसी भी चीज को समयानुसार मूल्य निर्णायक मान लेते हैं जैसा कि फिजी निवासियों में, फिनीशियनों में, किरघियों में होता है और जैसा कि प्रायः उन लोगों में होता है कि जो अफ्रीकनों की तरह टैक्स ही नहीं देते।

जहाँ कहीं भी किसी निश्चित प्रकार का सिक्का प्रचलित होता है तो वह विनिमय का साधन नहीं रहता बल्कि ज़बरदस्ती से पिंड छुड़ाने का उपाय बन जाता है और उस सिक्के का प्रचार लोगों में तभी होता है जब कि सभी से किसी नियमित परिमाण में वह वसूल किया जाता है। तभी सब लोग एक सॉँ उसको प्राप्त करने के लिये उत्सुक होते हैं और तभी उसकी कोई क़दर और कीमत होती है।

एक बात यह भी है कि विनिमय के लिये जो सरल और उपयोगी चीज़ है उसी को विनिमय की शक्ति अथवा मूल्य प्राप्त नहीं हो जाता बल्कि विनिमय का साधन वही पदार्थ बनता है और उसी को विनिमय शक्ति प्राप्त होती है कि जिसे गवर्नमेंट चाहती है। यदि सोने की माँग होती है तो सोना कीमती होता है और यदि घुटने की हड्डियें माँगी जाने लगें तो वह मूल्यवान बन जायें। यदि यह बात नहीं है तो विनिमय के साधनों को सरकार सदा अपनी ही ओर से जारी रखने का अधिकार क्यों रखती है ? उदाहरणार्थ फिजी निवासियों ने अपना एक निज का विनिमय साधन निश्चित कर लिया है, वह जिस तरह चाहते हैं उस तरह विनिमय करने की स्वतंत्रता उन्हें मिलनी चाहिये और

तुम लोग जो बल या अत्याचार करने के साधन रखते हो उनके विनिमय में हस्तक्षेप न करो। किन्तु इसके बजाय तुम खुद सिक्के बनाते हो, किसी दूसरे को ऐसा करने नहीं देते या जैसा कि हम लोगों के यहाँ है, तुम लोग केवल कुछ नोट छापते हो उस पर जार का सर बना कर एक विशिष्ट प्रकार का हस्ताक्षर कर देते हो और धमकी देते हो कि यदि कोई जाली नोट बनायेगा तो सख्त सजा पायेगा। इसके बाद अपने कर्मचारियों में तुम उन्हें वितरित कर देते हो और यह चाहते हो कि प्रत्येक आदमी लगान और मालगुजारी आदि के रूप में तुम्हें इस प्रकार के सिक्के अथवा नोट दे जिस पर एक विशिष्ट प्रकार के हस्ताक्षर हों और वह इतनी संख्या में दिये जायें कि इन सिक्कों अथवा नोटों को प्राप्त करने के लिये वह अपनी सारी मेहनत और मजदूरी को बेचने पर मजबूर हो जाये और यह सब करने के बाद तुम हमें यह विश्वास दिलाना चाहते हो कि रुपया विनिमय साधन के रूप में हमारे लिये आवश्यक है।

समाज के सब लोग सुखी और स्वतंत्र हैं, कोई किसी को न सताता और न किसी को गुलामी में रखता है। किन्तु समाज में रुपये का आविर्भाव होता है और तुरन्त ही लोहे का सा कड़ा नियम बनता है जिसके परिणाम स्वरूप लगान की वृद्धि होती है और मजदूरी यथा सम्भव कम हो जाती है। रूस के आधे बल्कि आधे से अधिक किसान तरह तरह के कर अदा करने के लिये स्वेच्छापूर्वक अपने को जमीन्दारों अथवा कारखाने वालों के हाथ बेच डालते हैं क्योंकि मनुष्य का तथा अन्य प्रकार के करों को चुकाने के लिये उन्हें मजबूर होकर उन लोगों के पास

जाना पड़ता है कि जिनके पास रुपया है और उनकी आज्ञा-नुसार उन्हें उनकी गुलामी करनी पड़ती है। यही इस रुपये का खेल है।

जब गुलामी की प्रथा बन्द नहीं हुई थी तो मैं आइवन को कोई भी काम करने के लिये मजबूर कर सकता था और उसके इन्कार करने पर उसे पुलिस के हवाले कर देता जहाँ वह मार कर ठीक कर दिया जाता किन्तु यदि मैं आइवन से शक्ति से अधिक काम कराता और उसे वस्त्र या भोजन न देता तो यह मामला अधिकारियों के पास जाता और मुझे उसके लिये जवाब देना पड़ता।

किन्तु अब जब कि गुलामी उठ गई है मैं आइवन, पीटर या साइडर से कोई भी काम करा सकता हूं और यदि वह इन्कार करें तो मैं लगान अदा करने के लिये उन्हें रुपया नहीं देता और तब उन पर कोड़े पड़ते हैं। इस प्रकार वह मेरी बात मानने को बाध्य होते हैं। इसके अतिरिक्त मैं जर्मन, फ्रान्सीसी, चीनी तथा हिन्दुस्तानी को भी इसी साधन के द्वारा अपना काम करने के लिये मजबूर कर सकता हूँ, यदि वह राजी नहीं होते तो मैं जमीन किराये पर लेने के लिये या भोजन खरीदने के लिये उन्हें रुपया नहीं दूँगा और चूँकि उनके पास जमीन और भोजन कुछ भी नहीं है उन्हें मजबूर होकर मेरे पास आना पड़ेगा। और यदि मैं उनसे शक्ति से अधिक काम कराऊँ यहाँ तक कि अधिक काम ले लेकर मैं उन्हें मार भी डालूँ तब भी कोई मुझसे एक शब्द भी नहीं कह सकता और जो कहीं मैंने पोलिटिकल अर्थ शास्त्र की किताबें पढ़ली हैं तब तो फिर मुझे पूर्ण विश्वास हो

जाता है कि सभी मनुष्य स्वतंत्र हैं और रुपया गुलामी का कारण नहीं है।

हमारे किसान बहुत दिनों से जानते हैं कि मनुष्य लकड़ी की अपेक्षा रुपये से अधिक चोट पहुँचा सकता है। यह तो अर्थ-शास्त्र के धुरन्धर ज्ञाता लोग ही हैं कि जो इस बात को नहीं समझते।

रुपया गुलामी पैदा नहीं करता, यह कहना ऐसा ही है कि जैसे पचास वर्ष पहिले कोई यह दावा करता कि 'सर्फला' गुलामों का कायदा—गुलामी का बिलकुल ही कारण न था। अर्थ-शास्त्री कहते हैं कि रुपया विनिमय का एक निर्दोष साधन है हालाँ कि वह देखते हैं कि रुपया होने से मनुष्य दूसरे को अपने वश में कर लेता है, उसे गुलाम बना सकता है। यही क्यों ? अर्ध शताब्दि पहिले इसी तरह, क्या यह नहीं कहा जाता था गुलामी बजाते खुद तो पारस्परिक सेवा का एक निर्दोष प्रबन्ध है। गुलामी के कायदे के अनुसार कोई भी मनुष्य किसी को अपना गुलाम बना ले तो क्या हुआ ! यह तो एक पारस्परिक समझौता है। कुछ लोग शारीरिक श्रम करते हैं और दूसरे लोग अर्थात् मालिक अपने गुलामों के शारीरिक तथा मानसिक हितों का ख़याल रखते हैं और उनके काम का निरीक्षण करते हैं। और क्या ताज्जुब किसी ने ऐसा कहा भी हो।

यदि अन्य क़ानूनी विज्ञानों की तरह अर्थ-शास्त्र का भी यह उद्देश्य न होता कि समाज में होने वाले अन्याय अत्याचार का, समर्थन किया जाये तो वह अर्थ-शास्त्र यह देखे बिना न रहता कि द्रव्य का वितरण, कुछ लोगों को जमीन और पूँजी से वञ्चित कर देना, और कुछ लोगों का दूसरों को अपना गुलाम बना लेना—यह सब विचित्र बातें पैसे ही की वजह से होती हैं और पैसे ही के द्वारा कुछ लोग दूसरे लोगों की मेहनत का उपभोग करते हैं—उन्हें गुलाम बनाते हैं।

मैं फिर दोहराता हूँ जिसके पास पैसा है वह सारा अनाज ख़रीद कर अपने स्वत्वाधिकार में ला सकता है और चाहे तो अन्य लोगों को तरसा तरसा कर भूखों मार सकता है जैसा कि बड़े परिमाण में प्रायः हमारी आँखों के आगे होता है। यह देख कर किसी के भी मन में यह भावना उठ सकती है कि इन विचित्र घटनाओं के साथ पैसे का क्या सम्बन्ध है इसे खोजना चाहिये किन्तु अर्थ-शास्त्र पूर्ण विश्वास के साथ यह घोषित करता है कि इस मामले से पैसे का किसी प्रकार का कोई भी सम्बन्ध नहीं है।

अर्थ-विज्ञान कहता है—पैसा भी अन्य चीजों की तरह एक प्रकार का माल है जिसका मूल्य पैदावार पर निर्भर रहता है अन्तर केवल इतना है कि मूल्य निर्धारित करने, सञ्चित करने और दूसरी चीजों की कीमत चुकाने के लिये सरल और अनु-

कूल साधन होने के कारण इसे ही विनिमय साधन के रूप में पसन्द किया गया है। एक आदमी जूते बनाता है, दूसरा अन्न पैदा करता है, तीसरा भेड़ बकरियें पालता है और यह सब लोग अपनी चीजों को सरलता पूर्वक अदला बदली करने के लिये रुपया पैसा जारी करते हैं जो परिश्रम के पारितोषिक के रूप में ग्रहण किया जाता है, और इस विनिमय साधन द्वारा वह जूतों को माँस के टुकड़े से अथवा दस सेर आटे से बदल सकते हैं।

इस काल्पनिक विज्ञान के अनुयायी अपने समक्ष ऐसी अवस्था को चित्रित करने के अभ्यस्त और उत्सुक हैं किन्तु संसार में ऐसी अवस्था कभी हुई ही नहीं। समाज की अवस्था की यह कल्पना दार्शनिकों के उस आदिम अज्ञात् मानव समाज की कल्पना के समान है कि जहाँ वह मनुष्य को परिपक्व परिपूर्ण दोष-त्रुटि हीन अवस्था को प्राप्त हुआ मानते हैं। किन्तु ऐसी अवस्था का कभी अस्तित्व नहीं था।

मानव-समाज में जहाँ कहीं भी रुपये का चलन हुआ है वहाँ सशक्त और सशस्त्र लोगों ने दुर्बल और निःस्सहाय लोगों को सताया भी है और जहाँ कहीं भी अन्याय और अत्याचार हुआ है वहाँ मजदूरी या माल के मूल्य स्वरूप पैसा अथवा पशु, खाल, धातु, आदि जो कुछ भी रहा हो वह वस्तु विनिमय का साधन न रह कर दूसरों के बलात्कार से अपने को बचाने का साधन बन जाता है, उस पैसे अथवा पदार्थ का प्रायः यही उपयोग होता है कि उसे देकर अत्यचारी के हाथ से किसी प्रकार अपनी जान बचाई जाती है।

इसमें सन्देह नहीं कि विज्ञान पैसे में जिन निर्दोष गुणों का समावेश बताता है, वह उसके अन्दर मौजूद है किन्तु यह गुण वहीं कायम रह सकते हैं जहाँ जोर जुल्म और बलात्कार न हो— जहाँ एक आदर्श समाज की स्थापना हो। किन्तु ऐसे आदर्श समाज में मूल्य निर्णायक के रूप में पैसे का अस्तित्व ही न होगा क्योंकि जहाँ सर्व साधारण पर राज्य की ओर से अत्याचार नहीं होता वहाँ न तो पहिले कभी पैसे का अस्तित्व था और न अब हो सकता है। पैसे का मुख्य उद्देश्य वस्तु विनिमय का नियत साधन बनना नहीं बल्कि अन्याय और अत्याचार को आश्रय देना मात्र है। जहाँ अन्याय और अत्याचार है वहाँ विनिमय के नियत साधन के रूप में पैसे का उपयोग नहीं हो सकता। क्योंकि वह मजदूरी या माल की कीमत का ठीक एवज नहीं बन सकता। और कीमत का एवज न बन सकने का कारण यह है कि जब एक मनुष्य दूसरे मनुष्य की मेहनत को जबरदस्ती छीन सकता है तो फिर मूल्य-निर्णायक जैसी कोई वस्तु ही नहीं रह सकती।

किसी आदमी के पाले हुए घोड़े, गाय अथवा अन्य पशु दूसरे आदमियों द्वारा छीन लिये जायँ और वह बाजार में बेचने के लिये लाये जायँ और इन चुराये हुए घोड़े गाय आदि के मुकाबले में दूसरे घोड़े और गाय आदि पशु भी बराबर मूल्य पर बेचे जायँ तो यह स्पष्ट है कि इनका मूल्य इन पशुओं के पालने की मेहनत के बराबर कभी नहीं होगा। और इस परिवर्तन के साथ ही दूसरी चीजों के मूल्य पर भी असर पड़ेगा और उनमें भी परिवर्तन हुए बिना न रहेगा और इस प्रकार पैसा मूल्यों का निर्णय न कर सकेगा। इसके अतिरिक्त यदि कोई आदमी गाय

या घोड़े को जबरदस्ती छीन सकता है तो वह खुद रुपये को भी इसी प्रकार बलपूर्वक प्राप्त कर सकता है और इस रुपये के द्वारा वह सभी चीजों को खरीद सकता है। और जब रुपया खुद बलपूर्वक प्राप्त किया जाता है और वह चीजें खरीदने के काम में आता है तो उसमें विनिमय साधन का कोई गुण ही नहीं रहता।

जो अत्याचारी रुपया छीन कर दूसरों की मेहनत से पैदा की हुई चीजों के बदले में उसे देता है, वह तो बदले में कुछ देता ही नहीं—वह जो कुछ चाहता है मेहनत करनेवालों से उसे मिल जाता है।

अच्छा थोड़ी देर के लिये मान लीजिये कि इस प्रकार की असम्भव और काल्पनिक अवस्था का वास्तव में कहीं पर अस्तित्व है कि जहाँ बलात्कार नहीं है और रुपये का चलन है। सोने अथवा चाँदी का मूल्य निर्णायक तथा विनिमय साधन के रूप में प्रयोग होता है। इस समाज में जो कुछ बचत होती है वह रुपये के रूप में रहती है। विजेता के रूप में किसी अत्याचारी का समाज में प्रवेश होता है। मान लीजिये यह अत्याचारी विजेता लोगों के घोड़ों, कपड़ों मकानों और गो-धन पर अपना अधिकार बताता है किन्तु चूँकि इन सब चीजों को लेकर अपने पास रखना असुविधाजनक है इसलिये स्वभावतः वह उस रुपये पैसे को लेने की इच्छा करता है कि जो इन लोगों के सब प्रकार के मूल्यों का प्रतिनिधि समझा जाता है और जिसके द्वारा सब प्रकार की चीजें प्राप्त की जा सकती हैं। ऐसा होते ही इस समाज में विजेता और उसके सहकारियों के लिये रुपया एक दूसरे ही अर्थ का बोधक हो जाता है और अभी तक वस्तु विनिमय के साधन की सी जो खासियत उसमें थी वह एकदम जाती रहती है।

किस चीज का कितना मूल्य होना चाहिये इसका निर्णय सदा शक्तिशाली अत्याचारी की इच्छा पर निर्भर रहता है। जिन चीजों की उसे सब से ज्यादा आवश्यकता होती है और जिनके लिये वह अधिक रुपया देता है वही अधिक मूल्यवान समझी जाती हैं और जिनकी जरूरत उसे नहीं होती वह कम मूल्य की गिनी जाती है। जिस समाज में अत्याचार का प्रभाव हो जाता है वहाँ रुपये का वास्तविक अर्थ तुरन्त ही व्यक्त हो जाता है अर्थात् वह अत्याचार करने और अत्याचार से बचने का साधन बन जाता है और अत्याचार पीड़ित विजित लोगों में रुपया विनिमय का साधन उसी हद तक रहता है कि जहाँ तक अत्याचारी को उसे ऐसा बनाये रखने में सरलता और सुविधा होती है।

कल्पना कीजिये—किसान लोग अपने जमींन्दार को कपड़ा, मुर्गी, मुर्गे, भेड़, बकरियें, लाकर देते हैं और उनके लिये रोज मेहनत मजदूरी करते हैं। जमीन्दार इन चीजों के बजाय रुपया लेना स्वीकार करते हैं और चीजों का मूल्य निर्धारित कर देते हैं। जिन लोगों के पास कपड़ा, अनाज, पशु देने को नहीं हैं या जो शारीरिक सेवा नहीं कर सकते हैं वह एक निश्चित रकम अदा कर सकते हैं।

यह स्पष्ट है कि इस जमीन्दार के कृषक समाज में विविध वस्तुओं का मूल्य जमींन्दार की इच्छा पर ही निर्भर रहेगा। उसकी आवश्यकतानुसार चीजों का मूल्य कम या अधिक होगा। यदि उसे नाज की जरूरत है तो वह उसका मूल्य अधिक रक्खेगा और कपड़े, पशु या शारीरिक सेवा का कम। इसलिये जिनके पास

नाज नहीं होगा वह नाज खरीद कर जमींदार को देने के लिये अपनी श्रम, कपड़ा और पशु दूसरों के हाथ बेच डालेंगे।

यदि सभी चीजों के बदले जमीन्दार रुपया लेना पसन्द करे तब भी चीजों का मूल्य मेहनत को देखकर निश्चित न होगा बल्कि उसका निश्चय निर्भर रहेगा एक तो जमीन्दार द्वारा माँगी हुई रकम पर और दूसरे किसान द्वारा पैदा किये हुए उन पदार्थों पर जिनकी जमींदार को ज्यादा जरूरत होगी और जिनके लिये वह अधिक मूल्य देने को तैयार है।

जमींदार किसानों से जो रुपया माँगता है उसका असर चीजों की क़ीमत पर उसी हालत में नहीं पड़ेगा कि जब इस जमींदार के किसान दुनिया के दूसरे लोगों से एकदम अलहदा होकर रहें और उनका दूसरे लोगों से कोई सम्बन्ध न हो और दूसरे उस हालत में जब जमींदार रुपये से अपने गाँव में नहीं दूसरी जगह चीजें खरीदे। इन्हीं दो अवस्थाओं में चीज़ों की कीमत वस्तुतः अपरिवर्तित रह सकेगी। और रुपया मूल्य निर्णायक और विनिमय-साधन बन जायेगा।

किन्तु यदि इन किसानों का पड़ोस के गाँव वालों से कोई व्यापार सम्बन्ध होगा तो अपने पड़ोस के गाँव वालों के हाथ बेची जाने वाली चीजों का मूल्य उस गाँव के जमींदार द्वारा माँगी हुई रक़म के अनुसार होगा। यदि पड़ोस के गाँव के लोगों का अपने जमींदार को इस गाँव के लोगों की अपेक्षा कम रक़म देनी होती है तो इस गाँव की पैदावार दूसरे गाँव की पैदावार की अपेक्षा सस्ती बिकेगी और यदि दूसरे गाँव वालों को ज्यादा रक़म देनी पड़ती है तो इस गाँव की पैदावार वहाँ महँगी बिकेगी।

चीज़ों की क़ीमत पर ज़मीन्दार की रुपये की माँग का असर भी उसी हालत में नहीं पड़ेगा कि जब जमा की हुई रक़म अपनी असामियों की चीजें ख़रीदने में ख़र्च न हो। यदि वह अपने कृषकों से ख़रीदेगा तो यह स्पष्ट है कि भिन्न पदार्थों का मूल्य बराबर बदलता रहेगा। ज़मीन्दार जिस चीज़ को ज़्यादा चाहेगा और ख़रीदेगा उसी का मूल्य अधिक बढ़ जायगा।

एक ज़मींदार ने अपने गाँव के लोगों पर भारी मनुष्य-कर लगाया है और उसके पड़ोसी ने बहुत हल्का। यह स्वाभाविक है कि पहिले ज़मींदार की जागीर में दूसरे के गाँव की अपेक्षा प्रत्येक चीज़ सस्ती होगी क्योंकि यहाँ लोगों को रुपये की बहुत जरूरत होती है और दोनों ही रियासतों में मनुष्य-कर की वृद्धि अथवा कमी के ऊपर चीज़ों की क़ीमत निर्भर रहेगी। बलात्कार अथवा जबरदस्ती का चीज़ों के मूल्य पर एक यह असर पड़ता है।

पहिले के परिणाम स्वरूप एक दूसरा असर भी होता है और वह चीज़ों के सापेक्ष मूल्य से सम्बन्ध रखता है। फर्ज़ कीजिये एक ज़मींदार घोड़ों का शौक़ीन है और उनके लिये बड़ी बड़ी क़ीमतें देता है, दूसरे को तौलियों अगोछों का शौक है, और वह अँगोछों के लिये अच्छा मूल्य देता है। अब यह तो स्पष्ट ही है कि इन दोनों रियासतों में घोड़े और अँगोछे महँगे होंगे और उनका मूल्य निस्बतन गाय अथवा नाज के मूल्य से कहीं ज्यादा होगा। यदि कल अगोछों का शौक़ीन ज़मींदार मर जाये और उसके उत्तराधिकारियों को मुर्गे मुर्गियों का शौक हो तो यह स्पष्ट है कि अँगोछों की क़ीमत कम हो जायेगी और मुर्गे मुर्गियों की बढ़ जायेगी।

समाज में जहाँ एक मनुष्य दूसरे के ऊपर बलात्कार करता है वहाँ पैसा माल या मेहनत के मूल्य-स्वरूप कितने अंशों तक रहेगा यह एकदम अत्याचारी की इच्छा के ऊपर निर्भर रहता है; और विनिमय का साधन बनने की इसकी योग्यता नष्ट होकर दूसरों की मेहनत से लाभ उठाने का एक अत्यन्त अनुकूल और सुविधा-जनक साधन हो जाता है। अत्याचारी को पैसे की न तो विनिमय के लिये जरूरत पड़ती है—क्योंकि वह जो चाहता है बदले में कुछ दिये बिनाही ले लेता है—और न चीजों के मूल्य निर्णय के रूप में उसे पैसे की आवश्यकता है—क्योंकि वह स्वयं ही प्रत्येक पदार्थ का मूल्य निर्धारित करता है—उसे पैसे की जरूरत होती है केवल इसलिये कि दूसरों पर अत्याचार करने का बड़ाही अच्छा सुविधा-जनक साधन बन जाता है और यह सुविधा इस बात में है कि रुपया पैसा खूब इकट्ठा किया जा सकता है और इसके द्वारा अधिकांश मानव-समाज को गुलाम बनाकर रक्खा जा सकता है।

अपने को जिस समय जितने घोड़े, गाय, भेड़ चाहिये उतने उसी समय मिल सकें इसके लिये इन सभी जानवरों को लेकर अपने पास रखना सुविधा-जनक नहीं है क्योंकि उन्हें चारा देना पड़ता है, नाज में भी यही बात है क्योंकि उसके सड़-गल जाने की सम्भावना है, गुलामों के सम्बन्ध में भी ऐसा ही है, किसी समय मनुष्य को हजारों की जरूरत हो सकती है और किसी समय एक की भी नहीं। किन्तु जिनके पास रुपया नहीं है उनसे रुपया माँगने से यह सब असुविधायें दूर हो जाती हैं और जिस चीज की जरूरत हो वह भी मिल सकती है इसीलिये

अत्याचारी रुपया माँगता है। इसके अतिरिक्त रुपया माँगने में एक यह भी सुविधा है कि दूसरे मनुष्यों के परिश्रम से लाभ उठाने का उसका अधिकार कुछ थोड़े से मनुष्यों तक ही परिमित नहीं रहता बल्कि जिस किसी को भी रुपये की जरूरत हो उन सभी तक व्याप्त हो सकता है।

जब रुपये का चलन न था तो प्रत्येक जमींदार केवल अपने ही असामियों की मेहनत का लाभ ले सकता था किन्तु जब वह मिल कर किसानों से रुपया माँगने लगे जो उनके पास नहीं था तब बिना किसी प्रकार के भेद-भाव के सभी राज्यों के आदमियों के परिश्रम का उपभोग करने में समर्थ बन गये। इस प्रकार लोगों की मजदूरी के फल को रुपये के रूप में लेने से उन्हें बड़ी सुविधा होती है और केवल इसीलिये रुपया चाहा जाता है।

जिन गरीब दुःखी लोगों से रुपया लिया जाता है उनके लिये वह न तो विनिमय में काम आता है—क्योंकि वह तो बिना पैसे के ही चीजों को अदला बदली कर लेता है जैसा कि राज्य-सत्ता की स्थापना के पहिले सभी जातियें करती थीं; न चीजों का मूल्य निर्धारित करने के काम में—क्योंकि यह निर्णय तो उससे पूछे बिना ही कर दिया जाता है; न संचय के काम में—क्योंकि जिसकी पैदावार छीन ली जाती है उसके पास सञ्चय करने को कुछ रह ही नहीं जाता और न लेन देन के काम में—क्योंकि अत्याचार-पीड़ित को लेने की अपेक्षा सदा देना ही अधिक पड़ता है; और यदि उसे कुछ मिलता भी है तो वह रुपये के रूप में नहीं बल्कि उसे कच्चा माल ही मिलता है। यदि मजदूर अपनी मेहनत के बदले में अपने मालिक की दूकान से चीजें लेता है तब तो

उसे रुपया न मिल कर माल मिलता ही है और यदि वह अपने कमाई से जीवन की आवश्यक सामग्री दूसरी दुकान पर खरीदने जाता है तो उससे फौरन ही रुपया माँगा जाता है, और उसे धमकी दी जाती है कि यदि रुपया अदा न करोगे तो न तुम्हें जमीन दी जायेगी और न अन्न दिया जायगा। या फिर तुम्हारी गाय या घोड़ा छीन लेंगे, या तुमसे जबरदस्ती काम करायेंगे और फिर तुम्हें जेल भेज देंगे। इस आफत से वह अपनी पैदावार और अपनी तथा अपने बच्चों की मेहनत बेच कर ही छुटकारा पा सकता है और यह भी साधारण विनिमय के निश्चित मूल्य पर नहीं बल्कि पैसा माँगने वाली सत्ता द्वारा निश्चय किये हुए मूल्य पर उसे बेचनी पड़ेगी।

इस स्थिति में कि जब लगान और कर का प्रभाव चीजों के मूल्य पर पड़ता है, और जैसा कि सभी जगह होता है, जमीन्दारों के यहाँ छोटे पैमाने पर और राज्य में बड़े पैमाने पर। और राज्यों में जो मूल्य में हेर फेर होते हैं उनके कारण तो हमें इतने स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ते हैं कि जैसे मदारी को पर्दे के पीछे खड़ा देख कर कठपुतलियों के चलने फिरने का कारण हर कोई समझ जाता है—तब फिर ऐसी स्थिति में, यदि कोई दावा करे कि रुपया विनिमय का साधन और मूल्य निर्णायक है तो यह और कुछ नहीं तो कम से कम आश्चर्य-जनक तो है ही !

सब प्रकार की दासता का एक मात्र कारण यही है कि एक आदमी दूसरे आदमी की जान ले सकता है और जान लेने की धमकी देकर उसे अपनी इच्छानुसार काम करने पर मजबूर कर सकता है। हम निश्चयात्मक रुपसे यह देख सकते हैं कि जब कोई आदमी इच्छा के विरुद्ध दूसरे आदमी की इच्छानुसार ऐसा काम करता है जो उसी की रुचि के प्रतिकूल है तो खोजने पर हमें मालूम होगा कि इसका मूल कारण और कहीं नहीं किसी न किसी रुपमें इसी धमकी के अन्दर से उदीयमान होता है। यदि एक आदमी अपनी सारी कमाई दूसरे को दे देता है, उसके पास खाने तक को नहीं रहता, अपने बच्चों को सख्त मेहनत करने के लिये भेजता है, खेतों को बिना जोते पड़ा रहने देता है और अपना सारा जीवन घृणित अनावश्यक काम करने में व्यतीत करता है जैसा कि दुनियाँ में हमारी आँखों के आगे ही होता है—इस दुनियाँ में जिसे हम सभ्य कहते हैं सिर्फ इसलिये कि हम उसमें रहते हैं—तब हम यह सब देखकर निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि वह यह सब काम इसीलिये करता है कि इन कामों को न करना जान से हाथ धोने के समान होगा।

हमारे इस सभ्य संसार में, जहाँ अधिकांश लोग कठोर से कठोर कष्ट सहकर भी ऐसे काम करते हैं जो उन्हें पसन्द नहीं और जिनकी उनको जरुरत नहीं, एक प्रकार की भयंकर दासता

सभी देशों में दुष्काल था पर मिश्र भर में खाने को मौजूद था।

५५ फिर जब सारे मिश्र देश में खाने की कमी हुई तब लोगों ने फैरोआ के पास जाकर भोजन के लिये चिल्लाना शुरु किया, फैरोआ ने सब मिश्र निवासियों से कहा—यूसूफ के पास जाओ, वह जैसा कहे, वैसा करो।

सारी पृथ्वी भर में दुष्काल का जोर था, यूसुफ ने अपने सब कोठार खोल दिये और मिश्र वासियों को नाज बेचने लगा, मिश्र देश में दुष्काल का खूब जोर था।

सभी देश के लोग मिश्र में यूसुफ के पास नाज खरीदने को दौड़े क्योंकि सभी देशों में भयानक दुष्काल था।

तलवार की धमकी से लोगों को गुलाम बनाने की आदिम रीति का उपयोग करके दुष्काल के समय के लिये यूसुफ ने सुकाल में नाज इकट्ठा किया। फैरोआ के स्वप्न के अतिरिक्त सब लोग भी जानते हैं कि अच्छे सालों के बाद प्रायः ही दुष्काल पड़ता है। इस प्रकार भूख के द्वारा मिश्र के आस पास के देशों के लोगों को यूसूफ ने सरलता पूर्वक और निश्चित रूप से अपने ताबे में कर लिया फिर जब लोग भूखों मरने लगे तब उसने ऐसी तरकीब की जिससे लोग सदा के लिये उसके कब्जे में रहें। (प्रकरण ४७ पद १३-२६ में इसका नीचे लिखे अनुसार वर्णन है।)

पीछे सारे देश में खाने को न रहा क्योंकि दुष्काल भयंकर था। मिश्र तथा कनआँ भर में मुर्दनी सी छा गई।

यूसूफ ने जो नाज बेचा था उसके बदले में मिश्र तथा कनआँ में जितना रुपया था सब इकट्ठा कर लिया और यह सारा धन युसूफ ने फैरोआ के घर में लाकर रक्खा।

जब मिश्र तथा कनआँ में रुपया न रहा तो सब मिश्र-वासियों ने यूसुफ के पास आकर कहा—हमें खाने को दो। हमारे पास रुपया नहीं है, पर तुम्हारे होते हुए क्या हम भूखों मरेंगे ?

यूसुफ ने कहा—तो तुम अपने पशु लाओ, द्रव्य नहीं रहा है तो तुम्हारे पशु लेकर तुम्हें अनाज देंगे।

तब लोग यूसुफ के पास अपने पशु ले गये और यूसुफ ने उनके घोड़े, गाय, बैल, भेड़े बकरे और गधे लेकर बदले में उन्हें अनाज दिया। और उनके सब पशु लेकर एक साल तक उन्हें अन्न दिया।

वर्ष समाप्त होने पर दूसरे वर्ष वह लोग यूसुफ के पास आये और कहने लगे—महाराज! हम आपसे कुछ छिपाना नहीं चाहते हमारा द्रव्य समाप्त हो गया है हमारे पशु भी बिक गये हैं। आप जानते हैं कि अब हमारे पास हमारे शरीर और हमारी जमीन के सिवाय और कुछ भी बाकी नहीं रहा।

तो क्या हम लोग तुम्हारी आँखों के सामने अपनी जमीन के साथ खत्म हो जायेंगे। हमें और हमारी जमीन को अन्न के बदले में ले लो, हम और हमारी जमीन फेरोआ के तावे में रहेगी। हमें बीज दो जिससे हम जीवित रहें और जमीन उजाड़ न हो जाये।

यूसुफ ने मिश्र की सारी जमीन फेरोआ के लिये खरीद ली। मिश्रवासियों में से हर एक ने अपने खेत बेच डाले। क्योंकि वह अकाल से पीड़ित हो रहे थे। इस सारी जमीन फेरोआ की मिल्कियत हो गई।

आदमियों के लिये उसने यह किया कि मिश्र के एक छोर से

लेकर दूसरे छोर तक के सब लोगों को शहरों में ला कर बसाया।

सिर्फ पुरोहितों की जमीन यूसुफ ने नहीं खरीदी, क्योंकि वह फैरोआ की ओर से वृत्ति के रूप में दी गई थी और उसी से वह अपनी गुजर करते थे, इसलिये उन्होंने अपनी जमीन बेची नहीं।

तब यूसुफ ने लोगों से कहा—देखो, आज हमने तुम्हें और तुम्हारी भूमि को फैरोआ के लिये खरीद लिया है, अब लो यह बीज और जमीन जोतो बोओ।

पर जब नाज पके तो फसल का पाँचवाँ भाग फैरोआ को देना और शेष चार भाग तुम्हारे रहेंगे। इसमें से तुम बीज के लिये रख छोड़ना और अपना, अपने कुटुम्ब का और अपने बाल बच्चों का भरण पोषण करना।

लोगों ने कहा—तुमने हमें जीवन दान दिया है। महाराज! हम पर कृपा-दृष्टि रक्खो, हम फरोआ के सेवक होकर रहेंगे।

और युसुफ का बनाया हुआ नियम मिश्र देश में आज तक जारी है कि जमीन की पैदावार का पाँचवाँ भाग फैरोआ को मिलता है केवल पुरोहितों की जमीन इस नियम से मुक्त है। क्योंकि वह फैरोआ ने खरीदी नहीं थी।

इससे पहिले लोगों की मजदूरी में लाभ उठाने के लिये फैरोआ का उनपर अत्याचार और बलात्कार द्वारा काम करना पड़ता था पर अब तो जमीन और फसलें सभी पर फैरोआ का अधिकार होने से केवल नाज के भण्डार को बल पूर्वक अपने अधीन रखने की जरूरत थी और फिर भूख उनसे सब काम करा लेती।

सारी जमीन फैरोआ की हो गई और लोगों से वसूल किया

हुआ नाज का भण्डार भी उसी के अधीन था इसलिए प्रत्येक मनुष्य से तलवार के भय से काम करवाने के बदले उसे केवल नाज को ही यत्न पूर्वक अपने कब्जे में रखना था, और लोग तलवार से नहीं वरन् भूख से उसके गुलाम बनने लगे।

किसी वर्ष अकाल पड़े तो सभी लोगों को फैरोआ चाहे तो भूखों मार सकता है और सुकाल में भी जिसके पास किसी आकस्मिक घटना के कारण अन्न न हो वह भी भूखों मारा जा सकता है।

इस प्रकार गुलाम बनाने की दूसरी रीति स्थापित हुई। वह सीधे तलवार के बल पर नहीं क्योंकि उसमें वो निर्बल को मौत का डर बता कर अपने लिये काम करने को बाध्य करता है। इस रीति में बलवान मनुष्य सारा नाज अपने अधिकार में ले लेता है और उस पर सशस्त्र पहरा रख कर निर्बल मनुष्यों को भी अन्न प्राप्ति के लिये काम करने को मजबूर करता है।

यूसुफ ने भूखे लोगों से कहा—मेरे पास अन्न है इसलिये मैं तुमको भूखों मार सकता हूँ। पर मैं तुमको इस शर्त पर बचा सकता हूँ कि मैं तुम्हें जो भोजन दूँ उसके बदले में तुम हमारा काम करो।

गुलाम बनाने की पहिली पद्धति में सत्ताधारी मनुष्य के पास केवल सशस्त्र सिपाहियों ही की जरूरत होती है जो गाँव के लोगों पर अपना रोब जमा कर और मौत का डर बता कर अपने मालिक की आज्ञा का लोगों से पालन कराते हैं।

पहिली पद्धति में केवल अपने सैनिकों को ही दूसरों से अपहरण की हुई सम्पत्ति में से भाग देना पड़ता है, किन्तु दूसरी

पद्धति में अनाज के भण्डारों की तथा जमीन की भुखमरों से रक्षा करने वाले सिपाहियों के अतिरिक्त अत्याचारी को अन्य प्रकार की मदद देने वाले तथा अनाज को इकट्ठा करने तथा बेचने का काम करने वाले अनेक छोटे मोटे युसुफों की आवश्यकता पड़ती है। इसलिये अन्यायी को अपनी उपज में से कुछ भाग इन लोगों को भी देना पड़ता है; यूसुफ को सुन्दर वस्त्र, सोने की अँगूठी नौकर चाकर तथा अनाज और उसके भाइयों तथा सगे सम्बन्धियों को सोना चाँदी प्रदान करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त दूसरी पद्धति में यह भी है कि केवल व्यवस्थापक तथा नौकर चाकर ही उसमें भागीदार नहीं होते बल्कि स्थिति ही ऐसी होती है कि जिस किसी के पास भी अनाज का भण्डार होता है वह सब अन्न विहीन भूखे लोगों पर अन्याय करने में सम्मिलित हो जाते हैं। पहिली पद्धति में जो नितान्त बल पर अवलम्बित है प्रत्येक शस्त्रधारी मनुष्य निर्बलों और निःशस्त्र लोगों पर अन्याय करने में हिस्सा लेने लगता है। ठीक इसी तरह दूसरी पद्धति में जो भूखों मारने की नीति पर अवलम्बित है, प्रत्येक मनुष्य जिसके पास नाज भरा हुआ है इस अन्याय व्यापार में भागीदार बन जाता है और जिनके पास नाज नहीं होता उन पर हुकूमत करता है।

पहिली पद्धति की अपेक्षा इस पद्धति में जुल्म करने वालों को यह लाभ है:—(१) मजदूरों से अपनी इच्छानुसार काम करा लेने में विशेष श्रम नहीं करना पड़ता। मजदूर स्वयं ही आते हैं और अपने को उसके हाथों बेच डालते हैं (२) पहिली पद्धति की अपेक्षा बहुत थोड़े मनुष्य उसके अन्याय पाश से बच सकते

हैं। इस दूसरी पद्धति में अत्याचारी की हानि सिर्फ इतनी ही है कि पहिली पद्धति की अपेक्षा इसमें अधिक लोगों को भाग देना पड़ता है।

इस दूसरी पद्धति में पीड़ित लोगों को लाभ यह है कि उन्हें सदा निरे पशु-बल के अधीन रहना नहीं पड़ता, इससे वे निश्चिन्त रहते हैं और दलित अवस्था में से निकलकर स्वयं अत्याचारी वर्ग में सम्मिलित होने की आशा वे कर सकते हैं। अनुकूल अवस्था मिलने पर वे इस स्थिति को प्राप्त भी कर लेते हैं। उनके लिये खराबी यह है कि अन्याय में भाग लेने से वे कभी बच नहीं सकते, दरिद्र अवस्था में वे अन्याय-पीड़ित होंगे तो समृद्ध अवस्था में वे स्वयं दूसरों पर अन्याय करने लगेंगे।

गुलाम बनाने की यह नई पद्धति प्रायः पुरानी पशु-बलवाली नीति के साथ ही साथ काम में आती है। जैसी जैसी जरूरत होती है वैसे वैसे बलवान मनुष्य पहिली पद्धति को संकुचित करता जाता है और दूसरी पद्धति का अधिकाधिक प्रयोग करता जाता है। किन्तु सत्ताधारी को इस पद्धति से भी पूरा पूरा सन्तोष नहीं होता, क्योंकि वह तो चाहता है कि अधिक से अधिक मजदूरों की मेहनत से जितना अधिक सम्भव हो, लाभ उठाया जाय और जितने अधिक लोग बन सकें उन्हें गुलाम बनाया जाय। इसलिये एक तीसरी पद्धति का आविर्भाव होता है।

यह नई तीसरी पद्धति कर लगाने की है। दूसरी पद्धति के अनुसार यह भी भूखों मारने की नीति पर अवलम्बित है, परन्तु मनुष्यों से उनकी रोटी छीन लेने के बाद उन्हें गुलाम बनाने के लिये जीवन-सम्बन्धी दूसरी आवश्यकतायें भी अपहरण कर ली

जाती हैं। बलवान मनुष्य अपने ही द्वारा बनाये हुए सिक्कों को इतनी बड़ी संख्या में वसूल करता है कि इन सिक्कों को प्राप्त करने के लिये गुलामों को यूसफ़ द्वारा निश्चित पंचमांश अनाज की अपेक्षा कहीं अधिक नाज बेचना पड़ता है और केवल इतना ही नहीं, बल्कि अपनी खास ज़रूरत की चीजें माँस, चमड़ा, ऊन, कपड़ा, बरतन और मकान तक बेच डालने पड़ते हैं। इस प्रकार अत्याचारी केवल भूख के डर से ही नहीं बल्कि शीत, प्यास तथा अन्य प्रकार की आपत्तियों का डर दिखाकर अपने गुलामों को सदा अपने कब्जे में रख सकता है।

इस ढङ्ग से तीसरी तरह की गुलामी—पैसे की गुलामी अस्तित्व में आती है। इसमें सबल मनुष्य निर्बल से कहता है—

तुम में से प्रत्येक मनुष्य के साथ में चाहूँ जैसा व्यवहार कर सकता हूँ, मैं तुम्हें बन्दूक से मार सकता हूँ, अथवा तुम्हारी आजीविका की देने वाली तुम्हारी ज़मीन छीन कर तुम्हें नष्ट कर सकता हूँ अथवा इसी रुपये से जो तुम मुझे दोगे, मैं तुम्हारे खाने का सारा नाज खरीद कर और दूसरे लोगों के हाथ बेचकर तुम्हें भूखों मार सकता हूँ, मैं तुम्हारे वस्त्राभूषण, तुम्हारा घर-बार गर्ज़ कि तुम्हारे पास जो कुछ है, वह सभी मैं छीन ले सकता हूँ। पर यह मेरे लिये अनुकूल नहीं है और ऐसा करना मुझे अच्छा भी नहीं लगता, इसीलिये मैं तुम्हें इस बात की स्वतंत्रता देता हूँ कि तुम जो चाहो काम करो बस, तुम्हें इतना करना होगा कि मैं मनुष्य-कर के रूप में, अथवा तुम्हारी ज़मीन के हिसाब से या तुम्हारे खाने पीने की चीजों अथवा वस्त्राभूषणों या मकानों के लिहाज़ से मैं जितना रुपिया माँगूँ, वह

तुम मुझे दे दो। तुम यह रकम अदा कर दो और फिर आपस में जैसे चाहो रहो, जो चाहो सो करो, पर इस बात को समझ लो कि मैं न तो अनाथ विधवाओं की रक्षा करूंगा, न बीमार और बूढ़े लोगों की और न ऐसे लोगों की, जिनका घरबार आग से जल गया है। मैं तो सिर्फ इस बात की व्यवस्था करूँगा कि रुपये का लेन-देन ठीक तरह चलता रहे। जो लोग नियमित रूप से निश्चित रक़म मुझे देते रहेंगे, उनकी ही रक्षा करने की जिम्मेवारी मैं लेता हूँ। मुझे इस बात की पर्वाह नहीं कि लोग इस रुपये को कहाँ से और किस प्रकार लाते हैं।

अपनी माँग की स्वीकृति-स्वरूप अन्यायी बलवान मनुष्य अपने बनाये हुए सिक्के लोगों में वितरण कर देता है।

गुलाम बनाने की दूसरी पद्धति ऐसी थी कि फैरोआ लोगों से फसल का पाँचवाँ भाग लेकर कोठों में भर रखता और तलवार द्वारा प्राप्त हुई अङ्ग-दासता के अतिरिक्त अपने व्यवस्थापकों की सहायता से अकाल पड़ने के समय सभी मजदूरों पर और आकस्मिक आपत्ति पड़ने पर विपन्न लोगों पर, अपना शासन चलाता।

तीसरी पद्धति यह थी, फैरोआ लोगों से लिये जाने वाले अनाज के पंचमांश के मूल्य से अधिक रुपया माँगता है और इस प्रकार अपने व्यवस्थापकों की सहायता से अकाल अथवा आकस्मिक दुर्घटनाओं के समय ही नहीं, बल्कि हमेशा के लिये मजदूर वर्ग पर अपना शासन चलाने का एक नया साधन पैदा करता है।

दूसरी पद्धति में लोग कुछ नाज बचा रखते हैं जो अकाल

अथवा आकस्मिक विपत्ति के समय उनकी सहायता करता है और उन्हें गुलामों के जाल में फँसने से बचा लेता है। तीसरी पद्धति में कर की रकम भारी हो तो सारा अनाज और साथ ही जीवनोपयोगी अन्य आवश्यक चीजें भी बेचनी पड़ती हैं और इस कारण जरा सा सङ्कट पड़ने पर मजदूरों को पैसे वालों का गुलाम बनना पड़ता है, क्योंकि इनके पास न तो अनाज रह जाता है और न ऐसी कोई चीज़ ही शेष रहती है जिसके बदले में अनाज प्राप्त किया जा सके।

पहिली पद्धति में अत्याचारी को केवल सैनिकों की ही आवश्यकता होती है और उनको ही भाग देना पड़ता है। दूसरी पद्धति में अनाज के भण्डार के रक्षकों के अलावा अनाज को इकट्ठा करने और बेचने का प्रबन्ध करने के लिये कर्मचारियों को भी रखना पड़ता है। तीसरी पद्धति में जमीन और जायदाद की रक्षा के लिये सिपाहियों को रखने के अतिरिक्त, कर लगाने वालों, मनुष्य-कर का प्रबन्ध करने वालों, निरीक्षकों, जकात का हिसाब रखने वालों, रुपये बनाने और उसकी व्यवस्था करने वाले कर्मचारियों की भी आवश्यकता होती है।

दूसरी पद्धति की अपेक्षा तीसरी पद्धति में व्यवस्था रखने का काम कहीं अधिक जटिल है। दूसरी पद्धति में तो नाज लगाने का काम ठेके पर दिया जा सकता है जैसा पुराने ज़माने में होता था और जैसा अब भी तुर्किस्तान में होता है। किन्तु लोगों के ऊपर कर लगाने से तो कर लगाने योग्य मनुष्यों की, और कोई मनुष्य अथवा कोई उद्योग कर लगने से बच न जाय इस बात की, बड़ी भारी व्यवस्था रखनी पड़ती है और इसीलिये

इस पद्धति में अत्याचारियों को दूसरी पद्धति की अपेक्षा अधिक मनुष्यों को अपनी आय का भाग देना पड़ता है। इस पद्धति में स्थिति कुछ ऐसी होती है कि जिनके पास पैसा है वे सभी लोग अन्यायी के भागीदार बन सकते हैं, फिर चाहे वे देशी हों अथवा विदेशी। पहिली और दूसरी पद्धति की अपेक्षा अन्यायी को तीसरी पद्धति में ये लाभ विशेष होते हैं:—

पहिली बात तो यह है कि यूसुफ की तरह इस पद्धति में अकाल की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती, बल्कि परिस्थिति ऐसी बना दी जाती है कि सदा ही दुष्काल बना रहता है। दूसरी पद्धति में किसानों से फसल की पैदावार के अनुसार ही लगान आदि वसूल किया जा सकता है, इच्छानुसार बढ़ाया नहीं जा सकता क्योंकि यदि उनके पास अधिक नाज नहीं है तो उनसे अधिक प्राप्ति की कोई सूरत ही नहीं रहती किन्तु इस नवीन द्रव्य-पद्धति में तो जितना चाहो उतना वसूल कर लो, क्योंकि बेचारे किसान को ऋण चुकाने के लिये अपने पशु, वस्त्र और मकान तक बेचने पड़ते हैं। अन्यायी को इसमें मुख्य लाभ यह है कि वह दूसरों के परिश्रम का अधिक से अधिक फल अत्यन्त सुविधा और सरलता के साथ छीन ले सकता है क्योंकि लोहे के पेंच की तरह द्रव्य-कर को सरलतापूर्वक अन्तिम सीमा तक पहुँचाया जा सकता है और सुनहले अंडे प्राप्त किये जा सकते हैं। भले ही अंडे देने वाली मुर्गी मृत्यु-कूल पर ही जा पहुँचे।

दूसरा लाभ यह है कि इस पद्धति में जिनके पास जमीन नहीं होती है उन पर भी अन्यायी अपना हाथ फेर सकता है। पहिले तो ये लोग अपनी मेहनत का थोड़ा सा भाग अत्याचारी

को देकर उसके अन्याय से छुटकारा पा जाते थे। अब तो अनाज के बदले में मजदूरी का जो भाग देते थे, उसे देने के बाद भी कर के रूप में मजदूरी का और भी बहुत सा हिस्सा देना पड़ता है।

अत्याचारी को इसमें हानि यह है कि बहुत सारे लोगों को अपनी आय का भाग देना पड़ता है। अपने व्यवस्थापकों तथा कर्मचारियों को ही नहीं, बल्कि उन सब को हिस्सा देना पड़ता है कि जिनके पास रुपया होता है और वह देशी तथा विदेशी दोनों ही तरह के लोग हो सकते हैं।

दूसरी पद्धति की अपेक्षा इस तीसरी पद्धति में पीड़ित लोगों को लाभ इतना ही है कि इसमें कुछ अधिक स्वतंत्रता रहती है, वे जहाँ चाहें रहें, जो चाहें करें, वे खेत बोयें या न बोयें, किसी को उन्हें हिसाब देने की जरूरत नहीं, और यदि उनके पास द्रव्य है तो वे अपने को एकदम स्वतंत्र भी समझ सकते हैं और यदि उनके पास कुछ फाजिल रुपया हो तो वे केवल स्वतंत्र ही नहीं, बल्कि खुद अत्याचारी का पद प्राप्त करने की भी आशा कर सकते हैं, और थोड़े समय के लिये वे उस स्थिति को पहुँच भी जाते हैं।

अन्याय पीड़ित लोगों को इसमें हानि यह है कि औसतन उनकी हालत बहुत खराब हो जाती है। उनकी कमाई का अधिकांश भाग उनसे ले लिया जाता है, क्योंकि उनकी मेहनत पर मजे उड़ाने वाले लोगों की संख्या बढ़ जाती है और इसलिये उनके भरण-पोषण का भार बचे हुए थोड़े लोगों पर पड़ता है।

गुलाम बनाने की यह तीसरी पद्धति भी बहुत पुरानी है।

पहिली दोनों पद्धतियों को एक दम ही परित्यक्त किये बिना उनके साथ साथ अमल में आती है। मनुष्यों को गुलाम बनाने की यह तीनों पद्धतियें सदा ही अमल में आती रही हैं।

इन तीनों पद्धतियों को पेचदार कीलों से मिसाल दी जा सकती है जो मजदूरों को दबाने वाले तख्ते में लगी हुई हों। बीच का पेच, जिस पर सब का दारोमदार है और जिसके बिना दूसरे पेच बेकाम हैं, जो सब से पहिले कसा जाता है और कभी ढीला नहीं किया जाता है—अङ्ग-दासता का पेच है जिसमें मार डालने की धमकी देकर कुछ लोग दूसरे लोगों को अपना गुलाम बनाते हैं, लोगों की जमीन तथा अनाज छीन कर उन्हें गुलाम बनाना, यह दूसरा पेच है। पहिले पेच के बाद यह पेच कसा जाता है। इसमें भी मौत का डर दिखाकर ही जमीन और अनाज पर कब्जा कायम रक्खा जाता है। लोगों के पास जो रुपया नहीं होता है, उसे कर के रूप में लोगों से माँग कर गुलाम बनाना तीसरा पेच है और इसमें भी जो रुपये की माँग होती है, उसके पीछे भी हत्या की धमकी तो रहती ही है।

यह तीनों पेच कस दिये जाते हैं और ढीले उसी हालत में किये जाते हैं जब इनमें से एक और भी अधिक जोर के साथ कस दिया जाता है। श्रम-जीवियों को पूर्ण-रूप से गुलाम बनाने के लिये यह तीनों ही जरूरी हैं और हमारे समाज में इन तीनों का प्रयोग हो रहा है। तलवार से मार डालने की धमकी देकर लोगों को गुलाम बनाने की पहिली पद्धति नष्ट तो कभी हुई ही नहीं और न होगी जब तक अत्याचार का अस्तित्व रहेगा। क्योंकि यह धमकी ही सभी प्रकार के अत्याचारों का आधार है।

हम लोग निश्चित रूप से समझते हैं कि हमारे सभ्य संसार से गुलामी बिलकुल नष्ट कर दी गई है और उसके अन्तिम अवशेष भी अमेरिका तथा रूस में भस्मीभूत हो गये। हम समझते हैं कि अब कुछ जंगली जातियों में ही यह प्रथा पायी जाती है, हमारे अन्दर तो अब उसका कोई अस्तित्व ही नहीं है। किन्तु जब हम यह सोचते हैं, तो एक छोटी सी बात भूल जाते हैं—उन लाखों सशस्त्र सैनिकों को हम भूल जाते हैं कि जो प्रत्येक राज्य में पाये जाते हैं और जिनके बिना कोई भी राज्य टिक नहीं सकता। यह लाखों सैनिक अपने शासकों के गुलाम नहीं तो और क्या हैं ? क्या ये लोग मृत्यु और यातना की धमकी के कारण जो धमकी कभी २ अमल में भी आती है, अपने सेनानायकों की आज्ञा पालन करने के लिये मजबूर नहीं होते ? अन्तर केवल इतना ही है कि इन गुलामों की तावेदारी को गुलामगीरी नहीं, अनुशासन कहते हैं और दूसरे गुलाम मरणपर्यन्त गुलामी करते हैं। किन्तु ये सैनिक, नौकरी कहलाने वाले ज़माने में ही, गुलामी करते हैं।

अपने सभ्य संसार में गुलामी नष्ट नहीं हुई इतना ही नहीं, बल्कि अनिवार्य सैनिक-सेवा के कारण कुछ समय से तो वह और भी दृढ़ हो गई है। पहिले ही की तरह गुलामी अब भी चली आती है, केवल उसके रूप में थोड़ा सा परिवर्तन हुआ है। और जब तक एक आदमी दूसरे को किसी प्रकार की गुलामी में रखने का उद्योग करेगा तब तक तो यह व्यक्तिगत दासता भी जारी रहेगी कि जिसमें तलवार के जोर से जमीन पर अधिकार जमाने और कर वसूल करने का काम होता है।

देश की रक्षा और गौरव-वृद्धि के लिये, जैसा कि कहा जाता है, सम्भव है कि यह सैनिक-दासता जरूरी हो किन्तु यह जरूरत भी है अत्यन्त सन्देहास्पद। क्योंकि हम देखते हैं कि युद्ध में पराजय होने के बाद प्रायः यही सेना देश की दासता और अपकीर्ति का कारण बन उठती है। किन्तु इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं कि जमीन और कर सम्बन्धी गुलामी को क़ायम रखने के लिये यह सैनिक-दासता आवश्यक और अत्यन्त उपयोगी है।

यदि आयरिश या रूसी किसान जमीन्दारों की जमीन पर अधिकार कर लें, तो तुरन्त ही उन्हें अधिकार-च्युत करने के लिये सेना भेजी जायेगी। यदि कोई शराब की भट्ठी बनाये और आबकारी टैक्स अदा न करे तो उसे बन्द कर देने के लिये फौरन हीं सैनिक आ पहुँचेंगे। लगान देने से किसी ने इन्कार किया कि फिर वही बात हुई।

लोगों की जमीन और उनकी भोजन-सामग्री छीन कर मनुष्यों को गुलाम बनाने की पद्धति—यह दूसरा पेच है। यह पद्धति भी जहाँ कहीं मनुष्यों पर जबरदस्ती हुई है, वहाँ अवश्य ही मौजूद रही है और चाहे कितने ही परिवर्तन उसमें क्यों न हुए हों, वह अब भी सभी जगह मौजूद है।

कहीं कहीं, तुर्किस्तान की तरह, भूमि का मालिक राजा होता है और फसल का दसवाँ हिस्सा राज्य को दिया जाता है। कहीं भूमि का कुछ भाग राजा का होता है और उस पर लगान वसूल किया जाता है। कहीं सारी भूमि इंग्लैण्ड की तरह कुछ चुने

हुए लोगों के हाथ में होती है और वह लगान पर उठा दी जाती है। कभी रूस, जर्मनी और फ्रांस की तरह थोड़े या अधिक परिमाण में भूमि का अधिकांश भाग जमीन्दारों के आधिपत्य में होता है। किन्तु जहाँ कहीं भी गुलामी का अस्तित्व होता है, वहाँ अत्याचारी जमीन का अधिकारी भी जरूर बन बैठता है और गुलाम बनाने का यह दूसरा पेच, अन्य पेचों को देखकर ही कसा अथवा ढीला किया जाता है।

रूस में जब अधिकांश श्रम-जीवी व्यक्ति-गत दासता में जकड़े हुए थे तब भूमि-दासता की जरूरत न थी किन्तु व्यक्ति-गत दासता का पेच ढीला उसी हालत में किया गया जब भूमि और कर-दासता के पेच कस दिये गये। सरकार ने जब भूमि को अपने अधिकार में कर लिया और उसे अपने प्रिय-पात्रों में बाँट दिया और रुपया जारी करके द्रव्य-कर की स्थापना कर दी तभी कहीं जाकर उसने किसानों को व्यक्ति-गत दासता से मुक्ति प्रदान की। इंग्लिस्तान में आज कल भूमि-दासता का दौरदौरा है और भूमि के राष्ट्रीय-करण का जो प्रश्न उठ रहा है, उसका अर्थ यही है कि कर—सम्बन्धी पेच को कस दिया जाय ताकि भूमि-दासता का पेच ढीला किया जा सके।

कर द्वारा लोगों को गुलाम बनाने की तीसरी पद्धति भी इसी तरह सदा ही रही है और आजकल हमारे जमाने में सिक्कों के मूल्य के एकीकरण तथा राज्याधिकारों की अभिवृद्धि के कारण इस पद्धति का बहुत जबरदस्त प्रभाव हो गया है, और यह पद्धति आजकल इतनी विकसित हो गई है कि धीरे धीरे यह

गुलाम बनाने की दूसरी पद्धति अर्थात् भूमि-दासता का स्थान लेने जा रही है। समस्त योरप की आर्थिक स्थिति को देखने से यह स्पष्ट मालूम होता है कि इस तीसरे पेच को कसने ही से भूमि-दासता का पेच ढीला किया जा रहा है।

हमने अपने ही जीवन-काल में रूस के अन्दर दासता के दो स्वरूपों को परिवर्तित होते देखा है। जब गुलामों को आज़ाद किया गया और भूमि के अधिकांश भाग पर जमींदारों का अधिकार बना रहा तब जमींदारों को यह चिन्ता हुई कि किसानों पर जो उनके अधिकार हैं, वह कहीं हाथ से निकल न जायँ किन्तु अनुभव ने दिखा दिया कि व्यक्ति-गत दासता की पुरानी जञ्जीर को ढीला करके, एक दूसरी-भूमि-दासता की जञ्जीर को खींचने ही की जरूरत है। किसान के पास नाज की कमी हुई, उसके पास खाने को न रहा। जमीन्दार के पास जमीन थी और था अन्न का भण्डार। बस किसान वही गुलाम का गुलाम ही बना रहा।

गुलामी का दूसरा परिवर्तन उस समय देखने में आया जब सरकार ने कर-सम्बन्धी पेंच खूब जोरों से कस दिया। अधिकांश श्रमजीवियों को जमीन्दारों के हाथ अथवा कारखानों में काम करने के लिये बिक जाना पड़ा। इस नवीन गुलामी की पद्धति ने तो लोगों को और भी जकड़ दिया यहाँ तक कि फी सदी ९० रूसी मजदूर अब भी उन करों के भरने के निमित्त अपने जमीन्दारों के यहाँ अथवा कारखानों में काम कर रहे हैं। यह इतना स्पष्ट है कि सरकार यदि केवल एक साल के लिए यह कर

लेना बन्द कर दे, तो जमीन्दारों के खेतों में और कारखानोंमें जो काम होते हैं, वे सब बन्द हो जायँ। रूस के ९० फी सदी लोग कर उगाहने के समय और उससे कुछ समय पहिले कर अदा करने के लिये रुपया जमा करने की खातिर अपने को बेच कर मजदूरी करने पर मजबूर होते हैं।

गुलाम बनाने की यह तीनों पद्धतियाँ सदा प्रचलित रही हैं और आज भी मौजूद हैं, पर लोग या तो उनकी पर्वाह ही नहीं करते या उनकी आवश्यकता और अनिवार्यता को सिद्ध करने के लिये नये नये बहाने खोज निकालते हैं और सबसे बड़े आश्चर्य की बात तो यह है कि जिस पर अन्य सभी बातों का आधार रहता है, जो पेच सबसे अधिक कसा होता है और जिसके अधीन समाज की सभी बातें रहती हैं, वही हमें दिखाई नहीं पड़ता।

प्राचीन काल में जब समस्त समाज-तंत्र व्यक्ति-गत दासता पर निर्भर था तब बड़े से बड़े दिमागों को भी यह बात न दीख पड़ी। प्लेटो, जेनोफन, अरस्तू और रोमन लोग तो समझते थे कि इससे विपरीत तो कुछ हो ही नहीं सकता। दासता तो युद्ध का स्वाभाविक और अनिवार्य परिणाम है और इसके बिना मानव-समाज के अस्तित्व की कल्पना ही असम्भव है। इसी प्रकार मध्य-युग में लोग भूमि-स्वामित्व के अर्थ को नहीं समझ पाये कि जिस पर उनके समय के समस्त आर्थिक तंत्र की रचना थी।

ठीक इसी तरह आज कल हमारे ज़माने में कोई नहीं

देखता और शायद कोई देखना भी नहीं चाहता कि इस समय के अधिकांश लोगों की दासता का कारण, वह कर है, जिन्हें सरकार, इन्हीं करों के द्वारा पालित-पोषित अपने माली तथा फौजी विभागों द्वारा, उन लोगों से वसूल करती है जिन्हें भूमि के द्वारा उसने अपना गुलाम बना रक्खा है ।

कोई आश्चर्य नहीं कि सदा से गुलामी के पाश में जकड़े हुए गुलाम खुद भी अपनी स्थिति को नहीं समझते हैं, और जिस अवस्था में वे सदा से रहते चले आये हैं, उसी को वे मानव-जीवन की स्वाभाविक स्थिति मानते हैं और जब उनकी दासता के स्वरूप में कुछ परिवर्तन होता है तो वे उसी छोटे मोटे सुधार को अपने सन्तोष का कारण मान बैठते हैं। इसमें भी कोई आश्चर्य की बात नहीं कि इन गुलामों के मालिक भी वास्तव में यह समझते हैं कि वह एक पेच को ढीला करके अपने गुलामों को कुछ स्वतंत्रता दे रहे हैं हालाँ कि दूसरे पेच के आवश्यकता से अधिक कस जाने के कारण ही वे ऐसा करने को बाध्य होते हैं।

गुलाम और मालिक दोनों ही अपनी अपनी स्थिति के अभ्यस्त हो जाते हैं; गुलाम तो यह जानते ही नहीं कि आजादी क्या चीज़ है, वह तो सिर्फ इतना ही चाहते हैं कि उनकी स्थिति में कुछ सुधार अथवा उनकी अवस्था में कुछ परिवर्तन हो जाय और मालिक अपने अन्याय-अत्याचार को छिपाने के लिये उत्सुक रहते हैं और प्राचीन पद्धति के स्थान पर दासता के जिन नवीन रूपों की वे स्थापना करते हैं, उनका एक विशिष्ट प्रकार का अर्थ लगाने की चेष्टा करते हैं।

किन्तु यह बात समझ में नहीं आती कि एक स्वतंत्र राष्ट्र

समझा जाने वाला अर्थ-शास्त्र लोगों की आर्थिक स्थिति का विचार करते समय उस बात को देखना कैसे भूल जाता है कि जो लोगों की साम्पत्तिक अवस्था का आधार-स्तम्भ है। यह कहा जा सकता है कि शास्त्र का काम है मुख्य घटनाओं का सम्बन्ध ढूंढ़ निकालने की कोशिश करना और बहुत सी घटनाओं के सामान्य कारणों की खोज करना। किन्तु आधुनिक सम्पत्ति-शास्त्र के अधिकांश कर्णधार बिलकुल इससे उल्टा कार्य कर रहे हैं। घटनाओं के भीतरी रहस्यों और संबन्धों को वे कलेजे की तरह छिपाना चाहते हैं और बिलकुल सीधे सादे महत्व-पूर्ण सवालों को चालाकी और सफाई के साथ टाल देते हैं।

आधुनिक अर्थ-शास्त्र का यह व्यवहार अड़ियल टट्टू की भाँति है जो उतार की जगह पर जहाँ बोझा नहीं खींचना पड़ता है, सरलतापूर्वक चलता रहता है किन्तु जहाँ बोझा खींचने का अवसर आया, तुरन्त ही, जैसे दूसरी तरफ उसे कोई काम हो, वह दूसरे रास्ते की ओर मुड़ जाता है। अर्थ-शास्त्र के समक्ष जब कोई आवश्यक और गम्भीर प्रश्न आता है तो वह ऐसे २ प्रश्नों का वैज्ञानिक अन्वेषण करने में तल्लीन हो जाता है जिनका उस प्रश्न के साथ कोई सम्बन्ध ही नहीं होता। ऐसा करने का सिर्फ एक ही कारण है और वह यह कि लोगों का ध्यान उन बातों की ओर से हटा दिया जाय। अधिकांश आदमी दूसरे व्यक्ति की आज्ञा के बिना न तो काम कर सकते हैं और न भोजन ही कर सकते हैं। इस अस्वाभाविक, राक्षसी, कभी समझ में न आने वाली और अनुपयुक्त ही नहीं हानिकारक स्थिति का क्या कारण है ? यदि आप अर्थ-शास्त्र से इसका उत्तर

माँगेंगे तो वह गम्भीर मुद्रा बनाकर कहेगा—ऐसा होने का केवल यही कारण है कि कुछ आदमी दूसरे मनुष्यों की मेहनत और भरण-पोषण का प्रबन्ध और निरीक्षण करते हैं। उत्पादन का नियम ही ऐसा है।

तुम पूछोगे—यह कैसा स्वामित्व का अधिकार है जो यह आज्ञा देता है कि एक श्रेणी के मनुष्य दूसरी श्रेणी के मनुष्यों की जमीन, खुराक और मेहनत का अपहरण करें ? तुम्हें गम्भीरतापूर्वक फिर उत्तर मिलेगा—"इस अधिकार की रचना परिश्रम के संरक्षण के तत्त्व पर की गयी है।"—अर्थात् कुछ लोगों के परिश्रम का संरक्षण दूसरे लोगों के परिश्रम का अपहरण करके किया जाता है।

"वह रुपया क्या चीज है जिसे सरकार स्थान २ पर अपने अधिकारियों द्वारा ढलवाती है, और जो श्रमिकों के पास से बहुत बड़ी संख्या में वसूल किया जाता है, तथा राष्ट्रीय कर्ज के रूप में भी इसका भार मजदूरों के बेचारे भावी वंशजों पर डाला जाता है ?" जब तुम ऐसा सवाल करोगे और साथ ही यह भी पूछोगे कि—"यह रुपया लोगों के पास से जिस हद तक निकाला जा सकता है निकाला जाता है तो क्या इतने भारी करों का परिणाम कर-दाताओं की आर्थिक दशा पर कुछ भी नहीं पड़ता ?" तो तुम्हें पूर्ण निश्चयात्मक रूप से उत्तर मिलेगा—"रुपया भी शक्कर और कपड़े की तरह एक प्रकार का व्यापारी पदार्थ है। अन्तर केवल इतना ही है कि शक्कर और कपड़े से भी, विनिमय करने में, यह अधिक सुविधाजनक है। लेकिन करों के कारण रियाया की माली हालत पर कुछ भी असर पड़ेगा

कि नहीं यह सवाल ही दूसरा है—धनोपार्जन, विनिमय तथा वितरण एक वस्तु है और कर बिल्कुल ही दूसरी चीज।

तुम पूछोगे कि सरकार अपनी इच्छा के अनुसार भाव घटाती-बढ़ाती है और जिन २ के पास जमीन होती है उन सब को, कर वृद्धि कर, गुलाम बनाती है तो क्या इसका भी लोगों की आर्थिक अवस्था पर कुछ भी असर नहीं पड़ता ? अत्यन्त दृढ़तापूर्वक अर्थ-शास्त्र जवाब देगा "बिलकुल नहीं ! पैदावर, विनिमय और क्रय-विक्रय एक अलग विषय है; अर्थ-शास्त्र में इसका समावेश क़तई नहीं है।

अन्त में तुम पूछोगे—सरकार ने सारे राष्ट्र को गुलामी में जकड़ दिया है, वह अपनी इच्छानुसार सब लोगों को पंगु बना सकती है, उन्हें सैनिक गुलामी में फंसाकर उनकी अधिकांश आमदनी को वह उनसे छीन लेती है। क्या इन सबका जनता की साम्पत्तिक अवस्था पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ेगा ? तो संक्षेप में इसका तुम्हें जवाब मिलेगा—यह सारा सवाल ही दूसरा है; यह तो राजनीति का विषय है।

जिसका प्रत्येक कार्य और प्रवृत्ति अत्याचारियों की इच्छा पर निर्भर है, उस जनता के साम्पत्तिक जीवन के नियमों का अर्थ-शास्त्र संजीदगी से प्रथकरण करता है और जालिमों के इस अधिकार को वह राष्ट्र की स्वाभाविक समानता बताता है। गुलामों के जीवन पर मालिक की मनोवृत्ति का कितना असर पड़ता है; मालिक अपनी इच्छानुसार हर तरह का काम किस प्रकार गुलामों से करवाता है; एक स्थान से दूसरे स्थान पर किस तरह उन्हें खींच ले जाता है और अपनी मर्जी के मुआफ़िक

उन्हें भोजन देता है अथवा भूखों मारता है, उन्हें मार डालता है अथवा जीवित रखता है—जाँच करने वाला, इन सब बातों का विचार किये बिना ही, खेती का काम करनेवाले गुलामों की आर्थिक स्थिति का अन्दाज कैसे लगा सकता है ? अर्थ-शास्त्र ही सिर्फ ऐसा कर सकता है।

कितने ही आदमी इस बात से यह समझेंगे कि शास्त्र मूर्खता के कारण ऐसा करता है। किन्तु शास्त्र के विधानों का पृथक्करण करके उनका विश्लेषण करें तो निश्चयात्मक रूप से समाधान हो जायगा कि मूर्खता नहीं प्रत्युत बड़ी विचक्षणता है।

इस शास्त्र का एक निश्चित हेतु है और यह उसको बराबर निभाता रहता है। लोगों को सन्देह एवं भ्रम में रखना और मानव जाति को सत्य अथवा कल्याण की ओर प्रगति करने से रोकना, यही इसका ध्येय है। एक वाहियात अन्धविश्वास बहुत दिनों से लोगों में चला आता है और वह अभी तक कायम है; और इस अन्ध-विश्वास ने भयंकर से भयंकर धार्मिक अन्ध-विश्वासों से भी बढ़कर हानि पहुँचायी है। इसी वहम को अर्थ-शास्त्र अपनी पूरी ताकत के साथ टिकाये हुए है।

यह वहम भी दूसरे धार्मिक अन्ध-विश्वासों जैसा ही है। एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य के प्रति जो कर्त्तव्य है, उससे भी कहीं अधिक महत्वपूर्ण कर्तव्य एक काल्पनिक व्यक्ति के प्रति है; इस बात का यह शास्त्र प्रतिपादन करता है। धर्म-शास्त्र में यह काल्पनिक व्यक्ति ईश्वर है और राजनीति-शास्त्र में यह व्यक्ति है राज्य। काल्पनिक व्यक्ति को बलिदान देना चाहिये, यहाँ तक कि कितनी ही बार मनुष्य जीवन तक का बलिदान दे डालना

चाहिये; और यह बलिदान हर तरह से यहाँ तक कि जबरदस्ती भी लोगों से कराये जा सकते हैं और कराये जाने चाहिये—ये बातें धार्मिक अन्ध-विश्वास में सम्मिलित हैं। राजकीय वहम हैं—मनुष्य का मनुष्य के प्रति जो कर्त्तव्य है उससे भी बहुत अधिक महत्व-पूर्ण कर्त्तव्य एक काल्पनिक व्यक्ति—राज्य—के लिये हमें अदा करने हैं। राज्य के लिये जो बलिदान दिये जाते हैं—और वे भी कितनी ही बार मनुष्य की जिन्दगी तक के देने पड़ते हैं, वह सब आवश्यक हैं और मनुष्य के पास से, किसी भी तरह से, चाहे बलात्कार से ही सही ऐसे बलिदान लेने में कोई हानि नहीं है। पहले तो भिन्न २ सम्प्रदाय के पुरोहितों ने इस भ्रम को टिकाये रक्खा और आज अर्थ-शास्त्र नामधारी वस्तु उसे बचाए हुए है। मनुष्यों को, प्राचीन काल की किसी भी दासता से अधिक खराब और अधिक भयङ्कर गुलामी में जकड़ा जा रहा है; फिर भी शास्त्र, लोगों को इस बात के समझाने की चेष्टा करता है कि इस भ्रम की जरूरत है—यह अनिवार्य है।

लोक-कल्याण के लिये राज्य की अत्यन्त आवश्यकता है और उसे अपना फर्ज अदा करना पड़ता है—जनता को व्यवस्थित रखना होता है और शत्रुओं से उसकी रक्षा करनी पड़ती है और ऐसा करने के लिये राज्य को फ़ौज तथा रुपये की आवश्यकता होती है। राज्य के अधिकांश नागरिक मिलकर इस रक्षम को पूरा भी कर देते हैं। इसलिये मनुष्यों के सारे पारस्परिक सम्बन्धों का विचार राज्य के अस्तित्व को ध्यान में रखकर करना चाहिये।

एक साधारण और अपढ़ मनुष्य कहता है—"मुझे मेरे पिता को खेती के काम में सहायता पहुँचानी है, मुझे शादी

करनी है मगर बजाय इसके, मुझे पकड़ कर छः वर्ष की सैनिक-शिक्षा के लिये केम्प में भेज देते हैं। मैं सिपाहीगिरी छोड़ कर खेती तथा अपने कुटुम्ब का भरण-पोषण करना चाहता हूँ। किन्तु आस-पास सौ मील तक मैं रुपये न दूँ तो मुझे खेती करने की आज्ञा ही न मिले, और पैसा तो मेरे पास एक भी नहीं है। और फिर मैं जिसको रुपये दूँगा उसे खेती का बिल्कुल ज्ञान नहीं है और वह इतने अधिक दाम माँगता है कि मुझे जमीन की खातिर अपनी अधिकांश मेहनत उसकी भेंट कर देनी पड़ती है। मैं कुछ कमाने की फिक्र करता हूँ और अपने व्यय के अतिरिक्त बचे हुए पैसे अपने बाल-बच्चों को दे देना चाहता हूँ, लेकिन गाँव का एक सिपाही आता है और जो कुछ मेरे पास बचा था, टैक्सों के नाम पर उठा ले जाता है। मैं फिर कमाता हूँ और वह फिर आकर छीन ले जाता है। मेरी सारी—तिल-तिल मात्र—आर्थिक दशा सरकारी माँग पर आश्रित है। मैं समझता हूँ अब तो राज्य के बन्धनों से मुक्त होने पर ही मेरी और मेरे बन्धुओं की स्थिति सुधर सकती है।"

किन्तु शास्त्र कहता है:"तुम मूर्खता के कारण ऐसा सोचते हो। सम्पत्ति की उत्पत्ति, हेरफेर और खरीद-फरोख्त का अध्ययन करो और आर्थिक प्रश्नों को राज्य के मसलों में मत मिलाओ। तुम जिस विशेष परिस्थिति की ओर सङ्केत करते हो वह तुम्हारे लिये अंकुश रूप नहीं है वरन् यही वे कुर्बानियें हैं जो अन्य लोगों के साथ तुम्हें अपनी स्वतन्त्रता और कल्याण के लिये करनी होंगी।"

इस पर उपरोक्त भोला भाला आदमी फिर कहता है—

किन्तु इन लोगों ने मेरे लड़के को मुझ से छीन लिया है और मेरे दूसरे लड़के को भी, जैसे २ वह बड़ा होता जाता है, छीन ले जाने के लिये कह रहे हैं। वे बलात्कार उन्हें, मेरे पास से, छीन ले जाते हैं और शत्रुओं की गोलियों के सामने, लड़ने के लिये, दूसरे देश को भेज देते हैं जिस देश का कि मेरे लड़कों ने नाम तक नहीं सुना था। हमें यह भी नहीं मालूम हो पाता है कि यह युद्ध किस लिये हो रहा है। लेकिन जो जमीन हमें जोतने को नहीं दी जाती है तथा जिसके अभाव में हमें भूखों मरना पड़ता है वह किसी ऐसे शख्स ने जबरदस्ती अपने कब्जे में कर रक्खी है कि जिसे हमने कभी नहीं देखी और न उसके अस्तित्व की उपयोगिता ही हमारी समझ में आती है। जिन करों के कारण, मेरे लड़के से, सरकारी सिपाही मेरी गाय छीन ले गया है वह कर, मुझे पक्का विश्वास है, सरकारी अधिकारी और मंत्री-मण्डल के अनेक सभासदों के पास जायेगा जिन्हें न तो मैं पहचानता हूँ और न मुझे यह मालूम है कि उनसे मुझे कुछ फायदा होगा। तब फिर यह कैसे कहा जा सकता है कि इस ज्यादतियों के द्वारा मेरी स्वतंत्रता की रक्षा होगी और इन तमाम बुराइयों से मेरा भला होगा ?

मनुष्य को गुलाम बना डालना सरल है। उससे वह काम करा लेना जिसे वह नापसन्द करे, यह भी सम्भव है। किन्तु जिस समय वह अत्याचारों को सहन कर रहा हो उससे यह कबूल करा लेना असम्भव है कि ये बातें तो उसकी स्वतंत्रता की द्योतक हैं। यह बिलकुल असम्भव है कि वह दुष्टता का अनुभव होने पर भी उसे कल्याणकारी वस्तु के नाम से पुकारे।

इतना सब कुछ होने पर भी वर्तमान समय का शास्त्र ऐसा मानने को बाध्य करता है।

सरकार—जुल्म पर आश्रित शस्त्रधारी सत्ता—लोगों पर अत्याचार करती है। वह पहिले ही से यह निश्चय कर लेती है कि उन लोगों से वह क्या चाहती है। जिस प्रकार अंग्रेजों ने फिजी के लोगों के साथ किया उसी प्रकार सरकार पहले से ही अन्दाज लगा लेती है कि मजदूरों से काम लेने में उसे कितने सहायकों की आवश्यकता है। अपने इन मददगारों को वह सैनिकों, जमींदारों तथा कर वसूल करने वाले लोगों में विभाजित कर देती है। गुलाम अपनी मजदूरी देते हैं। वे यह भी मानते हैं कि मालिकों की खातिर नहीं, वरन् अपनी स्वतन्त्रता और कल्याण के लिये उन्हें 'राज्य' नामक देवता की पूजा करने और उसके आगे रक्त का बलिदान करने की आवश्यकता है। उनको विश्वास है कि इस देवता को सन्तुष्ट कर लेने के बाद फिर उनकी छुट्टी है। इन भ्रान्तियों के फैलने का कारण सिर्फ यही है कि प्राचीन समय के सम्प्रदाय और पुरोहित, धर्म के नाम पर ऐसी ही बातें करते थे, और आज भी भिन्न २ विद्वान् और पण्डित-गण विज्ञान और शास्त्र के नाम पर यही बात कहते हैं। अपने को धर्माचार्य और पण्डित कहलाने वाले इन लोगों पर से अपनी अन्धश्रद्धा उठा लो तो ऐसे विधानों की निस्सारता अपने आप

चार करते हैं वे लोगों की स्वतंत्रता के लिये हैं और उनके साथ जबर्दस्ती की जाती है वह उनके कल्याण के लिये किन्तु लोगों को बुद्धि इसलिये मिली है कि वह अपना हिताहित समझें और जिसे अच्छा समझें, स्वेच्छापूर्वक उसका आचरण करें।

लेकिन लोगों का कल्याण उन कामों से नहीं हो सकता जिनकी उपयोगिता उनकी समझ में नहीं आती और जो उन से बल-पूर्वक कराये जाते हैं। बुद्धिमान आदमी अपने मन को उपयोगी जँचनेवाले कार्यों को ही अच्छा समझते हैं। यदि कोई आदमी आवेश अथवा अज्ञान में कोई बुरा कार्य करने पर उतारू हो जाता है, तो जो लोग ऐसा नहीं करते हैं वह अधिक से अधिक यही कर सकते हैं कि उस मनुष्य को उसके कार्य का दोष समझा दें और बतला दें कि उसकी भलाई किस बात में है। लोगों को यह बात समझाना कठिन नहीं कि तुम अधिक संख्या में सैनिक बनाये जाओगे, अपनी जमीन खो बैठोगे और कर स्वरूप अपनी अधि-कांश मेहनत दे देगी तो उसमें तुम्हारा अधिक लाभ होगा। मगर तब तक इस बात को लोगों के सामान्य कल्याण की संज्ञा नहीं दी जा सकती जब तक वे इस बात में अपना कल्याण अनुभव नहीं करते अथवा प्रसन्नता पूर्वक इस बात को करने के लिये तय्यार नहीं होते।

अधिकांश लोग स्वेच्छापूर्वक उसे करने लग जायँ—किसी भी कार्य के कल्याणकारी होने का यह प्रमाण है। मनुष्यों के जीवन ऐसे कार्यों से भरे पड़े हैं। दस मजदूर अपने काम लायक औजार अपने पास रखते हैं और इसमें सन्देह नहीं कि ऐसा करते हुए वे अपना भला करते जाते हैं। लेकिन जहाँ ये लोग-

किसी ग्यारहवें मजदूर को जबर्दस्ती अपने में सम्मिलित करने के लिये मजबूरन काम करावें और उससे कहें कि उनके सामूहिक कल्याण में उसका भी कल्याण है तो यह कल्याण नहीं कहा जा सकता ।

कितने ही मनुष्य एकत्र हो कर अपने किसी मित्र को भोज देते हैं, इसमें भी वही बात चरितार्थ होती है । किसी आदमी से उसकी मर्जी के खिलाफ १०—१५ रुपये ले लेना और उसे कहना कि इस दावत में उसका फायदा है, सरासर अन्याय है । ऐसा ही उदाहरण अपने स्वार्थ के लिये तालाब खोदने वाले किसानों का दिया जा सकता है । जो किसान तालाब की उपयोगिता को उसके खोदने के परिश्रम से अधिक लाभदायक समझते हैं, उनके लिये यह तालाब फायदेमन्द चीज साबित हो सकती है । लेकिन वे लोग जो कि खेत जोतने से तालाब खोदने का मूल्य कम समझते हैं इसे हानिकार ही समझेंगे और वास्तव में यह उनके लिये अनुपयोगी सिद्ध भी होगा । सड़कों, गिर्जाघरों, अजायबघरों और अनेक दूसरे ऐसे सामाजिक और राजनैतिक कार्यों के लिये भी यही बात लागू होती है । जिन चीजों को उपयोगी मानकर स्वेच्छा से परिश्रम किया जाय वे ही वस्तुएँ कल्याणकारी हो सकती हैं । जिन कामों के करने के लिये लोगों को जबर्दस्ती ढकेला जाता है वे सब काम, इस बलात्कार के कारण, न तो उपयोगी माने जा सकते हैं और न कल्याणकारी ही ।

यह सब इतना स्पष्ट और सरल है कि यदि लोगों को इतने अधिक समय तक धोखा न दिया गया होता तो इसे कुछ भी समझने की जरूरत नहीं पड़ती ।

कल्पना करो कि हम किसी ग्राम में रहते हैं। वहाँ के अधिकाँश लोग एक ऐसे गड्ढे पर पुल बान्धना चाहते हैं जिसमें लोगों के डूब जाने का खतरा है। इसके लिये तय किया गया कि प्रत्येक किसान इतने पैसे, लकड़ी अथवा अमुक दिन की मजदूरी दे देवे। हम सब ने यह निश्चय इसलिये किया कि पुल पर जो खर्च किया जायगा उससे पुल हमारे लिये अधिक उपयोगी है। लेकिन हम में कुछ ऐसे लोग भी हैं जो पुल को आवश्यक नहीं समझते हैं और उसके लिये खर्च नहीं करना चाहते। क्या ऐसे लोगों पर पुल बाँधने के लिये सख्ती करना उनके लिये लाभ दायक होगा ? हर्गिज नहीं। कारण कि जो लोग पुल बान्धने में स्वेच्छापूर्वक भाग लेना बेकार समझते हैं यदि उन्हें ऐसा करने को विवश किया जाय तो उल्टा वे इस कार्य को और अधिक हानिकर समझने लगेंगे। अब सोचो कि हमने बिना किसी अप· वाद के पुल बाँधने का निश्चय कर डाला और प्रत्येक आदमी ने निश्चित पैसे अथवा मेहनत दे देने का वचन दे दिया। लेकिन बीच में ऐसा हो गया कि जिन्होंने ऐसे वचन दिये थे उनमें से कितने ही उसे न निभा सके। क्योंकि उनकी परिस्थिति में कुछ अन्तर पड़ गया इसलिये वे पुल पर पैसा खर्च करने की अपेक्षा बिना पुल के काम चलाना ही अच्छा समझने लगे या इस सम्बन्ध में उनके कुछ विचार-परिवर्तित हो गये अथवा उन्हों ने यह सोचा कि उनकी मदद के बिना ही दूसरे लोग पुल बाँध लेंगे; और उन्हें उससे फ़ायदा उठाने को तो मिल ही जायगा। क्या इन लोगों के साथ जबरदस्ती करने से वह यह समझने लगेंगे कि पुल बाँधने के काम में जो हम से जबरदस्ती मदद ली

अपना अधिकार समझते हैं अथवा जहाँ ऐसे लोग भी पड़े हुए हैं जो जुल्म के शिकार होते हैं और जो ऐसा करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं—वहाँ गुलामी अपने भयङ्कर रुप में विराजमान है।

गुलामी मौजूद तो है ही। लेकिन यह है कहाँ और किस में? यह गुलामी वहीं है जहाँ वह सदासे रहती चली आई है। वह जबर्दस्त और हथियारबन्द मनुष्यों के द्वारा निर्बल और निरस्त्र मनुष्यों पर होने वाले जुल्मों में छुपी रहती है।

शारीरिक अत्याचार की तीन मुख्य पद्धतियाँ ये हैं—सैनिक जुल्म, सैनिक-सहायता पर अवलम्बित जमीन के लगान की पद्धति और प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से लोगों से लिये जाने वाले कर। इनका अस्तित्व सैनिक बल पर आश्रित है। इन तीनों बातों ही के बल पर दासता अब भी अपने उसी घृणित रूप में विराजमान है। हम लोगों को यह दिखायी नहीं देती इसका केवल एक ही कारण है। गुलामी के इन तीनों स्वरूपों का नये २ ढंग से समर्थन होने के कारण इसका वास्तविक रुप हम नहीं देख पाते। देश के संरक्षण का नाम ले ले कर सशस्त्र मनुष्य निरस्त्र मनुष्यों पर अनन्त जुल्म करते हैं। देश के संरक्षण का नाम लेना केवल काल्पनिक है। वास्तव में इस तर्क के गर्भ में भी वे ही पुरानी बातें छुपी हुई हैं कि अत्याचारी बेकसों को दबावें। जिस जमीन पर मनुष्य काम करता है उससे उसका जमीन का हक़ जबर्दस्ती छीन लिया जाता है। इसकी सफाई में कहा जाता है कि जमीन छीननेवाले ने समाज के हित (अर्थात् काल्पनिक) का अमुक कार्य किया है जिसके फल स्वरूप उसे यह उपहार

मिलना ही चाहिये, वह अवश्य जमीन्दार बनाया जाना चाहिये। जहाँ एक बार उसे ऐसा अधिकार मिला कि वह उसके वंश का नैसर्गिक हक़ हो जाता है। सैनिक बल के द्वारा लोगों को गुलाम बनाना और मेहनत करने वालों से जमीन पर का उनका स्वत्व छीन लेना—निष्पक्ष भाव से देखने पर ये दोनों बातें समान हैं। पिछली तरह के जुल्म का, धन अथवा कर का, जो इस जमाने में बहुत जबर्दस्त और महत्वपूर्ण हो गया है, बचाव बहुत विचित्र रूप से किया जाता है। ऐसी २ दलीलें दी जाती हैं—लोगों के पास से उनकी सम्पत्ति और स्वतंत्रता तथा उनके तमाम अधिकार सार्वजनिक हित के लिये छिने जा सकते हैं। वास्तव में यह भी पूर्ण रूप से गुलामी है। अन्तर केवल इतना ही है कि अब यह व्यक्ति गत रूप में नहीं है, सामूहिक है।

जहाँ अत्याचारों को लाभों के नाम से पुकारा जाता है, वहाँ दासता मौजूद मिलेगी। इन जुल्मों का रूप भिन्न हो सकता है। या तो राजा स्त्रियों तथा नन्हे बच्चों की हत्या करते अथवा गाँवों को उजाड़ते हुए सेना सहित चढ़ाई करें, या गुलामों के मालिक जमीन के लिये गुलामों के पास से मेहनत अथवा मूल्य लें और कुछ बाकी रह जाय तो उसकी वसूली के लिये शस्त्रधारी सैनिकों की सहायता लें, या कुछ निश्चित व्यक्ति गाँव २ फिर कर, कर वसूल करें, या मन्त्री-मण्डल प्रान्तों और जिलाधिकारियों द्वारा लगान लेवें और देने में आनाकानी करें तो सैनिक टुकड़ियाँ भेज दें—इनमें से किसी भी तरह लोगों पर अत्याचार किये जाय किन्तु संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि जब तक तोप और तलवार के बल पर अत्याचार का अस्तित्व है तब तक सम्पत्ति का

घनिमय भली प्रकार नहीं हो सकता, प्रत्युत सारी सम्पत्ति स्वेच्छाचारियों के हाथ में अवश्य चली जायगी।

हेनरी जार्ज की, तमाम ज़मीन के राष्ट्रीयकरण की योजना इस सत्य को पुष्ट करने का प्रबल प्रमाण है। हेनरी जार्ज का कहना है कि सारी ज़मीन को राज्य की सम्पत्ति बना डालनी चाहिये। इसके पश्चात् तमाम प्रत्यक्ष और परोक्ष कर निकाल डालने चाहिये और उसके बदले केवल जमीन का लगान अर्थात् जो आदमी जितनी जमीन का उपयोग करे उस ज़मीन के लगान की जितनी रक़म हो सरकार को दे दे।

ऐसा करने का क्या परिणाम होगा ? राज्य में से ज़मीन की गुलामी उठ जायगी अर्थात् ज़मीन राज्य की गिनी जायगी। इँग्लैण्ड के अधिकार में इंग्लैण्ड की ज़मीन होगी, अमेरिका के अधिकार में उसकी स्वयं की ज़मीन होगी और ऐसा ही दूसरे देशों के लिये भी होगा। इसका फल यह होगा कि प्रत्येक राज्य के पास स्वयं फ़ायदा उठाने जितनी ज़मीन होगी, उसी परिमाण में गुलामी रहेगी।

इस योजना से कदाचित ज़मीन पर निर्वाह करने वाले मज़दूरों में से कुछ की स्थिति सुधर जायगी किन्तु जब तक लगान के बदले भारी कर लिये जायँगे तब तक गुलामी अवश्य बनी रहेगी। फसल ख़राब होने पर यदि कृषक के पास करों को अदा करने के लिये रुपया नहीं है जो कि उससे ज़बरदस्ती वसूल किये जाते हैं तो वह अपने को उन लोगों के हाथ विवश होकर बेच देता है, जिनके कि पास रुपया है ताकि उसकी ज़मीन और उसका सर्वस्व छीन न लिया जाये।

यदि किसी बर्तन में से पानी टपकता हो तो उसमें छेद का होना अनिवार्य है। जब हम बर्तन का पेंदा देखेंगे तो हमें बहुत से सूराखों में से पानी टपकता हुआ दिखायी देगा। इन काल्पनिक सूराखों को बन्द करने का हम चाहे जितना प्रयत्न करें फिर भी पानी टपकता ही रहेगा। पानी टपकना बन्द करने के लिये तो जिस स्थान से पानी जाता हो वह ढूंढ़ निकालने और मिल जाने पर अन्दर से उस सूराख को बन्द करने की ज़रूरत है। लोगों की सम्पत्ति का अनियमितरूप से जो वितरण हो रहा है उसका अन्त करने का भी वही तरीका है—उन सूराखों को बन्द कर दिया जाय कि जिनमें से होकर वह बह निकलती है।

यह कहा जाता है कि मज़दूर-मण्डल का निर्माण करो, तमाम धन को सार्वजनिक सम्पत्ति बनाओ और सारी जमीन को भी सार्वजनिक सम्पत्ति बना डालो। ये सब बातें, जिन सूराखों में से पानी टपकता हुआ सा हमें दिखाई पड़ता है, उनको बाहर की ओर से बन्द करने के समान हैं। यदि हमें मज़दूरों की सम्पत्ति को दूसरों के हाथों में जाने देने से रोकना मंजूर है तो हमें अन्दर से उस सूराख को ढूँढ निकालने की ज़रूरत है कि जहाँ से वास्तव में पानी टपकता है। और यह सूराख है—सशस्त्र मनुष्य का निरस्त्र पर अत्याचार करना; मेहनत करने वाले को सैनिक सत्ता के द्वारा उसकी मेहनत के लाभ से बञ्चित कर देना और उसकी जमीन छीन लेना तथा पैदावार लूट लेना। 'दूसरों के मार डालने का मुझे अधिकार है'—ऐसा कहने वाला जब तक एक भी हथियार बन्द आदमी इस संसार में रहेगा,

तब तक फिर चाहे वह कोई हो, गुलामी और सम्पत्ति का अनियमित वितरण बराबर बना रहेगा।

'मैं दूसरों को मदद कर सकता हूँ'—इस भ्रम में जो मैं पड़ गया इसका कारण यही है कि अपना और सेमियन का द्रव्य मैंने एक सा समझा। किन्तु वास्तव में ऐसी बात नहीं है।

यह एक साधारण धारणा है कि रुपया सम्पत्ति का प्रतिनिधि है। किन्तु चूँकि सम्पत्ति मेहनत का फल है इसलिये रुपया भी मेहनत का परिणाम है। यह तर्क इतना ही सचा है जितना सच्चा यह कि प्रत्येक राज्य-तन्त्र समझौते (सामाजिक कौल-करार) का परिणाम है।

सब लोग यह मानते हैं कि पैसा एक मात्र मेहनत के विनिमय करने का साधन है। मैंने कुछ जूते तैय्यार किये, तुमने कुछ रोटियें पकाईं और उसने कुछ भेड़ें पालीं। अब, हमारी चीजों का सुगमतापूर्वक हेर-फेर हो सके इसलिये, हमने अपने बीच में रुपये का प्रवेश किया। प्रत्येक आदमी के परिश्रम की नाप उस रुपये से होती है। इस प्रकार हम एक जोड़े जूते के बदले कुछ मांस और पाँच सेर आटे का विनिमय कर सकते हैं।

हम अपनी चीजों का विनिमय धन के द्वारा करते हैं और इस प्रकार जो धन हम में से प्रत्येक के पास होता है वह अपनी २ मज़दूरी का प्रमाण होता है। यह बात है भी बिल्कुल उचित। लेकिन यह तभी तक सम्भव और लाभदायक है जब तक एक मनुष्य दूसरे पर ज़बर्दस्ती न करे। दूसरे के परिश्रम को लूटने की ही ज़बर्दस्ती नहीं, जैसा कि लड़ाई और गुलामी में होता है, वरन् अपने परिश्रम की रक्षा के लिये भी दूसरे पर

ज्यादती न की जाय उसी समाज में यह बात सम्भव हो सकती है। जिस समाज के मनुष्य, ईसा के उपदेशों का पूर्ण रूप से पालन करें, अर्थात् जिस वस्तु की जिसे आवश्यकता हो, वह उसे मिल जाया करे और कोई व्यक्ति किसी के पास से कोई वस्तु छीन ले तो भी लोग उससे न माँगें; वहीं ऐसा होना सम्भव है। किन्तु जहाँ समाज में किञ्चित भी ज्यादती का समावेश हुआ कि 'धन उसके मालिक के परिश्रम का परिणाम है'—इस सिद्धान्त का कोई मतलब नहीं रह जाता। और न यह बात ही रह जाती है कि अमुक अधिकार मेहनत के द्वारा मिले हैं। वास्तव में वे तो ज्यादती से लिये गये हैं।

किसी जगह युद्ध हुआ और एक आदमी ने दूसरे के पास से जो मन में आया छीन लिया। जिस जगह ऐसा हुआ वहाँ तुरन्त इस सिद्धान्त का लोप हुआ समझो कि 'धन मेहनत का प्रतिनिधि है।' लूट में मिला हुआ माल बेच कर सैनिक जो धन-संग्रह करता है, अथवा सेनापति को जो दौलत मिलती है, उसका मतलब परिश्रम का परिणाम हर्गिज नहीं है। जूते बनाने में की गयी मेहनत के बदले में मिलने वाली और इस प्रकार मिलने वाली सम्पत्ति में ज़मीन आसमान का फ़र्क है। जब तक गुलाम और मालिक का अस्तित्व रहेगा जैसा कि संसार में सदा ही रहा है, तब तक 'पैसा परिश्रम का फल है' यह कहना असम्भव है। किसी स्त्री ने कुछ कपड़े सी कर उन्हें बेचे और उनके बदले में कुछ पैसे ले लिये; एक गुलाम भी अपने सेठ (मालिक) को कपड़े बना कर देता है और मालिक उन्हें बेच कर पैसे लेता है। दोनों प्रकार के पैसे एक ही हैं। किन्तु पहली तरह के पैसे मेह-

नत के फल हैं, इसके विपरीत दूसरी तरह के पैसे जुल्म के बदले में मिले हैं। कल्पना करो कि कोई अनजान आदमी अथवा मेरा पिता मुझे धन देता है, और जब वह मुझे देने लगता है; तो मैं अथवा हर एक आदमी जानता है कि उन्हें मेरे पास से कोई नहीं छीन सकता। यदि कोई मेरे पास से छीनने की कोशिश करे या उधार ले जाय और नियत समय पर वापस न दे जाय तो सरकार मेरा पक्ष लेगी और उसे मेरे पैसे लौटाने पर बाध्य करेगी, यह भी सब जानते हैं। तब इस बात में कुछ भी तथ्य नहीं रह जाता कि यह रुपया सेमियन को लकड़ी काटने में मिले हुए पैसे की तरह ही परिश्रम का परिणाम है।

इस प्रकार जिस समाज में ज़रा भी ज्यादती का उपयोग किया जाता हो जिसके कारण दूसरे लोगों के पैसे छीन लिये जाते हैं, अथवा दूसरों के पैसों को बचाने के लिये जबर्दस्ती रुपये का संरक्षण किया जाय, वहाँ पैसा कभी परिश्रम का फल नहीं कहा जा सकता। ऐसी जगह में पैसा कभी तो मेहनत के बदले में मिलता है और कभी ज्यादती के फल स्वरूप।

सारा व्यवहार स्वतन्त्र होने पर भी जहाँ, एक आदमी का दूसरे पर जुल्म करने का एक भी, उदाहरण हो, वहीं इस सिद्धान्त की हत्या हो जाती है। लेकिन आज तो अनेक प्रकार के अत्याचारों द्वारा धन इकट्ठा करते २ सदियाँ गुजर गयी हैं। समय २ पर इन जुल्मों के रङ्ग-रूप में फर्क अवश्य पड़ा, किन्तु इनका अस्तित्व कभी लोप नहीं हुआ। जैसा कि सब स्वीकार करते हैं, एकत्रित होनेवाली सम्पत्ति ही जुल्म का कारण है। अब परिश्रम के बदले में मिले हुए पैसे के प्रमाण की अपेक्षा, हर तरह

की ज़बर्दस्ती से मिले हुए पैसे के प्रमाण बहु संख्यक रूप में हमारे सामने हैं, तब यह कहना कि जिसके पास धन है, वह उसके पसीने की कमाई है, निरी भूल और सफ़ेद झूठ है। कोई कहेगा ऐसा होना ही चाहिये, कोई कहेगा यही वाञ्छनीय है; लेकिन यह कोई नहीं कह सकता कि ऐसा ही होता भी है।

धन परिश्रम का प्रतिनिधि है। हाँ, धन परिश्रम का प्रतिनिधि है। किन्तु किस की मेहनत का ? हमारे समाज में तो इस बात का एक भी उदाहरण मिलना दुर्लभ है कि रुपया उसके मालिक के परिश्रम का फल है। अधिकांश में तो यह सब जगह दूसरे आदमियों की मेहनत का परिणाम होता है—मनुष्यों की भूतकाल और भविष्य की मेहनत का फल होता है। दूसरे लोगों से जबर्दस्ती काम कराने की जो पद्धति चल रही है, यह उसी का प्रतिनिधि है।

सम्पत्ति की यदि बिल्कुल ठीक और सीधीसादी व्याख्या करें तो कह सकते हैं कि यह एक साङ्केतिक शब्द है जो दूसरे लोगों की मेहनत को अपने स्वार्थ के लिये उपयोग करने का हक़, और अधिक सचाई के साथ कहा जाय तो शक्ति, देता है। आदर्श अर्थ में तो यह अधिकार अथवा शक्ति उसे ही मिलनी चाहिये कि जिसे धन परिश्रम के फलस्वरूप मिला हो। जिस समाज में किसी भी प्रकार की ज़ोर-ज़बर्दस्ती न हो, उसी में पैसा परिश्रम का फल हो सकता है। परन्तु जिस समय समाज में ज़ुल्म का तत्त्व प्रवेश करता है, अथवा मेहनत किये बिना ही दूसरे के परिश्रम पर मौज उड़ाने की कुछ भी शक्ति आने लगती है, उसी क्षण, जिस पर ज़ुल्म किया जाता है, उसकी सम्मति के बिना ही, उसको

मेहनत का नाजायज़ फ़ायदा उठाने की शक्ति पैसे से पैदा हो जाती है।

ज़मींदार अपने गुलाम कृषकों पर निश्चित संख्या में कुछ कपड़े, अनाज या ढोर देने अथवा उतनी क़ीमत का रुपया देने का कर लगाता है। एक कृषक ढोर तो दे देता है किन्तु कपड़े के बदले में पैसे देता है। ज़मींदार भी पैसे ले लेता है क्योंकि वह भली भाँति जानता है कि इस रुपये से उतना कपड़ा अवश्य मिल जायगा। (साधारणतः वह पहिले ही से सावधान रह कर इतना अधिक रुपया रखता है कि जिससे निश्चित कपड़े खरीद सके।) ज़मींदार के इस पैसे के कारण, उसके पास, इसी पैसे के लिये काम करने वाले दूसरे आदमी भी बन्धन में पड़ जाते हैं।

कृषक, ज़मींदार को जो धन देता है, उसके कारण कितनेही दूसरे अनजान आदमियों पर भी ज़मींदार अधिकार कर सकता है क्योंकि पैसे लेकर कपड़े तय्यार करना कितने ही आदमी खुशी से मंजूर कर लेते हैं। कपड़े बनाने वाले आदमियों के मिल जाने का कारण यही है कि किसी को भेड़ें पालने में सफलता नहीं मिली और उसे और भेड खरीदने के लिए रुपये की ज़रूरत हुई। वह रुपये लेकर कपड़े बना देता है। इधर पैसे लेकर कृषक भेड़ें देने को राज़ी हो जाता है, कारण कि इस वर्ष अनाज अच्छा नहीं पका और उसे और नाज खरीदने की ज़रूरत पड़ेगी। सारे संसार के तमाम देशों में यही पद्धति चल रही है।

मनुष्य अपनी भूत, भविष्य और वर्तमान मेहनत की पैदावार, कभी २ सारा पदार्थ सहित, बेच देता है। वह इसलिये नहीं बेचता है कि रुपया विनिमय का बहुत सरल साधन है—क्योंकि

विनिमय तो वह रुपये के अतिरिक्त भी कर सकता है—प्रत्युत इसलिये कि उसके पास से जबर्दस्ती रुपया वसूल किया जाता है; और यही रुपया उसकी मजदूरी छीन लेने और अधिकार प्रदान करने का कारण होता है।

जब मिस्र के राजा ने अपने गुलामों के पास से मेहनत माँगी तो गुलामों ने उसी समय अपनी मेहनत उसे दे दी। किन्तु उन्होंने केवल अपने भूत और वर्तमान काल की मजदूरी दी थी—वे अपने भविष्य काल की मजदूरी न दे सके। लेकिन रुपये के प्रचार और उसके कारण शुरू होने वाली स्पर्द्धा को लेकर भविष्य की मेहनत के बदले धन देना सम्भव हुआ।

जब समाज में जोर-जबर्दस्ती का अस्तित्व होता है, तब धन एक नये प्रकार की अव्यक्त गुलामी का कारण बन जाता है। प्राचीन दासता का स्थान यह परिवर्द्धित नयी गुलामी ले लेती है। एक गुलामों का मालिक यह समझता है कि पीटर, आइवन और सिडोर की मेहनत पर मेरा अधिकार है। लेकिन जहाँ प्रत्येक मनुष्य के पास से पैसे की माँग की जाती है, वहाँ जिस आदमी के पास धन होता है वह उन सब आदमियों की मेहनत अपने हस्तगत कर लेता है, जिन्हें रुपये की जरूरत होती है। 'मालिक को अपने गुलामों पर पूर्ण अधिकार है'—दासता के इस महान् निर्दय और दुःख भरे स्वरूप को यह रुपया छुपा देता है। साथ ही रुपये की इस नयी व्यवस्था में मालिक और गुलामों के बीच रहने वाले वे मानवीय सम्बन्ध जिनके कारण व्यक्तिगत गुलामी की कठोरता कितने ही अंशों में कम हो जाती है, कहीं नाम को भी नहीं रह जाते हैं।

मैं इस समय यह बहस नहीं करता कि यह स्थिति मनुष्य की जाति के विकास के लिये; प्रगति के लिये, अथवा कदाचित ऐसी ही किसी वस्तु के लिये आवश्यक है कि नहीं। मैंने केवल अपने मन में धन का अर्थ स्पष्ट करने और धन का जो मैं 'परिश्रम का फल' समझता था, मेरी इस भूल को सुधारने के लिये, इतना विश्लेषण किया है। अब अनुभव ने मेरा समाधान कर दिया है कि धन परिश्रम का प्रतिनिधि नहीं है, प्रत्युत अधिकांश में अत्याचार अथवा जुल्म पर अवस्थित हानि कर योजनाओं का प्रतिनिधि है।

'पैसा परिश्रम का प्रतिनिधि है'—पैसे का ऐसा वाञ्छनीय स्वरूप अब इस जमाने में नहीं रह गया है। कहीं कहीं अपवाद रूप में ही पैसा परिश्रम के फल स्वरूप दिखाई देता है। साधारणतः पैसा दूसरों के श्रम का उपभोग करने का साधन बन गया है।

धन और स्पर्द्धा के बढ़ते हुए प्रचार के कारण, धन का यह अर्थ अधिकाधिक दृढ़ होता जा रहा है। पैसे का मतलब दूसरे के परिश्रम का लाभ छीन लेने का अधिकार अथवा शक्ति है।

पैसा एक नये प्रकार की गुलामी है। प्राचीन और इस नवीन गुलामी में फर्क सिर्फ इतना ही है कि यह अव्यक्त दासता है—इस गुलामी में गुलाम के साथ के सब मानवी सम्बन्ध छूट जाते हैं।

रुपया रुपया है। उसका मूल्य सदा ही समान है जो हमेशा एक समान और कानून से निर्धारित होता है। और फिर गुलामी

जिस प्रकार अनैतिक गिनी जाती है, उस प्रकार पैसे का उपयोग अमानुषिक भी नहीं गिना जाता।

मेरी युवावस्था में क्लबों में 'लॉट्टो' नामक खेल खेलने की फैशन चल पड़ी थी। हरेक आदमी को यह खेल खेलने की चाट लगी। कहा जाता है कि हजारों आदमी इस में अपनी सम्पत्ति गँवा बैठे, सैकड़ों कुटुम्ब नष्ट हो गये और कितने ही लोग अपनी परम्परागत मिल्कियत खो बैठे। कितने ही आदमियों ने तो आत्म-हत्या तक कर ली। इसलिये इस खेल को रोक दिया गया, और वह रोक अब तक कायम है।

मुझे याद है कि मैं पुराने अनुभवी खिलाड़ियों से मिला, तब उन्होंने कहा कि यह खेल विशेष रूप से आकर्षक है, क्योंकि, दूसरे खेलों की तरह, इस खेल में यह मालूम नहीं पड़ता कि हराना किसको है। इस खेल में लोग रुपये के बदले लकड़ी के टुकड़े तक दाँव पर लगाते। प्रत्येक आदमी बहुत थोड़ी रकम हारता था, और इसलिये उसे बहुत दुःख नहीं होता था। यही हाल 'राउलेट' खेल का था और हर जगह इसकी भी विचार पूर्वक रोक की गई।

पैसे के लिये भी यही बात लागू होती है। मेरे पास जादू का सदा बना रहने वाला रुपया है। मैंने एक चेक फाड़ कर दिया और दुनिया के तमाम झंझटों से छुटकारा पा गया। मैं किसे नुकसान पहुँचाता हूँ? मैं तो बहुत शान्त और दयालु व्यक्ति हूँ। लेकिन यह भी लॉट्टो और राउलेट की तरह का खेल है कि जिसमें हम यह नहीं देख सकते कि किसने हार कर आत्म-हत्या कर ली और किसने हमारे लिये इन चेकों का आयोजन किया

है। मुझे तो रुपया मिलता जाता है और मैं सावधानी पूर्वक चेक फाड़ कर खर्च किया करता हूँ।

चेक फाड़ने के अतिरिक्त मैं कुछ नहीं करता। न कुछ कर सकता हूँ और न कुछ करूँगा ही। इतना होने पर भी मुझे पक्का विश्वास है कि रुपया मेहनत का फल है। यह कितना महान् आश्चर्य है! लोग पागलों की बातें कहते हैं; किन्तु इनसे बढ़ कर भी पागलों की बातें हो सकती हैं? चतुर और विद्वान् मनुष्य जिनका चित्त दूसरी सब अवस्थाओं में ठीक रहता है, यहाँ आकर 'किंकर्त्तव्य विमूढ़' हो जाते हैं। उनके विचारों में स्थिरता लाने के लिये सिर्फ एक शब्द का अर्थ स्पष्ट करने की आवश्यकता है। किन्तु अपने दिमाग़ को ज़रा भी धक्का न लगने देने के लिये, वे इस शब्द ही को दृष्टिकोण से बाहर निकाल डालते हैं, और अपने को ठीक रास्ते पर समझते हैं! चेक परिश्रम के प्रतिनिधि हैं! परिश्रम के! हाँ, लेकिन किसकी मेहनत के? उनके परिश्रम के नहीं जिनके पास वे हैं; प्रत्युत वास्तव में तो, जो मेहनत करते हैं, उनके परिश्रम के प्रतिनिधि हैं।

पैसा और गुलामी एक ही वस्तु है—इसके उद्देश्य एक हैं और इसके परिणाम भी एक से हैं। मजदूर-पेशा लोगों की मेरी में से एक समर्थ लेखक ने वास्तव में बहुत ही ठीक कहा है कि धन का उद्देश्य मनुष्यों को मूल नियम से मुक्त कर देना है। यह मूल नियम जीवन का नैसर्गिक नियम है कि अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये प्रत्येक आदमी को शारीरिक परिश्रम करना चाहिये। पैसे का भी मालिकों पर वही प्रभाव पड़ा है जो गुलामगिरी में पड़ा था—नयी और असंख्य नयी आवश्य-

कताएँ, कभी तृप्त न होने वाली अनगिनत नयी जरूरतें, रोज ढूंढ़ निकाली जाती हैं और उनका पोषण किया जाता है। बीभत्स लम्पटता, विषय-भोग और शक्ति-हीनता की वृद्धि होती है। गुलामों पर इसका यह असर होता है कि उनकी मनुष्यता कुचल दी जाती है और उन्हें पशु बना डाला जाता है।

रुपया गुलामी का नया और भयङ्कर स्वरूप है और पुरानी व्यक्तिगत दासता की भाँति यह गुलाम और मालिक दोनों को पतित और भ्रष्ट बना देता है। इतनाही क्यों ? यह उससे अधिक बुरा है क्योंकि गुलामी में दास और स्वामी के बीच मानव-सम्बन्ध की स्निग्धता रहती है, वह उसे भी एक दम ही नष्ट कर देता है।

समाया हुआ है, और यह श्रेय मैं किसी को दे नहीं सकता, क्यों कि मैं स्वयं उससे वञ्चित हूँ। मैं न तो स्वयं मेहनत करता हूँ और न अपनी मेहनत का मज़ा चखने का मुझे सौभाग्य प्राप्त है।

शायद कोई पूछे—रुपये की इतनी सूक्ष्म विवेचना करने में ऐसा कौन सा बड़ा भारी लाभ है ? किन्तु मैं जो रुपये की यह व्याख्या करने बैठा हूँ, वह केवल व्याख्या के लिये नहीं है, बल्कि उस महत्त्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर पाने के लिये है कि जिसने मुझे इतना परेशान कर रक्खा है और जिस पर मेरा जीवन अवलम्बित है। मैं यह जानना चाहता हूँ कि मेरा कर्तव्य क्या है ?

जिस समय मुझे मालूम हो गया कि धन क्या है, रुपया क्या है, उसी समय यह स्पष्ट हो गया कि मुझे क्या करना चाहिये और अन्य सब लोगों को भी क्या करना चाहिये और अन्त में सब को जो अनिवार्य रूप से करना ही पड़ेगा वह भी मुझे स्पष्ट और निस्सन्दिग्ध रूप से दीख पड़ा। सच तो यह है कि जो बात मैं बहुत दिनों से जानता था, उससे कोई नई बात मुझे नहीं सूझी। सत्य का यह उपदेश तो पुरातन काल से मानव जाति को दिया जाता रहा है। बहुत ही प्राचीन काल में भगवान बुद्ध तथा ईसैया, लाओटसे तथा सुकरात ने इस सत्य की घोषणा मानवजाति के समक्ष की थी, और उसके बाद यूरोप में ईसामसीह तथा उनके पूर्व-गामी जान बैपटिस्ट ने तो अत्यन्त स्पष्ट और निस्सन्दिग्ध भाषा में, इसी सत्य का उपदेश दिया।

लोगों ने जब जान से पूछा कि, 'अब हम क्या करें' ? तो उसने सूक्ष्म और स्पष्ट रूप से उत्तर दिया था—'जिसके पास दो कोट हैं, वह एक कोट उस आदमी को देदे, जिसके पास एक भी

नहीं और जिसके पास भोजन है, वह भी ऐसा ही करे। (ल्यूक अ० तीन पद १०-११)

यही बात और अधिक स्पष्टता के साथ धनिकों को शाप तथा गरीबों को आशीर्वाद देते हुए, ईसामसीह ने कही है। उन्होंने कहा कि हम ब्रह्म और माया दोनों के होकर नहीं रह सकते। उन्होंने अपने शिष्यों को केवल धन लेने ही के लिये मना नहीं किया था, परन्तु अपने पास दो कोट न रखने का भी आदेश दिया था। धनी नवयुवक से उन्होंने कहा था कि धनिक होने के कारण तुम ईश्वर के दरबार में नहीं जा सकते। और यह भी कहा कि सुई के नकुए में से ऊँट का निकल जाना तो सम्भव है, पर अमीर आदमी का स्वर्ग में प्रवेश करना असम्भव है।

उन्होंने कहा कि मेरा अनुसरण करने के लिये जो अपना घर-बार, बाल-बच्चे, खेती-बारी तथा अपना सर्वस्व त्यागने के लिये तैयार नहीं है, वह मेरा शिष्य नहीं हो सकता। उन्होंने एक धनी की कहानी सुनाई। उसने आजकल के धनी लोगों की तरह कोई बुरा काम तो किया नहीं था, केवल खूब आनन्द से खाता-पीता और अच्छे कपड़े पहिनता था। वह इसी से आत्मा को खो बैठा। लजारस नाम का एक भिखारी भी था, जिसने कोई विशेष अच्छा काम न करके भी अपनी गरीबी और भिक्षुक जीवन के कारण ही अपनी आत्मा का कल्याण कर लिया।

मैं इस सत्य से बहुत पहिले ही से परिचित था किन्तु दुनिया की झूठी शिक्षा ने उसे ऐसी चालाकी से ढँक लिया था कि वह केवल एक सिद्धान्त भर रह गया था—अर्थात् वह शुद्ध कल्पना मात्र था, क्योंकि लोग प्रायः सिद्धान्त शब्द का यही अर्थ

करते हैं। किन्तु ज्यों ही दुनिया की झूठी शिक्षा का पर्दा मेरे मन से हटा त्यों ही सिद्धान्त और व्यवहार में मुझे एकात्मीयता दिखाई देने लगी और उसके परिणाम-स्वरूप अपने तथा अन्य समस्त मनुष्यों के जीवन का सच्चा अर्थ मैंने समझा।

मैंने समझा कि मनुष्य को अपने कल्याण के साथ ही दूसरे मनुष्यों के कल्याण के लिये भी उद्योग करना चाहिये, और यदि हमें पशु-जीवन से ही दृष्टान्त लेना हो, जैसा कि जीवन-संघर्ष के नियमों की भित्ति पर हिंसा और कलह को आवश्यक और उपादेय सिद्ध करने के लिये लोगों को पशु-जीवन से खोज कर उदाहरण देने का शौक होता है, तो हमें दृष्टान्त देना चाहिये कि मधु मक्खी जैसे सामाजिक जीवों की जिन्दगी का। अपने पड़ोसी से प्रेम करने और उसकी सेवा करने का तो मनुष्य का स्वाभाविक कर्तव्य है ही, इसके अलावा बुद्धि और मनुष्य-स्वभाव का यह तकाज़ा है कि मनुष्य अपने भाइयों की सेवा करे और मानव-जाति के सामुदायिक हित के लिये उद्योग करे।

मैंने समझा कि मनुष्य के लिये यही नैसर्गिक नियम है जिसका पालन करके ही, वह अपने जीवनोद्देश्य को सफल बना कर सुखी हो सकता है। मैंने यह भी समझा कि इस सुन्दर नियम का उल्लंघन किया गया है और अब भी किया जा रहा है, क्योंकि लुटेरी मधु-मक्खियों की तरह कुछ लोग अपने बल का दुरुपयोग करके मेहनत-मजदूरी के कामों से बच निकलते हैं, और दूसरों की मेहनत से लाभ उठाते हैं और दूसरों के परिश्रम का उपयोग वह सार्वजनिक हित के लिये करते हों; यह भी नहीं, बल्कि अपनी दिन दिन बढ़ती हुई वासनाओं की तृप्ति के लिये ही, इसका

उपयोग करते हैं और परिणाम स्वरूप लुटेरी मधु-मक्खियों ही की तरह वे नष्ट हो जाते हैं।

मैंने समझा कि वर्ग के लोग दूसरे मनुष्यों को गुलाम बनाते हैं, यही मनुष्यों के दुःखों का कारण है और मैं यह भी समझ गया कि इस समय हमारे ज़माने में जो गुलामी प्रचलित है, उसके आधार-भूत ये तीन कारण हैं—सैनिक-हिंसा, भूमि-स्वामित्व और विभिन्न करों के रूप में रुपया वसूल करना। और आधुनिक काल की दासता के इन तीनों कारणों के अर्थ को समझने के बाद उनसे छुटकारा पाने की इच्छा और चेष्टा किये बिना मुझ से रहा ही नहीं गया।

सर्फ़-पद्धति के ज़माने में मैं भी ज़मीन्दार था, और मेरे अधीन भी बहुत से सर्फ़ थे। जब मुझे मालूम हुआ कि यह स्थिति पापमय है तो अन्य समान-विचार वाले लोगों के साथ मैंने इसमें से निकलने का यत्न किया और इस पाप-पङ्क से मैंने अपने को इस प्रकार छुड़ाया। मैं यह समझता था कि यह स्थिति पापमय है, इस लिये जब तक मैं उससे पूर्ण रूप से मुक्त न हो जाऊँ, तब तक मैंने अपने ज़मीन्दारी अधिकारों का जहाँ तक बन सके कम से कम उपयोग करने का निश्चय किया, और जैसे मेरे कोई अधिकार हैं ही नहीं, इस प्रकार मैं रहने लगा।

वर्तमान दासता के सम्बन्ध में भी मुझे ऐसा ही कहना है अर्थात् जब तक मैं इन पापिष्ट अधिकारों से अपने को एक दम मुक्त नहीं कर लेता कि जो मुझे भूमि-स्वामित्व और सैनिक-बल के द्वारा लोगों से जबरदस्ती रुपया वसूल करने की शक्ति प्रदान करते हैं, तब तक मुझे जहाँ तक हो इन अधिकारों का न्यूनाति-

न्यून उपयोग करना चाहिये और साथ ही साथ दूसरे लोगों को इन कल्पित स्वत्वों की अनीतिमत्ता और अमानुषिकता के विषय में समझना चाहिये।

गुलामी में भाग लेने के अर्थ क्या हैं? यही न, कि गुलामों का मालिक दूसरे लोगों की मेहनत का उपभोग करता है। जो ऐसा करता है, वही दासता-रूपी पाप का भागीदार है, फिर वह दासता चाहे पहले प्रकार की हो, जिसमें मनुष्य के शरीर पर दावा किया जाता है, अथवा दूसरे प्रकार की जिसमें ज़मीन को अपने कब्ज़े में कर लिया जाता है या तीसरे प्रकार की जिसमें विभिन्न करों के रूप में रुपया वसूल करके मनुष्य को जीवनोपयोगी आवश्यक सामग्री से वंचित किया जाता है। अतएव मनुष्य यदि वस्तुतः गुलामी को नापसन्द करता है, और उसमें भाग लेना नहीं चाहता है तो उसे सबसे पहला काम जो करना चाहिये, वह यह है कि उसे दूसरे मनुष्यों की मेहनत का उपभोग नहीं करना चाहिये—न तो सरकारी नौकरी द्वारा, न भूमि पर कब्ज़ा कर के और न रुपये के बल से सरकारी नौकरी, भूमि-स्वामित्व और रुपया—इन तीनों से मनुष्य को बचना चाहिये, यही गुलामी के कारण हैं। इन्हीं के द्वारा ज़बर्दस्ती दूसरे के परिश्रम का उपभोग किया जाता है।

दूसरे मनुष्यों के परिश्रम के फल का उपभोग करने के समस्त साधनों का इस्तेमाल न करने का यदि कोई मनुष्य निश्चय करे तो उसे अवश्य ही एक ओर तो अपनी आवश्यकताओं को कम करना पड़ेगा, और दूसरी ओर अभी तक अपना जो काम दूसरों से कराया जाता था, वह खुद हाथ से करना अपना कर्तव्य हो जायगा।

यह सीधी-सादी बात मेरे दिल में पैठ गई और उसने मेरे जीवन को एक दम ही बदल दिया। मनुष्यों के दुःखों को देख कर जो हार्दिक वेदना मुझे होती थी उससे इस परिवर्तन के कारण अब मैं मुक्त हो गया। ग़रीबों के मदद करने की मेरी योजना की असफलता के जो तीन कारण थे—उन्हें मैं अब स्पष्ट रूप से समझ गया।

पहला कारण यह था कि लोग शहरों में जाकर एकत्रित हो जाते हैं और गाँव का धन भी खिंच कर वहीं चला जाता है बस, ज़रूरत इस बात की है कि सरकारी नौकरी करके, अथवा भूमि-स्वामित्व द्वारा या रुपये के ज़रिये दूसरे लोगों की मज़दूरी का लाभ उठाने की प्रवृत्ति दूर कर दी जाय और अपनी आवश्यकताओं को यथा-शक्ति अपने ही हाथों पूरा करने का यत्न किया जाय।

तब फिर गाँव छोड़ कर शहर में रहने का किसी को ख़याल भी न आवेगा क्योंकि गाँव में रह कर अपनी अनिवार्य आवश्यकताओं को स्वयं अपने ही हाथों जुटाना शहर की अपेक्षा बहुत सरल है, क्योंकि वहाँ नगर में सभी चीज़ें दूसरों के परिश्रम द्वारा उपार्जित की हुई हैं और बाहर से लाई गई हैं। गाँव में हाजतमन्द की सहायता आसानी से की जा सकती है और वहाँ रह कर मनुष्य यह कभी अनुभव न करेगा कि वह बिलकुल व्यर्थ और नाचीज़ है जैसा कि मुझे उस समय अनुभव हुआ था कि जब मैं अपने नगर के दरिद्र लोगों को अपने रुपये से नहीं, बल्कि दूसरों के परिश्रम-जनित धन से सहायता करने की आयोजना कर रहा था।

दूसरा कारण अमीरों और गरीबों के बीच का भेद-भाव था। मनुष्य सरकारी नौकरी करके अथवा भूमि और रुपये का मालिक बन कर दूसरों के परिश्रम का उपभोग करने की इच्छा न करे तो उसे मजबूर होकर अपनी इच्छाओं और आवश्यकताओं की पूर्ति खुद अपने हाथों करनी पड़ेगी। और तब स्वभावतः बिना किसी प्रकार का उद्योग किए ही, उसके और गरीब आदमियों के मध्य जो अन्तर है, वह दूर हो जायगा और वह कन्धे से कन्धा मिला कर उनके साथ खड़ा होगा और उनको सहायता पहुँचाने में भी समर्थ बनेगा।

तीसरा कारण मेरी लज्जा थी। जिस पैसे के द्वारा मैं गरीबों की मदद करना चाहता था, उस पैसे का मालिक होना पाप है; यह ज्ञान ही मेरी उस लज्जा का कारण था। मनुष्य सरकारी नौकरी द्वारा अथवा भूमि और धन के स्वामित्व द्वारा दूसरों के परिश्रम-जनित फलों का उपभोग करना छोड़ दे तो उसके पास यह 'मुफ्त का पैसा' कभी रहे ही नहीं। यह पैसा देख कर ही तो लोग मुझसे सहायता की याचना करने आते थे, जिसे पूरा न कर सकने के कारण मेरे मन में ग्लानि उठती थी और मेरे जीवन की अनीति-सत्ता नग्न रूप में मेरी आँखों के आगे आ खड़ी होती थी।

(प्रथम खण्ड समाप्त)

दूसरा भाग छप रहा है—जून सन् १९२७ तक छप जायगा—
पृष्ठ लगभग इतने ही होंगे और मूल्य भी यही होगा।

टिप्पणी

१. इसैया—हजरत मूसा ने यहूदी लोगों में जिस धर्म का प्रचार किया था उसमें जब शिथिलता आई तो उसको दूर करने के लिए कई सन्तों का आविर्भाव हुआ जिन्होंने अपनी प्रभावोत्पादक वक्तृत्व-शक्ति तथा धर्म-प्रियता के द्वारा यहूदियों में धर्म-भाव को फिर से जागृत कर के उसे सतेज और जाज्वल्यमान बनाया। इन सन्त जनों में इसैया की विशेष महत्ता है। लोग उसे बहुत मानते हैं। उस समय भी उसकी बड़ी प्रतिष्ठा थी; राजा लोग भी उसका सम्मान करते थे। अपनी अनुपम वक्तृत्व-शक्ति के द्वारा उसने सदाचार, पवित्रता और भक्ति का खूब प्रचार किया।

२. लाओ-टले—ईसा से ५०० वर्ष पूर्व इस महान ज्ञानी तथा योगी का चीन देश में जन्म हुआ। इनका उपदेश 'ताओ के सिद्धान्त' के नाम से प्रसिद्ध है। 'ताओ' का अर्थ है—ब्रह्म अर्थात् प्रकृति में समाया हुआ गूढ़ तत्व, इसका अर्थ मार्ग भी होता है। जिसने 'ताओ' का साक्षात्कार किया है, वह सब प्रकार के विधि-निषेधों को पार करके सदा आत्म-तुष्ट की भाँति निर्द्वन्द और निर्लेप होकर रहता है—ऐसा निवृत्ति-मार्गी वेदान्त से मिलता जुलता 'ताओ' का सिद्धान्त है। चीन देश का प्रसिद्ध दार्शनिक कन्फ्यूशियस, कहते हैं, जिस समय, यह उपदेश देता था—'उपकार के बदले उपकार और अपकार के बदले अपकार करो' उसी

समय लाओ-त्से ने जनता के सामने यह महान उपदेश रक्खा था—'उपकार के बदले में जिस तरह उपकार किया जाता है, वैसे ही अपकार के बदले में भी उपकार ही करना चाहिये।'

३. सुकरात—यह यूनान देश का जगत्प्रसिद्ध तत्ववेत्ता हुआ है। अपने अन्तिम जीवन में यूनान की राजधानी, अथेन्स में उसने सद्ज्ञान और सदाचार का उपदेश देना शुरु किया। नवयुवकों पर उसके उपदेशों का बड़ा प्रभाव पड़ता था। वह स्वयं एक जबरदस्त तार्किक था और विवाद करने की एक बड़ी ही रोचक और प्रभावशाली शैली का आविष्कारक हुआ है। प्रश्न पर प्रश्न करके वह प्रतिपक्षी से ही अपने मन की बात कहलाता था। लोग उसकी दिगन्त-विजयिनी प्रतिभा से घबड़ा कर कहने लगे—यह तो जादू कर देता है। उस पर नवयुवकों को बहकाने और देवी-देवताओं को गालियें देने का आरोप लगा कर एक बड़ा ही मजेदार मुक़दमा चलाया गया जो संसार के साहित्य की एक अमर चीज बन गया है। अथेन्स के सिनेटरों ने उसकी प्रतिभा से परेशान होकर उसे मृत्यु-दण्ड की आज्ञा दी। सुकरात का अनुयायी और मित्र क्रैटो उससे जेल में से भाग निकलने का अनुरोध करता है, पर वह उसे अस्वीकार करते हुए कहता है—मैं जिन नियमों को अभी तक मानता आया हूँ, अब विपत्ति पड़ने पर यदि मैं उन्हें चोट पहुँचाऊँगा तो इनके भाई जो स्वर्ग में हैं, वे मुझे कभी क्षमा न करेंगे। अपने अत्याचारियों के प्रति मन में जरा भी वैर-भाव न रखकर निर्भय निर्द्वन्द रूप से प्रसन्नता पूर्वक ज़हर का प्याला पीकर अत्यन्त शान्त और सस्मित मुद्रा के साथ जीवन के अन्तिम क्षणों में अपने अनुयायियों को उपदेश

देते हुए जब हम उसे देखते हैं तो अनायास ही एक मृत्युञ्जय आर्य योगी की कल्पना मन में जागृत होती है और संसार का मस्तक श्रद्धा और भक्ति के साथ उसके चरणों में झुक जाता है।

४. जॉन दि बैप्टिस्ट—ईसा मसीह के कुछ पहिले यह आचार्य हुआ था। कहा जाता है, इसने यह भविष्य-वाणी की थी—"मुझ से अधिक समर्थ उपदेशक मेरे बाद आयेगा। मैं तो उसके जूतों के फीते खोलने लायक भी नहीं हूँ"। लोगों का विश्वास है कि यह इशारा ईसा मसीह की ओर था और क्राइस्ट ही वह उपदेशक है जिसका *जॉन दि बैप्टिस्ट ने ज़िक्र किया था।* वह कहता था कि स्वर्ग-राज्य की स्थापना का समय हो गया है इसलिये कोई पाप न करना चाहिये और सब के साथ प्रेम-पूर्ण समान व्यवहार करना चाहिये। जिन यहूदियों ने उसके उपदेश को ग्रहण किया, उन्हें जार्डन नाम की नदी में स्नान करा कर दीक्षा दी। इसी *दीक्षा—बप्तिस्मा के कारण* उसका नाम जान दि बैप्टिस्ट प्रसिद्ध हुआ। ईसा के जन्म से २८ वर्ष पूर्व उसे फाँसी पर चढ़ाकर मार डाला।

५. लज़ारस—यह एक ग़रीब फ़क़ीर था जिसके शरीर में कुष्ट के घाव थे। वह एक अमीर आदमी के द्वार पर पड़ा रहता था, कुत्ते आकर उसके घाव को चाटते। वह अमीर बड़ी शान से रहता, खूब खाता-पीता और मौज करता। लज़ारस उसके जूठे टुकड़े खाकर ही किसी तरह गुज़ारा करता था। किन्तु जब यह मरा तो हज़रत इब्राहीम ने प्रेम-पूर्वक उसे अपनी गोद में लिटा लिया। वह धनी मरने पर क़ब्र में दफ़ना दिया गया और उसे नरक मिला। जब उसकी आँख खुली तो वह असह्य

नारकीय पीड़ा से व्यथित हो उठा और देखा कि वह नाचीज़ ग़रीब लज़ारस—जो उसके द्वार पर पड़ा रहता और उसकी जूठन खाकर जीता था—आनन्द से इब्राहीम की गोद में लेटा हुआ है। उसने चिल्लाकर कहा—पिता! दया करके ज़रा लज़ारस को भेज दो ताकि वह मेरे मुँह में पानी की दो बूंदें डाल जाये। मैं तो इस आग में झुलसा जाता हूँ। पर इब्राहीम ने कहा—पुत्र! यह नहीं हो सकता! तू ने अपने जीवन में आनन्द किया और यह यहाँ आनन्द कर रहा है। दूसरे हमारे बीच में एक बड़ा गढ़ा है जिसे पार करके कोई आ जा नहीं सकता। उस धनिक ने तब प्रार्थना की कि लज़ारस को दुनिया में उसके बाप के घर भेज दिया जाये ताकि उसके जो चार भाई हैं, वह सबक़ सीखें और इस यातना से बचें। इब्राहीम ने उत्तर दिया कि दुनिया में हज़रत मूसा और अन्य पैग़म्बर हैं। जो लोग उनकी बातें नहीं सुनेंगे, वह मरकर फिर जिन्दा हो जाने वाले लज़ारस की बात की भी पर्वाह न करेंगे।

इस आख्यायिका में यह दिखलाया गया है कि मनुष्य धन के कारण भोग-विलास में पड़कर अपनी आत्मा को खो बैठता है और ग़रीब आत्म-चिन्तन और सरल जीवन के द्वारा अपना कल्याण करता है। इसमें धनिकों को चेतावनी है कि वह धन के मोह में पड़कर आत्मा को न भूल जायें और ग़रीबों को आश्वासन है कि वह संसारी विपत्तियों से दुःखित न हों, वह इन्हीं के द्वारा अपनी आत्मा का कल्याण कर रहे हैं।

लागत मूल्य पर हिन्दी पुस्तकें प्रकाशित करनेवाली

एक मात्र सार्वजनिक संस्था

सस्ता-साहित्य-प्रकाशक मण्डल, अजमेर

उद्देश्य—हिंदी-साहित्य-संसार में उच्च और शुद्ध साहित्य के प्रचार के उद्देश्य से इस मण्डल का जन्म हुआ है। विविध विषयों पर सबसाधारण और शिक्षित-समुदाय, स्त्री और बालक सबके लिए उपयोगी, अच्छी और सस्ती पुस्तकें इस मण्डल के द्वारा प्रकाशित होंगी।

विषय—धर्म (रामायण, महाभारत, दर्शन, वेदान्तादि) राजनीति, विज्ञान, कलाकौशल, शिल्प, स्वास्थ्य, समाजशास्त्र, इतिहास, शिक्षाप्रद उपन्यास, नाटक, जीवनचरित्र, स्त्रियोपयोगी और बालोपयोगी आदि विषयों की पुस्तकें तथा स्वामी रामतीर्थ, विवेकानन्द, टाल्सटाय, तुलसीदास, सूरदास, कबीर, बिहारी, भूषण आदि की रचनाएँ प्रकाशित होंगी।

इस मण्डल के सदुद्देश्य, महत्व और भविष्य का अन्दाज़ पाठकों को होने के लिए हम सिर्फ़ उसके संस्थापकों के नाम यहाँ दे देते हैं—

मंडल के संस्थापक—(१) सेठ जमनालालजी बजाज, वर्धा (२) सेठ घनश्यामदासजी बिड़ला कलकत्ता (सभापति) (३) स्वामी आनन्दानंदजी (४) बाबू महावीर प्रसादजी पोद्दार (५) डा० अम्बालालजी दधीच (६) पं० हरिभाऊ उपाध्याय (७) श्री जीतमल लूणिया, अजमेर (मन्त्री)

पुस्तकों का मूल्य—लगभग लागतमात्र रहेगा। अर्थात् बाजार में जिन पुस्तकों का मूल्य व्यापाराना ढंग से १) रखा जाता है उनका मूल्य हमारे यहाँ केवल ।=) या ।≡) रहेगा। इस तरह से हमारे यहाँ १) में ५०० से ६०० पृष्ठ तक की पुस्तकें तो अवश्य ही दी जावेंगी। सचित्र पुस्तकों में खर्च अधिक होने से मूल्य अधिक रहेगा। यह मूल्य स्थायी ग्राहकों के लिए है। सर्व साधारण के लिये थोड़ा सा मूल्य अधिक रहेगा।

हिन्दी-प्रेमियों का स्पष्ट कर्तव्य

यदि आप चाहते हैं कि हिंदी का—यह 'सस्ता मण्डल' फलेफूले तो आपका कर्तव्य है कि आजही न केवल आपही इसके ग्राहक बनें, बल्कि अपने परिचित मित्रों को भी बनाकर इसकी सहायता करें।

हमारे यहाँ से निकलनेवाली दो मालाएँ और

स्थायी ग्राहक होने के दो नियम

खूब ध्यान से सब नियमों को पढ़ लीजिये

(१) हमारे यहाँ से 'सस्ती विविध पुस्तक-माला' नामक माला निकलती है जिसमें वर्ष भर में ३२०० पृष्ठों की कोई अठारह बीस पुस्तकें निकलती हैं और वार्षिक मूल्य पोस्ट ख़र्च सहित केवल ८) है। अर्थात् छः रुपया ३२०० पृष्ठों का मूल्य और २) डाकख़र्च। इस विविध पुस्तक-माला के दो विभाग हैं। एक 'सस्ती-साहित्य-माला' और दूसरी 'सस्ती-प्रकीर्ण पुस्तकमाला'। दो विभाग इसलिये कर दिये गये हैं कि जो सज्जन वर्ष भर में आठ रुपया ख़र्च न कर सकें, वे एक ही माला के ग्राहक बन जावें। प्रत्येक माला में १६०० पृष्ठों की पुस्तकें निकलती हैं और पोस्ट ख़र्च सहित ४) वार्षिक मूल्य है। माला से ज्यों ज्यों पुस्तकें निकलती जायेंगी, वैसे वैसे पुस्तकें वार्षिक ग्राहकों के पास मण्डल अपना पोस्टेज लगाकर पहुँचाता जायगा। जब १६०० या ३२०० पृष्ठों की पुस्तकें ग्राहकों के पास पहुँच जावेंगी, तब उनका वार्षिक मूल्य समाप्त हो जायगा।

(२) वार्षिक ग्राहकों को उस वर्ष की-जिस वर्ष में वे ग्राहक बनें-सब पुस्तकें लेनी होती हैं। यदि उन्होंने उस वर्ष की कुछ पुस्तकें पहले से ले रखी हों तो अगले वर्ष की ग्राहक-श्रेणी का पूरा रुपया यानि ४) या ८) दे देने पर या कम से कम १) या २) जमा करा देने तथा अगला वर्ष शुरू होने पर शेष मूल्य भेज देने का वचन देने पर, पिछले वर्षों की पुस्तकें जो वे चाहें, एक एक कापी लागत मूल्य पर ले सकते हैं।

(३) दूसरा नियम—प्रत्येक माला की आठ आना प्रवेश फ़ीस या दोनों मालाओं की १) प्रवेश फ़ीस देकर भी आप ग्राहक बन सकते हैं। इस तरह जैसे जैसे पुस्तकें निकलती जायगी, उनका लागत मूल्य और पोस्ट ख़र्च जोड़ कर वी. पी. से भेज दी जाया करेंगी। प्रत्येक वी.पी. में ≈) रजिस्ट्री ख़र्च व ≈) वी. पी. ख़र्च तथा पोस्टेज ख़र्च अलग लगता है। इस तरह वर्ष भर में प्रवेश फ़ीसवाले ग्राहकों को प्रति माला पीछे क़रीब ढाई रुपया पोस्टेज पड़ जाता है। वार्षिक ग्राहकों को केवल १) ही पोस्ट ख़र्च लगता है।

हमारी सलाह है कि आप वार्षिक ग्राहक ही बनें

क्योंकि इससे आपको पोस्ट ख़र्च में भी किफ़ायत रहेगी और प्रवेश फ़ीस के ॥) या १) भी आपसे नहीं लिये जावेंगे।

(४) दोनों तरह के ग्राहकों को—एक एक कापी ही लागत मूल्य पर मिलती है। अधिक प्रतियाँ मँगाने पर सर्वसाधारण के मूल्य पर दो आना रुपया कमीशन काट कर भेजी जाती हैं। हाँ, बीस रुपये से ऊपर की पुस्तकें मँगाने पर २५) सैंकड़ा कमीशन काट कर भेजी जा सकती हैं। किसी एक माला के ग्राहक होने पर यदि वे दूसरी माला की पुस्तकें या मंडल से निकलने वाली फुटकर पुस्तकें मँगावेंगे तो दो आना रुपया कमीशन काट कर भेजी जावेंगी। पर अपना ग्राहक नंबर ज़रूर लिखना चाहिये।

(५) दोनों मालाओं का वर्ष—सस्ता साहित्य-माला का वर्ष जनवरी मास से शुरू होकर दिसम्बर मास में समाप्त होता है और प्रकीर्ण-माला का वर्ष अप्रेल मास से शुरू होकर दूसरे वर्ष के अप्रेल मास में समाप्त होता है। मालाओं की पुस्तकें दूसरे तीसरे महीने इकट्ठी निकलती हैं और तब ग्राहकों के पास भेज दी जाती हैं। इस तरह वर्ष भर में कुल १६०० या ३२०० पृष्ठों की पुस्तकें ग्राहकों के पास पहुँचा दी जाती हैं।

(६) जो वार्षिक ग्राहक माला की सब पुस्तकें सजिल्द मँगाना चाहें, उन्हें प्रत्येक माला के पीछे दो रुपया अधिक भेजना चाहिये, अर्थात् साहित्य माला के ६) वार्षिक और इसी तरह प्रकीर्ण माला के ६) वार्षिक भेजना चाहिये।

हमारे यहाँ से निकलनेवाली फुटकर पुस्तकें

उपरोक्त दोनों मालाओं के अतिरिक्त अन्य पुस्तकें भी हमारे यहाँ से निकलती हैं। परन्तु जैसे दोनों मालाओं में वर्ष भर में ३२०० पृष्ठों की पुस्तकें निकालने का निश्चित नियम है वैसा इनका कोई खास नियम नहीं है। सुविधा और आवश्यकतानुसार पुस्तकें निकलती हैं।

स्थाई ग्राहकों के जानने योग्य बातें

(१) जो ग्राहक जिस माला के ग्राहक बनते हैं, उन्हें उसी माला की एक एक पुस्तक लागत मूल्य पर मिल सकती है। अन्य पुस्तकें मँगाने के लिये उन्हें आर्डर भेजना चाहिये। जिन पर उपरोक्त नियमानुसार कमीशन काट कर वी० पी० द्वारा पुस्तकें भेज दी जावेंगी।

(२) ग्राहकों का पत्र देते समय अपना ग्राहक नम्बर ज़रूर लिखना चाहिये। इसमें भूल न रहे।

(३) मंडल से निकलने वाली फुटकर पुस्तकों के भी यदि आप स्थाई ग्राहक बनना चाहें तो ।) प्रवेश फ़ीस भेज कर बन सकते हैं। जब जब पुस्तकें निकलेंगी उनको लागत मूल्य से वी॰ पी॰ करके भेज दी जायेंगी।

सस्ती-साहित्य-माला की पुस्तकें (प्रथम वर्ष)

दक्षिण अफ्रिका का सत्याग्रह—प्रथम भाग (ले॰—महात्मा गांधी)

(१) पृष्ठ सं॰ २७२, मूल्य स्थायी ग्राहकों से ।॰) सर्वसाधारण से ।॥)

म॰ गांधीजी लिखते हैं—"बहुत समय से मैं सोच रहा था कि इस सत्याग्रह-संग्राम का इतिहास लिखूँ, क्योंकि इसका कितना ही अंश मैं ही लिख सकता हूँ। कौनसी बात किस हेतु से की गई है, यह तो युद्ध का संचालक ही जान सकता है। सत्याग्रह के सिद्धांत का ज्ञान लोगों में हो, इसलिये यह पुस्तक लिखी गई है।" सरस्वती, कर्मवीर, प्रताप आदि पत्रों ने इस पुस्तक के दिव्य विचारों की प्रशंसा की है।

(२) शिवाजी की योग्यता—(ले॰ गोपाल दामोदर तामसकर एम॰ ए॰, एल॰ टी॰) पृष्ठ-संख्या ११२, मूल्य स्थायी ग्राहकों से केवल ।) सर्वसाधारण से ।=) प्रत्येक इतिहास प्रेमी को इसे पढ़ना चाहिए।

(३) दिव्य जीवन—अर्थात् उत्तम विचारों का जीवन पर प्रभाव। संसार प्रसिद्ध स्विट् मार्सडन के The Miracles of Right Thoughts का हिंदी अनुवाद। पृष्ठ-संख्या ११६, मूल्य स्थायी ग्राहकों से ।) सर्व साधारण से ।=) चौथी बार छपी है।

(४) भारत के स्त्री-रत्न—(तीन भाग) इस ग्रंथ में वैदिक काल से लगाकर आजतक की प्रायः सब धर्मों की आदर्श, पातिव्रत्य परायण, विद्वान् और भक्त कोई ५०० स्त्रियों का जीवन-वृत्तान्त होगा। हिंदी में इतना बड़ा ग्रन्थ आज तक नहीं निकला। प्रथम भाग पृष्ठ ४१० मूल्य स्थायी ग्राहकों से केवल ।॥) सर्वसाधारण से १) आगे के भाग शीघ्र छपेंगे।

(५) व्यावहारिक सभ्यता—यह पुस्तक बालक, युवा, वृद्ध, स्त्री

सभी को उपयोगी है, परस्पर बड़ों व छोटों के प्रति तथा संसार में किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए, ऐसे ही अनेक उपयोगी उपदेश भरे हुए हैं। पृष्ठ १०८, मूल्य स्थायी ग्राहकों से ≡) सर्वसाधारण से ।)॥ दूसरी बार छपी है

(६) आत्मोपदेश—(यूनान के प्रसिद्ध तत्वज्ञानी महात्मा एपिक्टेटस के विचार) पृष्ठ १०४, मूल्य स्थायी ग्राहकों से ≡) सर्वसाधारण से ।)

(७) क्या करें ?—(ले०—महात्मा टाल्सटाय) इसमें मनुष्य जाति के सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक प्रश्नों पर बहुत ही सुंदर और मार्मिक विवेचन किया गया है। महात्मा गांधी जी लिखते हैं—"इस पुस्तक ने मेरे मन पर बड़ी गहरी छाप डाली है। विश्व-प्रेम मनुष्य को कहाँ तक ले जा सकता है, यह मैं अधिकाधिक समझने लगा" प्रथम भाग पृष्ठ २६६ मूल्य केवल ॥≡) स्थाई ग्राहकों से ।≡) दूसरा भाग भी छप रहा है इसका मूल्य भी लगभग यही रहेगा।

(८) कलवार की करतूत—(ले०—महात्मा टाल्सटाय) इस नाटक में शराब पीने के दुष्परिणाम बड़ी सुंदर रीति से दिखलाये गये हैं। पृष्ठ ४० मूल्य -)॥ स्थाई ग्राहकों से -)॥

(९) जीवन-साहित्य—म० गांधी के सत्याग्रह आश्रम के प्रसिद्ध विचारक और लेखक काका कालेलकर के धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक विषयों पर मौलिक और मननीय लेख—प्रथम भाग पृष्ठ २०० मूल्य ॥) स्थाई ग्राहकों से ।=) इसका दूसरा भाग भी छप रहा है।

इस प्रकार उपरोक्त नौ पुस्तकें १६६८ पृष्ठों की इस माला के प्रथम वर्ष में प्रकाशित हुई हैं अब दूसरे वर्ष अर्थात् सन् १९२७ में जो जो पुस्तकें प्रकाशित होंगी उनका नोटिस कवर के चौथे पृष्ठ पर छपा है।

सस्ती-प्रकीर्ण माला की पुस्तकें (प्रथम वर्ष)

(१) कर्मयोग—(ले० अध्यात्म योगी श्री अश्विनीकुमार दत्त। इसमें निष्काम कर्म किस प्रकार किये जाते हैं—सच्चा कर्मवीर किसे कहते हैं—आदि बातें बड़ी खूबी से बताई गई हैं। पृष्ठ सं० १५२, मूल्य केवल ।=) स्थायी ग्राहकों से ।)

(२) सीताजी की अग्नि-परीक्षा—सीता जी की 'अग्नि-परीक्षा'

इतिहास से, विज्ञान से तथा अनेक विदेशी उदाहरणों द्वारा सिद्ध की गई है। पृष्ठ सं० १२४, मूल्य ।=) स्थायी ग्राहकों से ≡)॥

(३) कन्या-शिक्षा—सास, ससुर आदि कुटुंबी के साथ किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिये, घर की व्यवस्था कैसी करनी चाहिये आदि बातें, कथा-रूप में बतलाई गई हैं। पृष्ठ सं० ९४, मूल्य केवल ।) स्थायी ग्राहकों से ≡)

(४) यथार्थ आदर्श जीवन—हमारा प्राचीन जीवन कैसा उच्च था, पर अब पाश्चात्य आडम्बरमय जीवन की नक़ल कर हमारी अवस्था कैसी शोचनीय हो गई है। अब हम फिर किस प्रकार उच्च बन सकते हैं—आदि बातें इस पुस्तक में बताई गई हैं। पृष्ठ सं० २६४, मूल्य केवल ॥=) स्थायी ग्राहकों से ।≥)॥

(५) स्वाधीनता के सिद्धान्त—प्रसिद्ध आयरिश वीर टेरेंस मेक्स-वीनी की Principles of Freedom का अनुवाद—प्रत्येक स्वतंत्रता-प्रेमी को इसे पढ़ना चाहिये। पृष्ठ सं० २०८ मूल्य ॥), स्थायी ग्राहकों से ।=)॥

(६) तरंगित हृदय—(ले० पं० देवशर्मा विद्यालंकार) भू० ले० पद्मसिंहजी शर्मा—इसमें अनेक ग्रन्थों को मथन करके एकांत हृदय के सामाजिक, आध्यात्मिक और राजनैतिक विषयों पर बड़े ही सुन्दर, हृदयस्पर्शी मौलिक विचार लिखे गये हैं। किसी का अनुवाद नहीं है। पृष्ठ सं० १०६, मूल्य ।≥) स्थायी ग्राहकों से ।=)

(७) गंगा गोविंदसिंह—(ले० बंगाल के प्रसिद्ध लेखक श्री चण्डीचरण सेन) इस उपन्यास में ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन-काल में भारत के लोगों पर अँग्रेज़ों ने कैसे कैसे भीषण अत्याचार किये और यहाँ का व्यापार नष्ट किया उसका रोमांचकारी वर्णन तथा कुछ देश-भक्तों ने किस प्रकार मुसीबतें सहकर इनका मुक़ाबला किया उसका गौरव-पूर्ण इतिहास वर्णित है। रोचक इतना है कि शुरू करने पर समाप्त किये बिना नहीं रहा जा सकता। पृष्ठ २८० मूल्य केवल ॥≥) स्थायी ग्राहकों से ।≥)॥

(८) यूरोप का इतिहास—(प्रथम भाग) छप रहा है। पृष्ठ लगभग ३५० मार्च सन् १९२० तक छप जायगा। इस माला में प्रकाश पुस्तक और निकलेगी तब वर्ष समाप्त हो जायगा।

☞ हमारे यहाँ हिंदी की सब प्रकार की उत्तम पुस्तकें भी मिलती हैं—बड़ा सूचीपत्र मँगाकर देखिये।

पता—सस्ता-साहित्य-प्रकाशक मण्डल, अजमेर।

वर्ष २] सस्ती-साहित्य-माला [पुस्तक २

स्त्री और पुरुष

महात्मा टाल्सटाय

वर्ष २] सस्ती-साहित्य-माला [पुस्तक १

स्त्री और पुरुष

[महात्मा टालस्टाय लिखित 'The Relations of the Sexes' का हिन्दी अनुवाद]

अनुवादक—

वैजनाथ महोदय, बी० ए०

प्रकाशक—

सस्ता-साहित्य-प्रकाशक मण्डल,

अजमेर

प्रथम बार] १९२७. [मूल्य ।=)

प्रकाशक—
जीतमल लूणिया, मन्त्री
सस्ता-साहित्य-प्रकाशक मण्डल, अजमेर

हिन्दी प्रेमियों से अनुरोध

इस सस्ता-मंडल की पुस्तकों का विषय, उनकी पृष्ठ-संख्या और मूल्य पर ज़रा विचार कीजिये। कितनी उत्तम और साथ ही कितनी सस्ती हैं। मण्डल से निकली हुई पुस्तकों के नाम तथा स्थायी ग्राहक होने के नियम, पुस्तक के अंत में दिये हुए हैं, इन्हें एक बार आप अवश्य पढ़ लीजिये।

* ग्राहक नम्बर—

* यदि आप इस मंडल के ग्राहक हैं तो अपना नम्बर यहाँ लिख रखिये, ताकि आपको याद रहे। पत्र देते समय यह नंबर जरूर लिखा करें।

मुद्रक—
गणपति कृष्ण गुर्जर,
श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, काशी

साग्रह समर्पण

उन अनिच्छुक भाई-बहनों के हाथों में

जो

भोग-विलास को जीवन का सुख और ध्येय माने बैठे हैं, या

विवाहित होकर दुःखमय जीवन व्यतीत कर रहे हैं, या

विवाह को प्रकृति के धर्म का पालन समझ कर

विवाह की कल्पना से स्वर्गीय रस का

स्वप्न देखा करते हैं,

या जो

उच्छृंखल वैवाहिक जीवन व्यतीत कर दैव पर

दुष्टता का आरोप करते फिरते हैं।

अनुवादक

लागत का ब्योरा

कागज	२३०) रु०
छपाई	२१०) ,,
बाइंडिंग	४०) ,,
लिखाई, व्यवस्था, विज्ञापन आदि खर्च	२७०) ,,
	७५०) रु०

कुल प्रतियाँ २०००

लागत मूल्य प्रति संख्या ।)

दो शब्द

काउण्ट टाल्स्टाय की गणना यूरोप के महापुरुषों में की जाती है। वे एक महान् विचारक और कला-मर्मज्ञ हो गये हैं। जीवन को उच्च और सुन्दर बनाने वाले प्रायः प्रत्येक विषय पर उन्होंने दिव्य ग्रन्थों की रचना की है। मौलिकता और सूक्ष्मता उनकी विचार-प्रणाली के मुख्य गुण हैं। उनके दिव्य विचार हृदय में पैठे विना नहीं रहते। 'स्त्री और पुरुष' उन्हीं की मार्मिक लेखनी से निकली, अपूर्व पुस्तक का अनुवाद है। इसका विषय है स्त्री और पुरुष के पारस्परिक सम्बन्ध का आदर्श। टाल्सटाय ने ब्रह्मचर्य को आदर्श विवाह को मनुष्य-जाति की कमजोरी की रिआयत, और मानव-जाति की सेवा को उसका उद्देश माना है। हज़रत ईसामसीह की शिक्षाओं का यही सार आपने बताया है। उनका यह निष्कर्ष हमारे हिन्दू-धर्म के जीवनादर्श और विवाहोद्देश के बिलकुल अनुकूल है। उनकी मूल पुस्तक ईसाई और यूरोपवासियों को ध्यान में रख कर लिखी गई है, इस लिए उसमें ईसामसीह की शिक्षाओं का विवेचन प्रधान-रूप से होना स्वाभाविक है।

भारतवर्ष के सामने भी इस समय स्त्री और पुरुष के पार-

स्परिक सम्बन्ध का प्रश्न बड़े विकट रूप में उपस्थित है। ब्रह्म-चर्य के उच्च आदर्श तथा विवाह के सच्चे उद्देश को भूल जाने के कारण हमारा न केवल शारीरिक ह्रास ही हो रहा है, बल्कि मानसिक और आत्मिक पतन भी हो गया है और होता जा रहा है। विषय-क्षुधा के असहाय शिकार होकर हम एक ओर जहाँ दाम्पत्य-जीवन को कलह, व्याधि और अशान्तिमय बना रहे हैं, वहाँ दूसरी ओर समाज और देश को पतन के गलत रास्ते की ओर ले जा रहे हैं। बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह जैसे भयंकर राक्षस जिस समाज को एक ओर से लील रहे हैं और दूसरी ओर से जिसका युवक-दल असीम विषयोपभोग को ईश्वरीय इच्छा, प्राकृतिक धर्म का पालन समझ कर विनाश के गर्त में गिरने में मग्न है, उसके लिए ऐसी पुस्तकों का प्रकाशन—ऐसे दिव्य विचारकों का प्रचार, ईश्वरीय देन समझना चाहिए। विवाह और दाम्पत्य-धर्म से सम्बन्ध रखने वाली प्रायः प्रत्येक महत्वपूर्ण गुत्थी पर इसमें दैवी प्रकाश डाला गया है—उसे एक प्रकार से मौलिक रूप से सुलझाने का यत्न किया गया है और मेरा ख्याल है कि टाल्स्टाय को उसमें पूर्ण सफलता मिली है।

ऐसी अनमोल और जो भी इतने गंभीर और महत्वपूर्ण विषय पर एक महान् क्रान्तिकारी मौलिक विचारक की लिखी पुस्तक के अनुवाद का अधिकारी मैं अपने को नहीं मान सकता।

इस अधिकार-प्रवेश का साहस केवल इसी कारण हुआ है कि मुझे टाल्स्टाय का स्त्री-पुरुष-सम्बन्धी आदर्श प्रिय है और उसके पालन का दीर्घ उद्योग किए बिना मैं भारत की शारीरिक उन्नति और नैतिक विकास को असंभव मानता हूँ। लोहे की अँगूठीमें जड़ा यह रत्न पाठकों को अखरेगा तो; पर आशा है वे यह समझ कर मेरे साहस को अपना लेंगे कि मेरे पास जो अच्छी से अच्छी चीज़ थी, उसी के साथ मैंने इस रत्न को उनके अर्पण करने की चेष्टा की है। रत्न तो स्वयं प्रकाश्य होता है, लोहे में से भी वह अपनी प्रभा फैलाये बिना न रहेगा।

अनुवादक

महापुरुषों के अनमोल उपदेश

ब्रह्मचर्य की अखण्डता से परमात्मा का सहज में लाभ होता है।

❀ ❀ ❀ ❀

मानसिक संयम (ब्रह्मचर्य) से ही जीव का उद्धार निश्चय पूर्वक हो सकता है।

❀ ❀ ❀ ❀

हमें ऐसे मनुष्य चाहिए जिनके शरीर की नसें लोहे की भांति और स्नायु इस्पात की तरह दृढ़ हों। उनको देह में ऐसा मन हो, जिसका संगठन वज्र से हुआ हो। हमें चाहिए पराक्रम, मनुष्यत्व, क्षात्रवीर्य, और ब्रह्मतेज। यह सब ब्रह्मचर्य से ही हो सकता है।

* * * *

यह संसार ही मातृमय है। कुभावना के लिए स्थान ही कहाँ! इस विचार से ब्रह्मचर्य के पालन में कठिनता क्या है? माता स्वयं अपने पुत्रों की रक्षा करती है।

* * * *

'ब्रह्मचर्य-प्रतिष्ठायां वीर्यलाभः।' यह योग-शास्त्र का बड़ा गम्भीर सिद्धान्त है। शरीर की रक्षा और पुष्टि के लिए ब्रह्मचर्य तथा व्यायाम आवश्यक है।

* * * *

स्त्री और पुरुष

समाज के प्रायः सब लोगों में यह धारणा जड़ पकड़ गई है कि विषयोपभोग (मैथुन) स्वास्थ्य-रक्षा के लिए नितान्त आवश्यक है। झूठे विज्ञान के द्वारा इसका समर्थन भी किया जाता है। इस मान्यता को गृहीत करके लोग आगे कहते हैं कि, चूँकि विवाह कर लेना प्रत्येक मनुष्य के हाथ में नहीं है इसलिए व्यभिचार द्वारा अपनी विषय-क्षुधा को शान्त करना पूर्णतः स्वाभाविक है। सिवा पैसे के इसमें मनुष्य पर किसी प्रकार का बंधन भी नहीं है। अतः इसको उत्तेजना देना चाहिए।

यह भ्रम-मूलक धारणा समाज में इतनी फैल गई है कि कितने ही माता-पिता अपने बच्चे के स्वास्थ्य के विषय में चिंतित हो, डाक्टर की सलाह लेकर अपने बच्चों को घृणित कार्य के लिए उत्साहित करते हैं। सरकारों का धर्म है कि वे अपनी प्रजा के नैतिक जीवन को उच्च बनाये रक्खें। पर वे भी दुर्गुणों को उत्तेजना देती हैं। पुरुषों की काल्पनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वे तो स्त्रियों के एक अलहदा वर्ग का ही संगठन करती हैं, जो उन बेचारियों को शारीरिक और आध्यात्मिक विनाश के

गड्ढे में ढकेल देता है और अविवाहित पुरुष बिलकुल चुपचाप इस बुराई के पंजे में फँसते चले जाते हैं।

मैं कहना चाहता हूँ कि यह बुरा है, यह अनुचित है कि कुछ लोगों के स्वास्थ्य की रक्षा के लिए दूसरों के शरीर और आत्मा का नाश किया जाय। कुछ आदमियों का अपने स्वास्थ्य-लाभ के लिए दूसरों का खून पीना जितना बुरा होगा उतना ही बुरा यह कार्य भी है।

मैं तो इससे यही नतीजा निकाल सकता हूँ कि प्रत्येक मनुष्य को चाहिये कि वह इस ग़लती और भ्रमसे अपने को दूर रक्खे। और इन बुराइयों से बचने का सब से सरल उपाय तो यही है कि वे किसी भी अनीतिकर शिक्षाओं पर विश्वास न करें। चाहे वह झूठा विज्ञान भी प्रत्यक्ष इसका समर्थन करे, तो भी मनुष्य को चाहिए कि वह उसकी तरफ़ ध्यान न दे। दूसरे, मनुष्य, अपने हृदय में यह अंकित करले कि यह व्यभिचार जिसमें पुरुष अपने पापों के फलों से बचने की कोशिश करके उनका तमाम भार स्त्रियों पर डाल देता है, जो सन्तति-निरोध के लिये कृत्रिम उपायों की आयोजना करती है, केवल कायरता है। यह सुनीति का भारी से भारी उल्लंघन है। अतः पुरुषों को, यदि कायरता से बचना है तो इन पापों के जाल में अपने को भूल कर न फँसने देना चाहिए।

यदि पुरुष संयमशील जीवन पसंद करें तो उन्हें अपना जीवन-क्रम अत्यन्त सरल और स्वाभाविक बना लेना चाहिये। उन्हें न कभी शराब पीना चाहिए और न अधिक भोजन ही

करना चाहिये। मांसाहार भी छोड़ देना अच्छा है। परिश्रम से (यहाँ अखाड़े की कसरत से मतलब नहीं, बल्कि सच्चे थका देनेवाले उत्पादक परिश्रम से है) मनुष्य मुँह न मोड़े। मनुष्य अपनी माता, बहन, अन्य रिश्तेदार अथवा अपने मित्रों की पत्नियों से जिस तरह बच कर और सावधानतापूर्वक रहता है, वैसे ही अन्य अपरिचित स्त्रियों से भी रहने की कोशिश करे। यथा सम्भव स्त्रियों के साथ कभी एकान्त में न ठहरे। यदि वह इतना जागरूक रहेगा तो अपने आस-पास वह ऐसे सैकड़ों उदाहरण देखेगा जो उसको सिद्ध करके देखादेंगे कि संयमशील जीवन व्यतीत करना केवल सम्भवनीय ही नहीं बल्कि असंयमशील जीवन की अपेक्षा कहीं कम खतरनाक और स्वास्थ्य के लिये कम हानिकर है।

यह हुई पहली बात

दूसरे, फ़ैशनेबल समाज के दिल में यह खयाल जमजाने के कारण कि विषयोपभोग स्वास्थ्य-रक्षा के लिये अनिवार्य है, वह एक आनन्द-दायक वस्तु है, और जीवन में एक काव्यमय तथा उच्च कोटि का वरदान है, समाज के सभी अंगों में व्यभिचार एक मामूली सी बात हो गई है। (मजदूरपेशा लोगों में इस बुराई का कारण फ़ौजी नौकरी भी है।)

मेरा खयाल है कि यह भी अनुचित है और इन सब बुराइयों को दूर करना परमावश्यक है।

इन बुराइयों को दूर करने के लिये यह परमावश्यक

है कि स्त्री-पुरुष-सम्बन्धी प्रेम-विषयक जो कल्पनायें हैं, उन्हें बदल दें।। माता पिताओं द्वारा लड़के-लड़कियों को यह शिक्षा मिलनी चाहिए कि विवाह के पहले तथा बाद में स्त्री पुरुषों का आपस में प्रेम करना और उसके बाद विषयोपभोग में मग्न हो जाना कोई काव्यमय और तारीफ़ के योग्य उच्च बात नहीं है। यह तो पशु-जीवन का चिन्ह है जो मनुष्य को नीचे गिरा देता है।

वैवाहिक प्रतिज्ञा का भंग करने वाले की, समाज की ओर से कम से कम उतनी ही प्रताड़ना और भर्त्सना तो ज़रूर होनी चाहिये जितनी कि आर्थिक कर्तव्यों के भंग करने वाले अथवा व्यापार में धोखेबाज़ी करने वाले की होती है। नाटक, उपन्यास, कवितायें, गीत और सीनेमा द्वारा इस बुराई की प्रशंसा कर करके समाज के अंदर जो आज इसके भयंकर कीटाणु बुरी तरह फैलाये जा रहे हैं, इसको बिलकुल रोक देना चाहिये।

यह हुई दूसरी बात

तीसरे, विषयोपभोग को मिथ्या महत्व देने के कारण हमारे समाज में संतानोत्पत्ति का सच्चा अर्थ नष्ट हो गया है। संतानोत्पत्ति विवाहित जीवन का उद्देश और फल होने के बजाय वह अब स्त्री पुरुषों के लिए विषय-सुख का बाधक मानी जाने लग गई है। फलतः डाक्टरों की सहायता से विवाह के पूर्व और पश्चात् संतति-निरोध के उपायों का काम में लाया जाना एक मामूली से मामूली बात होती जा रही है। पहले गर्भावस्था और शिशु-संवर्धन के समय में स्त्री पुरुष विषयोप-

भोग नहीं करते थे, आज भी पुराने परिवारों में वह नहा होता। पर अब तो यह गर्भावस्था और शिशु-संवर्धन के काल में भी विषयोपभोग करना एक मामूली रिवाज सा हो गया है।

यह भी नितान्त अनुचित है।

सन्तति-निरोध के लिए कृत्रिम उपायों का अवलम्बन करना बहुत ही बुरा है। क्योंकि इस से मनुष्य बच्चों के पालन-पोषण तथा शिक्षा आदि के चिन्ता-भार से मुक्त हो जाता है। अपनी गलती के दण्ड से वह कायरता-पूर्वक जी चुराता है। यह सरासर अनुचित और बुरा है। स्त्री पुरुषों के सम्बन्ध में यदि कोई समाधान के योग्य बात हो तो वह केवल यही संतानोत्पत्ति है। मानव विवेक के लिए यह अत्यंत जघन्य बात है। क्योंकि गर्भावस्था और शिशु-संवर्धन के काल में विषयोपभोग करने से स्त्री के शारीरिक और आध्यात्मिक शक्तियों का पूर्ण विनाश हो जाता है।

अतः इस दृष्टि से विचार करते हुए भी हम इसी नतीजे पर पहुँचते हैं कि यह बुराई हमारे अंदर से जितनी जल्द हो सके दूर करना चाहिए। इसको यदि दूर करना है तो मनुष्य को चाहिए कि वह संयम के महत्व को समझ ले। जो संयम अविवाहित अवस्था में मानव गौरव की अनिवार्य शर्त है, वह विवाहित जीवन में पहले से भी अधिक आवश्यक है।

यह हुई तीसरी बात

चौथे जिस समाज में बच्चों का पैदा होना विषयानन्द में एक

विघ्न, एक अभागा संयोग अथवा नियमित संख्या में ही हों तो, सुख का विषय, समझा जाता है, उसमें इनका पालन-पोषण, तथा संवर्धन इस खयाल से नहीं किया जाता कि वे बड़े होने पर उन प्रश्नों को सुलझावें जो कि उन्हें विवेकशील, प्रेमी जीव समझ कर, उनकी राह देख रहे हैं, बल्कि माता-पिता उनका पालन इस खयाल से करते हैं कि वे उनको सुख दें। फलतः मनुष्यों के बच्चे पशुओं के बच्चों की तरह पालेपोसे जाते हैं। उनका पालन-पोषण करते समय माता पिता यह कोशिश नहीं करते कि हमारे बच्चे बड़े होने पर मानवता के उलझे हुए प्रश्नों को सुलझाने योग्य बनें। बल्कि वे तो उन्हें मोटा, ताजा, सुन्दर-सुडौल बनाने के लिए खिलाते पिलाते हैं। और एक झूठा शास्त्र—वैद्यक—इनका समर्थन करता है। यदि निचले दर्जे के लोग यह नहीं करते तो इसका कारण कोई उच्च आदर्श नहीं, बल्कि उनकी दरिद्रता है। चाहते तो वे भी यही हैं कि उनके बच्चे भी धनिकों के बच्चों के जैसेही सुन्दर-सुडौल और मोटे ताजे हों।

इन हद से ज्यादह खाने वाले बच्चों में, अन्य तमाम ज्यादह खाने वाले पशुओं के समान, एक बहुत अस्वाभाविक कम उम्र में दुर्दमनीय वैषयिकता उत्पन्न हो जाती है जो बड़े होने पर उन्हें बेतरह सताती है। उनकी इस वैषयिकता को उनके वायुमण्डल से भी असाधारण पोषण और उत्तेजना मिलती है। कपड़े, किताबें, दृश्य, संगीत, नृत्य, मेले और संदूकों पर की तस्वीरों से लेकर कथा कहानियों और कविताएँ तक जीवन की तमाम अनात्य आवश्यक चीजें उनकी कामुकता को बेहद बढ़ाती चली जाती हैं।

फल यह होता है कि समाज के युवक, युवतियाँ जीवन के वसंतकाल ही से भीषण रोग के शिकार होने लग जाती हैं।

यह अत्यन्त दुःख की बात है।

इससे हमें क्या शिक्षा लेनी चाहिये? यही कि, मनुष्यों के बच्चों का पालन-पोषण पशु के बच्चों की तरह करना हानिकर है। शिशु-संवर्धन के समय बच्चे के मोटे ताज़े और सुडौल बनाने की अपेक्षा दूसरी बातों की ओर हमें विशेष ध्यान देना चाहिये।

यह हुई चौथी बात।

पाँचवें हमारे समाज में युवक और युवतियों का आपस में प्रेम करना मानव-जीवन की सर्वोच्च काव्यमय महत्वाकांक्षा समझी जाती है। (ज़रा हमारे समाज की कला और काव्य की ओर दृष्टिपात करके देख लीजिए) युवक स्वतंत्र प्रेम-विवाह के लिए किसी योग्य युवती को ढूँढ़ने में और लड़कियाँ तथा स्त्रियाँ ऐसे पुरुषों को अपने प्रेम-पाशों में फँसाने में अपने जीवन का बढ़िया से बढ़िया हिस्सा यौंहीं बरबाद कर देते हैं।

इस देश के पुरुषों की सर्वश्रेष्ठ शक्तियाँ ऐसे काम में खर्च हो जाती हैं जो न केवल निरर्थक बल्कि हानिकर भी हैं। इसी के कारण हमारे जीवन में इतनी मूढ़ विलासिता बढ़ती जा रही है। इसी के कारण पुरुषों में आलस्य और स्त्रियों में निर्बलता बढ़ती जाती है। कुलीन स्त्रियाँ नीच कुलटाओं की देखादेखी नित्य नई फैशनें सीखती जाती हैं और पुरुषों के चित्त में काम की आग को भड़काने वाले अपने अंगों का प्रदर्शन करने में ज़रा भी नहीं लजातीं।

क्या यह पतन का सीधा मार्ग नहीं है ?

काव्य और अद्भुत कथाओं में भले ही स्त्री-पुरुषों के इस सम्बन्ध को आनन्द के सर्वोच्च शिखर पर बैठा दिया हो, किन्तु यथार्थ में देखा जाय तो अपने प्रेमपात्र के साथ ऐसा सम्मिलन उतना ही अनुचित है जितना कि अच्छे अच्छे पकवानों का खूब खा लेना सिर्फ इसीलिए कि कुछ लोगों की नज़र में वे एक नियामत हैं।

मनुष्य को चाहिए कि वह विषयोपभोग को एक उच्च आनन्द देनेवाली वस्तु समझना छोड़ दे। ज़रा सोचिए तो सही, विषयोपभोग के कारण मनुष्य को किस पुरुषार्थ की प्राप्ति में सहायता मिलती है ? विषयी मनुष्य कला, शास्त्र, देश अथवा समस्त मनुष्य-जाति इनमें से किसी एक की भी सेवा करने योग्य नहीं रह जाता। वह प्रेम अथवा विषय-वासना मनुष्य के कार्य में कभी सहायता नहीं पहुँचाती बल्कि, हाँ, उलटे विघ्न ज़रूर उपस्थित कर देती है। काव्य और उपन्यास भले ही उसकी तारीफों के पुल बाँधें और इसके विपरीत सिद्ध करने की कोशिश करें।

यह हुई पाँचवीं बात

मैं जो कुछ कहना चाहता था, वह संक्षेप में यही है। जहाँ तक मैं सोचता हूँ अपनी 'सोनाटा क्रूज़ा' नामक कहानी में मैंने यह दर्शा भी दिया है। उपर्युक्त विवेचन द्वारा जो बुराई बताई गई है, उसके दूर करने के उपायों में भले ही मतभेद हो सकता हो परन्तु मेरा ख़याल है कि इन विचारों की सत्यता के विषय में तो शायद कोई असहमत न होगा।

और असहमत कोई हो भी क्यों ? उसकी बात तो यह है कि इस बात को सभी मानते हैं कि मनुष्य-जाति नैतिक शिथिलता से पवित्रता की ओर धीरे धीरे प्रगति करती जा रही है और उपर्युक्त विचार इसके अनुकूल हैं। दूसरे यह समाज और व्यक्ति दोनों के नीति-विवेक के अनुकूल भी है। दोनों वैषयिकता की निन्दा और संयम की तारीफ करते हैं। फिर ये बाइबल की शिक्षा के भी अनुकूल हैं, जो हमारे नैतिक विचारों की बुनियाद में हैं और जिसकी हम डींग मारते हैं। पर बाद में मेरा यह ख़याल ग़लत साबित हुआ।

पर यह तो सत्य है कि प्रत्यक्ष रूप से इन विचारों की सत्यता में कोई शक नहीं करता कि विवाह के पहले या बाद में विषयोपभोग अनावश्यक है—कृत्रिम उपायों से संतति का निरोध नहीं करना चाहिए और स्त्री-पुरुषों को अन्य कार्यों की अपेक्षा विषयोपभोग को अधिक महत्वपूर्ण नहीं समझना चाहिए। अथवा एक शब्द में कहें, तो विषयोपभोग की अपेक्षा संयम—ब्रह्मचर्य—कहीं अधिक श्रेष्ठ है। पर लोग पूछते हैं, यदि ब्रह्मचर्य विषयोपभोग की अपेक्षा श्रेष्ठ है तो यह स्पष्ट है कि मनुष्य को श्रेष्ठ मार्ग ही का अवलम्बन करना चाहिए। पर यदि वे ऐसा करें तो मनुष्य जाति न नष्ट हो जायगी ?"

किन्तु पृथ्वीतल से मनुष्य-जाति के मिट जाने का डर कोई नवीन बात नहीं है। धार्मिक लोग इस पर बड़ी श्रद्धा रखते हैं और वैज्ञानिकों के लिए सूर्य के ठंढे होने के बाद यह एक अनिवार्य बात है। पर हम इस विषय में यहाँ कुछ न कहेंगे।

इस दलील में एक विशाल और पुरानी ग़लत-फ़हमी है। लोग कहते हैं कि यदि मनुष्य ब्रह्मचर्य-पूर्वक रहने लग जायँ तो पृथ्वी तक से मनुष्य-जाति ही उठ जायगी, अतः यह आदर्श ही ग़लत है। पर इस तरह की दलील को पेश करने वालों के दिमाग़ में नियम और आदर्श की कल्पनाओं में कुछ गड़बड़ी है।

ब्रह्मचर्य उपदेश अथवा नियम नहीं। आदर्श अथवा, आदर्श की शर्तों में से एक है। आदर्श तो तभी आदर्श कहा जा सकता है जब उसकी प्राप्ति कल्पना द्वारा ही सम्भव हो, जब उसकी प्राप्ति अनन्त की 'आड़' में छिपी हो। यदि आदर्श प्राप्त हो जाय अथवा हम उसकी प्राप्ति की कल्पना भी कर सकें तो वह आदर्श ही नहीं रहा।

पृथ्वी पर परमात्मा के राज्य की अर्थात् स्वर्ग की स्थापना करने का ईसा का आदर्श इसी कोटि का था और पुराने पैग़म्बरों ने इसका पहले ही भविष्य कथन कर दिया था, जब उन्होंने कहा था कि वह समय आ रहा है, जब प्रत्येक मनुष्य को ईश्वर-विषयक ज्ञान दिया जायगा। वह समय तेजी से आ रहा है, जब लोगों को अपनी तलवारें तोड़ कर उनके हल और अपने भालों की कलम करने की कैंचियाँ बना लेनी पड़ेंगी; जब शेर और बकरी एक घाट पर पानी पीयेंगे और समस्त प्राणिमात्र एकमात्र प्रेम के बंधन में बंध जायेंगे। मानव जीवन का अंतिम आदर्श यही है। अतः इस उच्च आदर्श की पूर्णता की तरफ़ हमारा क़दम बढ़ना ख़तरनाक बात नहीं है। ब्रह्मचर्य तो उस आदर्श का एक अंग ही है। इस से जीवन के विनाश

का संभव नहीं, बल्कि इस के विपरीत बात तो यही ठीक है कि इस आदर्श का अभाव ही हमारी प्रगति के लिए हानिकर और इसी कारण जीवन के लिए खतरनाक है।

प्रेम-धर्म का पालन करने के लिए यदि जी जान से मनुष्य यत्न करे—जीवन-कलह को छोड़ कर यदि हम भूतमात्र के प्रति प्रेम-धर्म के आदेश के अनुसार रहने लग जायँ तो क्या मनुष्य-जाति नष्ट हो जायगी? प्रेम-धर्म के पालन से मनुष्य-जाति के विनाश का संदेह करने के समान ही, ब्रह्मचर्य के पालन से मनुष्य जाति का विनाश होने की शंका करना है। ऐसी शंकायें उन्हीं लोगों के चित्त में पैदा होती हैं जो उन दो उपायों के बीच का भेद नहीं समझ पाते हैं जो कि नीति के मार्ग-दर्शक हैं।

जिस प्रकार पथिक को रास्ता बताने के दो मार्ग होते हैं, उसी प्रकार सत्य का शोध करने वाले के लिए भी नैतिक जीवन के मार्ग-दर्शक केवल दो ही उपाय हैं। एक उपाय के द्वारा पथिक को उसके रास्ते में मिलने वाले चिह्नों और निशानों की सूचना दी जाती है जिनको देख कर वह अपना रास्ता ढूँढ़ता चला जाय। और दूसरे के द्वारा उसको अपने पास वाले दिशा-दर्शक कम्पास की भाषा में रास्ता समझाया जाता है।

नैतिक मार्ग-दर्शक पहले उपाय के अनुसार मनुष्य को बाहरी नियम बताते हैं। उसे क्या करना चाहिये और क्या नहीं, इसका साधारण ज्ञान दिया जाता है—मसलन् सत्य का पालन कर, चोरी मत कर, किसी प्राणी की हत्या न कर, मोहताजों को दान दिया कर, शरीर को साफ़ सुथरा रख कर ईश्वर-प्रार्थना करता

जा, शराब कभी न पी इत्यादि। धर्म के ये बाहरी सिद्धान्त अथवा नियम हैं। और किसी न किसी रूप में ये प्रत्येक धर्म में पाये जाते हैं। फिर वह सनातन वैदिक धर्म हो, बुद्ध धर्म हो, यहूदी धर्म हो या पादड़ियों का धर्म हो (जो ख्वाहमख्वां ईसाई मजहब कहा जाता है।)

मनुष्य को नीति की ओर ले जाने का एक दूसरा उपाय है जो उस पूर्णता की ओर इशारा करता है, जिसे आदमी कभी प्राप्त हा नहीं कर सकता। हाँ, उसके हृदय में यह आकांक्षा ज़रूर रहती है कि वह इस पूर्णता को प्राप्त करे। एक आदर्श बताया जाता है, उसको देख कर मनुष्य अपनी कमज़ोरी या अपूर्णता का अन्दाज़ लगा सकता है और उसे दूर करने का प्रयत्न करता रहता है।

" काया, वाचा, मनसा ईश्वर की भक्ति कर और अपने पड़ोसी पर अपने निज के समान प्यार कर "।

"अपने स्वर्गीय पिता के समान पूर्ण बन" । यह है ईसा का उपदेश।

बाह्य नियमों के पालन के मानी हैं आचार और उपदेश में सम्पूर्ण साम्य और यह असम्भव नहीं।

आदर्श-पूर्णता से हम कितने दूर हैं, इसका ठीक ठीक ज्ञान-हो जाने के ही माने हैं कि हम ईसा के उपदेशों का पालन कहाँ तक कर रहे हैं। (मनुष्य यह नहीं देख सकता कि इस आदर्श के कितने नज़दीक तक मैं पहुँचा हूँ। पर वह यह ज़रूर देख सकता है कि मैं उससे कितनी दूर हूँ।)

बाह्य नियमों का जो मनुष्य पालन करता है, वह उस मनुष्य के समान है जो खम्भे पर लगे हुए लालटेन के प्रकाश में खड़ा हो। वह प्रकाश में खड़ा है। प्रकाश उसके चारों ओर है पर उसके आगे बढ़ने के लिए कोई मार्ग नहीं है। ईसा के उपदेशों पर जिसका विश्वास है, वह उस मनुष्य के समान है जिसके आगे आगे लालटेन चलता है। प्रकाश हमेशा उससे आगे ही रहता है और उसे बराबर अपना अनुसरण करने के लिए आगे बढ़ने की प्रेरणा करता रहता है। वह बराबर नये नये पदार्थों को प्रकाशित कर उनकी ओर मनुष्य को आकर्षित करता रहता है।

फारिसी इसलिए परमात्मा को धन्यवाद देता है कि वह उस कानून का पूर्ण पालन करता है। उस धनिक युवक ने भी अपने बचपन से सम्पूर्ण नियमों का पालन किया था किन्तु वह यह नहीं जानता कि उसके अन्दर क्या कमी है। यह स्वाभाविक भी है। उनके सामने ऐसी कोई चीज़ न थी, जो उनको आगे बढ़ने की प्रेरणा करे। दान दिये जाते, सबाथ का पालन होता, माता पिता का सम्मान किया जाता। व्यभिचार, चोरी और खून से दूर रहते थे, और क्या चाहिए।

पर जो ईसाई आदर्श में विश्वास करता है, उसकी बात दूसरी है। एक सीढ़ी पर चढ़ते ही दूसरी पर पैर रखने की आवश्यकता उत्पन्न हो जाती है, दूसरी पर पहुँचते ही तीसरी सीढ़ी दीखने लग जाती है। इस तरह वह आगे ही आगे बढ़ता जाता है। उसके प्रगति का क्रम अनंत है।

ईसा के आदेशों में विश्वास करने वाला सदा अपनी अपूर्णता

को देखता रहता है। पीछे की ओर मुड़ कर वह यह नहीं देखता कि मैं कितनी दूर आया। बस, वह तो यही देखता रहता है कि मुझे और कितनी दूर जाना है।

ईसा के उपदेशों में यही विशेषता है जो अन्य धर्म-मार्गों में नहीं पाई जाती। भेद, दावों का नहीं; बल्कि प्रेरक रीति का है।

ईसा ने जीवन की कोई परिभाषा नहीं बताई। उसने विवाह वा अन्य किसी प्रकार की—किसी संस्था की—स्थापना नहीं की। पर मनुष्यों ने उसके उपदेशों की विशेषताओं को नहीं देखा। केवल बाहरी नियमों के पालन में अटके रह गये। फारिसियों की भाँति वे यह समाधान ढूँढ़ने लगे कि हम उसके तमाम आदेशों का पालन करते हैं। इस धुन में वे ईसा के सच्चे आशय का दर्शन न कर पाये। उसके शब्दों के अनुसार, किन्तु उसके उपदेशों के ठीक विपरीत, उन्होंने नियमों का एक तांता बना लिया जिसे वे गिरजा के सिद्धान्त (Church doctrines) कहने लगे। इन नियमों ने ईसा के सच्चे सिद्धान्तों को अलग हटा कर अपना ही सिक्का जमा लिया।

ईसा के आदर्श उपदेशों के स्थान पर और उसके उद्देश के विपरीत इन गिरजा सिद्धान्तों ने, जो अपने को ख्वाहमख्वाह ईसाई कहते हैं, जीवन के तमाम प्रसङ्गों पर अपने नियमोपनियम बना लिये। सरकार, कानून, गिरजाघर, और पूजा के सम्बन्ध में ये नियम बनाये गये हैं। विवाह-विषयक भी कुछ नियम हैं। ईसा ने कभी विवाह-संस्था की स्थापना नहीं की। बल्कि वह तो इसके खिलाफ भी था। (अपनी पत्नी को छोड़ कर मेरी बात

मान) पर इसकी कुछ भी परवा न कर अपने को ख्वाहमख्वाह ईसाई कहने वाले गिरजा-सिद्धान्तों ने विवाह को एक बारगी ईसाई संस्था करार दे दिया अर्थात् उन्होंने उन बाह्य नियमों की रचना कर डाली जिनके अनुसार एक ईसाई के लिए वैषयिक-प्रेम जैसा कि वे प्रतिपादन करते हैं, पूर्णतया पापरहित और जायज़ संस्कार हो जाता है।

यद्यपि स्वयं ईसा के उपदेशों के अनुसार विवाह एक ईसाई संस्था नहीं है, तथापि अब बात यह हो गई है कि परली पार पहुँचने के उपाय की आयोजना सोचने के पहिले ही मनुष्य इस किनारे को छोड़ चुके हैं। बात यह है कि विवाह विषयक इस पादरीशाही परिभाषा में वे विश्वास नहीं करते। वे जानते हैं कि ईसाई सिद्धान्तों में इसे कहीं स्थान ही नहीं है। दूसरे वे ईसा के पूर्ण ब्रह्मचर्य-विषयक आदर्श का भी दर्शन नहीं कर पाये हैं। भला, इस विवाह के सम्बन्ध में उन्हें कोई निश्चित मार्ग ही नहीं दिखाई देता।

यहूदी, इस्लामी, लामा पंथी आदि लोगों में, जो कि ईसाई-धर्म की अपेक्षा कहीं निकृष्ट धर्म-सिद्धान्तों को मानते हैं और जिनमें विवाह-विषयक बाह्य नियम वर्तमान हैं, पारिवारिक और वैवाहिक निष्ठा ईसाई कहे जाने वालों की अपेक्षा कहीं अधिक मजबूत हैं। इन लोगों में दास्तायें रक्खी जाती हैं, एक पुरुष की कई पत्नियाँ होती हैं, एक स्त्री के कई पति होते हैं, यह सब होता है। पर इसकी भी उनमें सीमा है। किन्तु हम लोगों में (ईसाइयों में) अधमता की कोई हद ही नहीं। दाश्तायें रक्खी जाता

हैं, यह पत्नीत्व है, वह पतीत्व है, और वह असीम है। और सब से भारी आश्चर्य यह कि एक पतीत्व अथवा एक पत्नीत्व की ओट में सब हो रहा है।

इसका कारण यही है कि ये पादड़ी लोग केवल धन के लिए उन जुड़े हुए लोगों पर एक ऐसा संस्कार करते हैं जिसको पादड़ी शाही विवाह कहा जाता है। इसलिए कि लोग अपने को धोखा देकर यह खयाल करने लग जायँ कि वे लोग एक पत्नीव्रत या एक पतिव्रत का पालन कर रहे हैं।

न तो आज तक कभी ईसाई विवाह हुआ है और न कभी हो ही सकता है। *ईसाई पूजा, गिरजा के ईसाई शिक्षक या ईसाई पिता, ईसाई जायदाद, ईसाई फौज, ईसाई अदालतें और ईसाई सरकारों का अस्तित्व जिस प्रकार एक असंभव और अनहोनी बात है, ठीक उसी प्रकार ईसाई विवाह भी एकदम असंभव वस्तु †है।

ईसा के बाद की कुछ सदियों में होने वाले ईसाइयों ने इस रहस्य को भलि भाँति जान लिया था।

ईसाई आदर्श तो यह है—ईश्वर और अपने पड़ोसी पर प्यार करो। ईश्वर और अपने पड़ोसी की सेवा के लिए अपना सर्वस्व त्याग दो। वैषयिक प्रेम और विवाह तो आत्म-सेवा—स्वयं अपनी सेवा—है। इसलिए हर हालत में यह ईश्वर और मनुष्य की सेवा के आदर्श का विरोधी है। अतः ईसाई दृष्टि से यह पतन है, पाप है।

---

* मैथ्यू ५, ५–१२, जॉन ४, २१

† मैथ्यू २३, ८–१०,

विवाह से मनुष्य अथवा ईश्वर की सेवा में कोई सहायता नहीं पहुँचती यद्यपि विवाह की इच्छा करने वालों का हेतु इससे मानव-समाज की सेवा करना भी हो। विवाह करके नये बच्चों को पैदा करने की अपेक्षा उनके लिए यह कहीं अधिक आसान है कि वे भूखों मरने वाले उन लाखों मनुष्यों को किसी उपयोगी उद्यम में लगा कर बचावें। आध्यात्मिक अन्न की तो बात दूर है पर उनके शारीरिक पोषण के लिये ही अन्न प्राप्त करने में उनकी सहायता करें।

एक सच्चा ईसाई तो विवाह को बिना किसी प्रकार का पाप समझे तभी वैवाहिक बंधन में अपने को बाँध सकता है, जब कि वह यह देख ले कि अभी संसार में जितने भी बच्चे हैं, सब को भर पेट अन्न मिल रहा है।

मनुष्य ईसा के उपदेशों को मानने से भले ही इन्कार करें; हाँ, भले ही मनुष्य उन सिद्धान्तों को न माने जो हमारे जीवन की तह तक पहुँच गये हैं, और जिन पर हमारी तमाम नीति निर्भर है। पर यदि एक बार अंगीकार कर लें तो इस बात से इन्कार नहीं कर सकते कि वे हमें सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य के आदर्श की ओर ले जा रहे हैं।

बायबल में यह साफ़ साफ़ शब्दों में कहा है जिनका ग़लत अर्थ ही नहीं किया जा सकता कि पहले तो मनुष्य को दूसरी पत्नी करने के लिए अपनी पहली पत्नी को नहीं छोड़ना चाहिए*

---

* मैथ्यू अध्याय पाँचवाँ वचन २८, २९, ३१, ३२ और अध्याय उन्नीस के वचन ८, १०, १२

दूसरे, पुरुष के लिए सर्वसाधारणतया, अर्थात् वह विवाहित हो या अविवाहित, यह पाप है कि वह स्त्री को अपनी भोग—सामग्री समझे। तीसरे, अविवाहित मनुष्य के लिए अच्छा यही है कि वह कभी शादी न करे अर्थात् ब्रह्मचर्य का पालन करे।

कई लोगों को ये विचार विचित्र और विपरीत मालूम होंगे और सचमुच ये विपरीत हैं भी। किन्तु अपने ही प्रति नहीं, वे हमारे वर्तमान जीवन-क्रम के एकदम विपरीत हैं। तब अपने आप एक सवाल खड़ा होता है कि फिर सत्य क्या है ? ये विचार, या इन लाखों करोड़ों का और मेरा भी प्रत्यक्ष-जीवन ? यह विचार और भाव उस समय मेरे दिल में बड़े जोरों से उठ रहे थे जब मैं धीरे धीरे इन निर्णयों की ओर आकर्षित हो रहा था। मैंने यह कभी खयाल भी न किया था कि मेरे विचार मुझे उन नतीजों पर ले जावेंगे जिन पर कि मैं आज आ पहुँचा हूँ। इन नतीजों ने तो मुझे चौंका दिया। मैं इन पर विश्वास भी करना नहीं चाहता था। पर यह असंभव था। हमारे वर्तमान जीवन-क्रम के ये चाहे कितने ही विपरीत हों, स्वयं मेरे पूर्व जीवन और लेखों से भी वे चाहे बहुत विपरीत हों, परन्तु मैं तो उन पर विश्वास करने के लिए मजबूर हो गया हूँ।

लोग कहेंगे, ये तो सिद्धान्त की बातें हैं। यद्यपि वे सभी हों तथापि हैं ये आखिर ईसा के उपदेश। वे उन्हीं लोगों पर लागू हो सकते हैं जो कहते हैं कि हम उनमें विश्वास करते हैं। पर जीवन कोई खेल नहीं है। यह तो आप पहले ही कह चुके हैं कि ईसा का बताया वह आदर्श अप्राप्य है। फिर भी हम केवल इसी

हवाई आदर्श के भरोसे संसार में लोगों को, एक ऐसे वादग्रस्त प्रश्न के बीच धार में नहीं छोड़ सकते जो कि उन्हें बड़े बड़े संकटों की ओर ले जा सकती है।

एक जवान भावुक आदमी इस आदर्श के द्वारा पहले भले ही आकर्षित हो जाय, पर वह आखिर तक नहीं टिक सकता। उसका पतन अवश्यम्भावी है। फिर वह किसी नियम और उपदेश की परवा नहीं करेगा। बस, सीधा नीचे की ओर दौड़ता चला जायगा।

ईसा का आदर्श तो दुष्प्राप्य है। दूर से देखने की चीज़ है। हम उस तक नहीं पहुँच सकते। वह संसार में हमारा हाथ पकड़ कर नहीं ले जा सकता। भले ही हम उसके विषय में खूब लम्बी चौड़ी बातें करें, अजीब अजीब स्वप्न देखें, पर यह प्रत्यक्ष जीवन के लिये एकदम निरुपयोगी है अतएव छोड़ देने योग्य है।

हमें आदर्श की नहीं, मार्गदर्शक की आवश्यकता है जो हमारी शक्ति का ख़याल कर हमें धीरे धीरे आगे बढ़ाता हुआ ले चले, जो हमारे समाज की सर्वसाधारण नैतिक अवस्था के अनुकूल हो।

यदि ऐसा है तो पादड़ीशाही विवाह, या अप्रामाणिक विवाह जिसमें दोनों में से किसी एक का (हमारे समाज में सामान्यतः पुरुष का) दूसरी औरतों के साथ सम्बन्ध रह चुका हो, सिविल विवाह, अथवा वह विवाह जिसमें विलाक की गुंजाइश हो, या नियतकाल की सीमा रखनेवाला जापानी विवाह या इससे भी आगे बढ़ कर नित्य नूतन विवाह ही क्यों न किया जाय, जो कि कुछ

दूसरे, पुरुष के लिए सर्वसाधारणतया, अर्थात् वह विवाहित हो या अविवाहित, यह पाप है कि वह स्त्री को अपनी भोग—सामग्री समझे। तीसरे, अविवाहित मनुष्य के लिए अच्छा यही है कि वह कभी शादी न करे अर्थात् ब्रह्मचर्य का पालन करे।

कई लोगों को ये विचार विचित्र और विपरीत मालूम होंगे और सचमुच ये विपरीत हैं भी। किन्तु अपने ही प्रति नहीं, ये हमारे वर्तमान जीवन-क्रम के एकदम विपरीत हैं। तब अपने आप एक सवाल खड़ा होता है कि फिर सत्य क्या है? ये विचार, या हम लाखों करोड़ों का और मेरा भी प्रत्यक्ष-जीवन? यह विचार और भाव उस समय मेरे दिल में बड़े ज़ोरों से उठ रहे थे जब मैं धीरे धीरे इन निर्णयों की ओर आकर्षित हो रहा था। मैंने यह कभी ख़याल भी न किया था कि मेरे विचार मुझे उन नतीजों पर ले जावेंगे जिन पर कि मैं आज आ पहुँचा हूँ। इन नतीजों ने तो मुझे चौंका दिया। मैं इन पर विश्वास भी करना नहीं चाहता था। पर यह असंभव था। हमारे वर्तमान जीवन-क्रम के वे चाहे कितने ही विपरीत हों, स्वयं मेरे पूर्व जीवन और लेखों से भी वे चाहे बहुत विपरीत हों, परन्तु मैं तो उन पर विश्वास करने के लिए मजबूर हो गया हूँ।

लोग कहेंगे, ये तो सिद्धान्त की बातें हैं। यद्यपि वे सही हों तथापि हैं वे आख़िर ईसा के उपदेश। वे उन्हीं लोगों पर लागू हो सकते हैं जो कहते हैं कि हम उनमें विश्वास करते हैं। पर जीवन कोई खेल नहीं है। यह तो आप पहले ही कह चुके हैं कि ईसा का बताया यह आदर्श अप्राप्य है। फिर भी हम केवल इसी

हवाई आदर्श के भरोसे संसार में लोगों को, एक ऐसे वादग्रस्त प्रश्न के बीच धार में नहीं छोड़ सकते जो कि उन्हें बड़े बड़े संकटों की ओर ले जा सकती है।

एक जवान भावुक आदमी इस आदर्श के द्वारा पहले भले ही आकर्षित हो जाय, पर वह आखिर तक नहीं टिक सकता। उसका पतन अवश्यम्भावी है। फिर वह किसी नियम और उपदेश की परवा नहीं करेगा। बस, सीधा नीचे की ओर दौड़ता चला जायगा।

ईसा का आदर्श तो दुष्प्राप्य है। दूर से देखने की चीज़ है। हम उस तक नहीं पहुँच सकते। वह संसार में हमारा हाथ पकड़ कर नहीं ले जा सकता। भले ही हम उसके विषय में खूब लम्बी चौड़ी बातें करें, अजीब अजीब स्वप्न देखें, पर यह प्रत्यक्ष जीवन के लिये एकदम निरुपयोगी है अतएव छोड़ देने योग्य है।

हमें आदर्श की नहीं, मार्गदर्शक की आवश्यकता है, जो हमारी शक्ति का ख़याल कर हमें धीरे धीरे आगे बढ़ाता हुआ ले चले, जो हमारे समाज की सर्वसाधारण नैतिक अवस्था के अनुकूल हो।

यदि ऐसा है तो पादड़ीशाही विवाह, या अप्रामाणिक विवाह जिसमें दोनों में से किसी एक का (हमारे समाज में सामान्यतः पुरुष का) दूसरी औरतों के साथ सम्बन्ध रह चुका हो, सिविल विवाह, अथवा वह विवाह जिसमें तिलाक की गुंजाइश हो, या नियतकाल की सीमा रखनेवाला जापानी विवाह या इससे भी आगे बढ़ कर नित्य नूतन विवाह ही क्यों न किया जाय, जो कि कुछ

लोगों के खयाल में खुल्लमखुल्ला रास्ते पर होने वाली अनीति से तो किसी प्रकार अच्छा है।

दिक्कत यही है कि अपनी कमजोरी से मेल बैठाने के लिए आदर्श को ढीला करते ही यह नहीं सूझ पड़ता कि कहाँ ठहरा जाय।

पर यह दलील शुरू से ग़लत है। पहले तो यही खयाल ग़लत है कि अनंत पूर्णता वाला आदर्श, जीवन में हमारा मार्ग-दर्शक नहीं हो सकता। दूसरे यह सोचना भी ग़लत है कि या तो मुझे निराश हो यह कह देना चाहिए कि आदर्श हद से ज्यादह ऊँचा है, इसलिए इसे मुझे छोड़ देना चाहिए या मुझे उस आदर्श को अपनी कमजोरी से मेल बैठाने के लिए नीचे खसकाना चाहिए क्योंकि अपनी कमजोरी के कारण मैं जहाँ का वहीं रहना चाहता हूँ।

यदि एक जहाज का कप्तान कहे कि मैं कम्पास द्वारा बताई जानेवाली दिशा में नहीं जा सकता इसलिये मैं इसे उठाकर समुद्र में डाल दूँगा, उसकी तरफ देखना ही बन्द कर दूँगा। (अर्थात् आदर्श को क़तई छोड़ दूँगा) या मैं कम्पास के सुई को पकड़ कर उस दिशा में बाँध दूँगा जिधर मेरा जहाज जा रहा है (अर्थात् अपनी कमजोरी तक आदर्श को नीचे खींच लूँगा) तो निःसन्देह बेवकूफ़ कहा जायगा।

ईसा का बताया आदर्श न तो एक स्वप्न है और न कोई काव्यमय उपदेश। वह तो मनुष्यों को नीतिमय जीवन की ओर ले जानेवाला एक नितान्त आवश्यक मार्ग-दर्शक है जो सब के लिए एकसा उपयोगी और प्राप्य है, जैसा कि नाविकों के लिए

वह कम्पास होता है। पर नाविक का अपने कम्पास अर्थात् दिशा दर्शक यंत्र में विश्वास करना जितना आवश्यक है उतना ही मनुष्य का इन उपदेशों में विश्वास करना भी है।

मनुष्य चाहे किसी परिस्थिति में क्यों न हो, ईसा के आदर्श का उपदेश उसे यह निश्चित रूप से बताने के लिए सदा उपयोगी होगा कि उस मनुष्य को क्या क्या बातें करनी चाहिए। पर उसे उस उपदेश में पूरा विश्वास, अनन्य श्रद्धा, हो। जिस प्रकार जहाज का मल्लाह या कप्तान उस कम्पास को छोड़ और दायें बायें आने वाली किसी चीज़ का ख़याल नहीं करता, उसी प्रकार मनुष्य को भी इन उपदेशों में पूरी श्रद्धा रखनी चाहिए।

मनुष्य को यह जान लेना चाहिए कि ईसा के उपदेशों के अनुसार हमें किस तरह चलना चाहिए और इसके लिए अपनी वर्त्तमान-अवस्था का ज्ञान प्राप्त कर लेना परम आवश्यक है। उपस्थित आदर्श से हम कितनी दूर हैं, यह जानने से मनुष्य को कभी डरना न चाहिए। मनुष्य कहीं भी और किसी भी हालत में हो, वहाँ से वह बराबर आदर्श की तरफ़ बढ़ सकता है। साथ ही वह कितना ही आगे क्यों न बढ़ जाय, वह कभी यह नहीं कह सकता कि अब मैं ठेठ तक पहुँच गया या अब आगे बढ़ने के लिए कोई मार्ग ही न रहा।

सर्वसाधारणतया ईसाई आदर्श के प्रति और ख़ास कर ब्रह्मचर्य के प्रति मनुष्य की यह वृत्ति होनी चाहिए। एक अत्यन्त निर्दोष बालक से लेकर असंयमी और पतित से पतित विवाहित जीवन वाले मनुष्य की कल्पना कीजिए। और आप देखेंगे कि

हम यह पुस्तिका आपकी सेवा में इसलिये भेज रहे हैं कि आप ही इस बात का स्वयं निर्णय करें कि यह कथन कहाँ तक ठीक है। आपकी हार्दिक इच्छाओं की पूर्ति के लिये हम परमात्मा से प्रार्थना करते हैं।

भवदीय
(हस्ताक्षर) दी वर्नेस कम्पनी न्यूयार्क

इसके पहले मुझे फ्रान्स से श्रीमती एन्जाल फ्रेन्काइस का पत्र और उनकी एक पुस्तिका भी मिली थी। उन्होंने अपने पत्र में दो ऐसी संस्थाओं का ज़िक्र किया था जिनका उद्देश है स्त्री-पुरुषों के पारस्परिक सम्बन्ध को अधिक पवित्र रूप देना। इनमें से एक संस्था तो फ्रान्स में और दूसरी इंग्लैण्ड में है। श्रीमती एन्जल फ्रेन्काइस के पत्र में भी वही विचार प्रथित किये गये हैं जो 'डायना' में हैं, पर उतनी स्पष्टता के साथ नहीं। हाँ, उनमें कुछ परोक्ष ज्ञानवाद की ज्यादह झलक है।

'डायाना' में जो कल्पनायें और विचार प्रकट किये गये हैं, उन का आधार ईसाई आदर्श पर स्थित नहीं है। मूर्ति पूजक और प्लेटो के जीवन-सिद्धान्तों के आधार पर यह लिखी गई है! पर फिर भी उसके विचार इतने नवीन और आनन्द-वर्धक हैं और हमारे समाज के विवाहित तथा अविवाहित जीवन की वर्तमान नैतिक शिथिलता की जड़ में जो अविवेक है, उसे इतनी अच्छी तरह प्रकट करते हैं कि उसे पाठकों के सामने उपस्थित करने को मेरा जी चाहता है।

पुस्तिका पर यह आदर्श वाक्य लिखा है—"इन दोनों का शरीर एक होगा"। पुस्तिका में ग्रथित विचारों का सार इस तरह है:—

स्त्री और पुरुषों में केवल शारीरिक भेद ही नहीं है। अन्य बातों में तथा उनके नैतिक गुणों में भी भेद है जो पुरुषों में पौरुष और स्त्रियों में रमणीत्व कहे जाते हैं। शारीरिक सम्मीलन के लिये ही नहीं, बल्कि इन भिन्न भिन्न गुणों के भेद के कारण भी उनमें पारस्परिक आकर्षण होता रहता है। स्त्री पुरुष की तरफ झुकती है और पुरुष स्त्री की ओर आकर्षित होता है। प्रत्येक दूसरे की प्राप्ति द्वारा अपने को पूर्ण करने की कोशिश करता है। अतः यह आकर्षण शारीरिक तथा आध्यात्मिक सम्मीलन के लिए एकसा झुकाव रखता है। यह झुकाव एक ही शक्ति के दो अङ्ग हैं। और वे एक दूसरे के साथ ऐसा सम्बन्ध रखते हैं कि एक अंग की तृप्ति से दूसरा अंग कमजोर हो जाता है। यदि आध्यात्मिक आकांक्षा की तृप्ति की ओर ध्यान दिया जाता है तो शारीरिक आकांक्षा कमजोर हो जाती है या बिलकुल बुझ जाती है। और उसी प्रकार शारीरिक आकाँक्षा की पूर्ति आध्यात्मिक आकाँक्षा को कमजोर या नष्ट कर देती है। अतः यह आकर्षण केवल शारीरिक ही नहीं होता। वह दोनों प्रकार का होता है—शारीरिक और आध्यात्मिक। हाँ, वह पूर्णतया एक देशीय भी बनाया जा सकता है। पूर्णतया पाशविक अथवा शारीरिक या आध्यात्मिक। इन दोनों के बीच कई सीढ़ियाँ हैं जिनमें भी उसका प्रादुर्भाव हो सकता है। पर स्त्री

पुरुषों को एक दूसरे की ओर बढ़ते समय किस सीढ़ी पर अपनी गति को रोक देना चाहिए ? यह तो उनके व्यक्तिगत विचारों पर निर्भर है। वे जिस सीढ़ी को उचित, अच्छी और वांछनीय समझें वहीं ठहर सकते हैं। यह संभव है या नहीं, इसका यदि निराकरण करना हो तो हमें छोटे रूस की उस रूढ़ी को देखना चाहिए जिसमें विवाह के लिए चुने हुए जवान लड़के लड़की वर्षों तक साथ रक्खे जाते हैं और फिर भी वे अपने कौमार्य का भंग नहीं करते।

स्त्री और पुरुष प्रायः उसी सीढ़ी पर आनन्द मानते हैं जिसे वे अच्छी, उचित और वांछनीय समझते हैं। ये सीढ़ियाँ स्पष्ट ही प्रत्येक मनुष्य के लिए भिन्न भिन्न होंगी। पर सवाल है यह कि क्या पारस्परिक सम्मीलन की कोई ऐसी एक सीढ़ी भी हो सकती है जिसको प्राप्त करने पर, सभी एक से और ज्यादह से ज्यादह सन्तोष को प्राप्त कर सकें ?—चाहे शारीरिक सम्मीलन हो या आध्यात्मिक ? इसका उत्तर तो साफ़ और स्पष्ट है। पर यह हमारी सामाजिक धारणा के विपरीत है। उत्तर यह कि यह सीढ़ी शारीरिक अथवा इंद्रिय जन्य आनन्द के जितनी ही नजदीक होगी उतनी ही वासना बढ़ेगी और वासना जितनी ही अधिक बढ़ेगी हम सन्तोष से उतने ही दूर हटते जावेंगे।

इसके विपरीत हम जितने ही अतींद्रिय (आध्यात्मिक) सुख की ओर बढ़ेंगे उतनी ही वासना नष्ट होगी और हमारा समाधान भी स्थायी होगा। यह सन्तोष होगा। इन्द्रिय-सुख

जीवन-शक्ति के लिए विनाशक है और अतीन्द्रिय सुख शान्ति, आनन्द और बल का बढ़ाने वाला है।*

पुस्तक का लेखक स्त्री पुरुषों के सम्मीलन को मानव-जीवन के उच्च विश्वास की एक आवश्यक शर्त मानता है। लेखक का ख़याल है कि विवाह उन तमाम परिणत वय के स्त्री पुरुषों के लिए एक प्राकृतिक अवस्था है। यह कोई अनिवार्य नहीं कि उनका शारीरिक सम्बन्ध होना जरूरी है। पर वह सम्मीलन केवल आध्यात्मिक भी हो सकता है। विवाहेच्छु स्त्री पुरुषों की वृत्ति और प्रवृत्ति तथा योग्यायोग्यता के विवेक के अनुसार विवाह या तो शारीरिक या आध्यात्मिक सम्मीलन के नजदीक नजदीक पहुँच सकता है। पर यह तो निःसन्देह समझिए कि वह सम्मिलन जितना ही अधिक आध्यात्मिक होगा उतना ही अधिक संतोष देने वाला होगा।

लेखक इस बात को स्वीकार करते हैं कि स्त्री पुरुषों का पारस्परिक आकर्षण या तो पूर्णतया आध्यात्मिक ही हो सकता है या वैषयिक—शारीरिक। वे यह भी स्वीकार करते हैं कि स्त्री पुरुष इसे अपनी इच्छानुसार आध्यात्मिक या वैषयिक क्षेत्र में ले जाने की शक्ति भी रखते हैं। इससे स्पष्ट है कि वे ब्रह्मचर्य की असंभावना को क़बूल नहीं करते। बल्कि वे तो उसे विवाह के पहले और बाद में स्त्री पुरुषों के स्वास्थ्य के ख़याल से अत्यंत आवश्यक भी मानते हैं।

* सुखमात्यंतिकं यत्तद्बुद्धि ग्राह्यमतीन्द्रियम्। —गीता।

टाल्स्टाय के पत्र

(दिनचर्या आदि से)

विषयोपभोग के विषय में 'दी क्रूजर सोनाटा' के अंतिम कथन में, मैं अपने विचार पहले ही लिख चुका हूँ। वह तमाम प्रश्न एक शब्द में यों कहा जा सकता है—ईसा और उसके बाद पॉल के उपदेश के अनुसार मनुष्य को हमेशा, हर परिस्थिति में विवाहित तथा अविवाहित जीवन में अपनी शक्ति भर ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। स्त्री-विषयक ज्ञान से यदि वह अपने को बिल्कुल अछूता रख सके तब तो वह सर्वोत्कृष्ट बात होगी। यदि वह यह न कर सके तो यह कोशिश करे कि अपनी कमज़ोरी के अधीन कम से कम हो। विषयोपभोग में कभी आनंद न ले। मेरा ख़याल है कि कोई सच्चा और गंभीर पुरुष इस प्रश्न को दूसरी तरह नहीं सोचेगा। सभी इस से सहमत होंगे।

* * * *

'एडल्ट' के सम्पादक का 'स्वतंत्र प्रेम' के विषय में फिर एक पत्र मिला। समय होता तो मैं इस पर कुछ लिखना चाहता था। शायद लिखूँ भी। सब से पहले उन्हें बिना किसी प्रकार के परिणाम का विचार किये अधिक से अधिक आनन्द की प्राप्ति

का आश्वासन अपने आपको दिला देना चाहिए। अलावा इसके, वे एक ऐसी वात के अस्तित्व का प्रचार करते हैं जो पहले मौजूद है और बहुत ख़राब है। क़ानून-रचना के तो मैं ख़िलाफ़ ही हूँ। मैं तो पूर्ण स्वाधीनता चाहता हूँ। पर हमारा आदर्श ब्रह्मचर्य हो, न कि विषय-सुख।

* * * *

स्त्री-पुरुषों के सम्बन्ध से, इस 'प्रेम' करने से, जो अनेक आपत्तियाँ उत्पन्न होती हैं उनका कारण यही है कि हम कई बार वैषयिक प्रेम को आध्यात्मिक जीवन और शुद्ध प्रेम समझने की भयंकर ग़लती कर बैठते हैं। दूसरे, हम अपनी बुद्धि का उपयोग इस विकार को धिःकारने या रोकने के लिए नहीं, वल्कि आध्यात्मिकता रूपी मोर के पंखों से सुशोभित करने के लिए करते हैं।

* * * *

यह ऐसी जगह है जहाँ दोनों छोर मिलते हैं। स्त्री और पुरुषों के वीच के प्रत्येक आकर्षण को विषय-लालसा कहना भारी जड़ता होगी। पर यह अधिक से अधिक आध्यात्मिक दृष्टि है। यदि प्रेम को हम अच्छी तरह समझना चाहते हैं, तो हमें उसमें से उन तमाम बाहरी वातों को निकाल डालना चाहिए जो आध्यात्मिक न हों। तभी हम उसके शुद्ध स्वरूप या यथार्थ स्वरूप को पहचान सकेंगे।

संसार की भारी से भारी आपदाओं की जड़ है विषय-वासना। पर हम इसे दबाने और रोकने की कोशिश कभी नहीं करते। उलटा हर प्रकार से उसमें घी डालकर उस आग को प्रज्वलित ही करने की कोशिश करते हैं। और अंत में शिकायत भी करते हैं कि हम पर आपत्तियाँ उमड़ रही हैं, हमें दुःख हो रहा है।

* * * *

केवल शारीरिक सुख की इच्छा से अनेकों व्यक्तियों के साथ विषयोपभोग करने से मनुष्य विलासी बन जाता है। विलासिता क्या है? स्त्री अथवा पुरुष में विलासिता वह अशान्ति-पूर्ण अवस्था है जिसमें वह उत्सुकता-वश एक शराबी की तरह नित्य नवीनता को खोजता फिरता है या खोजती फिरती है। व्यभिचारी विलासी व्यक्ति अपने को एक बार रोक सकता है पर शराब-खोर कभी नहीं रोक सकता। शराबखोर शराबखोर है और व्यभिचारी व्यभिचारी। दोनों में फर्क नाममात्र को है। थोड़ी सी भी शिथिलता आने पर विलासी अधम व्यभिचारी बन जाता है।

* * * *

प्रलोभन के साथ झगड़ते समय हम कई बार पहले ही से अपनी विजय की रोचक कल्पना में तल्लीन हो जाते हैं। यह एक भारी कमजोरी है। ऐसे काम में हम लग जाते हैं जो हमारी शक्ति से बाहर है, जिसका पूरा करना न करना हमारे

शक्ति के अंदर की बात नहीं। पादड़ियों की तरह हम पहले ही से अपने आप से कहने लग जाते हैं। "मैं ब्रह्मचर्य के पालन की प्रतिज्ञा करता हूँ।" इस ब्रह्मचर्य से हमारा इशारा होता है बाहरी ब्रह्मचर्य की ओर; पर यह असंभव है। क्योंकि पहले तो हम इस बात की कल्पना नहीं कर सकते कि हमें आगे चल कर किन किन परिस्थितियों में से गुजरना होगा। संभव है, हमें ऐसी परिस्थिति का सामना करना पड़े जिस में प्रलोभन का प्रतिकार करना हमारे लिए असम्भव हो। दूसरे, इस तरह की एकाएक प्रतिज्ञा करने से हमें अपने उद्देश की ओर—सर्वोच्च ब्रह्मचर्य के निकट—जाने में कोई सहायता नहीं मिलती; फिर उलटे भीतर कमजोरी रह जाने के कारण हमारा पतन अलबत्ते शीघ्र होता है।

पहले तो लोग बाहरी ब्रह्मचर्य को ही अपना उद्देश मान लेते हैं। फिर या तो वे संसार को छोड़ देते हैं या स्त्रियों से दूर दूर भागते फिरते हैं जैसे कि आफाँ के पादड़ी करते थे। इतने पर भी जब काम-वासना से पिण्ड न छूटता तब अपनी इन्द्रिय को ही काट डालते। पर इन सब से महत्वपूर्ण बात की तरफ़ उनका ध्यान नहीं जाता था। वासना शरीर का धर्म तो है नहीं। यह तो एक मानसिक वस्तु है। वैषयिकता से बचने के लिए विचार-शुद्धि परमावश्यक है। प्रलोभनों के सामने आने पर जो विकारोद्भव होता है, अंतर्युद्ध ही उसका उपाय है।

इन्द्रिय-विनाश करना तो उसी सिपाही की बात का सा काम है जो कहता है कि मैं युद्ध पर जाऊँगा, पर तभी, जब

मुझे आप यह यक़ीन दिला दो कि निश्चय ही मेरी विजय होगी। ऐसा सिपाही सच्चे शत्रुओं से तो दूर ही दूर भागेगा पर काल्पनिक शत्रुओं से अलबत्ते लड़ेगा। वह कभी युद्ध-कला सीख ही नहीं सकता। उसकी सदा पराजय ही होगी।

दूसरे, केवल बाहरी ब्रह्मचर्य को यह समझ कर आदर्श मान लेना ग़लत है कि हम कभी तो जरूर उस तक पहुँच जायँगे। क्योंकि ऐसा करने से प्रत्येक प्रलोभन और प्रत्येक पतन उसकी आशाओं को एक दम नष्ट कर देता है और फिर इस बात पर से भी उसका विश्वास उठने लग जाता है कि ब्रह्मचर्य का आदर्श कभी संभवनीय या युक्तिसंगत भी है या नहीं? वह कहने लग जाता है कि ब्रह्मचारी रहना असंभव है और मैंने अपने सामने एक ग़लत आदर्श को रख छोड़ा है। फिर वह एकदम इतना शिथिल हो जाता है कि अपने को पूरी तरह भोग-विलासों के अधीन कर देता है। यह तो उस योद्धा के समान हुआ जो युद्ध-विजय प्राप्त करने की इच्छा से अपने बाहू पर कोई गुप्त शक्ति वाला तावीज़ बाँध लेता है और आँखें मूँद कर विश्वास करता है कि वह तावीज़ युद्ध में उसकी रक्षा करता है। पर ज्योंही उसे तलवार का एक आध वार लगा नहीं कि उसका सारा धैर्य और पौरुष भागा नहीं। हम, अपूर्ण मनुष्य तो, यही निश्चय कर सकते हैं कि अपनी बुद्धि और शक्ति के अनुसार अपनी भूत और वर्तमान अवस्था तथा चारित्र्य का ख़याल कर, अधिक से अधिक पवित्र ब्रह्मचर्य का हम पालन करें।

कोम को मनुष्यों की दृष्टि में ऊँचा उठने के लिए कर रहे हैं। हमारे न्यायकर्ता, मनुष्य नहीं, हमारी अन्तरात्मा और परमेश्वर है। फिर हमारी प्रगति में कोई बाधक नहीं हो सकता। तब प्रलोभन हम पर कोई असर नहीं कर सकेंगे और प्रत्येक वस्तु हमें उस सर्वोच्च आदर्श की ओर बढ़ने में सहायक होगी। पशुता को छोड़ हम नारायण-पद की ओर बढ़ते जायँगे।

* * * *

ईसाई नीति जीवन के रूपों और आकारों का वर्णन नहीं करती; बल्कि मनुष्य के प्रत्येक कार्य के लिए वह तो एक आदर्श, दिशा बतलाती है। इसी प्रकार स्त्री-पुरुषों के सम्बन्ध के विषय में भी वह एक आदर्श आपके सन्मुख उपस्थित करती है। पर ईसाई-धर्म के विपरीत कल्पना रखने वाले लोग तो नाम रूप को ढूँढ़ते फिरते हैं। पादड़ीशाही विवाहों में ईसाईपन नाम मात्र को भी नहीं, वह तो उन्हीं का आविष्कार है। विषयोपभोग-हिंसा तथा क्रोध इनके विषय में हमें न तो अपने आदर्श को नीचा करना चाहिए और न उसमें कोई तोड़ मरोड़ ही करना चाहिए। पर पादड़ी लोगों ने यही कर डाला है।

* * * *

ईसा के धर्म को अच्छी तरह न समझ पाने के कारण ही ईसाई और ग़ैर-ईसाई ये दो भेद उन में हो गये हैं। सब से स्थूल भेद वह है जो कहता है कि बप्तिस्मा किए हुए मनुष्यों को ईसाई समझो। ईसा के उपदेशों के अनुसार जो शुद्ध पारिवारिक जीवन व्यतीत करता है, जो अहिंसा का पालन करता है, वह

ईसाई है और इसके विपरीत आचरण करनेवाला ईसाई नहीं है। पर ऐसा कहना भी ग़लत है। ईसाई धर्म के अनुसार ईसाई और ग़ैर ईसाई के बीच कहीं लकीर नहीं खींच सकते। एक तरफ़ प्रकाश है—ईसा, दूसरी ओर अंधकार है पशु। बस, इस मार्ग पर ईसा के नाम पर ईसा की ओर बढ़ो।

स्त्री पुरुषों के सम्बन्धों के विषय में भी यही बात है। संपूर्ण, शुद्ध ब्रह्मचर्य आदर्श है। परमात्मा की सेवा करने वाला विवाह की उतनी ही इच्छा करेगा जितनी शराब पीने की। पर शुद्ध ब्रह्मचर्य के राजमार्ग में कई मंज़िलें हैं। यदि कोई पूछे कि हम विवाह करें या नहीं, तो उन्हें केवल यही उत्तर दिया जा सकता है कि यदि आपको ब्रह्मचर्य के आदर्श का दर्शन नहीं हो पाया है तो ख्वाहमख्वाह उसके सामने अपना सिर न झुकाओ। हाँ, वैवाहिक जीवन में विषयों का उपभोग करते हुए धीरे धीरे उस आदर्श की ओर बढ़ो। यदि मैं ऊँचा हूँ और दूर की एक इमारत को देख सकता हूँ और मुझसे छोटे क़द वाला मेरा साथी उसे नहीं देख पाता तो मैं उसे उसी दिशा में कोई नज़दीकवाली वस्तु दिखा कर उद्दिष्ट स्थान की कल्पना कराऊँगा। उसी प्रकार जो लोग सुदूरवर्ती ब्रह्मचर्य के आदर्श को नहीं देख पाते उनके लिए प्रामाणिक विवाह उस दिशा की एक नज़दीकी मंज़िल है। पर यह मेरी और आपकी बताई मंज़िल है। स्वयं ईसा तो सिवा ब्रह्मचर्य के और किसी आदर्श को न तो बता सकता था और न उसने बताया ही है।

संघर्ष जीवनमय और जीवन संघर्षमय है। विश्रान्ति का नाम भी न लीजिए। आदर्श हमेशा सामने खड़ा है। मुझे तब तक शान्ति नहीं नसीब हो सकती जब तक मैं यह नहीं कहूँगा कि उस आदर्श को प्राप्त नहीं कर लेता बल्कि मैं उसकी तरफ़ एकसा नहीं बढ़ता रहता।

उदाहरण के लिए ब्रह्मचर्य को लीजिए। अर्थशास्त्र के क्षेत्र में जिस प्रकार अकाल पीड़ितों को एक बार या अनेक बार भोजन करा देने से उनके पेट का सवाल हल नहीं होता, उसी प्रकार शारीरिक विषयोपभोग से मनुष्य को कभी संतोष नहीं होता। फिर संतोष कैसे होगा? ब्रह्मचर्य के आदर्श की संपूर्ण भव्यता को भली भाँति समझ लेने से, अपनी कमज़ोरी पूर्णतया स्पष्ट रूप से देख लेने से, और उसे दूर कर उस उच्च आदर्श की ओर बढ़ने का निश्चय करने से। बस, केवल इसी तरह संतोष हो सकता है। अपने आपको ऐसी परिस्थिति में रखकर हमें कभी संतोष नहीं होगा जिसमें हम अपनी आँखों को बंद कर आदर्श के आदेशों और हमारे जीवन के बीचवाले भेद को देखने से इन्कार कर दें।

* * * *

विषय-बाण के आक्रमण अत्यंत विषम होते हैं। बाल्यावस्था और दूरवर्ती वृद्धावस्था ही ऐसी अवस्थायें हैं जो उसकी (विषय की) आक्रमण-कक्षा से निरापद हैं। इसलिए उसके साथ युद्ध करते हुए मनुष्य को कभी निराश न होना चाहिए; न कभी युवा-

वस्था में ऐसी अवस्था में पहुँचने की आशा करनी चाहिए जिसमें वह मन्मथ (विषय) के आक्रमणों से बच कर शांति से रह सके। एक क्षण भर के लिए भी मनुष्य कमजोरी को अपने पास न फटकने दे। पर शत्रु को निःशस्त्र करनेवाले तमाम उपायों की खोज और योजना हमेशा एकसा करता रहे। चित्त में विकारों को उत्पन्न करने वाली वस्तुओं को टालते रहो। सदा कार्यमग्न रहो। यह एक रास्ता हुआ। दूसरा रास्ता यह है कि यदि आप विकार को अपने अधीन नहीं कर सकते तो विवाह कर लो, अर्थात् ऐसी स्त्री को ढूँढ़ लो जो विवाह करने पर राजी हो। अपने आप से कहो कि यदि मैं पतन से अपने आपको बचा नहीं सकता, यदि पतन अनिवार्य है तो वह केवल इसी स्त्री के साथ होगा।

यदि आपको कोई संतान हो तो दोनों मिल कर उसे सुशिक्षित कीजिए। और दोनों मिलकर ब्रह्मचारी रहने की कोशिश कीजिए। विकार से जितनी जल्दी मुक्त हो सकें, उतना ही भला है। बस, अलावा इसके, मैं और कोई उपाय नहीं जानता! हाँ, इन दोनों उपायों का सफलता पूर्वक उपयोग करने के लिए ईश्वर के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध प्रस्थापित कीजिए। हमेशा इस बात को याद रखिये कि आप वहाँ से (ईश्वर के घर से) आये हैं और वहीं वापिस भी जाना है। इस जीवन का उद्देश्य और अर्थ यही है कि हम उसकी मनशा को पूरा करें।

आप जितनी ही उसकी (परमेश्वर की) याद करेंगे उतना ही वह आप की सहायता करेगा।

एक बात और है। यदि कहीं आप का पतन हो जाय तो

हिम्मत न हारिएगा। यह न सोचिएगा कि अब तो दीन-दुनिया से गये। यह ख़याल न कीजिएगा कि अब सावधान रहने से क्या फ़ायदा! यदि आप गिर गये हैं तो उठकर और भी अधिक बल के साथ युद्ध छेड़ दीजिए।

*　　*　　*　　*　　*

काम मनुष्य को अंधा कर देता है, उसकी विचार-शक्ति को मूर्च्छित कर देता है। सारा संसार अंधकारमय हो जाता है। मनुष्य उसके साथ के अपने सम्बन्ध को भूल जाता है।

संयोग! कालिमा!! असफलता!!!

*　　*　　*　　*　　*

शिव शिव! इस भयंकर विकार को ग्रहण करके तुमने बहुत कष्ट उठाया, खूब दुख सहा! मैं जानता हूँ कि यह किस तरह प्रत्येक वस्तु को छिपा देता है। हृदय और विवेक को क्षण भर के लिए किस तरह संज्ञाहीन कर देता है। पर इससे मुक्ति पाने का एक ही उपाय है। निश्चयपूर्वक समझ लो कि यह एक स्वप्न है, एक संमोहनास्त्र है, जो आता है और निकल जाता है और तुम थोड़ी ही देर में अपनी पूर्व स्थिति को पहुँच जाओगे। विकार की आँधी जब अपने ज़ोरों में होगी तब भी तुम इस बात को समझ सकोगे। परमात्मा तुम्हारी सहायता करें!

*　　*　　*　　*

इस बात को कभी न भूल कि तू न तो कभी पूर्णतः ब्रह्मचारी रहा है और न रह सकता है। हाँ, तू उसके नज़दीक ज़रूर

तुम लिखते हो कि तुम्हारे प्रेम से उसकी रक्षा की जाय। मैं नहीं समझा, तुम्हारा मतलब किससे है? मैं यह भी नहीं समझ सका कि तुम्हें उसकी क्यों और किस कारण इतनी दया आती है? हम लोगों में यह एक रिवाज सा हो गया है कि पुरुष किसी न किसी अनोखे ढंग से शादी करना चाहते हैं।

"यदि मनुष्य निर्मल और निर्विकार प्रेम कर सकता है तो पहले वह ऐसा ही शुद्ध प्रेम करे।" यदि यह उससे न हो सके तो शादी कर ले। यही ईसा ने कहा है और पॉल ने इसका समर्थन किया है। हमारी बुद्धि भी इसी बात को कहती है। और आदमी किसी नये ढंग से शादी कर ही नहीं सकता। जैसा कि संसार अब तक करता आया है वैसा ही उसे भी करना चाहिए। अर्थात् पहले वह अपना एक साथी ढूंढ ले, उसके प्रति सच्चा रहने का निश्चय करले और मृत्यु तक कभी उसे न छोड़े। साथ ही उसकी सहायता से विनष्ट ब्रह्मचर्य को पुनः प्राप्त करने की कोशिश करे। भले ही हम सामाजिक या धार्मिक रीति-रिवाजों को न मानें; पर फिर भी हम विवाह को संसार के विपरीत किसी दृष्टिकोण से नहीं देख सकते।

विवाह तो स्त्री पुरुषों के पारस्परिक आकर्षण का स्वाभाविक फल है और यही रहेगा भी। विवाह में यदि कहीं इस हार्दिक और पारस्परिक प्रेम का अभाव है तो वह एक बुरी चीज है।

* * * * *

मेरा ख्याल है, मैं तुम दोनों को अच्छी तरह समझ गया हूँ। मैं चाहता हूँ कि तुम्हारे बीच में जो कुछ भी दुःख और

अशान्ति का कारण है उसे निकाल डालूं और तुम्हारे जीवन को आनंदमय बना दूँ। उसका यह कथन सत्य है कि स्त्री-पुरुषों के बीच का अनन्य प्रेम, भक्ति का पोषक नहीं बाधक है। पर इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता कि तुम उस पर ऐसा ही अनन्य प्रेम करते हो। यह स्वाभाविक भी है। यह तो मनुष्य के शरीर और स्वभाव का दोष है। पर इस बात को स्वीकार करते हुए हमें केवल उन्हीं बातों को ग्रहण करना चाहिए जो फ़ायदेमन्द हों और अच्छी हों। और तमाम बुरी बातों को छोड़ देना चाहिए। यह भाव भला है कि हमारे प्रेम का पात्र सुंदर है—प्रेम करने योग्य है। मनुष्य स्वार्थवश प्यार नहीं करता। परमात्मा ही के आदेश को पूरा करने में, एक दूसरे की सहायता करने ही के लिए प्यार करता है। यह तो एक आनंद की वस्तु है। पर इसके पहले हमें उस प्यार को वैषयिकता के विष से मुक्त कर लेना ज़रूरी है। कभी कभी यही हमें निर्विकार दिखाई देने लगता है। ईर्ष्या इसका चिन्ह है। और भी कितने ही सुंदर सुंदर रूप धारण कर, यह हमारे सामने आता है। मैं तो तुम्हें यही असली सलाह दूँगा कि अपने विकारों पर कभी विचार न करो। उनको एक दूसरे के प्रति प्रकट भी न करो (यह छल नहीं, संयम है) अपने प्रेमपात्र को हमेशा अपने जीवन कार्य के विषय में लिखो, जिसमें वह तुम्हारा साथी हो। एक दूसरे पर प्यार करने के विषय में लिखने की कोई आवश्यकता ही नहीं। यह तो तुम भी जानते हो और वह भी, इसलिए अपने तमाम कार्यों और शब्दों का हेतु भी तुम जानते हो। अपने प्रेमपात्र के प्रति अपने हृद्गत

"प्रेम करना अच्छा है या बुरा"?—मेरे लिए तो इस सवाल का उत्तर स्पष्ट है।

यदि मनुष्य पहले ही से मनुष्योचित आध्यात्मिक जीवन व्यतीत कर रहा है तब तो उसके लिए 'प्रेम' और विवाह पतन है। क्योंकि अपनी शक्तियों का कुछ हिस्सा उसे अपनी पत्नी, कुटुम्ब या अपने प्रियतम को देना होगा। पर यदि वह पशु-जीवन व्यतीत कर रहा हो—खाने, कमाने, लिखने के क्षेत्र में हो तब तो शादी कर लेना ही उसके लिए फ़ायदेमन्द है, जैसा कि पशु और कीटों के लिए है। शादी उसके प्रेम और सहानुभूति के क्षेत्र को बढ़ाने में सहायता करेगी।

* * * * *

मैं नहीं सोचता कि तुम्हें स्त्रियों से किसी प्रकार का भी विशेष कर आध्यात्मिक सम्बन्ध रखने की आवश्यकता है। स्त्रियों के साथ में सामाजिक सम्बन्ध भी मनुष्य को तभी रखना चाहिए जब स्त्री-पुरुष विषयक भेदभाव भी उसके दिल से निकल गया हो।

मेरा ख़याल है, कि तुम्हें परिश्रम की भारी आवश्यकता है। परिश्रम ऐसा हो जो तुम्हारी समस्त शक्तियों को सोख ले।

'उत्पादक शक्ति' विषयक श्रीमती अलाइस स्टॉकहम का यह निबन्ध मुझे बहुत अच्छा लगा जो उन्होंने मेरे पास भेजा है। वे कहती हैं कि जब मनुष्य को अन्य प्राकृतिक क्षुधाओं के साथ साथ विषय-क्षुधा लगती है, तब वह समझ ले कि वह किसी

महान् उत्पादक कार्य के लिए प्रकृति का आदेश है। केवल, वह विषय-वासना के अधम रूप में प्रकट हो रहा है। वह एक कूवत है जिसको बलिष्ट इच्छा-शक्ति और दृढ़ प्रयत्न के द्वारा बड़ी आसानी से अन्य शारीरिक अथवा आध्यात्मिक कार्य में परिणत किया जा सकता है।

मेरा भी यही खयाल है। वह सचमुच एक शक्ति है जो परमात्मा की इच्छा को पूर्ण करने में सहायक हो सकती है। वह पृथ्वी पर स्वराज्य की स्थापना करने में अपना महत्वपूर्ण काम कर सकती है। जनन-कार्य द्वारा यही काम—पृथ्वी पर वैकुण्ठ को लाने का काम—हम अगली पुश्त पर अर्थात् अपने बच्चों पर ढकेल देते हैं। ब्रह्मचर्य द्वारा इस शक्ति को ईश्वरेच्छा पूर्ण करने में प्रत्यक्ष लगा देना जीवन का सर्वोच्च उपयोग है। यह कठिन है, पर असंभव नहीं। हमारे सामने सैकड़ों नहीं, हजारों आदमियों ने इसे करके दिखा दिया है।

इसलिए यदि तुम अपने विकार को जीत सको तब तो मैं तुम्हें बधाई दूँगा। किन्तु यदि उसके सामने हारना ही पड़े तो शादी कर लेना! कोई चिंता नहीं, यह काम जरा गौण तो होगा पर बुरा नहीं है।

कामाग्नि से जलते हुए इधर उधर निरुद्देश पागल की तरह दौड़ते फिरना बुरा है। इस विष को रक्त में अधिक न फैलने देना चाहिए।

हाँ, एक बात और याद रखना। यदि तुम्हारी कल्पना स्त्री-सौख्य में कुछ विशेष आनन्द, विशेष सुख को बताने की कोशिश

करे तो उस पर कभी विश्वास न करना। यह सब कामुकता से उत्पन्न होने वाला भ्रम है। जितना पुरुष के साथ बातचीत करने और उठने बैठने में आनन्द आता है उतना ही स्त्रियों के सान्निध्य से भी आता है। पर खासकर स्त्री-सान्निध्य में ऐसा कोई विशेष आनन्द नहीं है। यदि हमें इसके विपरीत दीखता है तो जरूर समझ लेना चाहिए कि हम भ्रम में हैं। भ्रम जरा सूक्ष्म है, मीठा है, पर है जरूर भ्रम ही।

❀ ❀ ❀ ❀
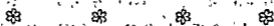
तुम पूछते हो, विकार से झगड़ने का कोई उपाय बताइए। ठीक है। परिश्रम, उपवास आदि गौण उपायों में सब से अधिक कामयाब और कारगर उपाय है दारिद्र—निर्धनता। बाहर से भी अकिंचन दिखाई देना, जिससे मनुष्य स्त्रियों के लिए आकर्षण की वस्तु न रहे। पर प्रधान और सर्वोत्तम उपाय तो अविरत संघर्ष ही है! मनुष्य के दिल में हमेशा यह भाव जाग्रत रहना चाहिए कि यह संघर्ष कोई नैमित्तिक या अस्थायी अवस्था नहीं बल्कि जीवन की स्थायी और अपरिवर्तनीय अवस्था है।

* * * * *

तुमने मुझे 'स्कोपट्सी' ❀ जाति के विषय में पूछा है!

❀ यह रूस की एक किसान जाति है जिसका पुरुष वर्ग ब्रह्मचर्य पूर्वक जीवन व्यतीत करने में समर्थ होने के लिए श्रद्धा पूर्वक अपनी जननेन्द्रिय को काट डालता है।

—अनुवादक

लोग उन्हें बुरा कहते हैं, क्या यह उचित है ? क्या वे मैथ्यू के प्रवचन के उन्नीसवें अध्याय का आशय ठीक ठीक समझे गये हैं, जब कि वे उसके १० वें पद्य के आधार पर अपने तथा दूसरों के जननेन्द्रियों को काट डालते हैं। प्रश्न के पहले हिस्से के विषय में मेरा यह कथन है कि पृथ्वी पर कोई 'बुरे' लोग नहीं हैं।

सभी एक पिता की सन्तान हैं। सभी भाई २ हैं। सभी सम समान हैं। न कोई किसी से अच्छा है न बुरा। स्कोपट्सी लोगों के विषय में मैंने जो कुछ भी सुना है उसपर से मैं तो यही जानता हूँ कि वे नीतिमय और परिश्रमी जीवन व्यतीत करते हैं। अब इस प्रश्न का उत्तर कि वे प्रवचन का ठीक आशय समझकर ही अपनी इन्द्रियों को काटते हैं या कैसे ? मैं निर्भ्रान्त चित्तसे कहता हूँ कि उन्होंने प्रवचन के आशय को ठीक ठीक नहीं समझा। खासकर अपनी तथा दूसरों की इन्द्रियों को काटना तो धर्म के साफ़ साफ़ विपरीत है। ईसा ने ब्रह्मचर्य के पालन का उपदेश दिया है पर यथार्थतः उसी ब्रह्मचर्य का मूल्य और सच्चा महत्व है जो अन्य सद्गुणों की भाँति श्रद्धापूर्वक दीर्घ प्रयत्न से विकारों के साथ युद्ध करके प्राप्त किया जाता है। उस संयम का महत्व ही क्या, जहाँ पाप की सम्भावना ही नहीं ? यह तो उसी मनुष्य का सा हुआ जो अधिक खाने के प्रलोभन से अपने को बचाने के लिए किसी ऐसी दवा को खा ले जिसमें उसको भूख ही कम हो जाय; या कोई युद्ध-प्रिय आदमी अपने को लड़ाई में भाग लेने से बचाने के लिए अपने हाथ पैर बँधवाले। अथवा गाली देने की बुरी आदतवाला अपनी ज़बान को ही इस खयाल से काट डाले कि उसके मुँह से

गाली निकलने ही न पावे। परमात्मा ने मनुष्य को ठीक वैसा ही पैदा किया है जैसा कि वह यथार्थ में है। उसने उसकी मरणाधीन काया में प्राणों को इस लिए प्रतिष्ठित किया है कि वह शारीरिक विकारों को अपने अपने अधीन करके रक्खे। मानव-जीवन का रहस्य यही संघर्ष तो है। परमात्मा ने उसे यह सर्वांगपूर्ण शरीर इस लिए नहीं दिया कि वह अपने तथा दूसरे के शरीर के किसी हिस्से को काट कर उसे विकलांग बना दे।

यदि स्त्री और पुरुष एक दूसरे की ओर इस तरह आकर्षित होते हैं तो उसमें भी परमात्मा का एक हेतु है। मनुष्य पूर्ण बनने के लिए बनाया गया है। यदि एक पुश्त इस पूर्णता को किसी तरह न प्राप्त कर सके तो कम से कम दूसरी पुश्त इसे प्राप्त करने की कोशिश करे। धन्य है, उस दयाघन की चातुरी को! ऐ मनुष्य, अपने स्वर्गीय पिता के समान पूर्ण बन। और इस पूर्णता को प्राप्त करने की कुंजी है ब्रह्मचर्य। केवल शारीरिक ब्रह्मचर्य नहीं, बल्कि मानसिक भी—विषय-वासना का संपूर्ण अभाव। यदि मनुष्य संपूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करने लग जाय तो मानव-जाति का आवनोद्देश ही सफल हो जाय। फिर मनुष्य के लिए पैदा होने और जीने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाय। क्योंकि तब तो मनुष्य अमर-पूर्ण हो जाँयगे। फिर विवाह आदि की कोई झंझट ही न रह जायगी। पर चूँकि मनुष्य ने अभी उस पूर्णता को प्राप्त नहीं किया है इसलिए वह नवीन पुश्तों को पैदा करता जा रहा है। ये नवीन पुश्तें अपनी शक्ति के अनुसार पूर्णता के अधिकाधिक नजदीक पहुँचती जा रही हैं। इसके विपरीत यदि सभी

मनुष्य इन अज्ञान किसानों की भाँति अपने शरीरों को विकलांग कर लें तो अपने जीवनोद्देश को—परमात्मा की इच्छा को—बिना ही पूर्ण किये, मनुष्य-जाति का अंत हो जायगा।

यह पहला कारण है जिससे मैं उन अज्ञान किसानों के कार्य को ग़लत समझता हूँ। दूसरा कारण यह है कि धर्माचरण कल्याण-प्रद होता है (ईसा ने कहा है-मेरी धुरा आसान और बोझ हलका है) और हर प्रकार की हिंसा की निन्दा करता है। विकलांग करने और कष्ट देने की भी वह अवश्य ही निंदा करता है। यदि यह ज्यादती कोई दूसरे पर करता हो तब तो पाप हुई है। पर ख़ुद अपने ऊपर भी ऐसा अत्याचार करना ईसाई-क़ानून का भंग करना है।

तीसरा क़ारण यह है कि यह किसान-जाति स्पष्ट-रूप से मैथ्यू के प्रवचन के उन्नीसवें अध्याय के बारहवें पद्य का अर्थ ग़लत करती है। अध्याय के आरंभ में जो कुछ कहा गया है, वह सब विवाह के विषय में है। और ईसा विवाह के लिए मना नहीं करता। वह तो तिलाक़ की, एक से अधिक पत्नियाँ करने की मुमानियत करता है। इस तरह विवाहित जीवन में भी ईसा ने संयम पर ज्यादह से ज्यादह ज़ोर दिया है। मनुष्य को केवल एक ही पत्नी करना चाहिये। इस पर शिष्यों ने शंका की (पद्य १०) कि यह संयम तो बड़ा मुश्किल है, एक ही पत्नी से काम चलना तो नितान्त कठिन है। इस पर ईसा ने कहा कि यद्यपि सभी मनुष्य जन्म-जात अथवा मनुष्यों के द्वारा बनाये गये नपुंसक पुरुष की भाँति विषय-भोग से अलग नहीं रह सकते तथापि कई ऐसे लोग हैं

जिन्होंने उस स्वर्गीय राज्य की अभिलाषा से अपने को नपुंसक बना लिया है—अर्थात् आत्म-बल से विकारों को जीत लिया है और प्रत्येक मनुष्य का धर्म है कि वह इनका अनुकरण करे। "स्वर्गीय राज्य की अभिलाषा से अपने को नपुंसक बना लिया है" इन शब्दों का अर्थ शरीर पर आत्मा की विजय करना चाहिये न कि शरीर को विकलांग बना देना। क्योंकि जहाँ पर शारीरिक विकलाङ्गता से उनका मतलब है तहाँ उन्होंने कहा है— "दूसरे मनुष्यों के द्वारा बनाये गये नपुंसक पुरुष" पर जहाँ आत्मिक विजय से मतलब है तहाँ उन्होंने कहा है—"अपने को नपुंसक बना लिया।"

यह मेरा अपना मन्तव्य है और मैं उस १२ वें पद्य का इस तरह अर्थ करता हूँ। पर यदि प्रवचन के शब्दों का यह अर्थ तुम्हें संतोषजनक न भी दिखाई देता हो तो भी तुम्हें यह स्मरण रखना चाहिये कि केवल आत्मा ही जीवन का देने वाला है। ऐच्छिक रूप से या जबरन् मनुष्य को विकलांग कर देना ईसाई-धर्म की आत्मा के बिल्कुल विपरीत है।

* * * * *

मेरा ख़याल है कि विवाह कर लेने पर स्त्री-पुरुषों का आपस में विषयोपभोग करना अनीतियुक्त नहीं है। पर इस पर अधिकारी रूप से कुछ लिखने के पहले मैं इस प्रश्न पर सूक्ष्मतापूर्वक विचार कर लेना ठीक समझता हूँ। क्योंकि आखिर इस कथन में भी बहुत सत्यांश है कि महज़ अपनी विषय-वासना को

तृप्त करने के लिए विषय-सेवन करना पाप है। मेरा तो खयाल है कि महज़ आनंद प्राप्त करने के लिए विषय-सेवन करना भी उतना ही बड़ा पाप है जितना बड़ा कि विषय सेवन से बचने के लिए अपनी इन्द्रिय को काट डालना है। भूखों मरकर प्राण देना जितना भयंकर पाप है, अधिक खाकर जीवन से हाथ धोना भी उतना ही बड़ा पाप है। वह अन्न-सेवन मनुष्य के लिए लाभदायक और उपयोगी है जो उसको अपने भाइयों की सेवा करने के योग्य प्राण-शक्ति अर्पण करता है। उसी प्रकार विषय-भोग भी उतना ही जायज़ है जो मनुष्य को अपने वंश को क़ायम रखने के लिए आवश्यक हो।

स्वेच्छापूर्वक नपुंसकत्व धारण करने वालों का यह कथन ठीक है कि आध्यात्मिक आवश्यकता के न होते हुए भी विषय-भोग करना बुरा है, अनीतियुक्त है। महज़ शारीरिक सुख के लिए तथा प्रकृति के बताये समय के अतिरिक्त भी बार बार विषय-भोग करना पाप है, व्यभिचार है। पर उनका यह कथन ग़लत है कि वंश को चलाने वाली संतान की प्राप्ति के लिए अथवा आध्यात्मिक प्रीति के खयाल से विषयभोग करना भी ग़लत है।

इन्द्रियों का काटना कुछ कुछ ऐसा काम है। फ़र्ज़ कीजिए कि एक आदमी बड़ा ही शिथिल और अनीतिमय जीवन व्यतीत कर रहा है। वह अपने अनाज से शराब बना बनाकर पीता रहता है और नशे में चूर रहता है। बाद में किसी प्रकार उसे कोई यह जँचा देता है कि यह बुरा है, पाप है और वह भी इसकी यथार्थता को समझ लेता है। अब इस बुरी आदत को छोड़कर

अपने अनाज का सदुपयोग करने के बदले वह सोचता है कि इस व्यसन से बचने का स्वर्णोपाय तो यही है कि अनाज ही जला डालूँ और वह ऐसा ही कर भी डालता है। फल यह होता है कि वह व्यसन उसके अन्दर ज्यों का त्यों रह जाता है। उसके पड़ोसी पहले ही की भाँति शराब बनाते रहते हैं। पर वह न अपने बीबी-बच्चों का, न दूसरों का तथा न अपना ही पेट भर सकता है।

ईसा ने नन्हे नन्हे बच्चों की तारीफ़ व्यर्थ नहीं की। व्यर्थ ही उसने यों नहीं कहा कि स्वर्ग का राज्य उन्हीं का है। बड़े बड़े बुद्धिमान् लोगों के ख्याल में जो बातें नहीं आतीं, उनका आकलन ये फ़ौरन कर लेते हैं। हम स्वयं इस तत्व की यथार्थता को अनुभव करते हैं। यदि बच्चे पैदा होना बन्द हो जाँय तो स्वर्ग का राज्य पृथ्वी पर आने की सभी उम्मीदों पर पानी फिर जाय। बस, यही बच्चे हमारी आशा के आधार हैं। हम तो पहले ही बिगड़ चुके हैं और अब यह महा कठिन है कि हम अपने को पुनः पवित्र कर सकें। पर यहाँ तो प्रत्येक पुश्त में, प्रत्येक परिवार में नये नये बच्चे पैदा होते हैं जो निर्दोष पवित्र आत्मायें हैं। सम्भव है ये आखिर तक पवित्र रह सकें। नदी का पानी गन्दा और अपवित्र है पर उसमें कितने ही निर्मल जल के स्रोत मिले हुए हैं। इसलिए यह आशा करना व्यर्थ नहीं कि एक दिन उस नदी का पानी भी उन्हीं सोतों के समान निर्मल हो सकेगा।

यह एक महान प्रश्न है और इस पर विचार करते हुए मुझे बड़ा आनंद आता है। मैं तो केवल यह जानता हूँ कि विकार

मय जीवन तथा विकार के भय से इन्द्रिय को काटकर जीना एक सा ही बुरा है। पर इन दोनों में इन्द्रिय को काटना बहुत बुरा है।

विकाराधीनता में कोई गर्व की बात नहीं, बल्कि लज्जा की बात है। पर अंग-वैकल्य में लज्जा नहीं। बल्कि लोग तो इस बात पर अभिमान करते हैं कि उन्होंने प्रलोभन और संघर्ष से बचने के लिए परमात्मा के नियम को ही तोड़ डाला। सच तो यह है कि अंग-वैकल्य से विकार नष्ट नहीं होता। यथार्थतः आत्मा की, हृदय की शुद्धि की आवश्यकता है। लोग इस जाल में क्यों फँस जाते हैं? इसका एक मात्र कारण यह है कि अन्य सब विचार भले ही नष्ट हो जाँय पर काम-विकार एक ऐसी वस्तु है जो कभी नष्ट हो ही नहीं सकता। पर फिर भी मनुष्य का कर्तव्य है कि वह तमाम विकारों का नाश करने की कोशिश करे। तन मन धन से यदि मनुष्य परमात्मा को प्यार करने लग जाय तो वह अपने आप को पूरी तरह भूल सकता है। पर वह तो बड़ा लंबा रास्ता है और यही कारण है कि लोग घबड़ाकर कोई छोटा नज़दीक का रास्ता ढूँढ़ने को कोशिश करते हैं कि इस नज़दीक के रास्ते से चल कर भी हम अपने मुक़ाम पर पहुँच सकेंगे और इस भीषण विकार से अपना पिंड छुड़ा सकेंगे। पर दुर्दैव तो यह है कि ऐसी पगडण्डियों पर भटकने से मनुष्य अक्सर अपने मुकाम पर पहुँचने के बदले उलटा किसी दलदल में जा फँसता है।

* * * *

हम साथ साथ चले चलें।" बहुत अच्छा। दोनों एक दूसरे को सहारा देते हैं और अपना रास्ता तय करते हैं।

पर जब वे अपने अपने रास्ते पर मुड़ते हैं तब हृदय में पारस्परिक आकर्षण होने पर भी वे एक दूसरे की सहायता नहीं कर सकते। इसका कारण यही है कि लोगों की ये धारणायें गलत हैं कि 'जीवन अश्रुपूर्ण घाटी है अथवा जैसा कि अधिकांश लोग समझते हैं कि यौवन, स्वास्थ्य और संपत्ति के होने पर यह एक सुख का स्थान है।

यथार्थ में जीवन सेवा का क्षेत्र है। इसमें मनुष्य को कई बार असीम कष्ट सहने पड़ते हैं। पर साथ ही आनंद भी कई प्रकार का मिलता है। मनुष्य को जीवन में सच्चा आनंद तभी प्राप्त होता है जब वह अपने जीवन को सेवामय बना लेता है। अपने व्यक्तिगत सुख को छोड़ कर जब वह संसार में किसी उद्देश को स्थिर कर लेता है। अक्सर विवाह करने वाले इस बात की ओर ध्यान नहीं देते। विवाहित जीवन में और पितृ-पद प्राप्त करने पर कितने ही आनंद के प्रसंग आते जाते रहते हैं। मनुष्य सोचता है—जीवन और क्या है। इससे कुछ भिन्न थोड़े ही है। पर यह भयंकर भूल है।

जीवन में किसी ध्येय को बिना ही स्थिर किये यदि माता पिता जीवें और बच्चे पैदा करते रहें तो कहना होगा कि वे इस प्रश्न को आगे ढकेल रहे हैं कि जीवन का उद्देश क्या है। साथ ही वे इस बात को भी जानने से इन्कार करते हैं कि जीवन के लक्ष्य का बिना ही ध्यान किये रहने का क्या फल होता है।

वे इस महत्वपूर्ण प्रश्न को भले ही आगे ढकेल दें, पर टाल तो कदापि नहीं सकते क्योंकि अपने और बच्चों के जीवन का कोई ध्येय निश्चित न करने पर भी उन्हें उनको सुशिक्षित तो ज़रूर करना ही होगा। इस हालत में माता-पिता अपने मनुष्योचित गुणों को और उनसे उत्पन्न होने वाले सुख से हाथ धो बैठते हैं और केवल बच्चे बढ़ाने वाली कल बन जाते हैं।

और इसीलिए विवाह की इच्छा करने वाले लोगों से मैं कहता हूँ कि अभी आपके सामने विशाल जीवन पड़ा हुआ है। इसलिये आप सब से पहले अपने जीवन का लक्ष्य निश्चित कर लें। और इस पर प्रकाश डालने के लिए मनुष्य को चाहिए कि वह उस तमाम परिस्थिति का विचार और निरीक्षण कर ले जिसमें कि वह रहता है। जीवन में कौन सी चीज़ महत्वपूर्ण है, कौन सी व्यर्थ है, इस विषय में यदि उसने पहले भी कोई विचार किया हो तो उसको भी पूरी तरह जाँच ले। वह यह भी निश्चय कर ले कि वह किसमें विश्वास करता है अर्थात् वह किस बात को शाश्वत सत्य मानता है और किन सिद्धान्तों के अनुसार वह अपने जीवन को घड़ना चाहता है। इन बातों का केवल विचार और निश्चय ही करके वह न ठहरे। उन पर अमल करना भी शुरू कर दे। क्योंकि जब तक मनुष्य किसी सिद्धान्त पर अमल करने नहीं लग जाता तब तक वह यह नहीं जान पाता कि वह उसमें सचमुच विश्वास भी करता है या नहीं। तुम्हारी श्रद्धा को मैं जानता हूँ। इस श्रद्धा के जिन अंगों पर तुम अमल कर सको, अभी से उन पर अमल करना शुरू कर दो।

यही उसके लिए सब से योग्य समय है। यह विश्वास और श्रद्धा अच्छी है कि मनुष्यों पर प्यार करना चाहिए और उनका प्रेम-पात्र बनना चाहिए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए मैं तीन प्रकार से सतत प्रयत्न करता रहता हूँ। इसमें अति की शंका ही न होनी चाहिए। और यही तुम्हें भी इस समय करना चाहिए।

दूसरे पर प्यार करना और प्रेम-पात्र बनना सीखना हो तो मनुष्य को सब से पहले यह सीखना चाहिए—दूसरों से अधिक आशा न करो। जितनी हो सके अपनी आशा—कामनाओं को घटा दो। यदि मैं दूसरे से अधिक अपेक्षा करूँगा तो मुझे उनकी पूर्ति का अभाव भी बहुत अखरेगा। फिर मैं प्रेम करने की ओर नहीं, दोष देने की ओर झुकूँगा। अतः इस विषय में बहुत कुछ सावधानी और तालीम की आवश्यकता है।

दूसरे, केवल शब्दों से नहीं, कार्य द्वारा प्यार करना सीखना चाहिए। अपने प्रियतम की किसी न किसी प्रकार उपयोगी सेवा करना सीखना आवश्यक है। इस क्षेत्र में और भी अधिक काम है।

तीसरे, प्यार करने की कला सीखने के लिए मनुष्यों को शांति और नम्रता के गुणों को धारण करना चाहिए। इसके अलावा उनके लिए असुखकर वस्तुओं तथा मनुष्यों के असुखकर प्रभावों को सहन कर लेने की क्षमता धारण कर लेना भी परमावश्यक है। अपने व्यवहार को ऐसा बनाने की कोशिश करनी चाहिए जिससे किसी को कोई क्लेश न हो। यदि यह असंभव दिखाई दे तो कम से कम हमें किसी का अह-

मान तो कदापि न करना चाहिए। हमेशा यह प्रयत्न रहे कि मेरे शब्दों की कटुता जहाँ तक सम्भव हो, कम हो जाय। इसके अलावा हमें और भी कई काम करने होंगे। अब तो सुबह से शाम तक काम ही काम बना रहेगा। और यह कार्य होगा—आनंद-मय। क्योंकि प्रतिदिन हमें अपनी प्रगति पर खुशी होती रहेगी। अब हमें शनैः शनैः लोगों के प्रेमभाव के रूप में इसका आनन्द-दायक पुरस्कार भी मिलने लगेगा।

इसलिए मैं तुम दोनों को सलाह दूँगा कि जितनी गंभीरता के साथ हो सके, विचार करो और अपने जीवन को गम्भीर बनाओ। क्योंकि ऐसा करने ही से तुम्हें पता लगेगा कि तुम एक ही राह के पथिक हो या नहीं। साथ ही तुम्हें यह भी मालूम हो जायगा कि तुम दोनों को विवाह करना उचित है या नहीं। गम्भीर विचार और जीवन द्वारा तुम अपने को अपने उद्देश के नजदीक भी ले जा सकोगे। तुम्हारे जीवन का उद्देश यह न हो कि तुम विवाह कर विवाहित-जीवन का आनन्द लूटो। बल्कि यह हो कि अपने निर्मल और प्रेममय जीवन द्वारा संसार में प्रेम और सत्य का प्रचार करो। विवाह का उद्देश ही यह है कि पति-पत्नी एक दूसरे को इस उद्देश की पूर्ति में आगे बढ़ने में सहायता करें।

सिरे ही मिल सकते हैं। सब से अधिक स्वार्थी और अपराध्य जीवन उन व्यक्तियों का होता है जो केवल जीवन का आनन्द लूटने के लिए सम्मिलित होते हैं। इसके विपरीत सर्व श्रेष्ठ जीवन उन स्त्रियों और पुरुषों का होता है जो संसार में सत्य

यही उसके लिए सब से योग्य समय है। यह विश्वास और श्रद्धा अच्छी है कि मनुष्यों पर प्यार करना चाहिए और उनका प्रेम-पात्र बनना चाहिए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए मैं तीन प्रकार से सतत प्रयत्न करता रहता हूँ। इसमें क्षति की शंका ही न होनी चाहिए। और यही तुम्हें भी इस समय करना चाहिए।

दूसरे पर प्यार करना और प्रेम-पात्र बनना सीखना हो तो मनुष्य को सब से पहले यह सीखना चाहिए—दूसरों से अधिक आशा न करो। जितनी हो सके अपनी आशा—कामनाओं को घटा दो। यदि मैं दूसरे से अधिक अपेक्षा करूँगा तो मुझे उनकी पूर्ति का अभाव भी बहुत अखरेगा। फिर मैं प्रेम करने की ओर नहीं, दोष देने की ओर झुकूँगा। अतः इस विषय में बहुत कुछ सावधानी और तालीम की आवश्यकता है।

दूसरे, केवल शब्दों से नहीं, कार्य द्वारा प्यार करना सीखना चाहिए। अपने प्रियतम की किसी न किसी प्रकार उपयोगी सेवा करना सीखना आवश्यक है। इस क्षेत्र में और भी अधिक काम है।

तीसरे, प्यार करने की कला सीखने के लिए मनुष्यों को शांति और नम्रता के गुणों को धारण करना चाहिए। इसके अलावा उनके लिए अमुखकर वस्तुओं तथा मनुष्यों के अमुखकर प्रभावों को सहन कर लेने की क्षमता धारण कर लेना भी परमावश्यक है। अपने व्यवहार को ऐसा बनाने की कोशिश करनी चाहिए जिससे किसी को कोई क्लेश न हो। यदि यह असंभव दिखाई दे तो कम से कम हमें किसी का अप-

मान तो कदापि न करना चाहिए। हमेशा यह प्रयत्न रहे कि मेरे शब्दों की कटुता जहाँ तक सम्भव हो, कम हो जाय। इसके अलावा हमें और भी कई काम करने होंगे। अब तो सुबह से शाम तक काम ही काम बना रहेगा। और यह कार्य होगा—आनंद-मय। क्योंकि प्रतिदिन हमें अपनी प्रगति पर खुशी होती रहेगी। अब हमें शनैः शनैः लोगों के प्रेमभाव के रूप में इसका आनन्द-दायक पुरस्कार भी मिलने लगेगा।

इसलिए मैं तुम दोनों को सलाह दूँगा कि जितनी गंभीरता के साथ हो सके, विचार करो और अपने जीवन को गम्भीर बनाओ। क्योंकि ऐसा करने ही से तुम्हें पता लगेगा कि तुम एक ही राह के पथिक हो या नहीं। साथ ही तुम्हें यह भी मालूम हो जायगा कि तुम दोनों को विवाह करना उचित है या नहीं। गम्भीर विचार और जीवन द्वारा तुम अपने को अपने उद्देश के नजदीक भी ले जा सकोगे। तुम्हारे जीवन का उद्देश यह न हो कि तुम विवाह कर विवाहित-जीवन का आनन्द लूटो। बल्कि यह हो कि अपने निर्मल और प्रेममय जीवन द्वारा संसार में प्रेम और सत्य का प्रचार करो। विवाह का उद्देश ही यह है कि पति-पत्नी एक दूसरे को इस उद्देश की पूर्ति में आगे बढ़ने में सहायता करें।

सिरे ही मिल सकते हैं। सब से अधिक स्वार्थी और अपराध्य जीवन उन व्यक्तियों का होता है जो केवल जीवन का आनन्द लूटने के लिए सम्मिलित होते हैं। इसके विपरीत सर्व श्रेष्ठ जीवन उन स्त्रियों और पुरुषों का होता है जो संसार में सत्य

और प्रेम के प्रचार द्वारा परमात्मा की सेवा करने के लिए जीते और वैवाहिक रीति से सम्मिलित होते हैं।

देखना कहीं गफ़लत न हो। दोनों रास्ते यों तो एक से ही दीखते हैं, पर हैं बिलकुल जुदे जुदे। मनुष्य सर्वोत्कृष्ट रास्ते को ही क्यों न चुने? अपनी सारी आत्मा उसमें डाल दो। थोड़ी-सी संकल्प-शक्ति से काम न चलेगा।

* * * * *

बेशक, प्रत्येक चतुर व्यक्ति जिसे अच्छी तरह जीने की इच्छा है, जरूर शादी करे। पर 'प्रेम' करके नहीं, हिसाब लगा कर उसे शादी करनी चाहिए। स्पष्ट ही इन दो शब्दों का वह अर्थ न लगाना जो कि प्रचलित है।

अर्थात् वैषयिक प्रेम की पूर्ति के लिए नहीं, वल्कि इस बात का हिसाब लगा कर मनुष्य को शादी करनी चाहिए कि मेरा भावी साथी मनुष्योचित जीवन व्यतीत करने में मुझे कहाँ तक सहायक या बाधक होगा।

* * * * *

भाई, सब बातें छोड़ दो। शादी करने के पहले बीस नहीं, सौ बार, अच्छी तरह पहले विचार कर लो। एक नीतिमान् व्यक्ति के लिए विषय-जाल में पड़ कर शादी कर लेना अत्यन्त हानिकर है। मनुष्य को उसी प्रकार शादी करनी चाहिए जैसा कि वह मृत्यु को प्राप्त होता है। अर्थात् जब कोई मार्ग ही न रह जाय तभी वह शादी करे।

* * * *

मृत्यु के दूसरे नंबर में, समय की दृष्टि से, विवाह के समान अपरिवर्तनीय और महत्वपूर्ण और कोई वस्तु नहीं। मृत्यु के समान विवाह भी वही अच्छा है, जो अनिवार्य हो। अकाल मृत्यु के समान अकाल-विवाह भी बुरा होता है। वह विवाह बुरा नहीं, जिसे हम टाल ही नहीं सकते।

*   *   *   *

विवाह को टालने की गुंजाइश होते हुए भी जो शादी करते हैं, उनकी तुलना मैं उन लोगों से करता हूँ जो ठोकर खाने के पहले ही ज़मीन पर लोट जाते हैं। यदि मनुष्य सचमुच गिर पड़े तो कोई उपाय भी नहीं रह जाता। पर ख्वामख्वाह क्यों गिरा जाय ?

*   *   *   *

विवाह का प्रश्न वास्तव में इतना सरल नहीं जितना कि दीख पड़ता है। 'प्रेम' करना एक गलत रास्ता है। पर विवाह विषयक गहरे विचारों में पड़ जाना दूसरा विमार्ग है। आप कहते हैं–मनुष्य को पहली ही लड़की से शादी कर लेनी चाहिए, अर्थात् मनुष्य को अपने सुख का ख़याल छोड़ देना चाहिए, यही न ? तब इसके मानी तो ये हुए कि अपने को भाग्य के हाथों में सौंप दें और अपनी पसन्दगी को अलग रखकर दूसरे के द्वारा किये गये अपने चुनाव में ही संतोष मान लें। उलझनों से भरी तथा पापमय अवस्था में हम अविवेक से नहीं चल सकते। क्योंकि यदि हम बलपूर्वक अपनी परिस्थिति को तोड़ने की कोशिश करने

लगें तो दूसरों को कष्ट पहुँचता है, पर यदि भावुकता आदमी को एक उलझन में डालती हो तो कोरी सिद्धान्त-प्रियता मनुष्य को इस प्रश्न के और भी जटिल हिस्से में पहुँचा देगी। सब से सरल उपाय तो यह है कि मनुष्य को किसी मध्यवर्ती पदार्थ को अपना ध्येय या उद्देश न बनाना चाहिए; बल्कि हमेशा श्रेष्ठ सदाचारयुक्त जीवन को ही अपना ध्येय बनाये रखना चाहिए और उसकी ओर शांतिपूर्वक क़दम बढ़ाते जाना चाहिये। ऐसा करने से निश्चय ही एक समय ऐसा आवेगा और संयोगों का एकीकरण भी इस तरह होगा कि मनुष्य के लिए अविवाहित रहना असंभव हो जायगा। यह मार्ग अधिक सुरक्षित है। इसके अवलम्बन से न तो मनुष्य ग़लती ही करेगा और न पाप का भागीदार ही हो सकता है।

* * * *

विवाह के विषय में लोकमत तो जाहिर ही है। "यदि आजीविका के साधनों को बिना ही प्राप्त किये लोग शादियाँ करने लग जायँ तो दो चार साल के अंदर ही दारिद्र बच्चे और कष्टों की फसल आने लगेगी। दस बारह साल के बाद कलह, एक दूसरे के दोषों को ढूँढ़ना और प्रत्यक्ष नरक का निवास उस परिवार में हो जायगा। समष्टिरूप से यह परम्परागत लोकमत बिलकुल ठीक है। यदि विवाह करने वालों का कोई दूसरा अंदरूनी हेतु न हो जो कि उनके आलोचकों को ज्ञात न हो, तब तो उसका भविष्य-कथन भी सरुधा सच्चा साबित होता है। यदि

ऐसा कोई उद्देश हो तब तो अच्छा है। पर उसका केवल बुद्धि-गत होना ही काफ़ी नहीं, कार्य में, जीवन में भी परिणत होना आवश्यक है। मनुष्य को अपने जीवन में इसकी पूर्ति के लिए एकसी व्याकुलता होनी चाहिए। यदि यह उद्देश है तब तो ठीक है, वे लोकमत को ग़लत सिद्ध कर सकेंगे। अन्यथा उनका जीवन अवश्य ही दुःखमय सिद्ध हुए बिना न रहेगा।

*   *   *   *   *

तुम्हारा सम्मिलन दो कारणों से हुआ है। एक तो अपने श्रद्धा—विश्वास—के और दूसरे प्रेम के कारण। मेरा तो ख़याल है इनमें से एक भी काफ़ी है। सच्चा सम्मिलन सच्चे निर्मल प्रेम में है। यदि यह सच्चा प्रेम हो और उससे भावुक प्रेम भी उत्पन्न हो गया हो तब तो वह और भी अधिक मज़बूत हो जाता है। यदि केवल भावुक प्रेम ही हो तो वह भी बुरा नहीं है। यद्यपि उसमें अच्छाई तो कुछ भी नहीं है, फिर भी यह एक धकने योग्य बात है। निश्चय स्वभाव और महान् यत्नों के बल पर मनुष्य ऐसे प्रेम से भी काम चला लेता है। पर जहाँ ये दोनों न हों, वहाँ तो निःसन्देह बड़ी बुरी हालत होती होगी। इसलिए यह बहुत आवश्यक है कि मनुष्य अपने साथ बहुत सख्ती करके यह देख ले कि किस प्रेम द्वारा उसका हृदय आन्दोलित हो रहा है।

*   *   *   *   *

उपन्यासकार अपने उपन्यासों का अन्त अक्सर नायक-नायिका के विवाह में करते हैं। यथार्थ में उनको विवाह से अपना उपन्यास शुरू करना चाहिए और अन्त विवाह-बन्धनों को तोड़ने

में, ब्रह्मचर्य-जीवन व्यतीत करने का आदर्श पेश करके करना चाहिए। नहीं तो मानव-जीवन का चित्र खींचकर विवाह तक समाप्त करना ठीक ऐसा ही भद्दा मालूम होता है जैसा कि एक मुसाफ़िर की पूरी मुसाफ़िरी का वर्णन कर जहाँ चोर उसे लूटने लगें वहाँ कहानी को छोड़ दें।

धर्म-ग्रन्थ में विवाह की आज्ञा नहीं है। उसमें तो विवाह का अभाव ही है। अनीति, विलास, तथा अनेक स्त्री-संभोग की कड़े से कड़े शब्दों में निन्दा अलबत्ते की गई है। विवाह—संस्था का तो उसमें उल्लेख भी नहीं है। हाँ, पादड़ीशाही ज़रूर उसका समर्थन करती है। जचियस का आगमन जिस तरह क्रॉस का समर्थन करता है उसी तरह काना का बेहूदा चमत्कार भी विवाह-संस्कार का समर्थन करता है।

❀ ❀ ❀ ❀

हाँ, मेरा ख़याल है कि विवाह-संस्था ईसाई-धर्म की संस्था नहीं है। ईसा ने कभी शादी नहीं की। न उसके शिष्यों ने कभी विवाह किया। उसने विवाह की स्थापना भी तो नहीं की। बल्कि लोगों से उसने, जिनमें से कुछ विवाहित थे और कुछ अविवाहित, यही कहा था कि वे अपनी पत्नियों की अदला-बदल (तिलाक) न करें जैसा कि मूसा के क़ानून के अनुसार वे कर रहे थे। (मेथ्यू अध्याय ५) अविवाहित लोगों से उसने कहा था कि वे यथासम्भव शादी न करें। (मेथ्यू अध्याय १९ पद्य १०-१२) और सर्व साधारण से आमतौर पर उसने यही कहा था कि वे स्त्री-जाति को अपनी भोग-सामग्री न समझें। (मेथ्यू अध्याय ५

पद्य २८) कहने की आवश्यकता नहीं कि यही स्त्रियों को भी पुरुषों के विषय में समझना चाहिए।

उपर्युक्त कथन से हम नीचे लिखे अमली नतीजों पर पहुँचते हैं।

जनता में यह धारणा फैली हुई है कि प्रत्येक स्त्री-पुरुष को विवाह अवश्य करना चाहिए। इस धारणा को त्याग कर स्त्री-पुरुषों को यह मानना चाहिए कि प्रत्येक स्त्री वा पुरुष के लिए आवश्यक है कि वह अपनी पवित्रता की रक्षा करे जिससे अपनी तमाम शक्तियों को परमात्मा की सेवा में अर्पण करने में उसके मार्ग में किसी प्रकार की रुकावट न हो।

किसी भी स्त्री वा पुरुष का पतन (शरीर-सम्बन्ध) केवल एक गलती न समझी जाय जो किसी दूसरे व्यक्ति (स्त्री या पुरुष) के साथ विवाह कर लेने पर सुधर सकती है। न वह अपनी आवश्यकताओं की क्षय-पूर्ति ही समझी जाय। बल्कि किसी भी व्यक्ति का अन्य स्त्री या पुरुष के साथ शारीरिक सम्बन्ध होते ही वह सम्बन्ध एक अटूट विवाह-बन्धन का द्वार ही समझा जाय। (मैथ्यू अध्याय १८ पद्य ४-६) जो उन व्यक्तियों पर अपने पाप से मुक्त होने के लिए एक कर्तव्य का गम्भीर, आदेश कर देता है।

विवाह अपनी वैषयिकता के प्रशमन करने का एक साधन नहीं, बल्कि एक ऐसा पाप समझा जाय जिससे मुक्त होना परमावश्यक है।

इस पाप से इस तरह मनुष्य की मुक्ति हो सकती है—पति

और पत्नी दोनों अपने को विलासिता और विकार से मुक्त करने की कोशिश करें और इसमें एक दूसरे की सहायता भी करें तथा आपस में उस पवित्र सम्बन्ध की स्थापना करने की कोशिश करें जो भाई और बहन के बीच होता है, न कि प्रिया और प्रेमी के बीच। दूसरे, वे अपनी सारी शक्ति इस विवाह से होने वाले अपने बच्चों को सुशिक्षित और सुसंस्कृत बनाने में लगा दें। बस, यह उस पाप से मुक्ति पाने का मार्ग है।

इस विचार-शैली में और विवाह के विषय में समाज में जो कल्पना प्रचलित है, उसमें महान् अंतर है। लोग शादियाँ करते ही रहेंगे। माता-पिता भी अपने लड़के-लड़कियों के विवाहादि बराबर निश्चित करते रहेंगे। पर यदि विवाह का दृष्टिकोण बदल जायगा तो इसमें महान् अंतर हो जायगा। विषय-क्षुधा को शांत करने, संसार में सर्वश्रेष्ठ आनंद मानकर विवाह करने, और उसे अनिवार्य पाप समझ कर विवाह करने में महान् अंतर है। पवित्र हृदय वाला मनुष्य तो तभी शादी करेगा जब उसके लिए अविवाहित रह कर पवित्र बने रहना असंभव हो जायगा। विवाह करने पर भी वह विकार का दास नहीं बनेगा; बल्कि अपने को उससे मुक्त करने की सतत चेष्टा करता रहेगा। अपने बालकों के आध्यात्मिक कल्याण का ख्याल रखने वाले माता पिता अपने प्रत्येक लड़के-लड़की की शादी करना अनिवार्य न समझेंगे; बल्कि उनकी शादी तभी करेंगे, अर्थात् उनके पतन को भीषण होने देने से रोकेंगे और उन्हें शादी की सलाह देंगे, जब वे देख लेंगे कि उनके लड़के या लड़कियाँ अब अपने को पवित्र नहीं बनाये रख

सकते; जब वे देख लेंगे कि वे विवाह किये बिना रही नहीं सकते। विवाहित स्त्री-पुरुष अभी की भाँति अधिक बच्चों की इच्छा नहीं करेंगे, बल्कि पवित्र जीवन व्यतीत करने की कोशिश करते हुए यदि एक दो बच्चे हो भी जावेंगे तो खुश होंगे। साथ ही वे अपनी तमाम शक्ति, अपना अधिकांश समय अपने और अपने पड़ोसियों के बच्चों को, ईश्वर के भावी सेवकों को, सुसंस्कृत बनाने में लगावेंगे। क्योंकि यह भी ईश्वर ही की तो सेवा है।

उनमें और विवाह को आनंद का साधन मानने वालों में वही भेद होगा जो जीवन-निर्वाह के लिए खाने वालों में और खाने के लिए जीने वालों में होता है। एक वर्ग इसीलिए अन्न खाता है कि बिना अन्न के जीवन-यात्रा तय करना असम्भव है। इसलिए वे खाने को एक गौण वस्तु, गौण कर्तव्य, समझ कर यथा सम्भव उसके लिए अपना थोड़ा समय, थोड़ी शक्ति और थोड़ा विचार ही देते हैं। दूसरा वर्ग तो खाने के लिए ही जीता है। भिन्न भिन्न प्रकार के व्यंजन बनाने में, उनका आविष्कार करने में, अपना समय और शक्ति खर्च करता है। भूख के बढ़ाने, अधिक अन्न पेट में भरने आदि के नाना प्रकार के उपायों को खोजता है, जैसा कि इटली के लोग करते थे। *

ईसाई-धर्म के अनुसार न तो कभी विवाह हुआ है और न हो ही सकता है। क्योंकि धर्म विवाह की आज्ञा ही नहीं

* बिलकुल यही बात आज कृत्रिम उपायों द्वारा गर्भाधान को रोकने वाले लोग भी कर रहे हैं।

करता। जैसा कि वह धन-संचय करने का भी आदेश नहीं करता। हाँ, इन दोनों का सदुपयोग करने पर अलबत्ता वह ज़ोर देता है।

एक सच्चा ईसाई अपनी सम्पत्ति के विषय में इस तरह विचार करेगा—यद्यपि मैं अपने कुर्ते को अपना समझता हूँ तथापि यदि कोई उसे मुझसे माँगे, तो मैं अपना कुर्ता दूसरे को दे देना आवश्यक मानता हूँ। उसी प्रकार वह विवाह के विषय में भी सोचता है। उसका प्रयत्न दो दिशाओं में रहता है। एक तो अपने बच्चों को सुसंस्कृत करने की ओर, और दूसरे परस्पर को विकार रहित करने की ओर अर्थात् शारीरिक प्रेम की बनिस्बत आध्यात्मिक प्रेम करने की ओर उसकी प्रवृत्ति अधिक होती है।

अगर आदमी केवल यह स्पष्ट रूप से समझ ले कि विषयोपभोग एक नैतिक पतन है, पाप है और एक स्त्री के साथ किया हुआ पाप दूसरी स्त्री के साथ विवाह कर लेने पर धुल नहीं जाता, बल्कि वही एक अपरिवर्तनीय विवाह-बंधन है जो उसे पाप से मुक्त कर सकता है तो अवश्य ही मनुष्य-जाति में संयम की मात्रा बढ़ जायगी।

जब मैं यह कहता हूँ कि विवाहित मनुष्यों को अमुक अमुक रीति से रहना चाहिए, तब मेरा उद्देश कदापि यह बतलाना या सिद्ध करना नहीं होता कि मैं खुद इस तरह से रहा हूँ या रह रहा हूँ, बल्कि इसके विपरीत मैं इस बात को अपने अनुभव से जानता हूँ कि मनुष्य को कैसे रहना चाहिए, क्योंकि मैं खुद इस तरह रहा हूँ जैसे कि आदमी को न रहना चाहिए।

अतः अब तक मैं जो कुछ कह गया हूँ, इसमें से एक शब्द भी वापिस लेना नहीं चाहता ? बल्कि इसके विपरीत मैं उस पर और भी जोर देना चाहूँगा। हाँ, उसके ज़रा समझा देने की अवश्य कुछ जरूरत इसलिए है कि हमारा जीवन ईसा के बताये वास्तविक जीवन से इतना भिन्न और विपरीत है कि इस विषय में यदि हमें कोई सत्य सत्य कह देता है तो हम सहसा चौंक उठते हैं। (मैं यह अपने अनुभव से कहता हूँ) इस तरह चौंकते हैं जैसा कि वह धन बटोरने वाला बनिया चौंक पड़ता है जिसे यह कह दिया जाय कि अपने परिवार के लिए या गिरजाघरों में घंट लगाने के लिए * धन एकत्र करना पाप है, और जिस मनुष्य को पाप से छुटकारा पाने की इच्छा हो वह अपनी सारी धन दौलत सत्पात्रों को दान कर दे।

इस विषय में मेरे जो विचार हैं वे बिना किसी प्रकार के क्रम की परवा किये जैसे आते जा रहे हैं, लिखे देता हूँ।

प्रेम—वैषयिक प्रेम—एक जबरदस्त शक्ति है। यह दो भिन्न या असमान लिंग के व्यक्तियों में उत्पन्न होती है, जो सम्मिलित (विवाहित) नहीं हुए हैं। यह विवाह की ओर उन्हें ले जाता है। और विवाह का फल है संतान। गर्भ के रहते ही पति और पत्नी के बीच का यह आकर्षण शिथिल हो जाता है। यह बिलकुल

---

* नित्य भले बुरे उपायों से धन एकत्र कर कई सेठ साहूकार उसका एक आध नगण्य हिस्सा धर्म-कार्य में लगा देते हैं, और अपने को कृतार्थ मानते हैं। यही बात रूस के धनिक भी करते हैं।

स्पष्ट है। यह शिथिलता सम्मिलन के प्रति होने वाली उत्सुकता को मिटा देती है जैसा कि अन्य प्राणियों में भी पाया जाता है। यदि पुरुष विषयोपभोग के लिए अपना अधिकार जताना छोड़ दें तो इसका बड़ा अच्छा परिणाम हो सकता है। अब इस भोगौत्सुक्य का स्थान वह इच्छा लेती है जो अक्सर माता-पिता के हृदय में संतान-वृद्धि के लिए होती है, जिसे हम दूसरे शब्दों में वत्सलता या सन्तान-प्रीति कह सकते हैं। यह तब तक बराबर रहती है जब तक कि बच्चा दूध पीना नहीं छोड़ देता। तब फिर वही पारस्परिक प्रेमाकर्षण शुरू होता है।

यह है स्वाभाविक परिस्थिति। भले ही हम इस वास्तविक और प्राकृतिक अवस्था से कितनी ही दूर हों; पर होना चाहिए यही। इसका कारण सुनिए। सब से पहले, स्त्री गर्भावस्था में दूसरा गर्भ धारण नहीं कर सकती। जब गर्भ धारण ही न हो तब तो विषयोपभोग के लिए सच पूछें तो मनुष्योचित विवेकयुक्त कारण ही नहीं रहता। वह तो नीच विषय-वासना की तृप्ति मात्र कही जा सकती है जो कि प्रत्येक विवेकशील पुरुष की नजर में अवश्य ही हेय है। वह तो एक घोर से घोर अनीति से भरा हुआ पाप है। जो मनुष्य इस पाप के अधीन अपने को कर देता है वह पशु से भी गया बीता हो जाता है। क्योंकि वह तो पाप की तरक्की करने में अपनी बुद्धि का भी उपयोग करता है। दूसरे इस बात को तो प्रत्येक आदमी मानता है कि विषयोपभोग मनुष्य की शक्ति को हरण कर लेता है। और उस शक्ति को हरता है जो सर्वश्रेष्ठ और सब से अधिक आवश्यक है—आध्या-

त्मिक। इस आदत के कुछ समर्थक कहेंगे—कुछ नियमशीलता से क्यों न काम लिया जाय? पर बात यह होती है कि एक बार विवेक को छोड़ देने पर नियम का मनुष्य को खयाल ही नहीं रहता। पर संभव है, यदि नियम या समय से काम लिया जाय तो आदमी को इतना नुकसान न उठाना पड़े (राम राम! इस पाशविकता को हम संयम कह भी सकते हैं?) पर भाई पुरुष का यह संयम उस बेचारी स्त्री के लिए घोर दुखदायी असंयम साबित होता है, जो या तो गर्भवती होती है या बच्चे को दूध पिलाती है।

मेरा खयाल है कि स्त्रियों के पिछड़ने और उनके चिड़चिड़ेपन का भी यही प्रधान कारण है। इससे स्त्रियों को छुड़ाकर उनकी मुक्ति करने की जरूरत है। पुरुषों के साथ उनका ऐक्य हो जाना आवश्यक है। शैतान की नहीं, परमात्मा की सेविका उन्हें बना देना जरूरी है। यह एक दूरवर्ती आदर्श है, पर है महान्। और क्यों न मनुष्य इसके लिए प्रयत्न करे?

मैं सोचता हूँ कि विवाह इस तरह का हो। स्त्री और पुरुष तभी एकत्र हों जब प्रेम के द्वारा वे इस तरह आकर्षित हो जायँ कि उनके लिए अलग अलग रहना असंभव हो जाय। बच्चा पैदा होने पर वे उन तमाम प्रलोभनों और शारीरिक आकर्षणों से दूर रहें जो उनके बच्चे के संवर्धन में हानिकर प्रतीत हों। आज कल की तरह उलटे कृत्रिम प्रलोभनों को पैदा न करें, बल्कि आपस में भाई और बहन की तरह रहें।

आजकल तो यह होता है। पहले ही से बिगड़ा हुआ पति अपनी बुरी आदतें अपनी पत्नी में उत्पन्न कर देता है। उसी वैप-

चिकता के विष से वह अपनी पत्नी को विषाक्त कर देता है और उस पर एक साथ ही अपनी दासी, श्रान्त माता और बीमार, चिड़चिड़ी तथा पगली स्त्री होने का असह्य बोझ डाल देता है। पति उसे अपनी स्त्री की हैसियत से मतलब के समय प्यार करता है। माता की हैसियत से उसकी लापरवाही करता है और अपने ही उत्पन्न किये उसके चिड़चिड़ेपन तथा पागलपन के लिए उसको कोसता है। मेरा खयाल है कि अधिकांश परिवारों में जो असीम कष्ट देखा जाता है, उसका यही मूल कारण है। इसीलिए पति-पत्नी के भाई-बहन की तरह रहने की कल्पना करता हूँ। स्त्री शान्ति के साथ अपने बालक को जन्म दे, नियमित रूप से उसका अच्छी तरह पोषण करे, और साथ ही उसे कुछ कुछ नैतिक शिक्षा भी देती रहे। केवल स्वाधीन और उपयोगी समय में ही वे एक दूसरे के साथ एकान्त में मिलें और फिर उसी प्रकार शान्ति युक्त जीवन व्यतीत करें।

मुझे मालूम होता है कि प्यार करना भी एक प्रकार का भाप का दबाव है, जो यदि सेफ्टीवाल्व यथा समय न खोली जाय, तो जिन को तोड़-फोड़ डाले। वाल्व तभी खुलती है जब उस पर भारी वजन पड़ता है। अन्य समय वह मजबूती से बन्द रहती है। हमारा उद्देश भी यह हो कि हम उसे जान बूझकर बन्द रखे रहें। और उसे आसानी से खुलने न देने के लिए उस पर खूब वजन रख दें। मैं उन शब्दों को इस अर्थ में समझता हूँ कि जो इसको प्राप्त कर सकता है, करे! (मैथ्यू १८ अध्याय पद १२) अर्थात् प्रत्येक मनुष्य को कोशिश करनी चाहिए कि वह अविवा-

हित रहे। पर विवाह कर लेने पर वह अपनी पत्नी के साथ बहन का सा व्यवहार रक्खे। भाफ जरूर ही इकट्ठी होगी। वाल्व उठेगी। पर हमें उसे स्वयं ही न खोलना चाहिए जैसा कि विषयोपभोग को कानूनी अधिकार समझने वाला आदमी करता है। वह तभी क्षम्य है जब हम उसका संयम न कर सकें। जब वह हमारी इच्छा के विपरीत टूट पड़ता है।

"पर मनुष्य इस बात का निर्णय कैसे करे कि अब वह अपने को रोक नहीं सकता!"

न जाने कितने ऐसे सवाल हैं, और वे कठिन मालूम होते हैं। पर साथ ही जब मनुष्य उनको अपने लिए, दूसरों के लिए नहीं, हल करने को बैठता है, तब वे उसे इतने कठिन नहीं मालूम होते जितने कि वह उन्हें पहले समझे हुए था। दूसरे के लिए तो उस क्रम से चलना होगा जो कि पहले बता दिया गया है। एक वृद्ध मनुष्य एक वेश्या से प्रीति लगाता है; उसमें एक भयंकर बुराई है। वही बात एक जवान आदमी करता है। यह उतनी बुरी बात नहीं। एक वृद्ध पुरुष का अपनी पत्नी से काम-चेष्टायें करना उतना बुरा नहीं, जितना कि एक युवा पुरुष का एक वेश्या के साथ वैसी चेष्टायें करना है; उसका अपनी स्त्री के साथ काम-चेष्टायें करना उतना बुरा नहीं, जितना कि वही काम एक वृद्ध पुरुष के लिए होगा। हाँ, बुरा तो जरूर है। इस तरह न्यूनाधिकता सबके विषय में होती है। इसे हम सभी जानते हैं। निर्दोष बच्चों और लड़कों के लिए भी एक खास तुलना की नाप होती है। पर स्वयं अपने लिए एक जुदी बात है। प्रत्येक ब्रह्म-

चारी पुरुष और स्त्री के मन में इस कल्पना का अस्तित्व होता है; यद्यपि वह झूठी धारणाओं द्वारा दबी रहती है कि पवित्रता की रक्षा करनी चाहिए। और इस कल्पना की पूर्ति में तथा किसी भी हालत में, विफलता में उसे बराबर हर्ष या शोक होता रहता है।

अन्तरात्मा की आवाज बाद में और हमेशा यह बराबर कहती रहती है कि यह बुरा है—लज्जास्पद है। (यह तो अनुभूति और समझ पर अवलम्बित है)

संसार में विषय-सुख बहुत अच्छा समझा गया है जैसे कि सेफ्टी वाल्व को खोलकर भाफ के छोड़ देने को लोग समझ सकते हैं। परमात्मा के नियम के अनुसार तो सच्चा जीवन व्यतीत करना ही अच्छा है। हम अपनी बुद्धि को परमात्मा के लिए ही खर्च करें। अर्थात् मनुष्यों को, उनकी आत्माओं को और उनमें भी सबसे नजदीक अपनी पत्नी को प्यार करें। उसे अपने विकारों की दासी बना कर उसकी ज्ञानेंद्रियों को कुंठित न करें। अर्थात् भाफ का सदुपयोग करें और उसे निकाल ने के तमाम रास्तों को टालते रहें, रोकते रहें।

"पर इस तरह तो मनुष्य-जाति का अंत हो जायगा।"

सब से पहले, मनुष्य चाहे कितना ही विषयोपभोग को टालने की कोशिश करता रहे, जब तक उसकी आवश्यकता होगी, सेफ्टी वाल्व बनी ही रहेगी और बच्चे पैदा होते रहेंगे। पर हम मूढ़ क्यों बोलें? जब हम विषय-सुखों का समर्थन करते हैं तब

क्या सचमुच हमें मनुष्य-जाति के मिट जाने का डर होता है ? हम तो अपने सुख की बात सोचते हैं । और वही हमें करना भी चाहिए । मनुष्य-जाति मिट जायगी ? नरपशु संसार से उठ जायगा ? राम राम ! कितनी भयंकर बात है ! प्रलय-विरोधी प्राणी नष्ट हो गये । उसी प्रकार नर-पशु भी मिट जायगा । (यदि हम अनंतकाल और स्थान का विचार करें तो) भले ही मिट जाय न। मुझे इन दो पैर के पशुओं के संसार से मिट जाने पर कोई दुःख न होगा, जब तक कि संसार में सच्चा जीवन, सच्चा प्रेम करने वालों का प्रेम, नहीं नष्ट हो जाता । यदि विषय-लालसा को छोड़ देने के कारण मनुष्य-जाति नष्ट हो जाय तो भी यह सच्चा प्रेम तो कदापि नष्ट नहीं हो सकता। वह तो इतना बढ़ जायगा कि इस प्रेम के मानने वालों के लिए मनुष्य-जाति का बने रहना एक अनावश्यक बात हो जायगी । वे उसके रहने-मिटने की परवाह ही न करेंगे ।

शारीरिक प्रेम की आवश्यकता केवल इसीलिए है कि यदि वह नष्ट हो जाय तो उन उच्च नरपुंगवों के पैदा होने की संभावना भी नष्ट हो जाय, जो मनुष्य-जाति को प्रेम की इस चरमसीमा तक ले जा सकते हैं ।

इन सब अस्तव्यस्त विचारों को पढ़ जाओ और सोचो कि मैं क्या कहना चाहता था और मैंने क्या नहीं कहा। ये विचार यों ही संयोगवश मेरे दिमाग में नहीं आये हैं । मेरे जीवन-अनुभव के सागर में धीरे धीरे निर्माण हुए वे मोती हैं, यदि परमात्मा

चाहेंगा तो मैं उन्हें और भी स्पष्टता के साथ और व्यवस्थित रूप में प्रकाशित करने की कोशिश करूँगा।

*　*　*　*　*

पशु सभी विषयोपभोग करते हैं, जब सन्तान-उत्पत्ति की सम्भावना हो। पर सभ्य मनुष्य भी विषयोपभोग हमेशा करता है। बल्कि उसने यह आविष्कार किया है कि ऐसा करना आवश्यक है। इसके द्वारा वह अपनी गर्भवती या मातृधर्मरता पत्नी को सताता है और उसे अपनी विषय-वासना तृप्त करने पर मजबूर करता है। पत्नीत्व और मातृत्व दोनों धर्मों का पालन एक साथ करने में बेचारी मर मिटती है। बस, इस तरह हमने स्त्रियों के मृदुल, शांत और मीठे स्वभाव को अपने हाथों बिगाड़ डाला है। फिर ख्वाहमख्वाह हम उनकी विचार-हीनता की शिकायत करते हैं या उनके मानसिक विकास के लिए किताबों या विद्यापीठों की सहायता की इच्छा करते हैं। हाँ, इन बातों में नर-पशु अन्य पशुओं से भी गया बीता है। उसे पशु-जीवन के सतह पर पहले आना चाहिए। यह तभी होगा, जब वह ज्ञान-पूर्वक प्रयत्न करेगा। अन्यथा उसकी बुद्धि का उपयोग तो अपने जीवन को और भी अधिक नष्ट करने की ओर होता रहेगा।

स्त्री और पुरुष को कितना विषयोपभोग करना चाहिए, किस हद तक वह जायज है? यह असली ईसाई-धर्म में एक बड़ा ही महत्व पूर्ण सवाल है। और यह हमेशा मेरे दिमाग में बना रहता है। पर अन्य प्रश्नों की भाँति धर्म-ग्रन्थ में इसका इशारा

साफ़ साफ़ लिखा हुआ है। ईसा ने इसको स्पष्ट कर दिया है। पर हम उस पर अमल ही नहीं करते; बल्कि यों कहना चाहिए कि भली भाँति उसे समझ भी नहीं पाते। देखिए मैथ्यू के प्रवचन के उन्नीसवें अध्याय में लिखा है—"सभी आदमी इसे नहीं ग्रहण कर सकते। केवल वे ही ग्रहण कर सकते हैं जिन्हें कि वह दिया गया है। क्योंकि संसार में कई जन्मजात नपुंसक हैं। पर कई ऐसे नपुंसक भी हैं जिन्होंने अपने को स्वर्गीय राज्य की प्राप्ति के लिए ऐसा बना रक्खा है। जो उसको ग्रहण कर सकता हो करे।" (पद्य ११ और १२)

इन पद्यों का बहुत ग़लत अर्थ लगाया गया है। पर इसमें यह साफ़ साफ़ लिखा है कि मनुष्य को अपने विषय में क्या करना चाहिए। उसे किस तरफ़ बढ़ने की कोशिश करनी चाहिए? आधुनिक भाषा में कहना चाहें तो उसका आदर्श क्या हो? उत्तर है "स्वर्गीय राज्य की प्राप्ति के लिए नपुंसक बन जाय।" जिसने यह प्राप्त कर लिया है उसने संसार की सर्व श्रेष्ठ वस्तु को प्राप्त कर लिया पर जो इसे प्राप्त नहीं कर सका है, उसे भी चाहिए कि इसके लिए कोशिश करे। जो इसे ग्रहण कर सकता है, करे।

मेरा ख़याल है कि मनुष्य को अपने पारस्परिक कल्याण के लिए संपूर्ण ब्रह्मचर्य के पालन की कोशिश करनी चाहिए। दोनों को ज्ञान पूर्वक ब्रह्मचर्य के पालन में प्रत्यक्ष रूप से प्रयत्नशील होना चाहिए तब वे उसी लाभ को प्राप्त करेंगे जो कि उनको होना चाहिए। लक्ष्य पर ठीक निशाना लगाने के लिए बाण उसके ज़रा ऊपर छोड़ना पड़ता है। यदि मनुष्य विवाहित जीवन

के विषयोपभोग को भी अपने जीवन का लक्ष्य बना लेगा तो वह उससे नीचे गिर जायगा। यदि आदमी पेट के लिए नहीं बल्कि आत्मा के लिए जीने की कोशिश करेगा तो वह फिसलते फिसलते कहीं मामूली जीवन पर आकर ठहरेगा। पर यदि वह पहले ही से जिह्वालोलुप हो जायगा तो उसका पतन निश्चित है।

❀ ❀ ❀ ❀

विवाहित जीवन के विषय में मैंने बहुत कुछ सोचा है और सोचता रहता हूँ। किसी भी विषय पर जब मैं गंभीरता से विचार करने लगता हूँ, तब यही होता है। मुझे बाहर से भी प्रेरणा होती है।

परसों मुझे अमेरिका की स्त्री डाक्टर श्री अलाइस स्टॉकहम एम. डी. की लिखी एक पुस्तक डाक द्वारा मिली। पुस्तक का नाम था—"टॉकोलाजी"— हर एक स्त्री की किताब।" स्वास्थ्य की दृष्टि से किताब उत्कृष्ट है। जिस विषय पर इतने दिनों से हमारा पत्र-व्यवहार चल रहा है उस पर भी उसने एक अध्याय में विचार किया है और ठीक उसी नतीजे पर पहुँची है जिस पर कि हम पहुँचे हैं। जब आदमी अँधेरे में होता है और उसे एक एक कहीं से प्रकाश दिए जाता है तो उसे बड़ा आनंद होता है। यह याद आते ही मुझे बड़ा दुःख होता है कि मैंने एक पशु की तरह अपना जीवन बिताया है। पर अब उसका क्या किया जा सकता है? दुःख इसलिए होता है कि लोग तो यही न कहेंगे— "अब कबर में जाने के दिन आये तब तो यही बड़ी ज्ञान की

बातें करने लग गये। पर आप का पूर्व जीवन कैसा था? जब हम बूढ़े हो जायँगे, तब हम भी यही कहेंगे।" यही आप का पुरस्कार है। मनुष्य की अंतरात्मा कहती है कि अब मैं गया बोता हूँ। परमात्मा के पवित्र संदेश को उसके पुत्रों को सुनाने के लिए मैं सर्वथा अयोग्य हूँ। पर यह विचार आते ही समाधान हो जाता है कि खैर, इससे दूसरों का तो कल्याण होगा। परमात्मा तुम्हारा और सबका कल्याण करे!

* * * *

"अंतिम कथन" के विषय में विचार करते हुए मैं सोचता था कि विवाह के पहले ये मानी थे—पत्नी को अपनी सम्पत्ति के तौर पर प्राप्त करना। फिर युद्ध या डाके डाल कर भी स्त्री प्राप्त की जाती थी। मनुष्य ने स्त्री के विषय में किसी प्रकार का विचार नहीं किया। उसे केवल अपनी विषय-वासना को तृप्त करने का एक साधन मात्र समझा। बादशाहों के जनानखाने क्या हैं? इसी के जीते-जागते उदाहरण! एकगामी होने पर स्त्रियों की संख्या जरूर घट गई, पर उनके संबंध में पुरुष के चित्त में जो गलत कल्पना थी, वह नहीं गई। यथार्थ में सम्बन्ध ठीक इसके विपरीत है। पुरुष हमेशा विषयोपभोग के योग्य रहता है और हमेशा इन्कार भी कर सकता है। पर स्त्री, जब कि वह कुमार अवस्था को पार कर जाती है, और जब कि उसकी प्रकृति पुरुष संयोग की चाह करती है तब उसे अपने को रोकने में बड़ा कष्ट होता है। पर इतनी प्रबल इच्छा उसे दो दो साल में शायद

एक एक बार ही होती है। इसलिए अपनी विषय-वासना को तृप्त करने का यदि किसी को अधिकार हो तो वह पुरुष को कदापि नहीं, स्त्री को ही है। स्त्री के लिए विषय-वासना की तृप्ति एक मामूली आनन्द नहीं है, जैसा कि पुरुष के लिए है। बल्कि वह तो उसके दुःख के हाथों में अपने को सौंप देती है। उसका विषयोपभोग भावी दुःख, कष्ट और यातनाओं से लदा हुआ होता है। मैं सोचता हूँ कि प्रत्येक मनुष्य इसी दृष्टि से विवाह का विचार करे। वे आपस में एक दूसरे के प्रति प्रामाणिक रहने की प्रतिज्ञा करें। ब्रह्मचर्य के पालन की कोशिश करें और यदि कहीं इसका भंग ही होने का अवसर आवे तो वह पुरुष की इच्छा के कारण नहीं, स्त्री के प्रार्थना करने पर ही हो।

* * * *

तुम अपने बच्चों के पिता से अपील करना नहीं चाहती ? यह विचार ग़लत है। तुम लिखती हो—'मैं न चाहती हूँ और न अपील कर ही सकती हूँ।' पर स्त्री और पुरुष का वह सम्बन्ध अटूट है जिसके कारण उन्हें बच्चे पैदा हो जाते हैं। भले ही पादड़ियों के पंचों का संस्कार उन पर हुआ हो या न भी हुआ हो। इसलिए तुम्हारे बच्चों का पिता विवाहित हो या अविवाहित, भला हो या बुरा हो, उसने तुम्हारा अपमान किया हो या न भी किया हो, मेरा ख़याल है कि तुम्हें उसके पास जाना चाहिए और यदि उसने लापरवाही की है तो उसे अपने कर्तव्य का परिज्ञान करा देना चाहिए। यदि वह तुम्हारी प्रार्थना पर

विचार न करे, तुम्हें झिड़क दे, तुम्हारा अपमान करे तो भी तुम अपने, अपने बच्चों के और परमात्मा के नजदीक इस बात के लिए जिम्मेदार हो कि तुम उसे फिर हर तरह समझाने की कोशिश करो कि वह अपने भले के लिए अपने कर्तव्य का पालन करे। हाँ, जाओ, जरूर जाओ, प्यार के साथ, ज़ोर के साथ, युक्ति पूर्वक, मधुरता से उसे समझाओ जैसा कि उस विधवा ने समझाया, जिसका जिकर हमारे धर्म-ग्रन्थ में आया हुआ है। यह मेरा प्रामाणिक विचार और चिंतनपूर्वक दिया हुआ मत है। तुम चाहे इसका अनुसरण करो या इस पर ध्यान न दो। तुम पर इसे प्रकट कर देना मैंने अपना धर्म समझा।

* * * * *

अध्यात्मिक आकर्षण से शून्य स्त्री-पुरुषों का शारीरिक संगम परमात्मा का अपने सत्य को प्रकट करने का प्रयोग है। इस संगम द्वारा वह कसौटी पर चढ़ता है और मजबूत होता है। यदि वह कमजोर होता है तो उसका प्रकाश शनैःशनैः बढ़ जाता है।

* * * *

मुझे तुम्हारा पत्र मिला। उसमें लिखी शंकाओं का बड़ी खुशी के साथ समाधान करूँगा। ये शंकायें हमारे दिल में कई बार पैदा होती हैं और वैसी ही रह जाती हैं।

ओल्ड टेस्टामेन्ट और गॉस्पेल में लिखा है कि पति और पत्नी दो नहीं एक ही प्राणी हैं। यह सत्य है। इसलिए नहीं कि वे

नहीं किया है तो तुम्हारा कर्तव्य है कि तुम संसार को ऐसे अन्य प्राणी दो जो उस कर्त्तव्य को पूरा कर सकें।

दूसरे, विवाहित व्यक्तियों के बीच कोई सम्बन्ध है तो यह आवश्यक है कि वे दोनों उसमें भाग लें। यदि उनमें से एक अधिक विकारमय है तो दूसरे को स्वभावतः यह मालूम होगा कि वह संपूर्ण रूप से पवित्र है। पर यह सोचना ग़लत है।

तुम्हारा अपने विषय में यह सोचना भी मेरे ख़याल से ग़लत मालूम होता है। केवल अपना पाप तुम्हें दिखाई नहीं देता जो दूसरे के प्रकट पाप के पीछे छिप जाता है। यदि इस विषय में तुम अधिक पवित्र होती तो तुम अपने पति की विकार-वृत्ति के विषय में अधिक उदासीन दिखाई देती। तुम उसके साथ ईर्ष्या नहीं करती। वल्कि उसकी कमज़ोरी पर तुम्हें तरस आती। पर यह बात नहीं है।

यदि तुम मुझ से पूछना चाहो कि मुझे क्या करना चाहिए तो मैं तुम्हें यही सलाह दूँगा कि एक ऐसा मौक़ा ढूँढ निकालो, जब तुम्हारा पति बहुत प्रसन्न हो, तुम पर खूब प्यार दिखा रहा हो और उसे फिर बड़ी मधुरता और अत्यंत नम्रता के साथ विनय-पूर्वक समझाओ कि उसकी विकार-वृत्ति की चेष्टायें तुम्हारे लिए कितनी दुखदायी हैं। उसे समझाओ कि तुम उनसे अपना छुटकारा चाहती हो। यदि वह इसे मंजूर न करे (जैसा कि तुम लिखती हो) तो उसकी इच्छा के वश हो जाओ, यदि तुम्हें परमात्मा बच्चे दें तो उनका स्वागत करो। पर गर्भावस्था और शिशु-संवर्धन के समय में तो ज़रूर अपने पति से कहो कि वह

तुम से दूर रहें। इसके बाद यदि वह फिर विषय-तृप्ति चाहे तो फिर उसकी बात मान लो। बस, फिर आगे की चिन्ता करना छोड़ दो। परमात्मा तुम्हारा कल्याण ही करेगा।

ऐसा करने से तुम्हारे, तुम्हारे पति और उन बच्चों के लिए सिवा कल्याण के और कुछ हो ही नहीं सकता। क्योंकि ऐसा करने से तुम अपने सुख की साधना नहीं करोगी, बल्कि परमात्मा की इच्छा के सामने अपना सिर झुकाओगी।

यदि इसमें तुम्हें कोई गलत सलाह दिखाई दे तो मुझे क्षमा करना। परमात्मा को साक्षी रखकर, मैंने वही लिखने का प्रयत्न किया है जैसा कि मैं अपने जीवन में रहा हूँ और जैसा कि मैंने इस विषय में अब तक सोचा है।

* * * *

पति और पत्नी के बीच यदि कुछ अप्रियता उत्पन्न हो जाय तो वह नम्रता से ही दूर हो सकती है। सीते वक्त धागा यदि उलझ जाता है तो उलझन की प्रत्येक गुत्थी के अंदर से शान्ति-पूर्वक रील को निकालते जाने ही से वह सुलझ सकती है।

* * * *

मालूम होता है वह अपने विवाहित जीवन से एक स्पृहणीय न्याय-कर्म से असंतुष्ट है। मैं चाहता हूँ कि ऐसा न हो तो अच्छा। निश्चयपूर्वक समझो कि बाहरी बातें पूर्णतया कभी अच्छी नहीं होतीं। यदि एक अविवेकपूर्ण मनुष्य का एक देवी के साथ विवाह हो और एक अन्य प्रकार के आदमी का एक राक्षसी के

साथ विवाह हो तो वे दोनों एक दूसरे से असंतुष्ट होंगे। और अपने विवाह से असंतुष्ट रहने वाले कई लोग, नहीं प्रायः सभी यही मानते हैं कि उनकी सी बुरी अवस्था किसी की न होगी। इसलिए सब की अवस्था एक सी होती है।

यदि तू स्त्री को—यद्यपि वह तेरी पत्नी हो एक आनंददायक सुख-सामग्री समझता है तो तू व्यभिचार करता है। शारीरिक परिश्रम के कानून की पूर्ति के अनुसार वैवाहिक सम्बन्ध के मानी हैं एक भागीदार या उत्तराधिकारी का प्राप्त करना। वह स्वार्थमय आनंद से युक्त रहता है। पर विषयानन्द के खयाल से तो वह पतन है।

* * * * *

बागवान की स्त्री को फिर एक बच्चा हुआ है। फिर वह बूढ़ी दाई आई और बच्चे को ले गई, परमात्मा जाने कहाँ!

प्रत्येक मनुष्य को भयंकर असंतोष हो रहा है। सन्तति-निरोध के उपायों के अवलम्बन की इतनी परवाह मुझे नहीं है। पर यह तो एक ऐसी बुराई है कि उसके धिक्कार के योग्य मुझे कोई शब्द ही ढूँढे नहीं मिलते।

आज पता लगा है कि दाई उस बच्चे को लौटा गई है। रास्ते में उसे अन्य स्त्रियाँ मिलीं जिसके पास ऐसे ही बच्चे थे। इनमें से एक बच्चे के मुँह में कोई खाने की चीज रक्खी हुई थी। मुँह में वह बहुत गहरी उतरी हुई थी। बच्चे के कंठ में वह अटक गई और वह दम घुटकर मर गया। मॉस्को के अना-

थालय में एक ही दिन में ऐसे पच्चीस बच्चे गये थे। उनमें से नौ बच्चे लौटा दिये गये थे जो या तो अनाथ न थे या बीमार थे।

एन्०—आज सुबह बागवान की औरत को फटकार सुनाने के लिए गया था। उसने अपने पतिका बड़े जोरों से समर्थन करते हुए कहा कि अपने जीवन की वर्तमान अनिश्चितता और ग़रीबी के कारण वह अपने बच्चों का पालन-पोषण करने में असमर्थ थी। एक शब्द में कहना चाहें तो बच्चों को रखना उसके लिए बड़ा 'असुविधाजनक' था।

अभी, अभी तक तीन अनाथ बच्चे मेरे पास रहते थे। बच्चों की पैदाइश बेहद बढ़ गई है।

बेचारे शराबखोर, बीमार, और जंगली बनने के लिए पैदा होते और बढ़ते हैं।

लोग भी बड़े बेढब हैं। वे भी एक ही साथ बच्चों और मनुष्यों की जान बचाने और नष्ट करने के उपायों को खोजते रहते हैं। पर इतने बच्चे वे पैदा ही क्यों करते हैं?

मनुष्यों को चाहिए कि वे बच्चों को या मनुष्यों को मारें नहीं, न उन्हें पालन करना बन्द करें। बल्कि वे अपनी तमाम शक्ति जंगली मनुष्यों को सच्चे मनुष्य बनाने में लगा दें। बस, केवल यही एक बात अच्छी है। और यह काम शब्दों से नहीं, अपने प्रत्यक्ष उदाहरण द्वारा ही हो सकता है।

* * * * *

यदि उनका पतन हो जाय तो वे समझ लें कि इस पाप से मुक्त होने के केवल दो ही उपाय हैं—(१) अपने को विकार-रहित

बनावें और (२) बच्चों को सुसंस्कृत कर उन्हें ईश्वर के सच्चे सेवक बनावें।

* * * * *

प्यारे एम. और एन. मुझे तुम्हारे विवाह पर बड़ा आनन्द हो रहा है। परमात्मा तुम्हें सुख-शान्ति और निर्मल प्यार दे। बस, इससे अधिक की तुम्हें आवश्यकता ही नहीं। पर प्यारे मित्रो, क्षमा करना। मैं तुम्हें सावधान करने से अपने आप को रोक नहीं सकता। दोनों खूब सावधान रहना। अपने पारस्परिक सम्बन्ध में खूब सावधान रहना, कहीं तुम्हारे अन्दर चिड़चिड़ापन और एक दूसरे से अलग होने की वृत्ति न घुसने पावे। एक शरीर और एक आत्मा होना कोई आसान बात नहीं है। मनुष्य को खूब प्रयत्न करना चाहिए। फल भी महान् होगा। उपाय यदि पूछो तो मैं तो केवल एक ही जानता हूँ। अपने वैवाहिक प्रेम को पारस्परिक और स्वाभाविक प्रेम पर कभी प्रभुत्व न जमाने देना—दोनों एक दूसरे के मनुष्योचित अधिकारों का खूब खयाल रखना। पति-पत्नी का सम्बन्ध ज़रूर रहे; पर जैसा मनुष्य एक अपरिचित आदमी या एक पड़ोसी के साथ, जो सज्जनोचित बर्ताव और आदर सम्मान करता है वही तुम्हारे बीच भी हो। यही सत्सम्बन्ध की बुनियाद है।

* * * *

एक दूसरे के प्रति आसक्ति को न बढ़ाओ। बल्कि अपनी तमाम शक्ति से अपने पारस्परिक सम्बन्ध में सावधानी, तथा विचारशीलता बढ़ाओ, जिससे तुम्हारे बीच कटुता न उत्पन्न हो।

बात बात पर झगड़ना बड़ी भयंकर आदत है। पति-पत्नी को छोड़ और किसी सम्बन्ध में इतनी सर्वाङ्गीण घनिष्टता नहीं होती और इसलिए सब से ज्यादह एहतियात की भी आवश्यकता है। इस घनिष्टता ही के कारण हम अक्सर उस पर विचार करना भूल जाते हैं; जिस प्रकार अपने शरीर के विषय में हम सावधानी रखना भूल जाते हैं, और यही बुराई की जड़ है।

* ❀ * ❀

एक विवाहित दम्पती के लिए उपन्यासों के वर्णनों के अथवा अपनी हार्दिक इच्छा के अनुसार सुखी होने के लिए वैसा ही मेल होना आवश्यक है। पर यह तभी हो सकता है जब विश्व-जीवन का ध्येय और बच्चों के सम्बन्ध में उनके विचारों में एकता हो। पति-पत्नी का विचार, ज्ञान, रुचि और संस्कृति एक सी होना एक असम्भव सी बात है। अतः सुख तो उन्हें तभी प्राप्त हो सकता है जब दो में से एक अपने विचारों को दूसरे के विचारों के सामने गौण समझ ले।

पर यही तो मुख्य कठिनाई है। उच्च विचार वाला पुरुष या स्त्री नीच विचार वाले के सामने अपने विचारों को गौण नहीं समझ सकता, चाहे वह इस बात को दिल से भी चाहता हो। मेल के लिए आदमी अपना खाना छोड़ सकता है, नींद कम कर सकता है, कठिन परिश्रम कर सकता है, पर वह नहीं कर सकता जो उसके विचार में ग़लत, अनुचित और विचारहीन ही नहीं बल्कि विचार, सदाचार और सिद्धान्त के विपरीत हो। निःसन्देह दोनों

के दिल में यह भाव होता है कि उनका जीवन पारस्परिक मेल के आधार पर ही सुखी हो सकता है; दोनों इस बात को भी जानते हैं कि उनके बच्चों की शिक्षा भी इसी विचार की एकता के ऊपर निर्भर है; परन्तु फिर भी एक स्त्री अपने पति की शराबखोरी या जुआखोरी से कभी सहमत नहीं हो सकती और न एक पति इस बात को मंजूर कर सकता है कि उसकी पत्नी नाच-गान, में बार बार शरीक होती रहे या उसके बच्चों को नाचना—कूदना या ऐसी ही वाहियात बातें सिखलाई जायँ।

संयुक्त-जीवन को सुखमय तथा कल्याणरूप बनाने के लिए यह आवश्यक है कि जो अपने को दूसरे की अपेक्षा कम सुसंस्कृत देखने और दूसरे की श्रेष्ठता को अनुभव करने वाला—फिर वह पुरुष हो या स्त्री—खाने-पीने पहनने आदि गृहव्यवस्था-सम्बन्धी बातों में ही नहीं, बल्कि जीवन के विशेष महत्वपूर्ण प्रश्नों, आदर्शों आदि के विषय में भी अपने से उच्चतर विचार रखने वाले व्यक्ति के—फिर वह पति हो या पत्नी—आदर्शों को ही प्रधानता दे।

क्योंकि पति, पत्नी, बच्चे और समस्त परिवार के सच्चे कल्याण के लिए मधुर मेल का होना परम आवश्यक है। उनकी अनबन और झगड़े, उनके तथा बच्चों के लिए एक विपत्ति है और दूसरों के कार्य में विघ्न। और इसे टालने के लिए केवल एक बात की ज़रूरत है—दो में से एक दूसरे की बात को मान लें।

मेरा तो ख़याल है कि जब दो में से कोई इस बात को महसूस करने लगता है कि दूसरा उससे श्रेष्ठ है, तब उसे उसके विचार और निर्णयों को प्रधानता देना अपने आप आसान हो जाता है

यहाँ तक कि जब कभी हम इसके विपरीत आचरण देखते हैं तो हमें बड़ा आश्चर्य होता है।

❀ ❀ ❀ ❀

विवाहित दम्पति के जीवन और व्यावहारिक विचारों में मेल न हो तो कम सोचने वाले को चाहिए कि अधिक सोचने वाले के विचारों को प्रधानता दे।

मनुष्य को चाहिए कि वह मानवता और परिवार की सेवा को एकरूप कर ले। दोनों की सेवा में अपना समय विभक्त करके वेमन से नहीं बल्कि अपने परिवार की सेवा करके मनुष्य-जाति की सेवा करे। अपने परिवार के व्यक्तियों को और बच्चों को सुशिक्षित बना कर मनुष्य-जाति की आदर्श सेवा करे। सच्चा विवाह, जिसका फल संतानोत्पत्ति होता है, परमात्मा की अप्रत्यक्ष सेवा ही है। इसलिए विवाह हो जाने पर हमें एक प्रकार की शान्ति मिलती है। उसे तो अपने काम को दूसरे के हाथों में सौंपने का क्षण समझना चाहिए। यदि मैंने अपना कर्तव्य पूर्ण नहीं किया तो मेरे प्रतिनिधि मेरे बच्चे हैं। ये कर डालेंगे।

पर सवाल यह है कि उन्हें इस कर्तव्य के पालन करने के योग्य होना चाहिए। उनका शिक्षा-संस्कार इस तरह होना चाहिए जिससे वे परमात्मा के काम के बाधक नहीं, साधक हों। यदि मैं अपने आदर्श के नजदीक नहीं पहुँच सका तो मुझे यह कोशिश करनी चाहिए जिससे मेरे बच्चे उसके नजदीक पहुँच सकें। बस, यही इच्छा बच्चों के शिक्षा-संस्कार की समस्त

योजना और शैली को निश्चित कर देती है। वह उसमें धार्मिकता उत्पन्न कर देती है। यही भावना है जो आत्मोत्सर्ग की सर्वश्रेष्ठ आकांक्षाओं का उदय एक युवक के हृदय में कर देती है और उसे अपने परिवार-मार्ग से मानव-जाति की सेवा के योग्य बना देती है।

❀ * * ❀

मैं इस नवागत देवदूत का स्वागत करता हूँ। यह कौन है? कहाँ से आया है? क्यों आया है? कहाँ जायगा? विज्ञान जिन के लिए इन प्रश्नों का उत्तर सुझा देता है, उनके लिए तो अच्छा ही है। पर जिनके लिए विज्ञान मार्ग-दर्शक नहीं है, उनको विश्वास करना चाहिए कि एक बालक का जन्म बड़ी अर्थपूर्ण और रहस्यमय बात है। इस रहस्य को हम तभी और उतने ही अंशों में समझेंगे जितने अंशों में हम उनके प्रति अपने कर्तव्य का पालन करेंगे।

विवाहित पुरुषों को या तो अपनी स्त्री और बच्चों को छोड़ देना चाहिए जो कि कोई नहीं मान सकता, या एक स्थान पर बस जाना चाहिए। उनका यहाँ वहाँ भटकना उनकी स्त्रियों के लिए अत्यंत दुःखदायी साबित होता होगा जो अक्सर परमात्मा के लिए नहीं, बल्कि अपने पति के लिए पवित्र जीवन व्यतीत करती हैं और यह उनके लिए बड़ा कष्टप्रद होता होगा। इस लिए हमें उन पर कृपा करनी चाहिए। पति और पत्नी कुछ रोज़ एक [illegible] रहते हैं, अपनी गृहस्थी जमाते हैं

और फिर एकाएक उन्हें अपना घरबार उठाकर दूसरी जगह जाना पड़ता है। फिर वहाँ नया घरबार जमाओ। यह सब उनकी शक्ति के बाहर है। ऐसी बुनियाद पर बनाई गई इमारत कितने दिन खड़ी रह सकती है ? मैं जानता हूँ कि तुम यही कहोगे कि इस हालत में मनुष्य को अपने बालबच्चों को अपने साथ ले ले कर न दौड़ना चाहिए उन्हें एक जगह रखकर आप कहीं भी दौड़ता रहे। मेरा खयाल है कि यह तो परस्पर आपस में सलाह कर के ही करना चाहिए। इस पर भी ईसा का एक वचन है जिसका खयाल करना बहुत जरूरी है। वह कहता है—स्त्री और पुरुष अलग ? नहीं एक ही हैं, जिन्हें परमात्मा ने सम्मिलित किया है, उन्हें मनुष्य जुदा जुदा न करे। तुम्हारे जैसे हट्टे-कट्टे और सुखी प्राणियों को पहले तो शादी ही न करनी चाहिए किन्तु कर लेने पर और बालबच्चे पैदा हो जाने पर उनकी लापरवाही न करनी चाहिए। मेरा खयाल है कि पुरुषों का अपनी पत्नियों को छोड़ना महापाप है। यह ठीक है कि पहले पहल यही मालूम होता है कि स्त्री और बच्चों से अलग रह कर आदमी परमात्मा की अधिक सेवा कर सकता है। पर कई बार यह केवल भ्रम ही साबित हुआ है। यदि तुम पूर्णतया निष्पाप होते तो शायद यह हो सकता था। दूसरे किसी को ऐसा उपदेश भी न करना चाहिए जिससे वह अपनी स्त्री और बालबच्चों को छोड़ दे। क्योंकि इससे इस अनुचित त्याग का करने वाला अपनी नजर में तथा दूसरों की नजर में भी अपने आपको बड़ी निराशामय परिस्थिति में पावेगा। यह तो बुरा है। मेरा तो खयाल है कि कम-

योजना और शैली को निश्चित कर देती है। वह उसमें धार्मिकता उत्पन्न कर देती है। यही भावना है जो आत्मोत्सर्ग की सर्वश्रेष्ठ आकांक्षाओं का उदय एक युवक के हृदय में कर देती है और उसे अपने परिवार-मार्ग से मानव-जाति की सेवा के योग्य बना देती है।

❀ * * ❀

मैं इस नवागत देवदूत का स्वागत करता हूँ। यह कौन है? कहाँ से आया है? क्यों आया है? कहाँ जायगा? विज्ञान जिन के लिए इन प्रश्नों का उत्तर सुझा देता है, उनके लिए तो अच्छा ही है। पर जिनके लिए विज्ञान मार्ग-दर्शक नहीं है, उनको विश्वास करना चाहिए कि एक बालक का जन्म बड़ी अर्थपूर्ण और रहस्यमय बात है। इस रहस्य को हम तभी और उतने ही अंशों में समझेंगे जितने अंशों में हम उनके प्रति अपने कर्तव्य का पालन करेंगे।

विवाहित पुरुषों को या तो अपनी स्त्री और बच्चों को छोड़ देना चाहिए जो कि कोई नहीं मान सकता, या एक स्थान पर बस जाना चाहिए। उनका यहाँ वहाँ भटकना उनकी स्त्रियों के लिए अत्यंत दुःखदायी साबित होता होगा जो अक्सर परमात्मा के लिए नहीं, बल्कि अपने पति के लिए पवित्र जीवन व्यतीत करती हैं और यह उनके लिए बड़ा कष्टप्रद होता होगा। इस लिए हमें उन पर दया करनी चाहिए। पति और पत्नी कुछ रोज एक जगह शान्तिपूर्वक रहते हैं, अपनी गृहस्थी जमाते हैं

और फिर एकाएक उन्हें अपना घरवार उठाकर दूसरी जगह जाना पड़ता है। फिर वहाँ नया घरवार जमाओ। यह सब उनकी शक्ति के वाहर है। ऐसी वुनियाद पर वनाई गई इमारत कितने दिन खड़ी रह सकती है ? मैं जानता हूँ कि तुम यही कहोगे कि इस हालत में मनुष्य को अपने वालवच्चों को अपने साथ ले ले कर न दौड़ना चाहिए उन्हें एक जगह रखकर आप कहीं भी दौड़ता रहे। मेरा ख़याल है कि यह तो परस्पर आपस में सलाह कर के ही करना चाहिए। इस पर भी ईसा का एक वचन है जिसका ख़याल करना वहुत जरूरी है। वह कहता है—स्त्री और पुरुष अलग ? नहीं एक ही हैं, जिन्हें परमात्मा ने सम्मिलित किया है, उन्हें मनुष्य जुदा जुदा न करे। तुम्हारे जैसे हट्टे-कट्टे और सुखी प्राणियों को पहले तो शादी ही न करनी चाहिए किन्तु कर लेने पर और वालवच्चे पैदा हो जाने पर उनकी ला-परवाही न करनी चाहिए। मेरा ख़याल है कि पुरुषों का अपनी पत्नियों को छोड़ना महापाप है। यह ठीक है कि पहले पहल यही मालूम होता है कि स्त्री और बच्चों से अलग रह कर आदमी परमात्मा की अधिक सेवा कर सकता है। पर कई वार यह केवल भ्रम ही साबित हुआ है। यदि तुम पूर्णतया निष्पाप होते तो शायद यह हो सकता था। दूसरे किसी को ऐसा उपदेश भी न करना चाहिए जिससे वह अपनी स्त्री और वालवच्चों को छोड़ दे। क्योंकि इससे इस अनुचित त्याग का करने वाला अपनी नजर में तथा दूसरों की नजर में भी अपने आपको बड़ी निराशामय परिस्थिति में पावेगा। यह तो वुरा है। मेरा तो ख़याल है कि कम-

चोर और पातकी मनुष्य भी परमात्मा की सेवा कर सकता है।

विवाह एक पाप है। मनुष्य को चाहिए कि वह कभी पाप न करे। और यदि उसके हाथ से वह हो ही जाय तो उसको चाहिए कि वह उसके फल को भी आप भोगे। उससे मुँह मोड़ कर दूसरा पाप न करे। बल्कि इसी अवस्था में तन-मन से परमात्मा की सेवा करे।

❀ ❀ ❀ ❀

हाँ, ईसा ने परमात्मा की सेवा का जो आदर्श पेश किया है वह जीवन तथा मनुष्य-जाति को टिकाये रखने की चिंताओं से युक्त है। अपने को उन चिंताओं से युक्त रखने के प्रयत्न ने अब तक तो मनुष्य जाति का नाश नहीं किया! आगे क्या होगा, सो तो मैं नहीं जानता!

अपने जमाने की विचित्रताओं के विषय में कुछ कहने की इच्छा नहीं होती। पर तमाम ईसाई देशों के ग़रीब और अमीरों में पती और पत्नी, स्त्री और पुरुष के बीच जो सम्बन्ध है, वह सचमुच अजीब है। जैसा कि मुझे दिखाई देता है स्त्रियों के द्वारा यह सम्बन्ध बुरी तरह बिगाड़ दिया गया है, वे पुरुषों के साथ केवल औद्धत्य ही नहीं करतीं बल्कि उनका द्वेष तक करने लग जाती हैं। वे अपनी ठसक जताना चाहती हैं। वे दिखाना चाहती हैं कि वे पुरुषों से किसी बात में कम नहीं हैं। जो बातें पुरुष कर सकते हैं, वे सब स्त्रियाँ भी कर सकती हैं। सच्ची नैतिक और धार्मिक भावना का एक तरह से उनमें अभाव सा मालूम

होता है। यदि कहीं होता भी है तो उनके माता बनते ही वह अदृश्य हो जाता है। ❀

*　　*　　*　　*

मेरा ख़याल है कि स्त्रियाँ पुरुषों से किसी बात में भी कम नहीं हैं। पर ज्योंही वे शादी कर लेती हैं और मातायें बन जाती हैं त्योंही श्रम का एक स्वाभाविक विभाग हो जाता है। मातृत्व उनकी इतनी शक्ति को खींच लेता है कि फिर परिवार के लिए नैतिक मार्ग-दर्शिका बनने के लिए उनके नजदीक कोई उत्साह ही नहीं रह जाता। स्वभावतः यह काम पति पर आन पड़ता है। बस, संसार के आरम्भ से यही चला आया है।

पर आजकल कुछ गड़बड़ी हो गई है। पुरुष ने अपने इस अधिकार का बीच बीच में दुरुपयोग किया। अपनी राय और मत उसने स्त्री पर जबरदस्ती लादे और स्त्री को ईसाई धर्म के द्वारा स्वाधीनता मिलने के कारण, उसने डरकर पुरुष की आज्ञा मानना छोड़ दिया है। पर उसने अभी स्वेच्छापूर्वक पुरुष की के मार्ग-दर्शन को अच्छा समझकर उसको मंजूर करना शुरू नहीं किया। यह तो समाज के प्रत्येक अंग के अवलोकन से स्पष्ट होगा।

स्त्री-पुरुषों के बीच जो अधिकांश दुःख पाया जाता है, उसका प्रधान कारण उनका एक दूसरे को भली-भाँति न समझना ही है।

❀ जहाँ कहीं टॉलस्टाय ने स्त्रियों के विषय में ऐसी बातें कही हैं वहाँ उनका मतलब उन वामाओं से है जो अपने स्वाभाविक सौजन्य से, बुरी सोहबत के कारण हाथ धो बैठी हैं।—अनुवादक

पुरुष इस बात को कदाचित् ही समझ पाते हों कि स्त्रियों के लिए बच्चे कितने प्यारे होते हैं। साथ ही स्त्रियाँ भी तो पुरुष के सामाजिक, धार्मिक तथा नैतिक कर्तव्यों को क्वचित् ही समझ पाती हैं।

*　　*　　*　　*　　*

यद्यपि पुरुष कभी अपने पेट में बच्चों को न रख सकता है और न जन सकता है, तथापि वह इस बात को जरूर समझ सकता है कि ये दोनों काम महा कठिन हैं अत्यंत कष्टप्रद हैं। साथ ही वह इसके महत्व को भी भली भाँति जानता है। पर इस बात को बहुत कम स्त्रियाँ जानती हैं कि आध्यात्मिक रीति से जीवन-कार्य को सोचना और तय करना एक गुरुतर और महान् कार्य है। थोड़ी देर के लिए कभी कभी वे समझ भी लेती हैं तो उसी क्षण भूल जाती हैं, और ज्योंही उनकी अपनी बातें आतीं हैं—फिर वे पहनने-ओढ़ने जैसी कितनी ही तुच्छ पारिवारिक बातें क्यों न हों—वे पुरुषों के विश्वासों की सत्यता और दृढ़ता को फ़ौरन् भुला देती हैं। वह उनको अपने गहने-कपड़ों के सामने असत्य और काल्पनिक प्रतीत होता है।

*　　*　　*　　*　　*

मुझे यह कल्पना सुनकर बड़ा ही विस्मय हुआ कि स्त्री और पुरुष के बीच जो अक्सर लड़ाई छिड़ जाती है, उसका कारण प्रायः यह भी होता है कि परिवार का काम किस तरह चलाया जाय। एक पत्नी कभी इस बात को स्वीकार नहीं करती

कि उसका पति होशियार और व्यवहारचतुर है। क्योंकि यदि इसे वह कबूल कर ले तो पति की सब बातें भी उसे माननी पड़ें। यही बात पुरुष के विषय में भी चरितार्थ होती है।

यदि मैं इस समय 'दी क्रयूज़र सोनाटा' लिखता होता तो मैं इस बात को जरूर सामने रखता।

❀ * * * *

अंततोगत्वा वही शासन करने लगते हैं जिन पर जबरदस्ती की गई है, अर्थात् जिन्होंने अप्रतिकार के कानून का पालन किया है। स्त्रियाँ अधिकारों के लिए प्रयत्न कर रही हैं, पर वे महज इसीलिये शासन करती हैं कि उन पर बल का प्रयोग किया गया है। संस्थायें पुरुषों के हाथों में हैं। पर लोकमत तो स्त्रियों के ही अधीन है, और लोकमत तो तमाम कानून और फौजों की अपेक्षा लाखों गुना अधिक शक्तिशाली है। लोकमत स्त्रियों के अधीन है, इसका प्रमाण यह है कि न केवल गृहव्यवस्था, भोजन, आदि स्त्रियों के अधीन हैं, बल्कि स्त्रियाँ धन के व्यय को भी अपने अधीन रखती हैं। इसलिए मानव-परिश्रम भी उन्हीं के हाथों में है। कला के कार्य तथा पुस्तकों की सफलता और ठेठ शासकों का चुनाव तक लोकमत के अधीन है और लोकमत का सञ्चालन करने वाली स्त्रियाँ हैं।

किसी ने कहा है कि स्त्रियों को नहीं पुरुषों को स्वाधीनता के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

एक खूबसूरत स्त्री अपने आप कहती है "मेरा पति होशियार

है, विद्वान् है, कीर्तिशाली है, श्रीमान् भी है। वह नीतिमान् और पवित्र पुरुष है। पर मेरे नजदीक तो वह मूर्ख, अज्ञानी, दरिद्र, तुच्छ और अनीतियुक्त है—मैं जैसा कहती हूँ, मान लेता है; इसलिए उसकी विद्या, बुद्धि और सब कुछ वृथा है।" यह विचारशैली बहुत घातक है। यही उस स्त्री के नाश का कारण होती है।

हमारे जीवन की दुर्दशा तभी होती है, जब स्त्री बलवती हो जाती है। स्त्री बलवती तभी होती है, जब पुरुष विषयों का दास बन जाता है। इसलिए यदि खराब जीवन से बचना है और पूर्ण गृह-सुख का उपभोग करना है तो पुरुष को संयमशील बनना चाहिए।

*　　*　　*　　*

वह कहानी रोचक क्यों हुई? इसलिए कि उसे लिखते समय मैंने इस बात को हमेशा अपने सामने रक्खा कि पुरुष स्त्री की विषय-लोलुपता को बढ़ाता जा रहा है। डाक्टरों ने संतान-निरोध कर दिया। अब स्त्री तो विकारों से परिपूर्ण हो गई। वह अपने को रोक न सकी। इसी समय कला ने भी तमाम प्रलोभनों को उसके सामने लुभावने रूप में पेश किया। बतलाइए, ऐसी अवस्था में वह पतन से कैसे बच सकती थी? पति को जानना चाहिए था कि अपनी स्त्री के पतन का मूल कारण वह स्वयं ही था। जब वह उसका द्वेष करने लगा तब तो वह मर ही गई। बाद में तो वह उसे छोड़ने के लिए एक निमित्त मात्र ढूँढ़ रहा था। उसके मिलते ही वह खुश हो गया।

यदि सवाल यह है कि पति अपने बच्चों के पालन-पोषण तथा शिक्षा आदि से अपना छुटकारा करना चाहता है, यदि उनको सुलाने, नहलाने, उनके कपड़े साफ़ करने, उनका खाना बनाने, उनके कपड़े सीने आदि की चिन्ता से मुक्त होना चाहता है तो यह अत्यन्त अनुचित, निर्दयतापूर्ण और अन्याय है।

स्वभावत: बच्चों के पालन-पोषण में स्त्रियों का अधिक समय और शक्ति खर्च होती है। इसलिए अन्य पारिवारिक आवश्यक कर्तव्यों को हानि न पहुँचाते हुए यदि अन्य सब कार्यों का भार पुरुष ले ले तो यह अस्वाभाविक न होगा और प्रत्येक समझदार आदमी यही करता भी है। पर हमारे समाज में ऐसी जंगली चाल पड़ गई है कि सारे काम का बोझ जो कमज़ोर जाति होती है, जो नम्र होती है, उसी पर डाल दिया जाता है और यह रिवाज गहरी जड़ पकड़ गया है। मनुष्य स्त्रियों की समानता को क़बूल करता है, वह कहता है कि स्त्रियों को कॉलेज में प्रोफेसर और डाक्टर हो जाना चाहिए। पुरुष स्त्रियों का जी जान से आदर भी करता है पर यदि दोनों के बच्चे ने किसी कपड़े पर टट्टी कर दी हो तो उसे धोने का काम उससे न होगा। यदि बच्चे के कपड़े कहीं फट गये हों, और स्त्री बीमार हो या थक गई हो, या घड़ी भर लिखना या पढ़ना चाहती हो तो यह भी उससे न होगा। उसे यह कर डालने का विचार तक न आवेगा।

लोकमत भी इस विषय में इतना पतित हो गया है कि यदि कोई दयावान् कर्तव्यशील पुरुष ऐसा करने लग जाय तो लोग

उसकी मखौल उड़ावेंगे। इसका प्रतिकार करने के लिए बहुत भारी पौरुष की आवश्यकता है।

इसलिए इस विषय में मैं तुम्हारे साथ पूरी तरह सहमत हूँ। तुमने इस बात को प्रकट करने का मुझे मौका दिया, इसलिए मैं तुम्हारा सचमुच बहुत एहसानमन्द हूँ।

❀ ❀ ❀ ❀

सच्चा स्त्री-स्वातंत्र्य यह है, किसी भी काम के विषय में यह न समझा जाय कि यह केवल स्त्रियों का ही काम है और हमें उसे करते हुए लज्जा मालूम होती है। बल्कि उसे कमजोर समझ कर हमें तो प्रत्येक काम में उसकी सहायता करनी चाहिए। जितना हो सके, हमें उसके काम को हलका करने की कोशिश करनी चाहिए।

उसी प्रकार उनकी शिक्षा के विषय में भी हमें विशेष सावधानी रखनी चाहिए। यह समझ कर कि इनकी शादी होने पर बच्चों के जनन, पालन-पोषण आदि में उनको लिखने-पढ़ने के लिए काफी समय न मिलने पावेगा हमें उनके स्कूलों पर लड़कों के स्कूलों की अपेक्षा भी अधिक ध्यान देना चाहिए। इसलिए कि वे जितना भी कुछ ज्ञान प्राप्त कर सकती हैं, विवाह और मातृत्व के पहले-पहल कर लें।

* * * * *

यह बिलकुल सत्य है कि स्त्रियाँ और उनके काम के विषय में कितनी ही हानिकर और पुरानी धारणाएँ हमारे समाज में

प्रचलित हैं। उनके खिलाफ भी हमें उतनी ही आवाज़ उठानी चाहिए। पर मेरा ख्याल है कि स्त्रियों के लिए पुस्तकालय और अन्य संस्थायें खोलने वाला समाज उनके लिए न झगड़ सकेगा।

मैं इसलिए नहीं झगड़ता कि स्त्रियों को कम वेतन दिया जाता है। काम की कीमत तो उसको देखकर ही होती है। मुझे सब से ज्यादह रोष तो इस बात का होता है कि एक तो स्त्री पहले ही बच्चों को जनने, पालन करने आदि के कारण बेज़ार रहती है, तिस पर उसके सिर पर और खाना पकाने का भार भी डाल दिया जाता है।

बेचारी चूल्हे के सामने तपे बर्तन मले, कपड़े धोये, खाने पीने का सामान साफ़ करे, सीये-पिरोये और मरे। यह सब काम का बोझ केवल स्त्री पर ही क्यों डाल दिया जाता है? एक किसान, मज़दूर, या सरकारी मुलाजिम को सिवा बैठे बैठे हुक्का गुड़गुड़ाने के और कोई काम नहीं रहता। वह निकम्मा बैठा रहता है और सब काम स्त्री पर छोड़ दिया जाता है। भले ही वह बीमार हो, पर उसे खाना पकाना चाहिए, कपड़े धोने चाहिए या रात-रात जागकर बीमार बच्चे की शुश्रूषा करनी ही चाहिए। और यह सब क्यों हो रहा है? महज़ इसीलिए कि समाज में इस मान्यता ने जड़ पकड़ ली है कि ये कुल काम स्त्रियों के ही करने के हैं।

यह एक भयंकर बुराई है। इससे स्त्रियों में असंख्य रोग पैदा होते हैं। उनकी और उनके बच्चों की तमाम ज्ञान-शक्ति

कुंठित हो जाती है और असमय में बूढ़ी होकर वे इस लोक से चल बसती हैं।

*　　*　　*　　*

स्त्रियों ने हमेशा पुरुषों के अधिकार को मान लिया है। इसके विपरीत संसार में और होता भी क्या ? पुरुष अधिक शक्तिशाली है, इसलिए वह स्त्रियों पर शासन करता है। सारे संसार में यही होता आया है। स्त्री-राज्य की कहानी प्रचलित है, उसकी तो राम जाने। पर आज भी समाज में हज़ार में से ९९९ उदाहरण ऐसे ही मिलेंगे। ईसा ने जन्म लिया और बताया कि पशुबल नहीं किंतु प्रेम मनुष्य-जाति को पूर्णता की ओर ले जायगा। इस भावना ने तमाम गुलामों का और स्त्रियों को मुक्त कर दिया पर निरंकुश स्वाधीनता भी एक महान् संकट साबित होती, इसलिए यह तय किया गया कि तमाम स्वाधीन स्त्री पुरुष ईसाई हो जायँ अर्थात् ईश्वर और मनुष्य की सेवा के लिए अपना जीवन अर्पण कर दें। अपने लिए न जीयें। गुलाम और स्त्रियाँ मुक्त तो हो गईं, पर वे सच्ची ईसाई न बनीं। इसीलिए वे संसार के लिए भयंकर साबित हुईं। संसार की तमाम आपत्तियों की जड़ स्त्रियाँ ही हैं, इसलिए किया क्या जाय ? क्या फिर उन्हें गुलाम बना दिया जाय ? यह तो असम्भव है, क्योंकि यह कोई करने वाला नहीं है। सच्चे ईसाई गुलाम बना नहीं सकते और गैर-ईसाई इसे मंजूर न करेंगे, झगड़ेंगे। बात तो यह है कि वे अपने ही बोच में झगड़ रहे हैं। वे तो ईसाइयों को ही जीत रहे हैं और गुलाम बना रहे हैं। तब क्या किया जाय ? केवल एक ही

बात रह जाती है। लोगों को ईसाई धर्म की ओर आकर्षित किया जाय, उन्हें ईसाई बना दिया जाय और यह सभी हो सकता है जब मनुष्य अपने जीवन में ईसा के बताये धर्म का पूरा पूरा पालन करना शुरू कर दे।

❀ ❀ ❀ *

जो स्त्रियाँ पुरुषों के जैसा काम और स्वाधीनता चाहती हैं, वे यथार्थ में अज्ञानतः स्वच्छन्दता की अभिलाषिणी हैं। फलतः वे जहाँ ऊपर चढ़ने की, उन्नति करने की सोच रही हैं—उसी में उनकी अवनति है।

❀ ❀ ❀ ❀

मैं स्त्रियों और विवाह के विषय में बहुत कुछ सोचता रहता हूँ। और मैं अपने विचारों को प्रकट भी कर देना चाहता हूँ। अवश्य ही मेरे विचार इन क्षुद्र वस्तुओं के विषयों में (महिला विद्यापीठ आदि के विषय में, नहीं है। मैं तो उस महान् गौरवास्पद बात के विषय में सोच रहा था जिसे रमणी-धर्म कहते हैं। इसके विषय में कई बहुत बुरी बुरी बातें स्वयं शिक्षित स्त्रियों में फैलाई जा रही हैं। मसलन, स्त्रियों को यह समझाया जाता है कि उन्हें दूसरों के बच्चों से अपने बच्चों पर अधिक प्यार न करना चाहिए। पुरुषों के साथ उनकी समानता होने के विषय में भी कुछ भ्रम-पूर्ण और समझ में न आने योग्य बातें फैलाई जाती हैं।

पर यह बात कि उसे दूसरों की अपेक्षा अपने बच्चों

पर अधिक प्यार न करना चाहिए सभी जगह कही जाती है और एक स्वयं-सिद्ध बात समझी जाती है। व्यावहारिक नियम के अनुसार भी यह तमाम उपदेशों का सार है। पर फिर भी यह सिद्धान्त बिलकुल ग़लत है।

* प्रत्येक मनुष्य का—स्त्री का और पुरुष का—भी पेशा है मानव-जाति की सेवा। इस सार्वभौम तत्व को तो, मेरा ख्याल है, सभी नीतिमान् पुरुष मानेंगे। इस कर्तव्य की पूर्ति में स्त्री और पुरुष के बीच उसकी पूर्ति के साधनों की योजना के अनुसार महान् भेद है। पुरुष शारीरिक, मानसिक और नीतियुक्त कार्यों द्वारा यह सेवा करता है। उसके सेवा करने के मार्ग असंख्य हैं। बच्चे पैदा करने और उनको दूध पिलाने को छोड़ कर, संसार में जितने भी काम हैं पुरुष की सेवा के क्षेत्र हो सकते हैं। स्त्री उन सब कामों के अतिरिक्त भी अपनी शरीर-रचना के कारण एक खास काम के लिए नियुक्त की गई है और पुरुष के कार्य-क्षेत्र से बाहर रख दी गई है। मानव-सेवा दो प्रकार के कार्यों में विभक्त हो गई है। एक तो वर्तमान मानवों का कल्याण या सेवा करना और दूसरे

---

* यहाँ पर यह कह देना ज़रूरी है कि यह उदाहरण तथा इस प्रकार के विचार दर्शाने वाले अन्य उद्धरण भी उस "अन्तिम कथन" के पहले लिखे गये हैं जिसमें उन्होंने अपने स्त्री-पुरुष विषयक विचारों को साफ साफ तौर से प्रकट कर दिया है। प्रस्तावना में यह बात बताने का प्रयत्न किया गया है कि ग्रन्थकार के पहले और बाद के विचारों में इतनी विभिन्नता क्यों है ?

मनुष्य-जाति को कायम रखना। पहले प्रकार का कर्तव्य पुरुषों के सिर पर रक्खा गया है, क्योंकि दूसरे के लिए जिन सुविधाओं की आवश्यकता है, उनसे वह वंचित रक्खा गया है। स्त्रियों को दूसरे काम के लिए इस लिए रक्खा गया है कि केवल वे ही उसे कर सकती हैं। इस स्वाभाविक भेद को भुला देना या भुलाने की कोशिश करना पाप है। दर असल इसे कोई भुला नहीं सकता और न भुलाना चाहिए था। इसी भेद के कारण स्त्री-पुरुषों के कार्य-क्षेत्र में भी भेद हो गया है। यह भेद मनुष्य का बनाया कृत्रिम क्षेत्र नहीं, प्राकृतिक है। इसी विशेषता से स्त्री और पुरुष के गुण-दोषों की भी विभिन्नता उत्पन्न होती है जो युगों से चली आई है; आज भी है, और इसी तरह तब तक चली जायगी, जब तक मनुष्य विवेकशील प्राणी बना रहेगा।

जो पुरुष अपना समय पुरुषोचित विविध कामों को करते हुए व्यतीत करता है तथा जिस स्त्री ने बच्चे पैदा कर उनके पालन-पोषण आदि में ही आनन्द माना है, वह यही सोचेगी कि मैंने अपना समय अच्छे कामों में व्यतीत किया। वे दोनों मानवजाति के अन्दर और सम्मान के पात्र होंगे क्योंकि उन्होंने वही काम किया जो उचित है। पुरुष का पेशा विविध और विशाल है, स्त्री का काम एकरस और गहरा है। इसीलिए यह माना जाता है कि अपने एक, दस, सौ या हजार कामों में ग़लती करने वाला पुरुष उतना बुरा नहीं समझा जाता, क्योंकि उसके कार्य नाना-विध होने के कारण अन्य कितने ही कार्य ऐसे भी होते हैं जिनको वह अच्छी तरह न कर सका है या न कर सकता है। पर स्त्री

के तो केवल दो-तीन ही काम होते हैं। उनमें यदि वह गलती कर जाय तो कहा जायगा कि उसने एक तिहाई या दो तिहाई काम बिगाड़ डाला और उसकी बदनामी अधिक होगी। यही कारण है जो संसार में स्त्रियों के सदाचार पर हमेशा इतना अधिक जोर दिया है। क्योंकि यही तो सब से महत्वपूर्ण विषय है। पुरुष को अपने शरीर और बुद्धि-द्वारा ईश्वर की सेवा कर इन अनेक-विध क्षेत्रों में काम कर उसके आदेश का पालन करना चाहिए। पर स्त्री तो केवल अपने बच्चों द्वारा ही यह सेवा कर सकती है। क्योंकि उसके सिवा और कोई इस कार्य को कर ही नहीं सकता।

पुरुष को कहते हैं—'अपने काम के द्वारा ईश्वर की सेवा कर' 'कर्मणैव समभ्यर्च्य, सिद्धिं विन्दति मानवः।' स्त्री को आदेश दिया है—'तू अपने बच्चों के द्वारा ही मेरी सेवा कर सकती है।' इसलिए उसका अपने बच्चों को प्यार करना स्वाभाविक है। इसके खिलाफ दलीलें करना व्यर्थ है। माता के लिए यह विशेष प्यार सर्वथा उचित है। बच्चों पर उनकी शैशावस्था में माता का प्यार करना स्वार्थ या अहंकार नहीं, जैसा कि बताया जाता है। यह तो काम करने वाले का अपने काम के प्रति प्यार है जब तक कि वह उसके हाथों में है। मनुष्य के अन्दर से काम का प्यार निकाल डालो फिर उसके लिए काम करना ही असंभव हो जायगा।

यदि मैं एक मूर्ति बना रहा हूँ तो जब तक वह मेरे हाथों में होगी, मैं उसको खूब प्यार करूंगा, जैसा कि एक माता अपने बालक पर प्यार करती है। यह विशेष प्रेम तभी तक रहता है

जब तक कि मैं उसको बना रहा हूँ। उसके पूरा बना चुकने पर, वह प्यार उतना गहरा नहीं रहता, बल्कि कमजोर और अनुचित प्रेम मात्र रह जाता है। यही माता के विषय में भी चरितार्थ होता है।

पुरुष को अनेकों कामों द्वारा मानव-जाति की सेवा करने का आदेश दिया गया है और जब तक वह उन्हें करता है, उन्हें प्यार करता है। स्त्री को उसके बच्चों द्वारा मानव-जाति की सेवा करने का आदेश है और वह भी तब तक उनका पालन पोषण कर उनका प्यार करती रहती है, जब तक कि वे तीन पाँच या दस वर्ष के नहीं हो जाते।

इस तरह यद्यपि पुरुष और स्त्री के कार्य-क्षेत्र भिन्न भिन्न हैं, तथापि दोनों के बीच एक विलक्षण साम्य है। दोनों सम-समान हैं। यह समानता की भावना तब और भी बढ़ जाती है जब हम देखते हैं कि दोनों कार्य एक ही से महत्त्व-पूर्ण और पर-स्परावलम्बी हैं—एक दूसरे के सहायक हैं। दोनों को सम्पन्न करने के लिए सत्य का ज्ञान भी उतना ही आवश्यक है, जिसके बिना उनके कार्य लाभदायक होने के बजाय हानिकर सिद्ध होने की सम्भावना है।

पुरुष को अनेक प्रकार के कार्य करने का आदेश तो है, पर उसके तमाम शारीरिक, मानसिक तथा धार्मिक कार्य तभी सफल होंगे, जब वह अपने अनुभूत सत्य के आधार पर इनको करेगा।

यही बात स्त्री के विषय में भी चरितार्थ होती है। स्त्री का बच्चे पैदा करना, उनका पालन-पोषण करना, उनका प्यार करना आदि सब तभी सार्थक होगा जब वह उन्हें अपने आनन्द

के लिए नहीं, मानव-जाति की सेवा के लिए तैयार करती हो, जब वह अपने बच्चों को इसी श्रेष्ठ सत्य के अनुसार शिक्षित भी करती हो अर्थात् उन्हें यह सिखाती हो कि उनको मनुष्य-जाति से बहुत कम लेकर उसे बहुत ज्यादह देना चाहिए।

मैं उस स्त्री को आदर्श रमणी कहूँगा जो पहले अपने जीवन के तथा जगत् के लक्ष्य को समझ कर उसकी पूर्ति के लिए योग्य से योग्य बच्चे पैदा कर, उन्हें उस महान् कार्य के लिये तैयार करे, जिसका कि उसने स्वयं दर्शन किया है। यह जीवन का लक्ष्य विद्यापीठों और महाविद्यालयों में आँखें मूँद कर शिक्षा प्राप्त करने से नहीं, आँखें और हृदय के द्वार खोल कर उस परम सत्य की आराधना द्वारा उसका उदय मानव-हृदय में होता है।

बहुत ठीक! पर वे लोग क्या करें, जिन्होंने विवाह नहीं किया था जो विधवा हैं अथवा जिनके सन्तान ही नहीं? वे यदि पुरुष के विविध कामों में हाथ बटावें तो अच्छा होगा। प्रत्येक स्त्री जिसने अपने बच्चों से सम्बन्ध रखनेवाले काम को पूर्ण कर लिया है। अपने पति के इस काम में शौक से शरीक हो सकती है और उसकी सहायता होगी भी बड़ी क़ीमती।

* * * *

स्त्रियों की बेहद तारीफ़ करके यह कहा करना अनुचित और हानिकार है कि उनकी मानसिक शक्तियाँ उतनी ही विकसित और उन्नत होती हैं जितनी कि पुरुषों की होती हैं।

मैं मानता हूँ कि स्त्रियों के अधिकारों पर कोई नियन्त्रण न हो, उनका आदर और प्रेम पुरुषों के समान ही किया जाय और अधिकारों के विषय में भी वे पुरुषों के समान हैं। पर यह कहना कि एक साधारण औरत एक साधारण पुरुष के इतनी ही बुद्धि, मानसिक विकास और अन्य विशेषतायें रखती है, और उससे इनकी आशा करना, अपने आप को धोखा देना है और स्त्रियों के साथ अन्याय करना है। क्योंकि इन बातों की आशा करके आप उनसे वे ही बातें चाहेंगे और उनके न मिलने पर आप चिढ़ेंगे और उन पर उन बातों के लिए बुरे बुरे दोषों का आरोप करेंगे, जो उनके लिए एकदम असंभव हैं।

अतः स्त्री को आध्यात्मिक दृष्टि से कमजोर समझना—जैसी की वह है—निर्दयता नहीं है, बल्कि निर्दयता तो है उस पर आध्यात्मिक समता का आरोप करने में।

आध्यात्मिक शक्तियों के कम होने से मेरे मानी हैं आत्मा को शरीर की अधीनता में रखना। यह स्त्रियों की खास विशेषता है। स्वभावतः ही बुद्धि के आदेशों में उनकी कम श्रद्धा होती है।

* * * *

पारिवारिक जीवन तभी सुखमय हो सकता है, जब स्त्रियों को यह विश्वास दिला दिया जाय कि हमेशा पति की आज्ञा को मानने में ही उनका कल्याण है, और वे इसकी यथार्थता को समझ लें। मनुष्य-जाति के आरंभ-काल से यही चला आया है। इससे यह सिद्ध है कि यही जीवन स्वाभाविक भी है। पारि-

वारिक जीवन एक नाव के समान है, जिसका कर्णधार दो नहीं केवल एक ही आदमी एक समय हो सकता है। और यह कर्णधार केवल पुरुष ही हो सकता है, क्योंकि न तो उसको बच्चे पैदा करने पड़ते हैं और न उसके सिर पर उनके पालन-पोषण की जिम्मेदारी ही है। अतः वही परिवार का सच्चा नायक हो सकता है, स्त्री नहीं।

पर क्या स्त्रियाँ हमेशा पुरुषों से कनिष्ठ होती हैं ? आविवाहित स्त्रियाँ तो प्रत्येक बात में पुरुषों के समान होती हैं। फिर इसके क्या मानी कि स्त्रियाँ इस समय केवल समानता ही नहीं श्रेष्ठता का भी दावा करती हैं ? बात यह है कि हमारा पारिवारिक जीवन उत्क्रान्ति कर रहा है। उसमें पुरानी प्रथा का कुछ समय के लिए छिन्न-भिन्न होना अनिवार्य है। स्त्री-पुरुषों का सम्बन्ध एक नवीन रूप धारण करने जा रहा है, वह पुराना रूप छोड़ रहा है।

इसका यह नवीन रूप कैसा होगा, कोई नहीं कह सकता, यद्यपि कई लोग भिन्न भिन्न प्रकार से इसकी रूपरेखा दिखाने का प्रयत्न करते हैं। संभव है, आगे अधिक लोग ब्रह्मचर्य का पालन करने की कोशिश करें। शायद कुछ समय तक स्त्री-पुरुष साथ रहें, बच्चे पैदा होते ही फिर अलग अलग हो जायं और ब्रह्मचर्य पूर्वक रहें। शायद बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था समाज ही करने लग जाय। किसी ने इन नवीन रूपों का दर्शन नहीं किया है और न कर ही सकता है। पर इसमें शक नहीं कि नवीन रूपों का निर्माण हो रहा है और पुराना रूप तभी टिक सकेगा जब

स्त्री, पुरुष की आज्ञा में रहने लग जायगी। यही अब तक सब जगह होता आया है और जहाँ स्त्री पति की आज्ञा को मानने वाली है, वहीं सच्चा गार्हस्थसुख भी देखा जाता है।

*   *   *   *

कल मैं सीयंकिवीज Without Dogma पढ़ रहा था। स्त्री के प्रति प्यार का उसमें बड़ी अच्छी तरह वर्णन किया गया है। फरासीसी वैषयिकता, अंगरेजी मक्कारी और जर्मन दम्भ की अपेक्षा वह कहीं अधिक ऊँचा, कोमल और मृदुल है। मैंने सोचा पवित्र प्रेम पर एक बढ़िया उपन्यास लिखा जाय तो बड़ा अच्छा हो। उसमें प्रेम को वैषयिकता की पहुँच से ऊँचा बताया जाय। क्या विषय-वासना से ऊपर उठने का यह एकमात्र रास्ता नहीं है? हाँ, बिलकुल ठीक, यही है। बस, इसीलिए स्त्री और पुरुष बनाये गये हैं। केवल स्त्री के सहवास से वह अपना ब्रह्मचर्य खो सकता है और उसी की सहायता से उसकी रक्षा भी कर सकता है। जरूर इस पर एक उपन्यास लिखना चाहिए।

*   *   *   *

मनुष्य एक प्राणी है, इसलिए वह जीवन-कलह के कानून तथा सन्तानोत्पत्ति की जन्मजात बुद्धि के अधीन हो जाता है। पर एक विवेकशील प्रेमधर्मी और दिव्य प्राणी की हैसियत से उसका कर्तव्य भिन्न है। वह उसे जीवन-कलह में अपने प्रतिस्पर्धी से झगड़ने का नहीं, उससे नम्रता, शान्ति और प्रेमपूर्वक

पेश आने का आदेश देता है। वह उसे विकाराधीन होने का नहीं, विकार पर अपना प्रभुत्व कायम करने का आदेश करता है।

❀ ❀ ❀ ❀

मानव-जाति के सर्वश्रेष्ठ कर्तव्यों में ब्रह्मचारिणी तथा पतिव्रता स्त्रियों को तैयार करना भी एक है।

❀ ❀ ❀ ❀

एक कहानी में कहा गया है कि स्त्री शैतान का शस्त्र है—सुकुमार प्रहरण। स्वभावतः उसके बुद्धि नहीं होती। पर जब वह शैतान के हाथों में पड़ जाती है, तब वह उसे अपनी बुद्धि दे देता है और अब तमाशा देखिए। वह अपने नीचता भरे कार्यों के सम्पादन में बुद्धि, दूरंदेशी, और दीर्घोद्योग में कमाल कर जाती है। पर यदि कोई अच्छी बात करना है तो सीधी से सीधी बात उसके ध्यान में नहीं आती। अपनी वर्तमान परिस्थिति से आगे वह देख ही नहीं सकती। बच्चे पैदा करने और उनका पालन-पोषण करने के कार्य को छोड़ उनमें न शान्ति है, न दीर्घोद्योग।

पर यह सब उन कुलटा स्त्रियों के विषय में कहा गया है। ओह! स्त्रियों को रमणी-धर्म का पावित्र्य और गौरव समझने को दिल कितना चाहता है। 'मेरी' की कहानी निराधार नहीं। सती स्त्री संसार का अवलम्ब है।

❀ ❀ ❀ ❀

रमणी-धर्म सब से ऊँचा सर्वश्रेष्ठ मानव-धर्म है, जिसके

विषय में मैं ऊपर कह गया हूँ। गृहस्थ, जीवन और ब्रह्मचारी जीवन की तुलना करना—नागरिक जीवन और ग्राम-जीवन की तुलना करने के समान है।

ब्रह्मचर्य और गृहस्थ-जीवन साधारणतया मनुष्य के चित्त पर कोई असर नहीं डाल सकते? ब्रह्मचर्य और गृहस्थ-जीवन दोनों के दो दो प्रकार हैं, एक साधूचित और दूसरा पापमय।

एक लड़की से, प्रत्येक लड़की से और खास कर तुम से जिसके अन्दर आध्यात्मिक शक्ति ने काम करना शुरू कर दिया है, यह सिफ़ारिश करूँगा और सलाह दूँगा कि वह समाज की उन सब बातों की ओर ध्यान न दे, जिनके देखने-मात्र से विवाह की आवश्यकता की कल्पना या औचित्य दिखाई देता हो। यथार्थ में विवाह से सम्बन्ध रखने वाली तमाम बातों को टालती रहे। उपन्यास, संगीत, फ़जूल गपशप, नाच, खेल, ताश, और चटकीले कपड़ों से भी दूर ही रहे। सचमुच, घर पर रह कर अपना कपड़ा सीना या कोई दूसरा उपयोगी काम करना, बाहर इधर-उधर अधिक से अधिक खुश-मिजाज लोगों के साथ घंटों बिताने की अपेक्षा अधिक आनन्ददायक है। फिर वह आत्मा के लिए कितना फायदेमन्द होगा?

पर समाज की यह कल्पना कि एक लड़की के लिए अविवाहित रहना, चरखा चलाते रहना, बहुत बुरा है—सत्य से उतनी ही दूर है जितनी कि अन्य कई महत्व-पूर्ण विषयों से सम्बन्ध रखनेवाली समाज की धारणायें हैं। ब्रह्मचारी रह कर मनुष्य,

कपड़े, संगीत आदि की खोज में दौड़ते फिरेंगे। (एक यह भी कानून है कि आनन्द तो अङ्कगणित के नियम के अनुसार बढ़ता है, पर विषय-तृप्ति के साधनों को बढ़ाना पड़ता है।

और तमाम विषयों में, काम सब से अधिक प्रबल है, जो स्त्री या पुरुष के प्रति प्रेम के रूप में प्रकट होता है। काम-चेष्टायें, हस्त-मैथुन, स्त्री-संभोग आदि तक मनुष्य की पहुँच बात की बात में हो जाती है। जब मनुष्य आखिरी सीमा तक पहुँच जाता है तब उसी आनन्द को बढ़ाने के लिए वह कृत्रिम उपायों को खोजता है। तम्बाकू, शराब, अश्लील संगीत आदि का आश्रय लिया जाता है।

यह एक इतनी मामूली बात है कि प्रत्येक ग़रीब या श्रीमान् युवक इसका अवलम्बन करता है। यदि वह सँभल गया तब तो पवित्र जीवन व्यतीत करने लग जाता है। अन्यथा वह दीन-दुनिया से जाता है, जैसा कि मैंने कई युवकों को बरबाद होते अपनी आँखों देखा है।

अपनी परिस्थिति से छुटकारा पाने के लिए केवल एक उपाय तुम्हारे लिए है। ठहर कर विचार करो, अपने आस पास गौर से देखो और एक आदर्श ढूँढ़ो (अर्थात् अपने जीवन का लक्ष्य निश्चित कर लो) और उसकी प्राप्ति के प्रयत्न में प्राण-पण से जुट पड़ो।

❀ ❀ ❀ ❀

मैंने यह हमेशा सोचा है कि मनुष्य का नीति के विषय में गम्भीर होने का सब से बढ़िया प्रमाण, उसका अपनी वैषयिकता पर कठोर नियन्त्रण करना ही है।

एन्० जिस जाल में फँस गया; वह एक प्रामाणिक और सत्य शील स्वभाव के मनुष्य के लिए जैसा कि मैं उसे समझता हूँ, बिलकुल स्वाभाविक है। कुछ सम्बन्ध कायम हो गया था। उसने कुछ छिपाना नहीं चाहा; बल्कि साफ़ साफ़ क़बूल कर उसको आध्यात्मिक रूप दे देना चाहा।

प्रेम से उत्पन्न होने वाली मानसिक अस्वस्थता को परमात्मा की सेवा में लगा देने वाली उसकी कल्पना को मैं पूर्ण रीति से समझ सकता हूँ। यह असंभव नहीं। जो लोग अपने आप को इस परिस्थिति में पाते हैं, वे अपनी शक्ति को इस धारा में बहा कर उसको असीम बढ़ा सकते हैं और महत्वपूर्ण परिणाम दिखा सकते हैं। मैंने यह कई बार देखा है। बल्कि मैं ऐसे कई उदाहरण भी जानता हूँ। पर इसमें एक ख़तरा है। कई बार व्यक्तिगत भाव के अदृश्य होते ही तमाम शक्ति भी न जाने कहाँ ग़ायब हो जाती है और परमात्मा के कामों में वे फिर किसी प्रकार की दिलचस्पी नहीं ले पाते। इसके भी कई उदाहरण मैंने देखे हैं। इसके मानी यह हैं कि परमात्मा की सेवा निष्काम होनी चाहिए। किन्हीं बाहरी बातों पर वह अवलम्बित न होनी चाहिए। बल्कि इसके विपरीत सभी बाहरी बातों का आधार यह होनी चाहिए। उसकी आवश्यकता और उससे उत्पन्न होने वाले आनन्द पर निर्भर रहनी चाहिए। इसी तरह मानव-जीवन के गौरव की तारीफ़ करके भी मनुष्य परमात्मा की सेवा में लगाया जा सकता है; पर मनुष्य के अन्दर किसी व्यक्ति का विश्वास कम हुआ नहीं और उसकी ईश्वर-सेवा का भी अन्त हुआ नहीं।

यह सब तुम जानते हो। तुमने यही कई बार लिखा है। मैं तो एन्० के साथ अपने सहमत होने के विषय में केवल एक बात और लिख देना चाहता हूँ। वह यही है कि स्त्री और पुरुष का वह मेल अच्छा है जिसका उद्देश परमात्मा की और मनुष्य-जाति की सेवा है। वैवाहिक या शारीरिक सम्मलिन उनकी इस सेवा-क्षमता को बढ़ा देता हो, सो बात नहीं। हाँ, कुछ लोगों की अशान्ति को, जिनका विकार बड़ा प्रबल होता है, यह जरूर मिटा देता है, जो परमात्मा की सेवा में अपनी तमाम-शक्तियों को लगाने के मार्ग में बड़ी बाधक साबित होती है। इसके कारण उन्हें जो शान्ति मिलती है उससे वे अपने चित्त को अधिक एकाग्र कर सकते हैं। इसलिए जहाँ ब्रह्मचर्य मानव जाति के लिए श्रेष्ठ आदर्श जीवन है, वहाँ कमजोर तबियत के लोगों के लिए विवाहित जीवन भी उनके विकार को शान्त कर उन्हें अधिक सेवाक्षम बनाने में सहायक होता है। पर इसमें एक बात को कभी न भूलना चाहिए और यही मैं एन्० से कहे देना चाहता हूँ। स्त्री-पुरुषों को यह अपने हृदय में अंकित कर लेना चाहिए कि यह मिलनकी इच्छा उनमें इस लिए नहीं पैदा होती है कि वे इससे अपना दिल बहलावें, सुखोपभोग करें, कला—रसिकतापूर्वक सौंदर्योपासना करें और सौंदर्य का आनन्द लूटें और परमात्मा की सेवा करने के लिये शक्ति बढ़ावें, जैसा कि एन्० सोचता है। बल्कि यह प्रेम, यह मिलनेच्छा तो तुम्हें इस लिये दी गई है कि तुम केवल एक ही स्त्री या एक ही पुरुष से प्रेम कर सन्तानोत्पत्ति करो और उस विकार से मुक्त होने की दिल से कोशिश करो। इस शक्ति को या

मिलनेच्छा को यदि दूसरे तीसरे मार्ग में लगाया जायगा तो उससे सेवा तो कुछ न हो सकेगी, अलबत्ता मनुष्य अपनी दुर्दशा को बेहद बढ़ा लेगा।

इसीलिये मैं इस बात में तुमसे पूरी तरह सहमत हूँ कि यह एक ऐसी हिस्सेदारी है या साझा है, जिसमें मनुष्य जितना ही अधिक सावधान रहे, उतना ही उसका कल्याण होगा। हाँ, कोई पूछ सकता है कि हम अपनी जाति के व्यक्तियों के साथ जिस मित्रता-पूर्वक रहते हैं, वैसे स्त्री, पुरुषों के साथ या पुरुष स्त्री-जाति की व्यक्तियों के साथ मित्रतापूर्वक क्यों नहीं रह सकते ? क्या यह बुरा है ? ठीक है, यदि हम अपने हृदय को कलङ्कित न होने दें तो हम जरूर ऐसा कर सकते हैं। हम निर्विकार चित्त से उनको जितना ही प्यार करें, अच्छा है। पर एक सच्चा और विवेकशील प्राणी फ़ौरन् कहेगा जैसा कि एन्० ने कहा है कि ऐसे सम्बन्ध बड़े नाज़ुक होते हैं। यदि आदमी अपने को धोखा न दे तो वह ध्यान से देख सकता है कि बनिस्बत पुरुषों के सान्निध्य के उसे स्त्रियों के सान्निध्य में एक विशेष आनन्द आता है। वे आपस में जल्दी जल्दी मिलने की उत्कण्ठा रखने लगते हैं। बाइसिकल आसानी से और अनायास दौड़ने लग जाती है और इसके लिये अवश्य ही कोई कारण होना जरूरी है। ज्यों ही एक सावधान प्रामाणिक पुरुष यह देखता है—यह जानकर कि अब हमारी गति और भी तेज हो जायगी और हमें विवाह-मंडप में ले जाकर खड़ी कर देगी, वह फ़ौरन् अपनी गति को रोक लेता है और अपने को घोर पतन से बचा लेता है।

सन्तति-विरोध विषयक किताब को मैंने पढ़ा। *

अब इस पर क्या लिखूँ और क्या कहूँ। यदि कोई आकर यह दलील करे कि सब के साथ मैथुन करने में बड़ा आनन्द आता है और वह ज़रा भी हानिकर नहीं, तो उसके समझाने के लिए जो दलीलें पेश करनी पड़ें, वही इसके विषय में भी दी जा सकती हैं। पर ऐसे आदमी को समझा कर उसे अपनी ग़लती दिखा देना असम्भव है जो यही अनुभव नहीं करता कि विषयोपभोग अपने और अपने साथी के लिए पातक है, अतः एक घृणित कार्य है, जो मनुष्य को पशु-जीवन में ले जाकर खड़ा कर देता है। अरे, हाथी जैसा पशु भी इससे घृणा करता है। † यह तो एक ऐसा पातक है कि इसका प्रक्षालन तो तभी हो सकता है, जब यह सन्तानोत्पत्ति के लिए ही किया जा रहा हो जिसके लिए मनुष्य के अन्दर इसको प्रकृति ने रख दिया है। ऐसे बीभत्स पातक के विषय में जो दलीलें पेश करने बैठे, उसे समझाना असंभव नहीं तो क्या है ?

---

* यह पत्र तारीख ११ जुलाई १९०१ का है। संतति—निरोध के कृत्रिम साधनों पर लिखी गई एक पुस्तक श्री व्ही चेरकाफ द्वारा उनके पास भेजी गई थी। उसी पर टाल्स्टाय ने अपने विचार प्रकट किये हैं।

† प्राणि-शास्त्र के ज्ञाताओं का कथन है कि हाथियों का संयम प्रख्यात है। जब ये कैद हो जाते हैं, तब तो उनसे दूसरे बच्चे प्राप्त करना बड़ा कठिन होता है। क्योंकि उनको यह ख्याल रहता है कि उनपर किसी की नज़र है।

माल्थूजियन् सिद्धान्त धोखादेह है। नीति-शास्त्र को, जो कि सर्व प्रधान है, वह गौण बताता है। इसलिए उस पर विचार करना ही मैं व्यर्थ समझता हूँ। मैं यह भी कहने और समझाने के झंझट में पड़ना नहीं चाहता कि इन कृत्रिम साधनों से सन्तति-निरोध करने के कार्य में और खून, कृत्रिम गर्भपात आदि पातकों में, किसी किस्म का फर्क नहीं है।

क्षमा करो, इस विषय में गम्भीरता-पूर्वक कुछ कहते हुए लज्जा और घृणा होती है। बल्कि इसकी बुराई को सिद्ध करने की अनावश्यक बात को छोड़कर मनुष्य को तो केवल यह ख़याल करना चाहिये कि यह हमारे समाज में कहाँ तक बढ़ गई है। इसने मनुष्य की नीतिशीलता को किसी हद तक मूर्च्छित कर दिया है। अब इस पर वाद-विवाद करने का समय नहीं रहा। हमें तो फ़ौरन इस बुराई को दूर करने में जुट पड़ना चाहिए। अरे, एक मामूली अपढ़, शराबख़ोर रूसी किसान को भी, जो अनेकों भयंकर मान्यताओं का शिकार है, इस बेवक़ूफ़ी के सुनते ही घिन आ जायगी। यह तो हमेशा विषयोपभोग को एक पाप ही समझता आ रहा है। इन सुधरे हुए लोगों से, जो इतनी अच्छी तरह लिख सकते हैं, और जिन्हें अपने जंगलीपन का समर्थन करने के लिए बड़े बड़े सिद्धान्तों को नीचे खींचने में तनिक भी लज्जा नहीं आती, वह मामूली अपढ़ किसान कई गुना ऊँचा है।

* * * * *

मनुष्य-जाति के अंदर नीति-शास्त्र के ख़िलाफ़ ऐसा कोई अपराध नहीं, जिसे मनुष्य एक दूसरे से इतना गुप्त रखने की

कोशिश करते हों, जितना कि विषय-लालसा से सम्बन्ध रखने वाले अपराध हैं। न कोई ऐसा गुनाह इतना सर्व साधारण और भयंकर तथा विविध रूपों को धारण करने वाला ही है। इसके विषय में जनता में जितने भिन्न भिन्न मत हैं, उतने किसी दूसरे अपराध के विषय में नहीं हैं। एक बात को जहाँ एक प्रकार के लोग अत्यंत बुरी और घृणायुक्त समझते हैं तहाँ दूसरे प्रकार के लोग उसीको सुख की एक मामूली सुविधा समझते हैं। दुनिया में ऐसा एक भी अपराध नहीं जिसके विषय में इतनी मक्कारी प्रकट की जा रही हो। यह एक ही गुनाह है जिससे सम्बन्ध होते ही फ़ौरन् मनुष्य की नीतिमत्ता का पता लग जाता है। व्यक्ति और समाज को विनाश के द्वार पर ले जाकर खड़ा करने वाला, कोई अपराध इसके समान ही नहीं।

* * * * *

ये विचार उस मनुष्य के लिए बड़े सरल और स्पष्ट हैं जो सत्य को ढूंढ़ने की ग़रज से विचार करता है। पर जो अपने ग़लतियों और दुर्गुण-भरे जीवन को अच्छा साबित करने की ग़रज से दलीलें करता है, उसे तो ये विचार विचित्र, रहस्यमय और अन्यायपूर्ण भी दिखाई देंगे।

* * * * *

इस काम का कभी अंत नहीं मिल सकता। अब भी मैं इस विषय पर एक सा विचार करता रहता हूँ। अब भी मैं बराबर महसूस कर रहा हूँ कि अभी इस विषय में बहुत-कुछ सोचने-

समझाने की आवश्यकता है। प्रत्येक आदमी इसकी आवश्यकता को जान सकता है। क्योंकि विषय अत्यंत व्यापक और गम्भीर है और मनुष्य की शक्ति बिलकुल मर्यादित और थोड़ी है।

इसलिए मेरा खयाल है कि वे सब लोग, जिन्हें इस विषय में दिलचस्पी हो खूब काम करें। अपनी अपनी शक्ति के अनुसार इसका खूब अनुशीलन-परिशीलन करके सबको अपने विचार प्रकट करने चाहिए। यद्यपि प्रत्येक आदमी अपने अपने विचार साफ़ साफ़ तौर से प्रकट कर दे तो बहुत सी बातें यों ही साफ़ हो जायँ। जिन बातों को हम बुरी प्रथा के कारण अब तक छिपाते रहे हैं वे प्रकट हो जायँगी। अब तक अंधेरे में रहने के कारण जो बातें विचित्र सी मालूम दे रही हैं, प्रकाश में आते ही, उनकी विचित्रता जाती रहेगी। पुरानी प्रथा के कारण जो बुरी बातें अब तक मामूली रिवाज बनगई थीं; उनकी बुराई प्रकट होनेपर हम उन्हें छोड़ने लगेंगे। कई सुविधाओं के कारण मैं इस महत्वपूर्ण विषय की ओर समाज का ध्यान अधिक आकर्षित कर सका हूँ। अब तो यह आवश्यकता है कि अन्य लोग भी सब तरफ़ से इस काम को जारी रक्खें।

कुछ और अवतरण

(सन् १९०० से १९०८ तक के पत्रों तथा दिनचर्या आदि से)

प्रेम दो प्रकार का है—शारीरिक और आध्यात्मिक। काल्पनिक सुख या सहानुभूति से वैषयिक या शारीरिक प्रेम पैदा होता है। इसके विपरीत आध्यात्मिक प्रेम अधिकांश में अपने दुर्भावों के साथ युद्ध करते हुए पैदा होता है। वह इस भावना से पैदा होता है कि मुझे किसी के साथ द्वेष नहीं, प्रेम करना चाहिए। यह प्रेम अक्सर शत्रुओं की तरफ़ दौड़ता है। यही सब से कीमती और सर्वश्रेष्ठ है।

* * * * *

आध्यात्मिक प्रेम के क्षेत्र से तुच्छ वैषयिक क्षेत्र में उतर आना सबके लिए साधारण है। पर युवा स्त्री-पुरुषों के जीवन में यह स्थित्यंतर अधिक संख्या में पाया जाता है। मनुष्य प्राणी की हैसियत से, उसके लिये कौन सा प्रेम स्वाभाविक है, यह प्रत्येक मनुष्य को जान लेना आवश्यक है।

* * * * *

अलबत्ता वंश को क़ायम रखने के लिए विवाह एक अच्छी

और आवश्यक वस्तु है। पर इसके लिए माता-पिताओं में यह शक्ति और प्रबल इच्छा होनी चाहिए कि वे अपने बच्चों को केवल मोटे-ताजे ही नहीं बनावें, बल्कि उन्हें ईश्वर और मनुष्य की सेवा करने योग्य बनावें। पर ऐसा करने के लिए मनुष्य को दूसरे के परिश्रम पर नहीं, अपने परिश्रम पर जीना चाहिए। समाज से हम जितना लें, उससे अधिक उसे दें। हम लोगों में तो यह कल्पना रूढ़ है कि जब हम अपने पेट भरने के साधनों को अपने अधीन कर लें, तब विवाह करें। पर होना चाहिए ठीक इसके विपरीत। केवल वही शादी करे जो बिना किसी साधन के जी सके और बच्चों का पालन-पोषण कर सके। केवल ऐसे पिता ही अपने बच्चों का अच्छी तरह पालन कर सकते और शिक्षित बना सकते हैं।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

तुम पूछते हो कि प्रत्येक स्त्री को केवल एक ही पति करना चाहिए और प्रत्येक पुरुष को केवल एक स्त्री, यह नियम किस सिद्धान्त के आधार पर बनाया गया है और इस नतीजे पर पहुँचते हो कि इसके टूटने से किसी बुराई की संभावना नहीं है।

यदि उपर्युक्त नियम को एक धार्मिक नियम समझा जाय तो तुम्हारी शंका बिलकुल ठीक है। क्योंकि धार्मिक नियम स्वतंत्र और सर्वोपरि होता है। पर यह नियम स्वतंत्र मूलभूत धार्मिक नियम नहीं है, हाँ, एक ऐसे नियम के आधार पर जरूर बनाया गया है। अपने पड़ोसी को प्यार करो। उसके साथ ठीक वैसा

ही सलूक करो जैसा कि तुम चाहते हो कि वह तुमसे करे। इसी प्रकार निकम्मे न रहो, चोरी न करो आदि नियम भी मूलभूत धार्मिक नियमों से बनाये गये हैं। इससे पुराने ऋषि लोग जाहिर करते हैं कि एक ही मूलभूत नियम से किस प्रकार मनुष्य के कल्याण के लिए कई नियम बनाये जा सकते हैं। सांसारिक सम्बन्धों से चोरी न करने का नियम, जीविका प्राप्त करने के कार्य से निकम्मा न रहने का, अर्थात् दूसरे के परिश्रम पर अपनी आजीविका न चलाने का, मनुष्यों के पारस्परिक सम्बन्ध से अपराधी या आततायी से बदला न लेने का, बल्कि शान्तिपूर्वक सहन करने और क्षमा करने का, और स्त्री-पुरुषों के सम्बन्ध से प्रत्येक को एक ही पुरुष या स्त्री से सम्बन्ध रखने का नियम बनाया गया।

धर्म-शास्त्रकार कहते हैं कि यदि इन नियमों का पालन मनुष्य करेगा तो उसका कल्याण होगा। संसार में जैसा बरतने का रिवाज पड़ गया है, उसकी बनिस्बत इन नियमों के पालन से उससे अधिक फ़ायदा होगा। यदि कहीं इन नियमों के भंग या अवज्ञा से कोई बुराई न भी पैदा हुई हो तो भी उनका पालन करना ही अच्छा है। क्योंकि अब तक के अनुभव से यही सिद्ध हुआ है कि इनका भंग करने से मनुष्य-जाति पर हजारों आपत्तियाँ आई हैं, दूसरे इस पातिव्रत या एक पत्नीव्रत के पालन से मनुष्य ब्रह्मचर्य के आदर्श के अधिक नजदीक पहुँचता है।

तुम्हें एक युवक समझकर मैं चाहता हूँ कि तुम उस आदर्श

को और प्रत्येक सच्ची, अच्छी वस्तु के निकट तक पहुँच जाओ। यह केवल अन्तःशुद्धि से ही हो सकता है।

* * * * *

यदि पुरुष का किसी स्त्री से सम्बन्ध हो जाय तो उसे वह कदापि छोड़े नहीं—खास कर जब उसके बच्चा हो या होने की सम्भावना हो तब तो कदापि न छोड़े।

* * * * *

पति-पत्नी के एक होने के विषय में धर्म-ग्रन्थ में जो लिखा है, वह बहुत महत्वपूर्ण है। विवाह-ग्रन्थी द्वारा जो जोड़ दिये गये हैं वे कदापि बिछुड़ नहीं सकते। उन्हें कभी एक दूसरे को न छोड़ना चाहिए, न कोई ऐसा काम करना चाहिए जिससे परिवार में दुर्भाव उत्पन्न हो जाय। तुम यह तभी कर सकते हो जब परमात्मा और अपनी अन्तरात्मा के नजदीक तुम्हारे लिए और कुछ करना असम्भव हो।

* * * ❀ ❀

मेरा खयाल है कि पति का अपनी स्त्री को छोड़ना और खासकर तब, जब उसके बच्चा हो, बहुत बुरा है। इसका परिणाम बहुत भयंकर होता है, उस बेचारी के लिए नहीं, बल्कि अपनी पत्नी को छोड़नेवाले उस पुरुष के लिए भी। मेरा खयाल है कि अन्य लोगों की भाँति तुमने भी यह समझ की ग़लती की है कि विवाहित जीवन का उद्देश सुखोपभोग है। नहीं, यह विचार बिलकुल ग़लत है। विवाहित जीवन में तो सुख मढ़ते नहीं,

घटते हैं। क्योंकि इस नवीन जिम्मेदारी के साथ साथ कई कठिन कर्तव्य मनुष्य पर आ पड़ते हैं। विवाहित जीवन का उद्देश, जिसकी ओर लोग इतने जोरों से आकर्षित होते हैं, सुखों का बढ़ना नहीं, बल्कि मनुष्य-जीवन के कर्तव्यों की पूर्ति—अर्थात संतानोत्पत्ति है।

* ❀ ❀ ❀ *

तुम्हारे पुत्र के विषय में मैं यह निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि वे सब विवाह अच्छे हैं और सम्मान योग्य हैं जिनमें पति-पत्नी यह प्रतिज्ञा करते हैं कि वे एक दूसरे के प्रति प्रामाणिक रहेंगे। फिर यदि वे मंत्रपूत भी न हों तो कोई परवाह नहीं।

* * * ❀ *

मेरा ख्याल है कि तुम उस सर्व-साधारण और अत्यंत हानिकर धारणा के शिकार हो रहे हो कि प्रेम-बद्ध होने के मानों सचमुच प्रेम करना है और तुम उसे एक अच्छी चीज भी जान रहे हो। पर बात ऐसी नहीं है। वह एक खराब और बड़ा हानिकर विकार है। उसका परिणाम बड़ा दुःखदायी होता है। एक धार्मिक या नैतिक कानून का ज्ञान होने के पहले भले ही आदमी उसमें डूब सकता है; पर प्रेम धर्म का ज्ञान होते ही इस तरह के वैषयिक प्रेम के चक्कर में आदमी कभी पड़ ही नहीं सकता। वही प्रेम सच्चा है जो आत्मविस्मरणशील और निस्वार्थ है। तुम अपनी पत्नी में इस प्रेम को देख सकते हो। वह तुम्हें सच्चा आनंद देगा। दूसरे व्यक्ति के प्रति यह आकर्षण तुम्हें सिवाय दुःख के कुछ

दे ही नहीं सकता, चाहे तुम उसमें कितने ही डूब जाओ, बल्कि उलटा तुम्हारे नीतिशील जीवन को वह नीचे गिरा देगा।

* * * * ✿

तुम सोचते हो कि तुम्हारा प्रधान उद्देश उसको बचाना है। पर इसमें तुम अपने आपको धोखा दे रहे हो। यदि तुम्हारी प्रधान इच्छा यही होती, उस (स्त्री) की नहीं, कि एक मनुष्य-प्राणी की सेवा की जाय तो इसे पूर्ण करने के लिए तुम्हें बहुत अवकाश था। नहीं, तुम्हारी प्रधान इच्छा सेवा नहीं, विषय-क्षुधा की शान्ति है, और वह बहुत बढ़ गई है। इसलिए यदि तुम मेरी सलाह चाहो तो मैं तुम्हें यही कहूँगा कि तुम उसके साथ कोई सम्बन्ध न रक्खो। बल्कि अपने अंतःकरण में किसी एक व्यक्ति के लिए नहीं, समस्त मनुष्य-जाति के लिए प्रेम उत्पन्न करने में अपनी पूरी शक्ति लगा दो। यही प्रत्येक मनुष्य का जीवन-कार्य है।

* * ✿ * *

वैषयिकता मनुष्य-जाति के कष्टों के प्रधान कारणों में से एक है। विषय-वासना अकल्याण की जड़ है। इसीलिए अनादि काल से मनुष्य-जाति इससे सम्बन्ध रखने वाली तमाम बातों के विषय में ऐसे नियम बनाती आई है जिससे कष्टों का परिमाण कम से कम होता जाय। इन नियमों को भंग करने वाले अनेक कष्टों को भोगते हैं। केवल वासना के अधीन अपने को कर देना विवेक से हाथ धोना है। यह एक अत्यंत महत्वपूर्ण, कठिन और बन्धनों से

भरा हुआ सवाल है। ऐसी अवस्था में यदि आदमी विवेक से काम न ले तो अवश्य ही उसमें और पशु में कोई अंतर नहीं रह जायगा। लोग कहते हैं, प्रेम एक बड़ा ही उच्च और नीतियुक्त भाव है। ठीक है। पर यहाँ तो प्रत्येक आदमी अपनी वासना को प्रेम समझकर उसे उच्च और दिव्य कहने लग जाता है। अच्छा होता यदि इसकी परीक्षा करने का कोई साधन होता, जिससे विकार और प्रेम-धर्म को मनुष्य स्पष्ट रूप से समझ सकता। पर ऐसा कोई साधन अभी मनुष्य जाति को नहीं मिला जिससे वह आसानी से इसका निर्णय कर सके। इसलिए यदि तुम केवल भावना को ही अपना पथ-दर्शक बनाओगे तो वही नतीजा होगा जो भूल से चोर के हाथों में खज़ाने की चाबी सौंपने से होता है। विकार तुम्हें पशु बना देगा और दुःखों के महासागर में ले जाकर डुबो देगा।

❀ * * ❀

मैथुन से अधिक घृणित कार्य और क्या हो सकता है? यदि मनुष्य के दिल में इसके प्रति घृणा उत्पन्न करना हो तो आदमी इस कुकार्य का सविस्तार हूबहू वर्णन कर दे। इसलिए जो राष्ट्र पशु-जीवन से ऊँचे उठ गये हैं, सभी को मैथुन और उसकी इन्द्रियों के नाम मात्र से लज्जा आती है। यदि तुम अपने आपसे इसका कारण पूछो तो मालूम हो जायगा। वह सरल है। चूँकि मनुष्य एक विवेकशील और आध्यात्मिक प्राणी है, इसलिए उसे चाहिए कि वह इस पाशविक विकार को रोके।

लाचार होकर वह तभी इसके वश में होकर जब वह इससे झगड़ न सके। यह पाशविक विकार मनुष्य के अन्दर इसलिए रख दिया गया है कि मनुष्य, जहाँ तक आवश्यक हो, अपनी जाति को क़ायम रक्खे। मानव-स्वभाव का वह कितना घोर पतन है जब मनुष्य इस पाशविक विकार को सिंहासन पर अभिषिक्त कर इसकी सहायक इन्द्रियों की तारीफ़ों के पुल बाँधता है। पर आज-कल के चित्रकार, संगीत-शास्त्री और शिल्पकार सभी ललित-कलाविद् सब यही करते हैं।

सभी बाह्य इन्द्रियों को लुभाने वाली चीज़ों से विकार प्रबल होता है। घर की सजावट, चटकीले कपड़े, संगीत, सुगंध, स्वादिष्ट भोजन, सुन्दर मृदुल स्पर्श वाली चीज़ें—सभी विकारोत्तेजक होती हैं। भव्यता, प्रकाश, सूर्य का वैभव, वृक्ष, हरी घास, आकाश, निराभरण मनुष्य-शरीर, पक्षियों का गान, पुष्पों की सुगंध, सादा भोजन, फल और प्राकृतिक वस्तुओं के स्पर्श—विकार को उत्तेजित नहीं करते।

❀ ❀ ❀ ❀

मनुष्य को बुद्धि और भाषा इसलिए नहीं दी गई है कि वह अपने पाशविक विकारों के समर्थन के लिए नवीन युक्तियों को ढूँढ कर धोखा देने वाली भाषा में पेश करे। बुद्धि और भाषा उसे इसलिए दी गई है कि वह शैतान की लुभावनी दलीलों को तोड़ने के लिए माक़ूल दलीलें ढूँढे और निर्भ्रान्त भाषा द्वारा उनके धुर्रे उड़ा दे, विवेक-बुद्धि के आदेशों को समझे और

उनका पालन करे। विवेक बुद्धि ने मनुष्य को पहले ही से सूचित कर रक्खा है कि मनुष्य को अपनी वैषयिकता पर खूब नियन्त्रण रखना चाहिए, अन्यथा उस पर महान् आपत्तियाँ पड़े बिना न रहेंगी। इस विषय में सरल से सरल और साफ से साफ कर्तव्य यही है कि स्त्री और पुरुष जो एक बार पारस्परिक विषय-बन्धन से सम्मिलित हो गये हों, अपने को हमेशा के लिए एक अपर पाश में बँधा हुआ समझें और एक दूसरे के प्रति सच्चे रहें। बस, इसीका नाम विवाह है। असंयम से उत्पन्न होने वाली महान् आपत्तियों से बचने के लिए तथा शिशु-संवर्धन के काम को सरल करने के लिए इस संस्कार की स्थापना की गई है।

* * * *

शारीरिक प्रलोभनों से झगड़ना ही मानव-जीवन के कर्तव्यों की विशेषता है। जीवन का आनंद इस युद्ध ही में है। हर हालत में मनुष्य यह प्रयत्न कर सकता है और उसे विजय मिल सकती है। वहीं विजय प्राप्त नहीं कर सकता जो इस नियम में विश्वास नहीं करता। पर विना प्रयत्न के विश्वास उत्पन्न भी नहीं हो सकता। अतः सब से पहला पाठ है अनुभव। प्रयत्न करो, हृदय से प्रयत्न करो और इस कथन की सत्यता को जाँच लो।

* * * *

जो पतन से बचा हुआ है, उसे चाहिए कि इसी तरह बचे रहने के लिए वह अपनी तमाम शक्तियों का उपयोग करे। क्योंकि गिर जाने पर फिर उठना सैकड़ों नहीं, हजारों गुना कठिन हो

जायगा। संयम का पालन करना विवाहित और अविवाहित दोनों के लिए श्रेयस्कर है। तुम इसकी आवश्यकता में भी सन्देह करते हो। पर मैं इसका कारण समझ सकता हूँ। तुम ऐसे लोगों से घिरे हुए हो जो इस बात का बड़े जोरों से समर्थन करते हैं कि संयम अनावश्यक ही नहीं, बल्कि हानिकर भी है।

तब पहले मनुष्य का यह कर्तव्य है कि वह संयम की आवश्यकता को समझ ले। वह समझ ले कि विवेकशील मनुष्य के लिए विकारों से झगड़ना अप्राकृतिक नहीं, बल्कि उसके जीवन का पहला नियम है। मनुष्य केवल पशु नहीं, एक विवेकशील प्राणी है। पशु ज्यादह खाते हैं; पर उनका वह खाना अन्य प्राणियों के साथ झगड़ने में काम आ जाता है। क्योंकि एक जाति का प्राणी कई बार दूसरे का शिकार होता है। कई अन्य बाहरी बातें भी हैं जिन्हें बदलना उनकी शक्ति के बाहर है। पर मनुष्य बुद्धिमान् प्राणी है। वह सब से पहले अन्य मनुष्यों तथा प्राणियों के साथ जीवन-कलह के स्थान पर विवेकशील व्यवहार को प्रतिष्ठित कर सकता है। दूसरे, वह उन बातों का प्रतिकार कर सकता है जो उसके आध्यात्मिक जीवन के लिए हानिकर हों। यह सत्य है कि मनुष्य अभी अपने विवेक से काम नहीं ले रहा है और अपने ही जैसे प्राणियों के नाश पर तुला हुआ है। हजारों आदमी और बालक जाड़े, रोग और असीम परिश्रम के कारण मरते हैं। पर निःसन्देह एक समय ऐसा आवेगा, जब विवेकशील प्राणी एक दूसरे को मारने से बाज आवेंगे। और अपने जीवन की रचना इस तरह करेंगे कि उनकी संख्या आज

की तरह पचास वर्षों में दूनी न होने पावेगी। वे इस तरह सन्तानोत्पादन नहीं करेंगे जिससे कुछ ही सदियों में पृथ्वी मनुष्यों को धारण ही न कर सके। फिर वे क्या करेंगे? एक दूसरे की हत्या करेंगे? नहीं, यह असंभव और अनावश्यक है। अनावश्यक इसलिए कि प्रकृति ने मनुष्य के अंदर वैषयिकता और अन्य पाशविक वृत्तियों के साथ २ ब्रह्मचर्य तथा पवित्रता की पोषक आध्यात्मिक वृत्ति भी मौजूद है। यह सत्प्रवृत्ति प्रत्येक लड़के और लड़की में मौजूद रहती है। और प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि वह इसकी रक्षा और संवर्धन करे। नीतिशील स्त्री-पुरुषों के सौभाग्य-पतन का नाम विवाह है। विवाह के मानी हैं— वैषयिकता को एक ही व्यक्ति तक संयत कर देना। अतः स्पष्ट है कि ब्रह्मचर्य और पवित्रता की उस वृत्ति का विकास विवाहित तथा अविवाहित जीवन में भी एकसा लाभदायक है।

इसलिए तुम्हारे पत्र के पढ़ते ही मेरे दिमाग़ में जो विचार आये उनको यहाँ लिख दिया है। एक बूढ़े आदमी की सी हार्दिक सलाह देकर मैं इस पत्र को खतम करता हूँ।

सत्य और सत् के लिए सत् का प्रयत्न करते रहना। अपनी पवित्रता की रक्षा में सारी शक्ति लगा देना। प्रलोभनों के साथ खूब झगड़ना। किसी हालत में हिम्मत न हारना। लगाम को कभी ढीली न करना। तुम पूछोगे झगड़ें कैसे? क्या किया जाय? क्या न किया जाय? निःसन्देह तुम व्यावहारिक उपदेश जानते हो। यदि न भी जानते हो तो उस विषय पर लिखी किसी किताब को विवेकपूर्वक पढ़ लेना। शराब न पीओ, मांस न खाओ, धूम्रपान

न करो, उच्छृंखल वृत्तिवाले साथियों के साथ न रहो। विशेष कर हलकी वृत्तियों वाली स्त्रियों से सदा दूर रहो, यह सब तुम जानते हो या सीख सकते हो। मेरा तो उपदेश यही है और मैं उस पर खूब ओर दूँगा कि अपने जीवन के ध्येय का समझो। याद रक्खो कि शारीरिक विषय-सुख नहीं बल्कि ईश्वर के आदेशों का पालन मनुष्य के जीवन का लक्ष्य और उद्देश है। विलास-युक्त नहीं, आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करो!

* * * *

ब्रह्मचर्य वह आदर्श है, जिसके लिए प्रत्येक मनुष्य को हर हालत में और हर समय प्रयत्न करना चाहिए। जितना ही तुम उसके नजदीक जाओगे, उतना ही अधिक परमात्मा की दृष्टि में प्यारे होगे और अपना अधिक कल्याण करोगे। विलासी बनकर नहीं, बल्कि पवित्रता युक्त जीवन व्यतीत कर ही मनुष्य परमात्मा की अधिक सेवा कर सकता है।

महापुरुषों के अनमोल उपदेश

जिसका वीर्य ब्रह्मचर्य के द्वारा वशीभूत है, उसका मन वशीभूत होता है। मन के वशीभूत होने से अन्तः करण में ब्रह्मज्ञान का स्फुरण होता है। ये ही सब आध्यात्मिक उन्नति होने के प्रमाण हैं।

*　　*　　*　　*

ब्रह्मचर्य-रक्षा के लिए प्रति समय प्रयत्न करना चाहिए। वीर्य से ही आत्मा अमरत्व को प्राप्त होता है। शरीर को संयत और सुयोग्य बनाने के लिए, नियत समय तक प्रत्येक स्त्री-पुरुष को ब्रह्मचारी बनना चाहिए।

*　　*　　*　　*

जिसके शरीर में वीर्य सुरक्षित रहता है, उसे आरोग्य, बुद्धि बल और पराक्रम बढ़के अमोघ सुख प्राप्त होता है।

*　　*　　*　　*

इन्द्रियों के विषय में 'भोग-विलास में' सुख को मत ढूंढ़ो! हे इन्द्रियों के दास! अपनी इस निष्फल और बाहरी खोज को छोड़ दो! अमरत्व का महासागर तुम्हारे भीतर है। स्वर्ग का राज्य तुम्हारे ही भीतर है। वह सब ब्रह्मचर्य से ही सध सकता है।

*　　*　　*　　*

लागत मूल्य पर हिन्दी पुस्तकें प्रकाशित करनेवाली
एक मात्र सार्वजनिक संस्था

सस्ता-साहित्य-प्रकाशक मण्डल, अजमेर

उद्देश्य—हिंदी-साहित्य-संसार में उच्च और शुद्ध साहित्य के प्रचार के उद्देश्य से इस मण्डल का जन्म हुआ है। विविध विषयों पर सर्वसाधारण और शिक्षित-समुदाय, स्त्री और बालक सबके लिए उपयोगी, अच्छी और सस्ती पुस्तकें इस मण्डल के द्वारा प्रकाशित होंगी।

विषय—धर्म (रामायण, महाभारत, दर्शन, वेदान्तादि) राजनीति, विज्ञान, कलाकौशल, शिल्प, स्वास्थ्य, समाजशास्त्र, इतिहास, शिक्षाप्रद उपन्यास, नाटक, जीवनचरित्र, स्त्रियोपयोगी और बालोपयोगी आदि विषयों की पुस्तकें तथा स्वामी रामतीर्थ, विवेकानन्द, टाल्सटाय, तुलसीदास, सूरदास, कबीर, बिहारी, भूषण आदि की रचनाएँ प्रकाशित होंगी।

इस मण्डल के सदुद्देश्य, महत्व और भविष्य का अन्दाज़ पाठकों को होने के लिए हम सिर्फ़ उसके संस्थापकों के नाम यहाँ दे देते हैं—

मंडल के संस्थापक—(१) सेठ जमनालालजी बजाज, वर्धा (२) सेठ घनश्यामदासजी बिड़ला कलकत्ता (सभापति) (३) स्वामी आनन्दानंदजी (४) बाबू महावीर प्रसादजी पोद्दार (५) डा० अम्बालालजी दधीच (६) पं० हरिभाऊ उपाध्याय (७) श्री जीतमल लूणिया, अजमेर (मन्त्री)

पुस्तकों का मूल्य—लगभग लागतमात्र रहेगा। अर्थात् बाजार में जिन पुस्तकों का मूल्य व्यापाराना ढंग से १) रखा जाता है उनका मूल्य हमारे यहाँ केवल ।=) या ।≡) रहेगा। इस तरह से हमारे यहाँ १) में ५०० से ६०० पृष्ठ तक की पुस्तकें तो अवश्य ही दी जावेंगी। सचित्र पुस्तकों में खर्च अधिक होने से मूल्य अधिक रहेगा। यह मूल्य स्थायी ग्राहकों के लिए है। सर्व साधारण के लिये थोड़ा सा मूल्य अधिक रहेगा।

हिन्दी-प्रेमियों का स्पष्ट कर्तव्य

यदि आप चाहते हैं कि हिंदी का—यह 'सस्ता मण्डल' फले-फूले तो आपका कर्तव्य है कि आजही न केवल आपही इसके ग्राहक बनें, बल्कि अपने परिचित मित्रों को भी बनाकर इसकी सहायता करें।

हमारे यहाँ से निकलनेवाली दो मालाएँ और
स्थायी ग्राहक होने के दो नियम

खूब ध्यान से सब नियमों को पढ़ लीजिये

(१) हमारे यहाँ से 'सस्ती विविध पुस्तक-माला' नामक माला निकलती है जिसमें वर्ष भर में ३२०० पृष्ठों की कोई अठारह बीस पुस्तकें निकलती हैं और वार्षिक मूल्य पोस्ट खर्च सहित केवल ८) है। अर्थात् छः रुपया ३२०० पृष्ठों का मूल्य और २) डाकखर्च। इस विविध पुस्तक-माला के दो विभाग हैं। एक 'सस्ती-साहित्य-माला' और दूसरी-'सस्ती-प्रकीर्ण पुस्तकमाला'। दो विभाग इसलिये कर दिये गये हैं कि जो सज्जन वर्ष भर में आठ रुपया खर्च न कर सकें, वे एक ही माला के ग्राहक बन जावें। प्रत्येक माला में १६०० पृष्ठों की पुस्तकें निकलती हैं और पोस्ट खर्च सहित ४) वार्षिक मूल्य है। माला से ज्यों ज्यों पुस्तकें निकलती जावेंगी, वैसे वैसे पुस्तकें वार्षिक ग्राहकों के पास मण्डल अपना पोस्टेज लगाकर पहुँचाता जायगा। जब १६०० या ३२०० पृष्ठों की पुस्तकें ग्राहकों के पास पहुँच जावेंगी, तब उनका वार्षिक मूल्य समाप्त हो जायगा।

(२) वार्षिक ग्राहकों को उस वर्ष की-जिस वर्ष में वे ग्राहक बने-सब पुस्तकें लेनी होती हैं। यदि उन्होंने उस वर्ष की कुछ पुस्तकें पहले से ले रखी हों तो अगले वर्ष की ग्राहक-श्रेणी का पूरा रुपया यानि ४) या ८) दे देने पर या कम से कम १) या २) जमा करा देने तथा अगला वर्ष शुरू होने पर शेष मूल्य भेज देने का वचन देने पर, पिछले वर्षों की पुस्तकें जो वे चाहें, एक एक कापी लागत मूल्य पर ले सकते हैं।

(३) दूसरा नियम—प्रत्येक माला की आठ आना प्रवेश फ़ीस या दोनों मालाओं की १) प्रवेश फीस देकर भी आप ग्राहक बन सकते हैं। इस तरह जैसे जैसे पुस्तकें निकलती जावगी, उनका लागत मूल्य और पोस्ट खर्च जोड़ कर वी. पी. से भेज दी जाया करेंगी। प्रत्येक वी.पी. में =) रजिस्ट्री खर्च व ≈) वी. पी. खर्च तथा पोस्टेज खर्च अलग लगता है। इस तरह वर्ष भर में प्रवेश फीसवाले ग्राहकों को प्रति माला पीछे क़रीब ढाई रुपया पोस्टेज पड़ जाता है। वार्षिक ग्राहकों को केवल १) का पोस्ट खर्च लगता है।

हमारी सलाह है कि आप वार्षिक ग्राहक ही बनें

क्योंकि इससे आपको पोस्ट खर्च में भी किफ़ायत रहेगी और प्रवेश फीस के ॥) या १) भी आपसे नहीं लिये जावेंगे।

(४) दोनों तरह के ग्राहकों को—एक एक कापी ही लागत मूल्य पर मिलती है। अधिक प्रतियाँ मँगाने पर सर्वसाधारण के मूल्य पर दो आना रुपया कमीशन काट कर भेजी जाती हैं। हाँ, बीस रुपये से ऊपर की पुस्तकें मँगाने पर २५) सैकड़ा कमीशन काट कर भेजी जा सकती हैं। किसी एक माला के ग्राहक होने पर यदि वे दूसरी माला की पुस्तकें या मंडल से निकलने वाली फुटकर पुस्तकें मँगावेंगे तो दो आना रुपया कमीशन काट कर भेजी जावेंगी। पर अपना ग्राहक नंबर ज़रूर लिखना चाहिये।

(५) दोनों मालाओं का वर्ष—सस्ता साहित्य-माला का वर्ष जनवरी मास से शुरू होकर दिसम्बर मास में समाप्त होता है और प्रकीर्ण-माला का वर्ष अप्रेल मास से शुरू होकर दूसरे वर्ष के अप्रेल मास में समाप्त होता है। मालाओं की पुस्तकें दूसरे तीसरे महीने इकट्ठी निकलती हैं और तब ग्राहकों के पास भेज दी जाती हैं। इस तरह वर्ष भर में कुल १६०० या ३२०० पृष्ठों की पुस्तकें ग्राहकों के पास पहुँचा दी जाती हैं।

(६) जो वार्षिक ग्राहक माला की सब पुस्तकें सजिल्द मँगाना चाहें, उन्हें प्रत्येक माला के पीछे दो रुपया अधिक भेजना चाहिये, अर्थात् साहित्य माला के ६) वार्षिक और इसी तरह प्रकीर्ण माला के ६) वार्षिक भेजना चाहिये।

हमारे यहाँ से निकलनेवाली फुटकर पुस्तकें

उपरोक्त दोनों मालाओं के अतिरिक्त अन्य पुस्तकें भी हमारे यहाँ से निकलती हैं। परन्तु जैसे दोनों मालाओं में वर्ष भर में ३२०० पृष्ठों की पुस्तकें निकालने का निश्चित नियम है वैसा इनका कोई खास नियम नहीं है। सुविधा और आवश्यकतानुसार पुस्तकें निकलती हैं।

स्थाई ग्राहकों के जानने योग्य बातें

(१) जो ग्राहक जिस माला के ग्राहक बनते हैं, उन्हें उसी माला की एक एक पुस्तक लागत मूल्य पर मिल सकती है। अन्य पुस्तकें मँगाने के लिये उन्हें आर्डर भेजना चाहिये। जिन पर उपरोक्त नियमानुसार कमीशन काट कर वी० पी० द्वारा पुस्तकें भेज दी जावेंगी।

इतिहास से, विज्ञान से तथा अनेक विदेशी उदाहरणों द्वारा सिद्ध की गई है। पृष्ठ सं० १२४, मूल्य ।~) स्थायी ग्राहकों से ≡)॥

(३) कन्या-शिक्षा—सास, ससुर आदि कुटुंबी के साथ किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिये, घर की व्यवस्था कैसी करनी चाहिये आदि बातें, कथा-रूप में बतलाई गई हैं। पृष्ठ सं० ९४, मूल्य केवल ।) स्थायी ग्राहकों से ≡)

(४) यथार्थ आदर्श जीवन—हमारा प्राचीन जीवन कैसा उच्च था, पर अब पाश्चात्य आडम्बरमय जीवन की नक़ल कर हमारी अवस्था कैसी शोचनीय हो गई है-। अब हम फिर किस प्रकार उच्च बन सकते हैं-आदि बातें इस पुस्तक में बताई गई हैं। पृष्ठ सं० २६४, मूल्य केवल ॥~) स्थायी ग्राहकों से ।=)॥

(५) स्वाधीनता के सिद्धान्त—प्रसिद्ध आयरिश वीर टेरेंस मेक्स-वीनी की Principles of Freedom का अनुवाद—प्रत्येक स्वतंत्रता-प्रेमी को इसे पढ़ना चाहिये। पृष्ठ सं० २०८ मूल्य ॥), स्थायी ग्राहकों से ।~)॥

(६) तरंगित हृदय—(ले० पं० देवशर्मा विद्यालंकार) भू० ले० पद्मसिंहजी शर्मा—इसमें अनेक ग्रन्थों को मनन करके एकांत हृदय के सामाजिक, आध्यात्मिक और राजनैतिक विषयों पर बड़े ही सुन्दर, हृदयस्पर्शी मौलिक विचार लिखे गये हैं। किसी का अनुवाद नहीं है। पृष्ठ सं० १७६, मूल्य ।≡) स्थायी ग्राहकों से ।~)

(७) गंगा गोविंदसिंह—(ले० बंगाल के प्रसिद्ध लेखक श्री चण्डीशरण सेन) इस उपन्यास में ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन-काल में भारत के लोगों पर अँग्रेज़ों ने कैसे कैसे भीषण अत्याचार किये और यहाँ का व्यापार नष्ट किया उसका रोमांचकारी वर्णन तथा कुछ देश-भक्तों ने किस प्रकार मुसीबतें सहकर इनका मुक़ाबला किया उसका गौरव-पूर्ण इतिहास वर्णित है। रोचक इतना है कि शुरू करने पर समाप्त किये बिना नहीं रहा जा सकता। पृष्ठ २९६ मूल्य केवल ॥=) स्थायी ग्राहकों से ।≡)॥

(८) यूरोप का इतिहास—(प्रथम भाग) छप रहा है। पृष्ठ लगभग ३५० मार्च सन् १९२७ तक छप जायगा। इस माला में एकाध पुस्तक और निकलेगी तब वर्ष समाप्त हो जायगा।

☞ हमारे यहाँ हिंदी की सब प्रकार की उत्तम पुस्तकें भी मिलती हैं—बड़ा सूचीपत्र मँगाकर देखिये!

पता—सस्ता-साहित्य-प्रकाशक मण्डल, अजमेर।

वर्ष २] सस्ती-साहित्य-माला [पुस्तक १

तामिल वेद

प्रस्तावना-लेखक

श्रीमान् राजगोपालाचार्य्य

लेखक

महात्मा तिरुवल्लुवर

तामिल वेद

अर्थात्

दाक्षिणात्य ऋषि तिरुवल्लुवर के मनुष्य-जीवन पर धर्म और अर्थ विषयों के अमृतमय उपदेश

अनुवादक—

क्षेमानन्द 'राहत'

प्रकाशक—

सस्ता-साहित्य-प्रकाशक मण्डल

अजमेर

पहली बार] १९२७ { मूल्य राजसंस्करण का ॥=) मूल्य साधारण संस्करण का ॥)

यह साधारण-संस्करण है

प्रकाशक—

जीतमल लूणिया, मंत्री

सस्ता-साहित्य-प्रकाशक मंडल, अजमेर

हिंदी प्रेमियों से अनुरोध

इस सस्ता-मंडल की पुस्तकों का विषय, उनकी पृष्ठ-संख्या और मूल्य पर जरा विचार कीजिये। कितनी उत्तम और साथ ही कितनी सस्ती हैं। मण्डल से निकली हुई पुस्तकों के नाम तथा स्थाई ग्राहक होने के नियम पुस्तक के अंत में दिये हुए हैं, उन्हें एकबार आप अवश्य पढ़ लीजिये।

* ग्राहक नम्बर

* यदि आप इस मंडल के ग्राहक हैं तो अपना नम्बर यहाँ लिख रखिये ताकि आपको याद रहे। पत्र देते समय यह नंबर ज़रूर लिखा करें।

मुद्रक

गणपति कृष्ण गुर्जर,

श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, काशी।

FOREWORD.

If one wishes to understand aright the genius of the Tamil people and their culture one must read Tri-k-kural. A study of this book is necessary to complete a scholar's knowledge of Indian literature as a whole. Shriyut Kshemanand Rahat has done a very great service to the people of Northern India by rendering Tri-k-kural into Hindi. Trivalluvar was an untouchable but there is not the slightest trace of consciousness of this fact in any part of the book nor do any of the numerous references by other Tamil Poets to Trivalluvar and his great book disclose any advertance to this. This total indifference to this 'low' caste of the author of Tri-k-kural together with the high reverential attitude of all contemporary and successive generations of poets and philosophers, is one of the most remarkable phenomena of Indian culture.

Tri-k-kural is a mine of wisdom, refinement and practical insight into human nature. A high spritual level of thought combined with keen insight into human character and its infirmities is the most striking characteristic of this wonderful book. For conscious and disciplined catholicism spirit of Tri-k-kural is a monu-

mental example. As a work of art also it takes high rank in world's literature by reason of brevity, aptness of illustrations and incessiveness of style.

The North will see in this book the intimate connection and unity of the civilization and culture of the North with that of the Tamil People. At the same time Tri-k-kural brings out the beauty and the individuality of the South. I hope that a study of Sjt. Kshemanand Rahat's Hindi version will lead atleast a few ardent spirits of the North to realize the importance of the constructive development of the cultural unity of India and for that purpose to take up the study of Tamil language and literature enabling them to read Tri-k-kural and other great Tamil books in original and enjoy their untranslatable excellences.

TIRCHENGODRU
MADRAS
27-1-27

C. Rajgopalachari

प्रस्तावना

तामिल जाति की अन्तरात्मा और उसके संस्कार को ठीक तरह से समझने के लिये 'त्रिक्कुरल' का पढ़ना आवश्यक है। इतना ही नहीं, यदि कोई चाहे कि भारत के समस्त साहित्य का मुझे पूर्ण रूप से ज्ञान हो जाय तो त्रिक्कुरल को बिना पढ़े हुए उसका अभीष्ट सिद्ध नहीं हो सकता। त्रिक्कुरल का हिन्दी में भाषान्तर करके श्री क्षेमानन्दजी राहत ने उत्तर भारत के लोगों की बहुत बड़ी सेवा की है। त्रिक्कुरल जाति के अछूत थे। किन्तु पुस्तक भर में कहीं भी इस बात का ज़रा सा भी आभास नहीं मिलता कि ग्रन्थकार के मन में इस बात का कोई ख़याल था और तामिल कवियों ने भी अनेक स्थानों में जहाँ जहाँ तिरुवल्लुवर की कविताएँ उद्धृत की हैं, या उनकी चर्चा की है; वहाँ भी इस बात का आभास नहीं मिलता कि वे अछूत थे। यह भारतीय संस्कृति का अनूठापन है कि त्रिक्कुरल के रचयिता की जाति की हीनता की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया गया बल्कि उनके समसामयिक और बाद के कवियों और दार्शनिकों ने भी उनके प्रति बड़ी श्रद्धा और भक्ति प्रकट की है।

त्रिकुरल विवेक, शुभ संस्कार और मानव प्रकृति के व्यावहारिक ज्ञान की खान है। इस अद्भुत ग्रन्थ की सब से बड़ी विशेषता और चमत्कार यह है कि इसमें मानव चरित्र और उसकी दुर्बलताओं की तह तक विचार करके उच्च आध्यात्मिकता का प्रति-

स्वाभिमान और आत्म-गौरव से छक कर, निर्भय हो विचरण करने वाला, मध्यकालीन भारत का जीवन-प्राण, वह अलबेला क्षत्रियत्व आज यदि कहीं है तो केवल आप में। आप उस लुप्त-प्राय क्षात्र-तेज की जाज्वल्यमान अन्तिम राशि हैं।

ऐ भारत के गौरव-मन्दिर के अधिष्ठाता! आपने इस विपन्नकाल में भी हमारे तीर्थ की पवित्रता को नष्ट नहीं होने दिया, इसके लिये आप धन्य हैं! आप उन पुण्य चरित्र पूर्वजों के योग्य स्मारक हैं और आधुनिक भारत की एक पूजनीय सर्वश्रेष्ठ विभूति हैं।

इस अकिञ्चन-हृदय की श्रद्धा को व्यक्त करने के लिये दक्षिणात्मक ऋषि की यह महार्थ-कृति अत्यन्त आदर के साथ आपके प्रतापी हाथों में समर्पित करने की आज्ञा चाहता हूँ और आशा करता हूँ कि इस पवित्र सम्पर्क से इस ग्रन्थ का गौरव और भी अधिक बढ़ जायगा।

राजपूती बाँकपन का दिलदादा—
क्षेमानन्द 'राहत'

भूमिका

(तामिल-वेद के सम्बन्ध में लोगों की राय)

The Prophets of the world have not emphasised the greatness and power of the Moral law with greater insistence or force; Bhishma or Kautilya or Kamandaka or Ramdas or Vishnu Sharman or Macchiavelli have no more subtle counsel to give on the conduct of the State; 'Poor Richard' has no wiser saw for the raising up of the businessmen; and Kalidasa or Shakespeare have no deeper knowledge of the lover's heart and its varied moods; than this Pariah weaver of Mylapore !

V. V. S. Aiyar

मलयपुर के इस अछूत जुलाहे ने आचार-धर्म की महत्ता और शक्ति का जो वर्णन किया है, उससे संसार के किसी धर्म-संस्थापक का उपदेश अधिक प्रभावयुक्त या शक्तिप्रद नहीं है; जो तत्व इसने बतलाये हैं उनसे अधिक सूक्ष्म बात भीष्म या कौटिल्य, कामंदक या रामदास, विष्णुशर्मा या माइकेवेली ने भी

नहीं कही है; व्यवहार का जो चातुर्य इसने बताया है, उससे अधिक "बेचारे रिचार्ड" के पास भी कुछ नहीं है; और प्रेमी के हृदय और उसकी नानाविध वृत्तियों पर जो प्रकाश इसने डाला है, उससे अधिक पता कालिदास या शेक्सपियर को भी नहीं है!

—वी. वी. एस. ऐयर

One of the highest and purest expressions of human thonght.

M. Ariel

मानव-विचार का यह एक उन्नतम और शुद्धतम प्रकाश है।

—एम. एरियल

As essentially the highest type of verbal and moral cxcellence among the Tamil People as ever Homer was among the Greeks.

Gover

तामिल देश के विचार और आचार की उत्तमता का यह वैसा ही सर्वोत्तम आदर्श है जैसे यूनानियों में होमर है।

—गोवर

तामिल जाति

दक्षिण में, सागर के तट पर, भारतमाता के चरणों की पुजारिन के रूप में, अज्ञात काल से एक महान जाति निवास कर रही है जो 'तामिल' जाति के नाम से प्रख्यात है। यह एक अत्यन्त प्राचीन जाति है; और उसकी सभ्यता संसार की प्राचीनतम सभ्यताओं के साथ खड़े होने का दावा करती है। उसका अपना स्वतंत्र साहित्य है, जो मौलिकता तथा विशालता में विश्व-विख्यात संस्कृत-साहित्य से किसी भाँति अपने को कम नहीं समझता। यह जाति बुद्धि-सम्पन्न रही है और आज भी इसका शिक्षित समुदाय मेधावी तथा अधिक बुद्धि-शाली होने का गर्व करता है।

इसमें सन्देह नहीं, नख से शिख तक सूफ़ियाना वज़अ की वेश-भूषा से सुसज्जित, तहज़ीब का दिलदादा 'हिन्दुस्तानी' जब किसी श्याम वर्ण के, तहमत बाँधे, अँगोछा ओढ़े, नंगे सिर और नंगे पैर, तथा जूड़ा बाँधे हुए मद्रासी भाई को देखता है, तब उस के मन में बहुत अधिक श्रद्धा का भाव जागृत नहीं होता। साधारणतः हमारे तामिल बन्धुओं का रहन-सहन और व्यवहार इतना सरल और आडम्बर रहित होता है और उनकी कुछ बातें इतनी विचित्र होती हैं कि साधारण यात्री को उनकी सभ्यता

में कभी २ सन्देह हो उठता है। किन्तु नहीं, इस सरलता के भीतर एक निस्सन्दिग्ध सभ्यता है जिसने बाह्य आडम्बर की ओर अधिक दृष्टि-पात न कर के बौद्धिक उन्नति को अपना ध्येय माना है।

तामिल लोग प्राय: चतुर, परिश्रमी और श्रद्धालु होते हैं। इनकी व्यवहार-कुशलता, साहस और अध्यवसाय ने एक समय इन्हें समुद्र का शासक बना दिया था। इनकी नाविक-शक्ति प्रसिद्ध थी। अपने हाथ से बनाये हुए जहाज़ों पर सवार हो कर वे समुद्र-मार्ग से पूर्व और पश्चिम के दूर दूर देशों तक व्यापार के लिये जाते थे। इन्होंने, उसी समय हिन्द-महासागर के कई द्वीपों में उपनिवेश भी स्थापित किये थे। इनके झण्डे पर मछली का चिन्ह रहता था। यह शायद इसलिये चुना गया था कि वे अपने को मीन की ही भाँति जलयान-विद्या में प्रवीण बनाने के उत्सुक थे।

इनकी शिल्पकारी उन्नत दशा को प्राप्त थी। ज़री का काम अब भी बहुत अच्छा होता है। मदुरा के बने हुए कपड़े सारे भारत के लोग चाव से खरीदते हैं। सङ्गीत के तो वे ज्ञाता ही नहीं बल्कि आविष्कर्ता भी हैं। इनकी अपनी संगीत-पद्धति है जो उत्तर भारत में प्रचलित पद्धति से भिन्न है। वह सहज और सुगम तो नहीं, पर पाण्डित्य पूर्ण अवश्य है। हिन्दुस्थानी राग और ग़ज़ल भी ये बड़े शौक से सुनते हैं। गृह-निर्माण कला में एक प्रकार का निरालापन है जो इनके बनाये हुए देवालयों में खास तौर पर प्रकट होता है। इनके देवालय खूब सुदृढ़ और विशाल

होते हैं, जिन्हें हम छोटा मोटा गढ़ कह सकते हैं। देवालयों के चारों ओर प्राचीर होता है; और सिंहद्वार बहुत ही भव्य बनाया जाता है। इस सिंहद्वार के ऊपर 'घंटे' के आकार का एक सुन्दर गुम्बद होता है, जिस में देवताओं आदि की मूर्तियाँ काट कर बनाई जाती हैं; और जिसे ये लोग 'गोपुरम्' के नाम से पुकारते हैं।

तामिल लोगों की वृत्ति धार्मिक होती है और उनकी भावनायें प्रायः भक्ति-प्रधान होती हैं। इन के त्योहार और उत्सव भक्तिरस में डूबे हुए होते हैं। प्रत्येक देवालय के साथ एक बड़ा भारी और बहुत ऊँचा रथ रहता है जिसमें उत्सव के दिन मूर्ति की स्थापना कर के उसका जुलूस निकालते हैं। रथ में एक रस्सा बाँध दिया जाता है, जिसे सैकड़ों लोग मिल कर खींचते हैं। लोग टोलियाँ बना कर गाते हुए जाते हैं और कभी २ गाते-गाते मस्त हो जाते हैं। देवमूर्ति के सामने साष्टाङ्ग प्रणाम करते हैं और कोई कान पर हाथ रख कर उठते बैठते हैं। जब आरती होती है, तब नाम-स्मरण करते हुए दोनों हाथों से अपने दोनों गालों को धीरे २ थपथपाने लगते हैं।

'तामिल नाडु'—यद्यपि प्राकृतिक सौन्दर्य से परिप्लावित हो रहा है, पर 'अय्यङ्गार' जाति को छोड़ कर शारीरिक सौन्दर्य इन लोगों में बहुत कम देखने में आता है। शारीरिक शक्ति में यह अब भी लार्ड मैकाले के ज़माने के बंगालियों के भाई ही बने हुए हैं। छोटी जातियों में तो साहस और बल पाया जाता है, पर अपने को ऊँचा समझने वाली जातियों में बल और पौरुष की बड़ी कमी है। चांवल इनका मुख्य आहार है और उसे ही यह 'अन्नम्' कहते हैं। गेहूँ का व्यवहार न होने के कारण अनेक प्रकार के

व्यंजनों से अभी तक ये अपरिचित ही रहे; पर चावलों के ही भाँति भाँति के व्यञ्जन बनाने में ये सुदक्ष हैं। पूरी को ये फलाहार के समान गिनते हैं और 'रसम्' इनका प्रिय पेय है, जो स्वादिष्ट और पाचक होता है। थाली में यह खाना पसन्द नहीं करते, केले के पत्ते पर भोजन करते हैं। इनके खाने का ढङ्ग विचित्र है।

तामिल बहिनें पर्दा नहीं करतीं और न मारवाड़ी-महिलाओं की तरह ऊपर से नीचे तक गहनों से लदी हुई रहना पसन्द करती हैं। हाथों में दो एक चूड़ियें, नाक और कान में हलके जवाहिरात से जड़े, थोड़े से आभूषण उनके लिये पर्याप्त हैं। वह नौ गज की रङ्गीन साड़ी पहिनती हैं। कच्छ लगाती हैं और सिर खुला रखती हैं जो बाक़ायदा बँधा रहता है और जूड़े में प्रायः फूल गुंथा रहता है। केवल विधवायें ही सिर को ढँकती हैं। उनके बाल काट दिये जाते हैं और सफ़ेद साड़ी पहिन ने को दी जाती है। बड़े घरानों की स्त्रियाँ भी प्रायः हाथ से ही घर का काम-काज करती हैं। बाज़ार से सौदा भी ले आती हैं और नदी से पीने के लिये रोज़ जल भर लाती हैं। इसीलिये वे प्रायः स्वस्थ और प्रसन्न रहती हैं। घर में या बाहर कहीं भी वे घूँघट तो निकालती ही नहीं; उनके मुख की गम्भीरता और प्रशान्त निश्शङ्क दृष्टि उनके लिये घूँघट से बढ़ कर काम देती है।

तामिल भाषा, एक स्वतंत्र भाषा कही जाती है। अन्य भारतीय भाषाओं की तरह यह संस्कृत से निकली हुई नहीं मानी जाती है। तामिल वर्णमाला के स्वर तो अन्य भारतीय भाषाओं की ही तरह हैं पर व्यञ्जनों में बड़ी विचित्रता है। कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग,

तवर्ग और पवर्ग के प्रथम और अन्तिम अक्षर ही तामिल वर्ण-माला में रहते हैं; प्रत्येक वर्ग के बीच के तीन अक्षर उसमें नहीं होते। उदाहरणार्थ क, ख, ग, घ, ङ के स्थान पर केवल क और ङ होता है ख, ग, घ, का काम 'क' से लिया जाता है। पर उसमें एक विचित्र अक्षर होता है जो न भारतीय भाषाओं में और न अरबी-फारसी में मिलता है। फ्रांसीसी से वह मिलता हुआ कहा जाता है और उसका उच्चारण 'र' और 'ज़' के बीच में होता है। पर सर्व साधारण ड़ की तरह उसका उच्चारण कर डालते हैं। तामिल भाषा में कठोर अक्षरों का प्रायः प्राधान्य है। प्राचीन और आधुनिक तामिल में भी अन्तर है। प्राचीन ग्रन्थों को समझने के लिये विशेषज्ञता की आवश्यकता है। तामिल भाषा का आधुनिक साहित्य अन्य भारतीय भाषाओं की तरह वर्तमानकालीन विचार से भरा जा रहा है। पर प्राचीन साहित्य प्रायः धर्म-प्रधान है। तामिल सभ्यता और तामिल साहित्य के उद्गम की स्वतंत्रता के विषय में कुछ कहना नहीं; पर इसमें सन्देह नहीं कि आर्य-सभ्यता और आर्य-साहित्य की उन पर गहरी छाप है और आर्य-भावनाओं से वे इतने ओत-प्रोत हैं, अथवा यों कहिये कि दोनों की भावनाओं में इतना सामञ्जस्य है कि यह समझना कठिन हो जाता है कि इनमें कोई मौलिक अन्तर भी है। तामिल में कम्बन की बनाई हुई 'कम्बन रामायण' है जिसका कथानक तो वाल्मीकि से लिया गया है पर भावों की उच्चता और चरित्रों की सजीवता में वह कहीं कहीं, वाल्मीकि और तुलसी से भी बढ़ी-चढ़ी बताई जाती है। माणिक्य वाचक कृत तिरुवाचक भी प्रसिद्ध ग्रन्थ है। पर तिरुवल्लुवर का कुरल अथवा त्रिकुरल जिसके

विचार पाठकों की भेंट किये जा रहे हैं, तामिल भाषा का सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ है, यह तामिल साहित्य का फूल है।

ग्रन्थकार का परिचय

कुरल तामिल भाषा का प्राचीन और अत्यन्त सम्मानित ग्रन्थ है। तामिल लोग इसे पञ्चम वेद तथा तामिल वेद के नाम से पुकारते हैं। इसके रचयिता तिरुवल्लुवर नाम के महात्मा हो गये हैं। ग्रन्थकार की जीवनी के सम्बन्ध में निश्चयात्मक रूप से बहुत कम हाल लोगों को मालूम है। यहाँ तक कि इनका वास्तविक नाम क्या था यह भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। क्योंकि तिरुवल्लुवर शब्द के अर्थ होते हैं 'वल्लुवा जाति का एक भक्त'। वल्लुवा जाति की गणना मद्रास की अछूत जातियों में है।

तामिल जन-समाज में एक छन्द प्रचलित है जिससे प्रकट होता है कि तिरुवल्लुवर का जन्म पांड्य वंश की राजधानी मदुरा में हुआ था। परम्परा से ऐसी जन-श्रुति चली आती है कि तिरुवल्लुवर के पिता का नाम भगवन् था जो जाति के ब्राह्मण थे और माता अडि पैरिया अछूत जाति की थीं। इनकी माता का पालन-पोषण एक ब्राह्मण ने किया था और उसी ने भगवन् के साथ उन्हें ब्याह दिया। इस दम्पति के सात सन्तानें हुईं, चार कन्यायें और तीन पुत्र, तिरुवल्लुवर सब से छोटे थे। यह विचित्रता की बात है कि अकेले तिरुवल्लुवर ने ही नहीं, बल्कि इन सातों ही भाई-बहिनों ने कवितायें की हैं। उनकी एक बहिन औव्यार प्रतिभाशाली कवि हुई है।

एक जनश्रुति से ज्ञात होता है कि इस ब्राह्मण पैरिया दम्पति ने किसी कारण-वश ऐसी प्रतिज्ञा की थी कि अब के जो सन्तान होगी उसे जहाँ वह पैदा होगी वहीं ईश्वरार्पित कर देंगे। यह लोग जब भ्रमण कर रहे थे तो मद्रास नगर के समीपस्थ मयलापुर के एक बाग में तिरुवल्लुवर का जन्म हुआ। माता अड़ि मोह के कारण बचे को छोड़ने के लिये राजी न होती थी, तब छोटे से तिरुवल्लुवर ने मातृ-स्नेह-विह्वला माता को बोध कराने के लिये कहा—"क्या सब की रक्षा करने वाला वहा एक जगत्पिता नहीं है और क्या मैं भी उसी की सन्तान नहीं हूँ ? जो कुछ होना है वह तो होगा ही, फिर माँ ! तू व्यर्थ चिन्ता क्यों करती है ?" इन शब्दों ने काम किया, माता का मोह भङ्ग हुआ और शिशु तिरुवल्लुवर वहीं मयलापुर में छोड़ दिया गया। यह कथानक स्निग्ध है, सुन्दर है हृदय को बोध देने वाला है; किन्तु यह तार्किक तथा वैज्ञानिकों की नहीं, केवल श्रद्धालु हृदयों की सम्पत्ति हो सकता है; और ऐसे ही भोले श्रद्धालु हृदयों की, कि जो तिरुवल्लुवर को मनुष्य या महात्मा नहीं साक्षात् ब्रह्म का अवतार मानते हैं।

तिरुवल्लुवर का पालन-पोषण उनको शिक्षा-दीक्षा किस प्रकार हुई, उनका बालपन तथा उनकी किशोरावस्था किस तरह बीती यह सब बातें उनके जीवन की अन्यान्य घटनाओं की तरह काल के आवरण में ढकी हुई हैं। सिर्फ इतना ही लोगों को मालूम है कि वह मयलापुर में रहते थे और कपड़े बुनने के काम को अधिक निर्दोष समझ जुलाहा-वृत्ति से अपनी गुजार करते थे। वहीं, मयलापुर में, एलेलिशिङ्गन नाम का एक अमीर समुद्र पर से

व्यापार करनेवाला रहता था जो प्रसिद्ध कप्तान था। वह तिरुवल्लुवर का घनिष्ट मित्र और श्रद्धालु भक्त था। कहते हैं; उसका एक जहाज़ एक बार रेती में फँस गया और किसी तरह निकाले न निकला तो तिरुवल्लुवर ने वहाँ जाकर कहा—'एलेलैया!' और तुरन्त ही जहाज़ चल निकला। यहाँ लोग जिस प्रकार राजा नल का नाम लेकर पासा डालते हैं वैसे ही भारी बोझ ढोते समय मद्रास के मजदूर सम्भवतः तभी से 'एलेलैया' शब्द का उच्चारण करते हैं।

तिरुवल्लुवर ने विवाह किया था। उनकी पत्नी का नाम वासुकी था। इनका गार्हस्थ्य जीवन बड़ा ही आनन्द-पूर्ण रहा है। वासुकी मालूम नहीं अछूत जाति की थी या अन्य जाति की; पर तामिल लोगों में उसके चरित्र के सम्बन्ध में जो किम्वदन्तियाँ प्रचलित हैं, और जिनका वर्णन भक्त लोग बड़े प्रेम और गौरव के साथ करते हैं उनसे तो यह कहा जा सकता है कि वासुकी एक पूजनीय सच्ची आर्य देवी थी। आर्य-कल्पना ने आदर्श महिला के सम्बन्ध में जो ऊँची से ऊँची और पवित्रतम धारणा बनायी है, जहाँ अभिमानी से अभिमाना मनुष्य श्रद्धा और भक्ति, के साथ अपना सिर झुका देता है, वह उसकी अनन्य पति-भक्ति, उसका विश्वविजयी पातिव्रत्य है। देवी वासुकी में हम इसी गुण को पूर्ण तेज से चमकता हुआ पाते हैं। तिरुवल्लुवर के गार्हस्थ्य जीवन के सम्बन्ध में जो कथायें प्रचलित हैं, वे ज्यों की त्यों सच्ची हैं यह तो कौन कह सकता है? पर इसमें सन्देह नहीं कि इससे हमें तामिल लोगों की गार्हस्थ्य जीवन की धारणा का परिचय मिलता है।

कहा जाता है वासुकी अपने पति में इतनी अनुरक्त थीं कि

उन्होंने अपने व्यक्तित्व को ही एकदम भुला दिया था। उनकी भावनाएँ, उनकी इच्छायें यहाँ तक कि उनकी बुद्धि भी उनके पति में ही लीन थी। पति की आज्ञा मानना ही उनका प्रधान धर्म था। विवाह करने से पूर्व तिरुवल्लुवर ने कुमारी वासुकी की आज्ञा-पालन की परीक्षा भी ली थी। वासुकी से कीलों और लोहे के टुकड़ों को पकाने के लिये कहा गया और वासुकी ने विना किसी हुज्जत के, विना किसी तर्क-वितर्क के वैसा ही किया। तिरुवल्लुवर ने वासुकी के साथ विवाह कर लिया और जब तक वासुकी जीवित रहीं, उसी निष्ठा और अनन्य श्रद्धा के साथ पति की सेवा में रत रहीं। तिरुवल्लुवर के गार्हस्थ्य जीवन की प्रशंसा सुनकर एक सन्त उनके पास आये और पूछा कि विवाहित जीवन अच्छा है अथवा अविवाहित ? तिरुवल्लुवर ने इस प्रश्न का सीधा उत्तर न देकर अपने पास कुछ दिन ठहर कर परिस्थिति का अध्ययन करने को कहा।

एक दिन सुबह को दोनों जने ठण्ढा भात खा रहे थे जैसा कि गर्म देश होने के कारण मद्रास में चलन है। वासुकी उस समय कुँए से पानी खींच रही थी। तिरुवल्लुवर ने एकाएक चिल्लाकर कहा 'ओह ! भात कितना गर्म है, खाया नहीं जाता।' वासुकी यह सुनते ही घड़े और रस्सी को एकदम छोड़ कर दौड़ पड़ी और पंखा लेकर हवा करने लगी। वासुकी के हवा करते ही उस रातभर के, पानी में रक्खे हुए ठण्ढे भात से गरम गरम भाफ निकली और उधर वह घड़ा जिसे वह अधखिंचा कुँए में छोड़ कर चली आई थी, वैसा का वैसा ही कुँए के अन्दर अधर में लटका रह गया। एक दूसरे दिन सूर्य के तेज प्रकाश में, तिरु-

वल्लुवर जब कपड़ा बुन रहे थे तब उन्होंने वेन को हाथ से गिरा दिया और उसे ढूँढने के लिये चिराग़ मँगाया। बेचारी वासुकी दिन में दिया जलाकर, आँखों के सामने, रोशनी में, फ़र्श पर पड़े हुए वेन को ढूँढने चली। उसे इस बात के बेतुकेपन पर ध्यान देने की फ़ुरसत ही कहाँ थी ?

बस, तिरुवल्लुवर का उस संत को यही जवाब था। यदि स्त्री सुयोग्य और आज्ञाधारिणी हो तो सत्य की शोध में जीवन खपाने वाले विद्वानों और सूफ़ियों के लिये भी विवाहित जीवन वांच्छनीय और परमोपयोगी है। अन्यथा यही बेहतर है कि मनुष्य जीवन भर अकेला और अविवाहित रहे। स्त्री वास्तव में गृहस्थ-धर्म का जीवन-प्राण है। घर के छोटे से प्राङ्गण को स्त्री स्वर्ग बना सकती है और स्त्री ही उसे नरक का रूप दे सकती है। इसी ग्रन्थ में तिरुवल्लुवर ने कहा है "स्त्री यदि सुयोग्य है, तो फिर ग़रीबी कैसी ? और स्त्री यदि योग्य नहीं हो फिर अमीरी कहाँ है?" Frailty thy name is women—दुर्बलते, तेरा ही नाम स्त्री है, ढोल-गँवार-शूद्र-पशु-नारी; स्त्रियश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं, दैवो न जानाति कुतो मनुष्यः—इस प्रकार के भाव स्त्रियों के व्यवहार से दुःखित होकर प्रायः प्रत्येक भाषा के कवियों ने व्यक्त किये हैं। किन्तु तिरुवल्लुवर ने कहीं भी ऐसी बात नहीं कही। जहाँ तपोमूर्ति वासुकी प्रसन्न सलिला मन्दाकिनी की भाँति उनके जीवन-वन को हरा-भरा और कुसुमित कर रही हो, वहाँ इस प्रकार की भावना ही कैसे उठ सकती है ? तिरुवल्लुवर ने तो जहाँ कहा है, इसी ढङ्ग से कहा है कि जो स्त्री बिस्तर से उठते ही अपने पति की पूजा करती है, जल से भरे हुए बादल भी

उसका कहना मानते हैं और वह शायद उन के अनुभव की बात थी।

वासुकी जब तक जीवित रहीं, बड़े आनन्द से उन्होंने गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत किया और उसके मरने के बाद वे संसार त्याग कर विरक्त की भाँति रहने लगे। कहा जाता है कि जीवन की सहचरी के कभी न मिटने वाले वियोग के समय तिरुवल्लुवर के मुख से एक पद निकला था जिसका आशय यह है:—

"ऐ प्रिये! तू मेरे लिये स्वादिष्ट भोजन बनाती थी और तूने कभी मेरी आज्ञा की अवहेलना नहीं की! तू रात को मेरे पैर दबाती थी, मेरे सोजाने के बाद सोती थी और मेरे जागने से पहिले जाग उठती थी! ऐ सरले! सो तू क्या आज मुझे छोड़ कर जा रही है? हाय! अब इन आँखों में नींद कब आयेगी?"

यह एक तापस हृदय का रुदन है। सम्भव है, ऐसी स्त्री के वियोग पर भावुक-हृदय अधिक उद्वेग-पूर्ण, अधिक करुण-क्रन्दन करना चाहे, पर यह एक घायल आत्मा का संयत चीत्कार है जिसे अनुभव ही कुछ अच्छी तरह समझ सकता है। हाँ, वासुकी यदि देवी थी तो तिरुवल्लुवर भी निस्सन्देह संत थे। वासुकी के जीवन-काल में तो वह उसके थे ही पर उसकी मृत्यु के बाद भी उसका स्थान उसका ही बना रहा।

कुछ विद्वानों को इसमें सन्देह है कि तिरुवल्लुवर का जन्म अछूत जाति में हुआ। उनका कहना है कि उस समय आज कल के **king's Steward** के समान 'वल्लुवन' नाम का एक पद था और 'तिरु' सम्मानार्थ उपसर्ग लगाने से तिरुवल्लुवर नाम बन गया है। यह एक कल्पना है जिसका कोई विशेष आधार अभी तक

वल्लुवर जब कपड़ा बुन रहे थे तब उन्होंने वेन को हाथ से गिरा दिया और उसे ढूँढने के लिये चिराग़ मँगाया। बेचारी वासुकी दिन में दिया जलाकर, आँखों के सामने, रोशनी में, फर्श पर पड़े हुए वेन को ढूँढने चली। उसे इस बात के बेतुकेपन पर ध्यान देने की फ़ुरसत ही कहाँ थी?

बस, तिरुवल्लुवर का उस संत को यही जवाब था। यदि स्त्री सुयोग्य और आज्ञाधारिणी हो तो सत्य की शोध में जीवन खपाने वाले विद्वानों और सूफ़ियों के लिये भी विवाहित जीवन वांछनीय और परमोपयोगी है। अन्यथा यही बेहतर है कि मनुष्य जीवन भर अकेला और अविवाहित रहे। स्त्री वास्तव में गृहस्थ-धर्म का जीवन-प्राण है। घर के छोटे से प्राङ्गण को स्त्री स्वर्ग बना सकती है और स्त्री ही उसे नरक का रूप दे सकती है। इसी ग्रन्थ में तिरुवल्लुवर ने कहा है "स्त्री यदि सुयोग्य है, तो फिर ग़रीबी कैसी? और स्त्री यदि योग्य नहीं हो फिर अमीरी कहाँ है?" Frailty thy name is women—दुर्बलते, तेरा ही नाम स्त्री है, ढोल-गँवार-शूद्र-पशु-नारी; स्त्रियश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं, दैवो न जानाति कुतो मनुष्यः—इस प्रकार के भाव स्त्रियों के व्यवहार से दुःखित होकर प्रायः प्रत्येक भाषा के कवियों ने व्यक्त किये हैं। किन्तु तिरुवल्लुवर ने कहीं भी ऐसी बात नहीं कही। जहाँ तपोमूर्ति वासुकी प्रसन्न सलिला मन्दाकिनी की भाँति उनके जीवन-वन को हरा-भरा और कुसुमित कर रही हो, वहाँ इस प्रकार की भावना ही कैसे उठ सकती है? तिरुवल्लुवर ने तो जहाँ कहा है, इसी ढङ्ग से कहा है कि जो स्त्री बिस्तर से उठते ही अपने पति की पूजा करती है, जल से भरे हुए बादल भी

उसका कहना मानते हैं और वह शायद उन के अनुभव की बात थी।

वासुकी जब तक जीवित रहीं, बड़े आनन्द से उन्होंने गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत किया और उसके मरने के बाद वे संसार त्याग कर विरक्त की भाँति रहने लगे। कहा जाता है कि जीवन की सहचरी के कभी न मिटने वाले वियोग के समय तिरुवल्लुवर के मुख से एक पद निकला था जिसका आशय यह है:—

"ऐ प्रिये! तू मेरे लिये स्वादिष्ट भोजन बनाती थी और तूने कभी मेरी आज्ञा की अवहेलना नहीं की! तू रात को मेरे पैर दबाती थी, मेरे सोजाने के बाद सोती थी और मेरे जागने से पहिले जाग उठती थी! ऐ सरले! सो तू क्या आज मुझे छोड़ कर जा रही है? हाय! अब इन आँखों में नींद कब आयेगी?"

यह एक तापस हृदय का रुदन है। सम्भव है, ऐसी स्त्री के वियोग पर भावुक-हृदय अधिक उद्वेग-पूर्ण, अधिक करुण-क्रन्दन करना चाहे, पर यह एक घायल आत्मा का संयत चीत्कार है जिसे अनुभव ही कुछ अच्छी तरह समझ सकता है। हाँ, वासुकी यदि देवी थीं तो तिरुवल्लुवर भी निस्सन्देह संत थे। वासुकी के जीवन-काल में तो वह उसके थे ही पर उसकी मृत्यु के बाद भी उसका स्थान उसका ही बना रहा।

कुछ विद्वानों को इसमें सन्देह है कि तिरुवल्लुवर का जन्म अछूत जाति में हुआ। उनका कहना है कि उस समय आज कल के **king's Steward** के समान 'वल्लवन' नाम का एक पद था और 'तिरु' सम्मानार्थ उपसर्ग लगाने से तिरुवल्लुवर नाम बन गया है। यह एक कल्पना है जिसका कोई विशेष आधार अभी तक

नहीं मिला। यह कल्पना शायद इसलिये की गई है कि तिरुवल्लुवर की 'अछूतपन' से रक्षा की जाय। किन्तु इससे और तो कुछ नहीं, केवल मन की अस्वस्थता और दुर्बलता ही प्रकट होती है। किसी महात्मा के महत्त्व की इससे तिल भर भी वृद्धि नहीं होती कि वह किसी जाति विशेष में पैदा हुआ है। सुन्दर चरित्र और उच्च विचार आज तक किसी देश अथवा समुदाय विशेष की बपौती नहीं हुए हैं और न उन पर किसी का एकाधिपत्य कभी हो ही सकता है। सूर्य के प्रकाश की तरह ज्ञान और चारित्र्य भगवान की यह दो सुन्दरतम विभूतियाँ भी इस प्रकार के भेद-भाव को नहीं जानतीं। जो खुले दिल से उनके स्वागत के लिये तैयार होता है, बस उसी के प्राङ्गण में निर्द्वन्द्व और निस्सङ्कोच-भाव से ये जाकर खेलने लगती हैं।

तिरुवल्लुवर का धर्म

तिरुवल्लुवर किस विशिष्ट सम्प्रदाय के अनुयायी थे, यह विषय बड़ा ही विवादग्रस्त है। शैव, वैष्णव, जैन और बौद्ध सभी उन्हें अपना बनाने की चेष्टा करते हैं। इन सम्प्रदायों की कुछ बातें इस ग्रन्थ में मिलती अवश्य हैं पर यह नहीं कहा जा सकता कि वह इनमें से किसी सम्प्रदाय के पूर्णतः अनुयायी थे। यदि एक मत के अनुकूल कुछ बातें मिलती हैं तो कुछ बातें ऐसी भी मिलती हैं जो उस मत को मान्य नहीं हैं। मालूम होता है कि तिरुवल्लुवर एक उदार धर्म-निष्ठ पुरुष थे, जिन्होंने अपनी आत्मा को किसी मत-मतान्तर के बन्धन में नहीं पड़ने दिया बल्कि सच्चे रत्न-पारखी

की भाँति जहाँ जो दिव्य रत्न मिला, उसे वहीं से ग्रहण कर अपने रत्न-भण्डार की अभिवृद्धि की। धर्म-पिपासु भ्रमर की भाँति उन्होंने इन मतों का रसास्वादन किया पर किसी पुष्प-विशेष में अपने को फँसने नहीं दिया बल्कि चतुरता के साथ सुन्दर से सुन्दर फूल का सार ग्रहण कर उससे अपनी आत्मा को प्रफुल्लित, आनन्दित और विकसित किया और अन्त में अपने उस सार-भूत ज्ञान-समुच्चय को अत्यन्त ललित और काव्य-मय शब्दों में संसार को दान कर गये।

एक बात बड़ी मजेदार है। हिन्दू-धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों की तरह ईसाई लोगों ने भी वह दावा पेश किया है कि तिरुवल्लुवर के शब्दों में ईसा के उपदेशों की प्रतिध्वनि है और एक जगह तो कुरल के ईसाई अनुवादक महाशय, डा. पोप यहाँ तक कह उठे—"इसमें सन्देह नहीं कि ईसाई धर्म का उस पर सब के अधिक प्रभाव पड़ा था।" इन लोगों का ऐसा विचार है कि तिरुवल्लुवर की रचना इतनी उत्कृष्ट नहीं हो सकती थी यदि उन्होंने सेन्ट टामस से मयलापुर में ईसा के उपदेशों को न सुना होता। पर आश्चर्य तो यह है कि अभी यह सिद्ध होना बाकी है कि सेन्ट टामस और तिरुवल्लुवर का कभी साक्षात्कार भी हुआ था या नहीं। केवल ऐसा होने की सम्भावना की कल्पना करके ही ईसाई लेखकों ने इस प्रकार की बातें कही हैं और उनके ऐसा लिखने का कारण भी है, जो उनके लेखों से भी व्यक्त होता है। वह यह कि उनकी दृष्टि में ईसाई-धर्म ही सर्वोत्कृष्ट धर्म है, और इतनी उच्चता और पवित्रता अन्यत्र कहीं मिल ही नहीं सकती। यह तो वे समझ ही कैसे सकते हैं कि भारत भी स्वतंत्र रूप से इतनी ऊँची कल्प-

नयें कर सकता है ? पर यदि उनको यह मालूम हो जाय कि उनका प्यारा ईसाई-धर्म ही भारत के एक महान् धर्म की प्रेरणा और स्फूर्ति से पैदा हुआ है, और उसकी देशानुरूप बताई हुई नकल है तब तो शायद गर्वोक्ति मुँह की मुँह में ही विलीन हो जायगी।

ईसाई-धर्म उच्च है, इसमें सन्देह नहीं। ईसा के बालक-समान विशुद्ध और पवित्र हृदय से निकला हुआ 'पहाड़ पर का उपदेश' निस्सन्देह बड़ा ही उत्कृष्ट, हृदय को ऊँचा उठाने वाला और आत्मा की मधुर से मधुर तंत्री को झंकृत कर अपूर्व आनन्द देने वाला है। उनके कहने का ढङ्ग अपूर्व है, मौलिक है; पर वैसे ही भावों की मौलिकता का भी दावा नहीं किया जा सकता। जिन्होंने उपनिषदों और ईसा के उपदेशों का अध्ययन किया है, वे दोनों की समानता को देखकर चकित रह जाते हैं और यह तो सब मानते ही हैं कि उपनिषद् ईसा से बहुत पहिले के हैं। बौद्ध-धर्म और ईसाई-धर्म की समानता पर तो खासी चर्चा हो ही रही है और यह भी स्पष्ट है कि बुद्ध की शिक्षा उपनिषद्-धर्म का नया रूप है।

* प्रोफ़ेसर मैक्समूलर अपने एक मित्र को लिखते हैं:—

"I fully sympathise with you and I think I can say of myself that I have all my life worked in the same spirit that speaks from your letter, so much so that any of your friends could prove to me what they seem to have said to you namely, 'that christianity was but an inferior copy of a greater original. I should bow and

accept the greater original. That there are startling coincidences between Buddhism and christianity, can not be denied and it must likewise be admitted that Buddhism existed atleast 400 years before christianity. I go even further and should feel extremly grateful if any body would point out to me the historical channels through which Buddhism had influenced early christianity. I have been looking for such channels all my life but I have found none."—Maxmuller's letter's on Buddhism.

इसका आशय यह है—"मैं आप से पूर्णतः सहमत हूँ और अपने विषय में तो मैं कह सकता हूँ कि अपने जीवन भर मैंने उसी भावना से कार्य किया है कि जो आपके पत्र से व्यक्त होती है। यहाँ तक कि यदि आपके मित्रों में से कोई इस बात के प्रमाण दे सके जो कि मालूम होता है, उन्होंने आप से कही हैं अर्थात् 'क्रिश्चियानिटी एक महान् मूल-धर्म की छोटी सी प्रति लिपि मात्र है' तो मैं उस महान् मूल-धर्म को सिर झुका कर स्वीकार कर लूंगा। इससे तो इन्कार किया हा नहीं जा सकता कि बौद्ध-धर्म और ईसाई-धर्म में चौंका देने वाली समानता है और इसको भी स्वीकार ही करना पड़ेगा कि बौद्ध-धर्म क्रिश्चियनिटी से कम से कम ४०० वर्ष पूर्व मौजूद था। मैं तो यह भी कहता हूँ कि मैं बहुत ही कृतज्ञ हूँगा यदि कोई मुझे उन ऐतिहासिक स्रोतों का पता देगा कि जिनके द्वारा प्रारम्भिक क्रिश्चियानिटी पर बौद्ध-

धर्म का प्रभाव पड़ा था । मैं जीवन भर उन स्रोतों की तलाश में रहा हूँ लेकिन अभी तक मुझे उनका पता नहीं मिला ।"

बौद्ध-धर्म की प्रचार-शक्ति बड़ी जबरदस्त थी । बौद्धभिक्षु-संघ संसार के महान् संगठनों का एक प्रबल उदाहरण है, जिसमें राजकुमार और राजकुमारियाँ तक आजन्म ब्रह्मचर्यव्रत धारण कर बौद्ध-धर्म के प्रचार के लिये अपने जीवन को अर्पित कर देते थे। अशोक की बहिन राजकुमारी सङ्घमित्रा ने सिंहलद्वीप में जाकर बौद्ध-धर्म की दीक्षा दी थी । बर्मा, आसाम, चीन, और जापान में तो बौद्ध-धर्म अब भी मौजूद है । पर पश्चिम में भी बौद्ध-भिक्षु अफ़गानिस्तान, फारस और अरब तक भारत के प्राचीन धर्म के इस नवीन संस्करण का शुभ्र उपदेश लेकर पहुँचे थे । तब कौन आश्चर्य है यदि बौद्ध भिक्षुओं के द्वारा प्रतिपादित उदात्त और उच्च धर्म-तत्वों के बीजों को पैलस्टाइन की उर्वरा भूमि ने अपने उदर में स्थान दे, नवीन धर्म-बालक को पैदा किया हो । बहरहाल यह निर्विवाद है कि क्षमा और अहिंसा आदि उच्च तत्वों की शिक्षा के लिये तिरुवल्लुवर को क्रिश्चियानिटी का मुँह ताकने की आवश्यकता न थी । उनका सुसंस्कृत सन्त-हृदय इन उच्च भावनाओं की स्फूर्ति के लिये उर्वर क्षेत्र था । फिर लाखों वर्ष की पुरानी, संसार की प्राचीन से प्राचीन और बड़ी से बड़ी संस्कृति उन्हें विरासत में मिली थी। जहाँ 'धृतिः क्षमा' और 'अहिंसा परमो धर्मः' उपकारिषु यः साधुः, साधुत्वे तस्य को गुणः । अपकारिषु यः साधु स साधुः सद्भिरुच्यते' आदि शिक्षाएँ भरी पड़ी हैं ।

रचना-काल

ऊपर कहा गया है कि एलेला शिङ्गन नाम का एक व्यापारी

समान तिरुवल्लुवर का मित्र था। कहा जाता है कि यह शिङ्गन इसी नाम के चोल वंश के राजा का छठा वंशज था जो लगभग २०६० वर्ष पूर्व राज्य करता था और सिंहलद्वीप के महावंश से मालूम होता है कि ईसा से १४० वर्ष पूर्व उसने सिंहलद्वीप पर चढ़ाई की, उसे विजय किया और वहाँ अपना राज्य स्थापित किया। इस शिङ्गन और उसके उक्त पूर्वज के बीच में पाँच पीढ़ियें आती हैं और प्रत्येक पीढ़ी ५० वर्ष की मानें तो हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि पहिली शताब्दि के लगभग कुरल की रचना हुई होगी।

परम्परा से यह जन-श्रुति चली आती है कि कुरल अर्थात् तामिल वेद पहिले पहिल पांड्य राजा 'उग्रवेरु वळुदि' के राज्य-काल में मदुरा के कवि-समाज में प्रकाश में आया। श्रीमान् एम. श्रीनिवास अय्यङ्गर ने उक्त राजा का राज्यारोहण काल १२५ ईसवी के लगभग सिद्ध किया है। इसके अतिरिक्त तामिल-वेद के छठे प्रकरण का पाँचवाँ पद 'शिलप्पधिकरम्' और 'मणि-मेखलै' नामक दो तामिल ग्रन्थों में उद्धृत किया गया है और ये दोनों ग्रन्थ, कुछ विद्वानों का कहना है कि ईसा की दूसरी शताब्दि में लिखे गये हैं। किन्तु 'चेरन-चेन-कुट्टवन' नामक ग्रन्थ के विषय में लिखते हुए श्रीमान् एम. राघव अय्यङ्गर ने यह बतलाया है कि उपरोक्त दोनों पुस्तकें सम्भवतः पाँचवीं शताब्दि में लिखी गई हैं।

इन तमाम बातों का उल्लेख करके श्रीयुत वी. वी. एस. अय्यर इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि पहली और तीसरी शताब्दि के मध्य में तिरुवल्लुवर का जन्म हुआ। उक्त दो ग्रन्थ यदि पाँचवीं शताब्दि

में बने हों तब भी इस निश्चय को कोई बाधा नहीं पहुँचती क्योंकि उद्धरण दो शताब्दि बाद भी दिया जा सकता है। इससे पाठक देखेंगे कि आज जो ग्रन्थ-रत्न वे देखने चले हैं, वह लगभग १४०० वर्ष पहिले का बना हुआ है और उसके रचयिता एक ऐसे विद्वान् सन्त हैं जिन्हें जैन, वैष्णव, शैव, बौद्ध और ईसाई सभी अपना बनाने के लिये लालायित हैं। किन्तु वे किसी के पाश में आवद्ध न होकर स्वतंत्र वायु-मण्डल में विचरण करते रहे और वहाँ से उन्होंने संसार को निर्लिप्त-निर्विकार रूप में अपना अमृत-मय उपदेश सुनाया है।

अन्तर-दर्शन

तामिल वेद में तिरुवल्लुवर ने धर्म, अर्थ और काम इन पुरुषार्थ-त्रय पर पृथक् २ तीन प्रकरणों में ऊँचे से ऊँचे विचार अत्यन्त सूक्ष्म और सरस रूप में व्यक्त किये हैं। श्रीयुत वी. वी. एस. अय्यर ने कहा है—"मलयपुर के इस अछूत जुलाहे ने आचार-धर्म की महत्ता और शक्ति का जो वर्णन किया है, उससे संसार के किसी धर्म-संस्थापक का उपदेश अधिक प्रभावयुक्त या शक्तिप्रद नहीं है; जो तत्व इसने बतलाये हैं, उनसे अधिक सूक्ष्म बात भीष्म या कौटिल्य, कामंदक या रामदास, विष्णुशर्मा या माइकेवेली ने भी नहीं कही है; व्यवहार का जो चातुर्य इसने बतलाया है, उससे अधिक "बेचारे रिचार्ड" के पास भी कुछ नहीं है; और प्रेमी के हृदय और उसकी नानाविध वृत्तियों पर जो प्रकाश इसने डाला है, उससे अधिक पता कालिदास या शेक्सपियर को भी नहीं है!"

यह एक भक्त हृदय का उल्लास है और सम्भव है इसमें उछलते हुये हृदय की लालिमा का कुछ अधिक गहरा आभास आ गया हो। किन्तु जो बात कहीं गई है, उसके कहने का और सत्य के निकट-तम सामीप्य में ले जाने का, यह एक ही ढङ्ग है। जीवन को उच्च और पवित्र बनाने के लिये जिन तत्वों की आवश्यकता है उनका विश्लेषण धर्म के प्रकरण में आ गया है। राजनीति का गम्भीर विषय बड़ी ही योग्यता के साथ अर्थ के प्रकरण में प्रतिपादित हुआ है और गार्हस्थ्य प्रेम की सुस्निग्ध पवित्र आभा हमें कुरल के अन्तिम प्रकरण में देखने को मिलती है। * यह शायद बहुत बड़ी अतिशयोक्ति नहीं होगी यदि यह कहा जाय कि महान धर्म-ग्रन्थों को छोड़ कर संसार में बहुत थोड़ी ऐसी पुस्तकें होंगी कि जो इसके मुक़ाबिले की अथवा इससे बढ़ कर कही जा सकें। एरियल नामक अँग्रेज़ का कहना है कि कुरल मानवी विचारों का एक उच्चातिउच्च और पवित्र-तम उद्गार है। गोवर नाम के एक दूसरे योरोपियन का कथन है-'यह तामिल जाति की कविता तथा नीति-सम्बन्धी उत्कृष्टता का निस्सन्देह वैसा ही ऊँचे से ऊँचा नमूना है जैसा कि यूनानियों में 'होमर' सदा रहा है।'

धर्म

तिरुवल्लुवर ने ग्रन्थ के आरम्भ में प्रस्तावना के नाम से चार परिच्छेद लिखे हैं। पहिले परिच्छेद में ईश्वर-स्तुति की है और वहीं पर एक गहरे और सदा ध्यान में रखने लायक अमूल्य

---

* यह प्रकरण पृथक्, सुन्दर और सचित्र रूप में प्रकाशित होगा।
—लेखक

सिद्धान्त की घोषणा करते हुए कहा है–"धन, वैभव और इन्द्रिय-सुख के तूफ़ानी समुद्र को वही पार कर सकते हैं कि जो उस धर्म-सिन्धु मुनीश्वर के चरणों में लीन रहते हैं !" संसार में रहने वाले प्रत्येक मनुष्य को यह सांसारिक प्रलोभन बड़े वेग के साथ चारों ओर से आ घेरते हैं। और कोई भी मनुष्य सच्चा मनुष्य कहलाने का दावा नहीं कर सकता जब तक कि वह जीवन की सड़क पर खेलने वाले इन नटखट शैतानी छोकरों के साथ खेलते हुए अथवा होशियारी के साथ इन्हें अपने रङ्ग में रँग कर इनसे बहुत दूर नहीं निकल जाता। संसार छोड़ कर जंगल में भाग जाने वाले त्यागियों की बात दूसरी है किन्तु इन्हें जब कभी जीवन की इस सड़क पर आने का काम पड़ता है, तब प्रायः इनकी जो गति होती है, उसके उदाहरण संसार के साहित्य में पर्याप्त संख्या में मिलते हैं।

इसीलिये इनसे बचाने के लिये संसार का त्याग अधिक उपयोगी सिद्ध नहीं होता और न संसार के अधिकांश लोग कभी ऐसा ही कर सकते हैं। फिर उस विकार-हीन भगवान् ने अपनी लीला की इच्छा से जब इस संसार की रचना की है तब इन मनोमोहक आकर्षक किन्तु धोखा देने वाली लीलाओं की भूल-भुलैयों से बच कर भाग निकलना ही कहाँ तक सम्भव है। यह संसार मानों बड़ा ही सुन्दर 'लुकीलुकैयों' का खेल है। भगवान् ने हमें अपने से जुदा कर के इस संसार में ला पटका और आप स्वयं इन लीलाओं की भूलभुलैयों के अन्त पर कहीं छिप कर जा बैठे और अब हम अपने उस नटखट प्रियतम से मिलने के लिये छटपटा रहे हैं। हमें चलना होगा, इन्हीं भुलभुलैयों के रास्ते

से, किन्तु एक निर्भय और निष्ठावान हृदय को साथ लेकर जिसका अन्तिम लक्ष्य और कुछ नहीं केवल उसी शरारत के पुतले को जा पकड़ना है। मार्ग में एक से एक सुन्दर दृश्य हमें देखने को मिलेंगे जो हमें अपने ही में लीन हो जाने के लिये आकर्षित करेंगे। भाँति २ के रङ्गमञ्चों से उठी हुई स्वर-लहरियाँ हमें अपने साथ उड़ा ले जाने के लिये आ खड़ी होंगी। कितनी मिन्नत, कितनी खुशामद, कितनी चापलूसी होगी इनकी बातों में—किन्तु हमें न तो इनसे भयभीत होकर भागने की आवश्यकता है और न इन्हें आत्म-समर्पण ही करना है। बाग़ के किनारे खिला हुआ गुलाब का फूल सौन्दर्य और सुगन्ध को भेज कर पास से गुज़रने वाले योगी को आह्वान करता है किन्तु वह एक सुस्निग्ध दृष्टि डालता हुआ सदय मधुर मुस्क्यान के साथ चला जाता है। ठीक वैसे ही हमें भी इन प्रलोभनों के बीच में से होकर गुज़रना होगा।

इतना ही क्यों, यदि हमारा लक्ष्य स्थिर है, तो हम उस खिलाड़ी की कुछ लीलाओं का निर्दोष आनन्द भी ले सकते हैं और उसके कौशल को समझने में समर्थ हो सकते हैं। जो लक्ष्य को भूल कर मार्ग में खेलनें लगता है, उसे तो सदा के लिये गया समझो; किन्तु जिसका लक्ष्य स्थिर है, जिसके हृदय में प्रियतम से जाकर मिलने की सदा प्रज्वलित रहने वाली लगन है, वह किसी समय फ़िसलने वाली ज़मीन पर आकर फिसल भी पड़े, तब भी विशेष हानि नहीं। उसे फ़िसलता हुआ देख कर उसके साथी हँसेंगे, तालियाँ बजायेंगे, और तो और हमारे उस प्रभु के अधरों पर भी एक सदय मुस्क्यान आये बिना शायद न रहे, किन्तु वह धीरे

से उठेगा और कपड़े पोंछ कर चल देगा और देखेगा कि उसके साथी अपनी बिखरी हुई हँसी को अभी समेटने भी नहीं पाये हैं कि वह बहुत दूर निकल आया है ! यात्रा की यह विषमता ही तो सच्चे यात्री का आनन्द है । सैनिक के जीवन का सब से अधिक स्वादिष्ट क्षण वही तो होता है न कि जब वह चारों ओर दुर्बल शत्रुओं से घिर जाने पर अपनी युद्ध-कला का आत्यन्तिक प्रयोग करके उन पर विजय पाता है ?

इसीलिये संसार के प्रलोभनों से भयभीत न होकर और पतन के भूत से अपनी आत्मा को दुर्बल न बना कर संसार के जो काम हैं, उन्हें हमें करना चाहिये । किन्तु हमारे उद्योगों का लक्ष्य वही धर्म-सिन्धु मुनीश्वर के चरण हों । यदि हम उन चरणों में लीन रहेंगे तो धन-वैभव और इन्द्रिय-सुख का तूफ़ानी समुद्र हमारे अधीन होगा और हम उस पर चढ़ कर उन चरणों के पास पहुँचने में समर्थ होंगे । भगवान् कृष्ण ने ५००० वर्ष पूर्व इसी मार्ग का दिग्दर्शन कराते हुए कहा था—

> यत्करोषि यदश्नासि, यज्जुहोषि ददासि यत् ।
> यत्तपस्यसि कौन्तेय, तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥

अपनी इच्छा की प्रेरणा से नहीं, अपनी वासना के वशीभूत होकर नहीं, बल्कि भगवान् की प्रसन्नता के लिये, ईश्वर के चरणों में भेंट करने के लिये जो मनुष्य काम करने की अपनी आदत डालेगा उसे संसार में रहते हुए, संसार के काम करते हुए भी संसार के प्रलोभन अपनी ओर आकर्षित न कर सकेंगे और न वह तूफ़ानी समुद्र अपने गर्त में डाल कर उसे हजम कर सकेगा ।

प्रस्तावना के चौथे तथा अन्तिम परिच्छेद में धर्म की महिमा का वर्णन करते हुए तिरुवल्लुवर कहते हैं:—

"अपना मन पवित्र रक्खो—धर्म का समस्त सार बस एक इसी उपदेश में समाया हुआ है।" (४. ३४.)

सदाचार का यह गम्भीर सूत्र है। प्रायः काम करते समय हमारे मन में अनेकों सन्देह पैदा होते हैं उस समय क्या करें और क्या न करें इसका निश्चय करना बड़ा कठिन हो जाता है। गीता में भी कहा है—'किं कर्म किमकर्मेति, कवयोऽप्यत्र मोहिताः' (४. १६.) क्या कर्म है और क्या अकर्म है, इसका निर्णय करने में कवि अर्थात् बहुश्रुत विद्वान् भी मोह में पड़ जाते हैं। किसी ने कहा भी है—'स्मृतयोरनेकाः श्रुतयो विभिन्नाः। नैको ऋषिर्यस्य वचः प्रमाणम्'। अनेकों स्मृतियाँ हैं, श्रुतियाँ भी विभिन्न हैं और ऐसा एक भी ऋषि नहीं है जिसकी सभी बातें सभी समयों के लिये हम प्रमाण-स्वरूप मान लें'। ऐसी अवस्था में धर्माधर्म अथवा कर्माकर्म का निर्णय कर लेना बड़ा कठिन हो उठता है।

वास्तव में यदि हम ध्यानपूर्वक देखें तो हमें मालूम होगा कि हम बड़े हों अथवा छोटे, बड़े भारी विद्वान् हों अथवा अत्यन्त साधारण मनुष्य। हम जब कभी भी जो कुछ भी काम करते हैं, अपने मन की प्रेरणा से ही करते हैं। मनुष्य जब किसी विषय का निर्णय करने चलता है तब वह उस विषय के विद्वानों की पक्ष-विपक्ष सम्मतियों को तोलता है और एक ओर निर्णय देता है, पर उसका निर्णय होता है उसी ओर जिस ओर उसका मन होता है क्योंकि वह उसी पक्ष की युक्तियों को अच्छी तरह समझ सकता है और उन्हीं को पसन्द

करता है। जयचन्द्र के हृदय में ईर्ष्या का साम्राज्य था, इसीलिये देश को गुलाम बनाने का भय भी उसे अपने गर्हित कार्य से न रोक सका। विभीषण के हृदय में न्याय और धर्म का भाव था इसीलिये भातृ-प्रेम और स्वदेश की ममता को छोड़कर वह राम से आ मिला। भीष्म पितामह सब कुछ समझते हुए भी दुर्योधन के अन्न से पले हुए मन की प्रेरणा के कारण अधर्म की ओर से लड़ने को बाध्य हुए। राम ने सौतेली माता की आज्ञा से पिता की आन्तरिक इच्छा के विरुद्ध वनवास ग्रहण किया। परशुराम ने पिता की इच्छा से अपनी जननी का वध किया। कृष्ण को कौरव-पाण्डवों को आपस में लड़ाकर भारत को निर्वीर्य बना देने में भी सङ्कोच न हुआ।

इन सब कार्यों के ऊपर शासन करने वाली वही मन की प्रवृत्ति थी। राम के जानकी-त्याग में इस प्रवृत्ति का एक ज़बरदस्त उदाहरण है। आज भी लोग राम के त्याग की इस पराकाष्ठा को समझ नहीं पाते, पर उसे समझने के लिये हमें तर्क और बुद्धि को नहीं, राम के मन को समझना होगा। जब मन का चारों ही ओर इतना ज़बरदस्त प्रभाव है तब तिरुवल्लुवर का यह कहना ठीक ही है कि मन को पवित्र रक्खो यही समस्त धर्म का सार है। मनु ने भी कहा है—'सत्य-पूतां वदेत् वाच, मनः पूतं समाचरेत्'। कालिदास लिखते हैं—'सतां हि संदेहपदेषु वस्तुषु, प्रमाणमन्तः करण-प्रवृत्तयः!' (शाकुन्तल १. २.) सत्पुरुष सन्दिग्ध बातों में अपने अन्तःकरण के आदेश को ही प्रमाण मानते हैं और सच तो यह है कि हमारी विद्या और बुद्धि, हमारा ज्ञान और विज्ञान कार्य के समय कुछ भी काम न आयेगा यदि हमने मन को पहिले ही

से सुसंस्कृत नहीं कर लिया है। क्या यह अक्सर ही देखने में नहीं आता कि बड़े २ विद्वान् अपनी तर्क-सिद्ध बातों के विरुद्ध काम करते हुए पाये जाते हैं। इसका कारण और कुछ नहीं केवल यही है कि हम अच्छी बातों को बुद्धि से तो ग्रहण कर लेते हैं पर उन्हें मन में नहीं उतारते। इसलिये कोठे की तरह बुद्धि में ज्ञान भरते रहने की अपेक्षा हमें अपने मन को संस्कृत करने की ओर अधिक ध्यान देना चाहिये।

परन्तु मन की पूर्ण शुद्धि और पवित्रता एक दिन अथवा एक वर्ष का काम नहीं है। इसमें वर्षों और जन्मों के अभ्यास की आवश्यकता है। हम जब से दुनिया में आते हैं, जब से होश सम्हालते हैं, तब से हमारे मन पर संस्कार पड़ने शुरु हो जाते हैं। इसलिये पवित्रता और पूर्णता के तीर्थ की ओर जाने वाले यात्री को इसका सदा ध्यान रखने की आवश्यकता है। यह काम धीरे धीरे जरूर होता है पर शुरू हो जाने पर यह नष्ट नहीं होता; भगवान् कृष्ण स्वयं इसकी ज़मानत देते हैं—

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति, प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य, त्रायते महतो भयात्॥

कर्मयोग मार्ग में एक बार आरम्भ कर देने के बाद कर्म का नाश नहीं होता और विघ्न भी नहीं होवे। इस धर्म का थोड़ा सा भी आचरण बड़े भय से संरक्षण करता है (गीता, अ० २ श्लो० ४०)

गृहस्थ का जीवन

ऋषि तिरुवल्लुवर ने धर्म-प्रकरण को दो भागों में विभक्त किया है। एक का शीर्षक है गृहस्थ का जीवन और दूसरा तपस्वी का

जीवन। यह बात देखने योग्य है कि जीवन की चर्चा में गार्हस्थ्य-धर्म को तिरुवल्लुवर ने कितना महत्व दिया है और वह उसे कितनी गौरव-पूर्ण दृष्टि से देखते हैं। प्रायः देखा जाता है कि जो ऊँची आत्मायें एक बार गृहस्थ-जीवन में प्रवेश कर चुकी हैं, वे इस मोह से छूटने अथवा उसमें न पड़ने का सन्देश देना ही संसार के लिये कल्याणकारी समझती हैं। यह सन्देश ऊँचा हो सकता है, पूजा करने योग्य हो सकता है किन्तु संसार के अधिकांश मनुष्यों के लिये यह उपदेश उससे अधिक उपयोग की चीज़ नहीं हो सकता। बाल-बच्चों का बोझ लेकर भगवान् के चरणों की ओर यात्रा करने वाले साधारण स्त्री-पुरुषों को ऐसे सन्देश की आवश्यकता है कि जो इन पैदल अथवा बैलगाड़ी में बैठ कर यात्रा करने वाले लाखों जीवों की यात्रा को स्निग्ध-सुन्दर और पवित्र बनाये रहे। अनुभवी तिरुवल्लुवर ने वही किया है। उनका सन्देश प्रत्येक नर-नारी के मनन करने योग्य है। उन्होंने जन-साधारण के लिये आशा का द्वार खोल दिया है।

तिरुवल्लुवर वर्णाश्रम-व्यवस्था को मानते हैं और कहते हैं— 'गृहस्थ आश्रम में रहने वाला पुरुष अन्य तीनों आश्रमों का प्रमुख आश्रय है' (४१) यह एक नित्य सत्य है जिससे कोई इन्कार नहीं कर सकता। गृहस्थ-जीवन की अवहेलना करने वाले लोग भी इस तथ्य को मानने के लिये मजबूर होते हैं और निस्सन्देह जो गृहस्थ अपने गार्हस्थ्य-धर्म का भार वहन करते हुए ब्रह्मचारियों को पवित्र ब्रह्मचर्य-व्रत धारण करने में समर्थ बनाता है, त्यागियों और सन्यासियों को तपश्चर्या में सहायता देता है और अपने भूले-भटके भाइयों को सदय मधुर मुस्क्यान से

उँगली पकड़ कर आगे बढ़ने के लिए उत्साहित करता है, वही तो संसार के मतलब की चीज है। उसे देखकर स्वयं भगवान् अपनी कला अपनी कृति को कृतार्थ समझेंगे। हमारे दाक्षिणात्य ऋषि की घोषणा है—'देखो, गृहस्थ जो दूसरे लोगों को कर्तव्य-पालन में सहायता देता है और स्वयं भी धार्मिक-जीवन व्यतीत करता है, वह ऋषियों से भी अधिक पवित्र है।' (४८) कितना स्पष्ट और बोझ से दबी हुई आत्माओं में आल्हादमयी आशा का संचार करने वाला है यह सन्देश ! तिरुवल्लुवर वहीं पर कहते हैं— "मुमुक्षुओं में श्रेष्ठ वे लोग हैं जो धर्मानुकूल गार्हस्थ्य-जीवन व्यतीत करते हैं।" (४७)

गृहस्थ-आश्रम की नींव में दो ईंटें हैं—स्त्री और पुरुष। इन दोनों में जितनी परिपक्वता, एकात्मीयता होगी, ये दोनों एक दूसरी से जितनी अधिक सटी हुई होंगी, आश्रम की इमारत उतनी ही सुदृढ़ और मजबूत होगी। इन दोनों ही के अन्तःकरण धार्मिकता की अग्नि में पक कर यदि सुदृढ़ बन गये होंगे तो तूफ़ान पर तूफ़ान आयेंगे पर उनका कुछ न बिगाड़ सकेंगे। गार्हस्थ्य-धर्म में स्त्री का दर्जा बहुत ऊँचा है। वास्तव में उसके आगमन से ही गृहस्थ-जीवन का सूत्रपात होता है। इसीलिये गृहस्थ-आश्रम की चर्चा कर चुकते ही तिरुवल्लुवर ने एक परिच्छेद सहधर्मचारिणी के वर्णन पर लिखा है। तिरुवल्लुवर चाहते हैं कि सहधर्मचारिणी में सुपत्नीत्व के सब गुण वर्तमान हों। (५१) स्त्री यदि स्त्रीत्व के गुणों से रहित है तो गार्हस्थ्य-जीवन व्यर्थ है। स्त्री यदि सुयोग्य है तो फिर किसी बात का अभाव नहीं। किन्तु स्त्री के अयोग्य होने पर सब कुछ घर में होते हुए भी मनुष्य के पास

कहने लायक कुछ नहीं होता है। स्त्रीत्व की कोमलतम कल्पना यह है कि वह अपने व्यक्तित्व को ही अपने पति में मिला देती है और इसीलिये वह पुरुष की अर्धाङ्गिनी कहलाती है। यह मानो जीव और ईश्वर के मिलन का एक स्थूल और प्रत्यक्ष भौतिक उदाहरण है और सदा सन्मार्ग का अनुशीलन और अवलम्बन करने से अन्ततः उस स्थिति तक पहुँचा देने में समर्थ है।

'जो स्त्री दूसरे देवताओं की पूजा नहीं करती, मगर बिस्तर से उठते ही अपने पतिदेव को पूजती है—जल से भरे हुए बादल भी उसका कहा मानते हैं।' यह भारतीय भावना सदा से ही रही है और अब तक संस्कार रूप में हमारे अन्दर मौजूद है। इस आदर्श को अपना जीवन-सर्वस्व मान कर व्यवहार करने वाली स्त्रियाँ यद्यपि अब भारतवर्ष में अधिक नहीं हैं फिर भी उनका एक दम ही अभाव नहीं है। आज भी भारत का जन-समूह इस आदर्श को सिर झुका कर मानता है और जिसमें भी यह आदर्श चरितार्थ होता हुआ दिखाई देता है, उसमें राजाओं और महात्माओं से भी अधिक लोगों की श्रद्धा होती है।

स्त्री-स्वातंत्र्य की चर्चा अब भारत में भी फैल रही है। ऐसे काल और ऐसे देश भी इस संसार के इतिहास में अस्तित्व में आये हैं कि जिन में स्त्रियों की प्रभुता थी। आज जो पुरुष के कर्तव्य हैं, उन्हें स्त्रियाँ आगे बढ़ कर दृढ़तापूर्वक करती थीं और पुरुष आजकल की स्त्रियों की भाँति पर मुखापेक्षी होते—अपनी स्त्रियों के सहारे जीवित रहते। अमेजन स्त्रियाँ तो बेतरह पुरुषों से घृणा करतीं, उन्हें अत्यन्त हेय समझतीं। जैसे हम समझते हैं कि पुरुषों में ही पौरुष होता है, वैसे ही यह जाति समझती थी कि

वीरता और दृढ़ता जैसे पौरुष-सूचक कार्यों के लिये स्त्रियाँ ही पैदा हुई हैं। पुरुष निरे निकम्मे और बोदे होते हैं। इसीलिये लड़की पैदा होने पर वे खुशी मनाते और लड़के को जन्मते ही प्रायः मार डालते—

पुरुषों की उपर्युक्त अवस्था निस्सन्देह अवाञ्छनीय और दयनीय है पर भारत के उच्च वर्गों की स्त्रियों की वर्तमान अपङ्गुता भी उतनी ही निन्दनीय है। वांछनीय अवस्था तो यह है कि स्त्री और पुरुष दोनों एक दूसरे को प्रेम-पूर्वक सहायता देते हुए पूर्ण बनने की चेष्टा करें। यह सच है, प्रेम में छुटाई बड़ाई नहीं होती। प्रेम में तो दोनों ही एक दूसरे को आत्म-समर्पण कर देते हैं पर लोक-संग्रह के लिये, गृहस्थी का काम चलाने के लिये यह आवश्यक हो उठता है कि दो में से एक दूसरे की अधीनता स्वीकार करे और वह अधीनता जब प्रेम-रस से सनी हुई होगी तो पराकाष्ठा को पहुँचे बिना न रहेगी; पर यह प्रेमाभिषिक्त नितान्त समर्पण उन्नति में बाधक होने के बजाय दोनों ही के कल्याण का कारण बन जाता है। ऐसी अवस्था में, संसार की स्थिति और भारत की संस्कृति का ध्यान रखते हुए यही ठीक जँचता है कि तिरुवल्लवर के उपर्युक्त आदर्श के अनुसार ही व्यवहार करें।

स्त्री, सुकोमल भावनाओं की प्रतिमूर्ति है; आत्म-त्याग और सहन-शीलता की देवी है। यह उसी से निभ सकता है कि हीनसे हीन मनुष्य को देवता मान कर उसकी पूजा कर सके। 'अन्ध बधिर रोगी अति कोही' आदि विशेषणों वाले पति का भी अपमान न करने का जो उपदेश तुलसीदास जी ने दिया है वह निस्सन्देह बहुत बड़ा है किन्तु यदि संसार में ऐसी कोई स्त्री है कि जो इस

सत्ता की, मालूम होता है, यह आन्तरिक इच्छा है कि स्त्री और पुरुष अपने गुणों और अनुभवों की सारभूत एक प्रतिमूर्ति अपने पीछे अवश्य छोड़ जायँ और इसीलिये काम-वासना जैसा दुर्दमनीय प्रलोभन उसने प्राणियों के पीछे लगा दिया है। किन्तु मनुष्य का यह कर्तव्य है कि वह अपने इस काम को होशियारी के साथ करे। भगवान् का काम इससे पूरा न होगा कि हम अनेकों मानवी कीड़ों-मकोड़ों की अभिवृद्धि करके चल दें। उसकी इच्छा है कि हम संसार के सद्‌गुणों का सञ्चय करें और उस समुच्चय को पुत्र के रूप में मूर्तिमान् बनाकर संसार को दान कर जायँ। हम सुयोग्य सन्तति प्राप्त कर सकते हैं, बशर्ते कि हम उसकी इच्छा करें, उसके लिये चेष्टा करें और अपने को योग्य बनावें।

"पुत्र के प्रति पिता का कर्तव्य क्या है? बस यही कि वह उसे सभा में प्रथम पंक्ति में बैठने योग्य बनाये।" (६७) इसके अतिरिक्त एक ख़ास बात जो तिरुवल्लुवर चाहते हैं वह सन्तान का निष्कलंक आचरण है। इसके लिये वे कहते हैं—"वह पुरुष धन्य है जिसके बच्चों का आचरण निष्कलङ्क है—सात जन्म तक उसे कोई बुराई छू न सकेगी।" (६२) बुद्धिमान्, सदाचारी और योग्य सन्तान तिरुवल्लुवर पसन्द करते हैं और वे चाहते हैं कि माता-पिता इसे अपना कर्तव्य समझें कि वह ऐसी ही सन्तान पैदा करें और शिक्षा-दीक्षा देकर उसे ऐसा ही बनावें। यह बात अब निर्विवाद है कि बालक की शिक्षा उसी समय से शुरू हो जाती है कि जब वह गर्भ में आता है और यह शिक्षा उस समय तक बराबर जारी रहती है जब तक कि वह मृत्यु की गोद में सो नहीं जाता। यह बात भी निस्सन्दिग्ध है कि बाल्य-काल में जो

संस्कार पड़ जाते हैं, वे स्थायी और बड़े ही प्रबल होते हैं। इस-लिये योग्य सन्तान पैदा करने की इच्छा रखने वालों को चाहिये कि वे जैसी सन्तान चाहते हैं, वैसी भावनाओं और वैसे गुणों को अपने अन्दर आश्रय दें और बालक के गर्भ में आने के बाद कोई ऐसी चेष्टा न करें जो बुरी हो। एक बात और है जिसे हम प्रायः भूल जाते हैं। लोग समझते हैं कि बालक तो बालक ही है, वह कुछ सुनता-समझता थोड़े ही है। इसीलिये जो बातें हम समझदार आदमियों के सामने करना पसन्द नहीं करेंगे, उन्हें छोटे २ बच्चों की मौजूदगी में करने में जरा भी नहीं झिझकते।

वास्तव में यह बड़ी भारी भूल है, जिसके कारण बच्चों के विकास पर अज्ञात रूप से भयङ्कर आघात हो रहा है। बच्चे देखने में निर्दोष और भोले-भाले अवश्य हैं पर संस्कार ग्रहण करने की उनमें बड़ी जबरदस्त और अद्भुत शक्ति है। वे जो कुछ देखते और सुनते हैं, उसका सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्रभाव उनपर पड़े बिना नहीं रहता जो आगे चलकर प्रबल बन जाता है। इसलिये यदि बालक अनन्य भाव से अपने खिलौने के साथ खेलने में मस्त हो या चारपाई पर पड़ी हुई किताब को फाड़ने के महान प्रयास में व्यस्त हो तो यह न समझो कि यह निरा बालक है, वह हमारी बातें समझ नहीं सकता; बल्कि वास्तव में यदि यह इच्छा है कि हमारे बालक पर कोई बुरा संस्कार न पड़े तो यह समझ लो कि यह बालक नहीं है स्वयं भगवान् बालक का रूप धारण करके हमारी बातों को देखने और सुनने के लिये आ बैठे हैं।

सन्तान-पालन का उत्तरदायित्व जितना महान है, भगवान्

प्रयास किया है। 'बदनाम लोगों के बोझ से दबे हुए देश को देखो, उसकी समृद्धि भूतकाल में चाहे कितनी ही बड़ी-चढ़ी क्यों न रही हो, धीरे धीरे नष्ट हो जायगी'—इस पद को देखकर अनायास ही भारतवर्ष की याद हो आती है। तिरुवल्लुवर कहते हैं, "वे ही लोग जीते हैं जो निष्कलङ्क जीवन व्यतीत करते हैं और जिनका जीवन कीर्ति-विहीन है, वास्तव में वे ही मुर्दा हैं"। (२३०)

तपस्वी का जीवन

इसके बाद धर्म-प्रकरण के अन्तर्गत तिरुवल्लुवर ने तपस्वी-जीवन की चर्चा की है और इसे उन्होंने संयम और ज्ञान—इन दो भागों में विभक्त किया है। सब से पहिले उन्होंने दया को लिया है। जो मनुष्य अपने पराये के भाव को छोड़ कर एकात्म्य-भाव का सम्पादन करता है उसके लिये सब पर दया करना आवश्यक और अनिवार्य है। 'विकृत चित्त वाले मनुष्य के लिये सत्य को पा लेना जितना सहज है, कठोर हृदय पुरुष के लिये नेकी के काम करना उतना ही आसान है'—यह तिरुवल्लुवर का मत है। दया यदि तपस्वियों का सर्वस्व है तो वह गृहस्थों का सर्वोच्च भूषण है।

तपस्वी जीवन में तिरुवल्लुवर मक्कारी को बहुत बुरा समझते हैं। "खुद उसके ही शरीर के पंचतत्व मन ही मन उस पर हँसते हैं जब कि वह मक्कार की चालबाजी और ऐयारी को देखते हैं।" (२६१) 'विषकुम्भं पयोमुखम्' लोगों को अन्त में पछताना पड़ेगा। ऐसे लोगों को वे घुँघची के सदृश समझते हैं कि

जिसका वाह्य तो सुन्दर होता है पर दिल काला होता है। तिरुवल्लुवर चेतावनी देते हुए कहते हैं—'तीर सीधा होता है और तम्बूरे में कुछ टेढ़ापन होता है, इस लिये आदमियों को सूरत से नहीं बल्कि उनके कामों से पहिचानो।" (२६९)

तिरुवल्लुवर सत्य को बहुत ऊँचा दर्जा देते हैं। एक जगह तो वह कहते हैं—"मैंने इस संसार में बहुत सी चीजें देखी हैं, मगर मैंने जो चीजें देखी हैं उनमें सत्य से बढ़ कर और कोई चीज नहीं है।" (२८०) पर तिरुवल्लुवर ने सत्य का जो लक्षण बताया है, वह कुछ अनूठा है और महाभारत में वर्णित 'यद्भूतहितमत्यन्तं, एतत्सत्यं मतं मम' से मिलता जुलता है। तिरुवल्लुवर पूछते हैं—"सच्चाई क्या है" ? और फिर उत्तर देते हुए कहते हैं, "जिससे दूसरों को किसी तरह का जरा भी नुकसान न पहुँचे, उस बात को बोलना ही सच्चाई है।" (२७१) मुझे भय है कि सत्य का यह लक्षण लोगों को प्रायः मान्य न होगा। पर तिरुवल्लुवर यहीं नहीं रुक जाते, वह तो एक कदम और आगे बढ़ कर कहते हैं—"उस झूठ में भी सच्चाई की ख़ासियत है जिसके फल-स्वरूप सरासर नेकी ही होती हो"। (२७२) तिरुवल्लुवर शब्दों में नहीं, सजीव भावना में सत्य की स्थापना करते हैं। जो लोग कड़वी और दूसरों को हानि पहुँचाने वाली बात कहने से नहीं चूकते, बल्कि मन में अभिमान करके कहते हैं, 'हमने तो जो सत्य बात थी वह कह दी।' वह यदि तिरुवल्लुवर द्वारा वर्णित सत्य के लक्षण पर किञ्चित् ध्यान देंगे तो अनुचित न होगा। प्रायः लोग 'सत्य' को ही इष्ट देवता मानते हैं, पर तिरुवल्लुवर सत्य को संसार में सब से बड़ी चीज मानते हुए

भी उसे स्वतंत्र 'साध्य' न मान कर संसार के कल्याण का 'साधन' मानते हैं।

क्रोध न करने का उपदेश देते हुए कहा है—"क्रोध जिसके पास पहुँचता है उसका सर्वनाश करता है और जो उसका पोषण करता है उसके कुटुम्ब तक को जला डालता है।" यह उपदेश जितना तपस्वी के लिए है लगभग उतना ही अन्य लोगों के लिये भी उपादेय है। अहिंसा का वर्णन करते हुए तिरुवल्लुवर उसे ही सब से श्रेष्ठ बताते, और ऐसा मालूम होता है कि वह उस समय यह भूल जाते हैं कि पीछे सत्य को वे सब से बड़ा बता चुके हैं। "अहिंसा सब धर्मों में श्रेष्ठ धर्म है, सच्चाई का दर्जा उसके बाद है।" पर यह जटिल विषमता दूर हो जायगी जब हम यह देखेंगे कि तिरुवल्लुवर के 'सत्य' और 'अहिंसा' की तह में एक ही भावना की प्राणप्रतिष्ठा की हुई है। वास्तव में तिरुवल्लुवर का सत्य ही अहिंसामय है। (देखिये टिप्पणी पद संख्या २९३)

ज्ञान-खण्ड में 'सांसारिक पदार्थों की निस्सारता' 'त्याग' और 'कामना का दमन' आदि परिच्छेद पढ़ने और मनन करने योग्य हैं। तपस्वी-जीवन के अन्तगत जो बातें आई हैं, वे तपस्वियों के लिये तो उपादेय हैं ही पर जो गृहस्थ जितने अंश तक उन बातों का अपने अन्दर समावेश कर सकेगा वह उतना ही उच्च, पवित्र और सफल गृहस्थ हो सकेगा। इसी प्रकार आगे 'अर्थ' के प्रकरण में जो बातें कही गई हैं वे यद्यपि विशेष रूप से राजा और राज्य-तंत्र को लक्ष्य में रख कर लिखी हैं, पर सांसारिक उन्नति की इच्छा रखने वाले सर्वसाधारण गृहस्थ भी अवश्य ही उनसे लाभ उठा सकते हैं।

अर्थ

इस प्रकरण में तिरुवल्लुवर ने विस्तारपूर्वक राजा और राज्य-तन्त्र का वर्णन किया है। कवि की दृष्टि में यह विषय कितना महत्वपूर्ण है, यह इसीसे जाना जा सकता है कि अर्थ का प्रकरण धर्म के प्रकरण से दुगना और काम के प्रकरण से लगभग तिगुना है। राजा और राज्य के लिये जो बातें आवश्यक हैं, उनका व्यावहारिक ज्ञान इसके अन्दर मिलेगा। यदि नरेश इस ग्रन्थ का अध्ययन करें और राजकुमारों को इसकी शिक्षा दिलायें तो उन्हें लाभ हुए बिना न रहे। मद्रास प्रान्त के राजा और ज़मींदार विधिपूर्वक इस ग्रन्थ का अध्ययन करते और अपने बच्चों को पढ़ाते थे। राज-काज से जिन लोगों का सम्पर्क है, उन्हें अर्थ के प्रकरण को एक बार देख जाना आवश्यक है।

नरेशों और ख़ास कर होनहार राजकुमारों को यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि वे मनुष्य हैं। जिनकी सेवा के लिये भगवान् ने उन्हें भेजा है वे स्वयं भी उन्हीं में के हैं। उनका सुख-दुख, उनका हानि-लाभ अपना सुख-दुख और अपना हानि-लाभ है। आज बाल्य-काल से ही उनके और उनके साथियों के बीच में जो भिन्नता की भींत खड़ी कर दी जाती है, वह सुखकर हो ही कैसे सकती है? यह याद दिलाने की ज़रूरत नहीं कि भारतवर्ष के उत्कर्ष-काल में राजकुमार लँगोट बन्द ब्रह्मचारियों की भाँति ऋषियों के आश्रम में विद्याध्ययन करने जाते थे और वहाँ के पवित्र वायु-मण्डल में रहकर शरीर, बुद्धि और आत्मा इन तीनों को विकसित और पुष्ट करते थे। किन्तु आज अस्वाभाविक और विकृत वाता-

चरण में रहकर वे जो कुछ सीख कर आते हैं, वह इस बूढ़े भारत के मर्मस्थल को वेधने वाली राजस्थान की एक दर्द-भरी अकथ कहानी है।

एक बार एक महाराजकुमार के विद्वान् संरक्षक ने मुझ से कहा था कि इन राजाओं का दिमाग़ झूठे अभिमान से इतना भरा रहता है कि वह स्वस्थ-चित्त और विमल मस्तिष्क के साथ विचार नहीं कर सकते और मौक़ा पड़ने पर कूटनीति का मुक़ाबला करने में असमर्थ होते हैं। इसमें इनका क्या दोष? इनकी शिक्षा-दीक्षा ही ऐसी होती है। बचपन से ही स्वार्थी और ख़ुशामदी लोग और कभी २ प्रेमी हितू भी अज्ञानवश उनके इस अभिमान को पोषित करते रहते हैं। इनका अधिकांश समय संसार के सुख-दुःख और कठोर वास्तविकता से परिपूर्ण इस विश्व से परे एक अहम्मन्य काल्पनिक जगत् में ही व्यतीत होता है। वे भूल जाते हैं कि हम संसार के कल्याण के लिये, अपने भाइयों की विनम्र सेवा के लिये भगवान् के हाथ के औज़ार के रूप में अवतीर्ण हुए हैं।

जिनके पूर्वजों ने अपने भुज-बल के सहारे राज्य स्थापित किये, उन्हें बनाया और बिगाड़ा, आज उन्हीं वीरों के वंशज अपने बचे-खुचे गौरव को भी क़ायम रखने में इतने असमर्थ क्यों हैं? जो सिंह-शावक अपनी निर्भीक गर्जना से पार्वत्य कन्दराओं को गुञ्जारित करते थे, आज वे पाले जाते हैं सोने के पिंजड़ों में और वह पहिनते हैं सोने की हथकड़ियाँ और बेड़ियाँ। दूरदर्शी विज्ञान, हृदय के अन्तस्तल में घुसकर उन्हें अपने मतलब की चीज़ बना रहा है। हमारे प्राचीन संस्कार उन्हें भरसक रोकने

की चेष्टा करते हैं और पूर्वजों की वीर आत्मायें उन्हें तड़फड़ा कर आह्वान करती हैं; किन्तु हाय ! यहाँ सुनता कौन है ? सुनकर समझने की और उठकर चलने की अब शक्ति भी कहाँ है ?

उस दिन एक विद्वान् और प्रतिष्ठित नरेश को मैं तामिल वेद के कुछ उद्धरण सुना रहा था। 'वीर योद्धा का गौरव' शीर्षक परिच्छेद सुनकर उन्होंने एक दोहा कहा जिसे मैंने तत्काल उनसे पूछकर लिख लिया कि कहीं भूल न जाऊँ। किन्तु किसी पुण्य-चरित्र चारण का बनाया हुआ वह प्यारा प्यारा पद्य मेरे दिमाग़ से ऐसा चिपका कि फिर भुलाये से भी न भूला। अपने स्थान पर पहुँच कर न जाने कितनी बार मन ही मन मैंने उसे गुनगुनाया और न जाने कितनी बार अपने को भूल कर उसे गाया। मैं गाता था और मेरी चिर-सहचरी कल्पना अभी अभी बीते हुए गौरवशाली राजपूती ज़माने की वीरता को रङ्ग से रंगे हुए चित्रों को चित्रित करती जाती थी। आहा, कैसे सुन्दर, कैसे पवित्र और हृदय को उन्मत्त बना देने वाले थे वे दृश्य। मैं मस्त था और मुझे होश आया उस समय कि जब दरबान ने आकर ख़बर दी कि दीवान साहब मिलने आये हैं।

वह पद्य क्या है, राजपूती हृदय की आन्तरिक वीर भावना का प्रकाश है। महावर लगाने के लिये उद्यत नाइन से एक नव-विवाहिता राजपूत-बाला कहती है—

> नाइन आज न मांड पग, काल सुणाजे जंग।
> धारा लागे सो धणी, तब दीजै धण रंग॥

'अरी नाइन ! सुनते हैं कि कल युद्ध होने वाला है, तब फिर आज यह महावर रहने दे। जब मेरे पति-देव युद्ध-क्षेत्र में वीरता

के साथ लड़ते हुए घायल हों और उनके घावों से लाल लाल रक्त की धार छूटे तब तूँ भी खूब हुलस हुलस कर गहरे लाल रंग की महावर मेरे पैरों में रंगना'। एक वीर सती स्त्री के सौभाग्य की यही तो परम सीमा है।

वह गौरव-शाली सुनहरा ज़माना था कि जब भारत में ऐसी अनेकों स्त्रियाँ मौजूद थीं। उन्होंने भीरु से भीरु मनुष्यों के हृदय में भी रुह फूँक कर बड़ी बड़ी सेनाओं से उन्हें जुझाया है। अतीत काल की वह कहानी ही तो भारत की एक मात्र सम्पत्ति है। हे ईश्वर, हम गिरें तो गिरें पर दया करके हमारी माताओं के कोमल हृदय में एक बार वह अग्नि फिर प्रज्वलित कर दे।

इस पुस्तक का परिचय और उसकी उपलब्धि जिन मित्रों के द्वारा मुझे हुई उनका मैं कृतज्ञ हूँ और जिन लोगों ने इसका अनुवाद करने में प्रोत्साहन तथा सहायता प्रदान की है उन सब का मैं आभार मानता हूँ। श्रीयुत हालास्याम अय्यर बी० ए० बी० एल० का मैं विशेष-रूप से कृतज्ञ हूँ जिन्होंने अनुवाद को मूल तामिल से मिलाने में सहायता प्रदान की। स्वर्गीय श्रीयुत वी० वी० एस अय्यर का मैं चिर-ऋणी रहूँगा जिनके कुरल के आधार पर यह अनुवाद हुआ है। वे तामिल जाति की एक विशिष्ट विभूति थे। मेरी इच्छा थी कि मैं मदरास जाकर सामग्री एकत्रित कर उनके पास बैठ कर यह भूमिका लिखूँ; किन्तु मुझे यह सुन कर दुःख हुआ कि वे अपने स्थापित किये हुए गुरुकुल के एक ब्रह्मचारी को नदी में डूबने से बचाने की चेष्टा में स्वयं डूब गये! उनकी आत्मा यह देख कर प्रसन्न होगी कि उनका प्यारा

श्रद्धा-भाजन ग्रन्थ भारत की राष्ट्र-भाषा में अनुवादित होकर हिन्दी-जनता के सामने उपस्थित हो रहा है।

इस ग्रन्थ की भूमिका श्रीयुत सी. राजगोपालाचार्य ने हमारे निवेदन को स्वीकार कर लिख दी है। आप उसे लिखने के पूर्ण अधिकारी भी थे। अतः हम आपको इस कृपा के लिये हृदय से धन्यवाद देते हैं।

यह ग्रन्थ-रत्न जितना ऊँचा है, उसीके अनुकूल किसी ऊँची आत्मा के द्वारा हिन्दी-जनता के सामने रक्खा जाता, तो निस्सन्देह यह बहुत ही अच्छा होता, पर इसके मनन और घनिष्ठ संसर्ग से मुझे लाभ हुआ है और इसलिये मैं तो अपनी इस अनधिकार चेष्टा का कृतज्ञ हूँ। मुझे विश्वास है कि जिज्ञासु पाठकों को भी इससे अवश्य आनन्द और लाभ होगा। पर मेरे अज्ञान और मेरी अत्यन्त क्षुद्र शक्तियों के कारण इसमें जो त्रुटियाँ रह गई हों, उनके लिये सहृदय विद्वान् मुझे क्षमा करें।

राजस्थान हिन्दी सम्मेलन
अजमेर।
१७-१२-१९२६

मातृ-भाषा का अकिञ्चन सेवक
क्षेमानन्द 'राहत'

के साथ लड़ते हुए घायल हों और उनके घावों से लाल लाल रक्त की धार छूटे तब तूँ भी खूब हुलस हुलस कर गहरे लाल रंग की महावर मेरे पैरों में रंगना'। एक वीर सती स्त्री के सौभाग्य की यही तो परम सीमा है।

वह गौरव-शाली सुनहरा ज़माना था कि जब भारत में ऐसी अनेकों स्त्रियाँ मौजूद थीं। उन्होंने भीरु से भीरु मनुष्यों के हृदय में भी रुह फूँक कर बड़ी बड़ी सेनाओं से उन्हें जुझाया है। अतीत काल की वह कहानी ही तो भारत की एक मात्र सम्पत्ति है। हे ईश्वर, हम गिरें तो गिरें पर दया करके हमारी माताओं के कोमल हृदय में एक बार वह अग्नि फिर प्रज्वलित कर दे।

इस पुस्तक का परिचय और उसकी उपलब्धि जिन मित्रों के द्वारा मुझे हुई उनका मैं कृतज्ञ हूँ और जिन लोगों ने इसका अनुवाद करने में प्रोत्साहन तथा सहायता प्रदान की है उन सब का मैं आभार मानता हूँ। श्रीयुत हालास्याम अय्यर बी० ए० बी० एल० का मैं विशेष-रूप से कृतज्ञ हूँ जिन्होंने अनुवाद को मूल तामिल से मिलाने में सहायता प्रदान की। स्वर्गीय श्रीयुत वी० वी० एस अय्यर का मैं चिर-ऋणी रहूँगा जिनके कुरल के आधार पर यह अनुवाद हुआ है। वे तामिल जाति की एक विशिष्ट विभूति थे। मेरी इच्छा थी कि मैं मदरास जाकर सामग्री एकत्रित कर उनके पास बैठ कर यह भूमिका लिखूँ; किन्तु मुझे यह सुन कर दुःख हुआ कि वे अपने स्थापित किये हुए गुरुकुल के एक ब्रह्मचारी को नदी में डूबने से बचाने की चेष्टा में स्वयं डूब गये! उनकी आत्मा यह देख कर प्रसन्न होगी कि उनका प्यारा

श्रद्धा-भाजन ग्रन्थ भारत की राष्ट्र-भाषा में अनुवादित होकर हिन्दी-जनता के सामने उपस्थित हो रहा है।

इस ग्रन्थ की भूमिका श्रीयुत सी. राजगोपालाचार्य ने हमारे निवेदन को स्वीकार कर लिख दी है। आप उसे लिखने के पूर्ण अधिकारी भी थे। अतः हम आपको इस कृपा के लिये हृदय से धन्यवाद देते हैं।

यह ग्रन्थ-रत्न जितना ऊँचा है, उसीके अनुकूल किसी ऊँची आत्मा के द्वारा हिन्दी-जनता के सामने रक्खा जाता, तो निस्सन्देह यह बहुत ही अच्छा होता, पर इसके मनन और घनिष्ट संसर्ग से मुझे लाभ हुआ है और इसलिये मैं तो अपनी इस अनधिकार चेष्टा का कृतज्ञ हूँ। मुझे विश्वास है कि जिज्ञासु पाठकों को भी इससे अवश्य आनन्द और लाभ होगा। पर मेरे अज्ञान और मेरी अत्यन्त क्षुद्र शक्तियों के कारण इसमें जो त्रुटियाँ रह गई हों, उनके लिये सहृदय विद्वान् मुझे क्षमा करें।

राजस्थान हिन्दी सम्मेलन
अजमेर।
१७-१२-१९२६

मातृ-भाषा का अकिञ्चन सेवक
क्षेमानन्द 'राहत'

लागत का ब्योरा

कागज	... ...	४३०) रु०
छपाई	... ...	३२०) ,,
बाइंडिंग	... ...	६०) ,,
लिखाई, व्यवस्था, विज्ञापन आदि खर्च		४५५) ,,
		१२६५) रु०

बढ़िया कागज़ पर छपी हुई १५०० प्रतियों का लागत मूल्य ७०३)
साधारण कागज़ पर छपी हुई ,, ,, ,, ५६२)

कुल प्रतियाँ २०००

लागत मूल्य राजसंस्करण प्रति संख्या ।≈॥)

लागत मूल्य साधारण संस्करण प्रति संख्या ।=)

आदर्श पुस्तक-भण्डार

हमारे यहाँ दूसरे प्रकाशकों की उत्तम, उपयोगी और चुनी हुई हिन्दी पुस्तकें भी मिलती हैं। गन्दे और चरित्र-नाशक उपन्यास, नाटक आदि पुस्तकें हम नहीं बेचते। हिन्दी पुस्तकें मँगाने की जब आपको जरूरत हो तो इस मण्डल के नाम ही आर्डर भेजने के लिये हम आपसे अनुरोध करते हैं क्योंकि बाहरी पुस्तकें भेजने में यदि हमें व्यवस्था का खर्च निकाल कर कुछ भी बचत रही तो वह मण्डल की पुस्तकें और भी सस्ती करने में लगाई जायगी।

पता—सस्ता-साहित्य-मंडल, अजमेर।

विषय-सूची

द्वितीय खण्ड—राजतन्त्र

विषय पृष्ठ

तृतीय खण्ड—विविध बातें

तामिल वेद

प्रस्तावना

पहला परिच्छेद

ईश्वर-स्तुति

१. 'अ' शब्द-लोक का मूल-स्थान है; ठीक इसी तरह आदिब्रह्म सब लोकों का मूल-स्रोत है।

२. यदि तुम सर्वज्ञ परमेश्वर के श्रीचरणों की पूजा नहीं करते हो, तो, तुम्हारी यह सारी विद्वत्ता किस काम की?

३. जो मनुष्य, हृदय-कमल के अधिवासी श्री-भगवान् के पवित्र चरणों की शरण लेता है, वह संसार में बहुत समय तक जीवित रहेगा। *

४. धन्य है वह मनुष्य जो आदि-पुरुष के पादारविन्द में रत रहता है कि जो न किसी से प्रेम करता है, और न घृणा। उसे कभी कोई दुःख नहीं होता।

---

* ईश्वर का वर्णन करते समय तिरुवल्लुवर ने प्रायः ऐसे शब्दों का व्यवहार किया है जिन्हें साम्प्रदायिक नहीं कहा जा सकता। पर इस पद में वैष्णव भावना का सा आभास है।

५. देखो; जो मनुष्य प्रभु के गुणों का उत्साह पूर्वक गान करते हैं, उन्हें अपने भले-बुरे कर्मो का दुःखप्रद फल नहीं भोगना पड़ता।

६. जो लोग उस परम जितेन्द्रिय पुरुष के दिखाये धर्ममार्ग का अनुसरण करते हैं, वे दीर्घ जीवी होंगे।

७. केवल वही लोग दुःखों से बच सकते हैं, जो उस अद्वितीय पुरुष की शरण में आते हैं।

८. धन-वैभव और इन्द्रिय-सुख के तूफ़ानी समुद्र को वही पार कर सकते हैं कि जो उस धर्म-सिन्धु मुनीश्वर के चरणों में लीन रहते हैं।

९. जो मनुष्य अष्ट गुणों से अभिभूत परब्रह्म के चरण कमलों में सिर नहीं झुकाता, वह उस इन्द्रिय के समान है, जिस में अपने गुण को ग्रहण करने की शक्ति नहीं है। *

१०. जन्म-मरण के समुद्र को वही पार कर सकते हैं कि जो प्रभु के श्रीचरणों की शरण में आ जाते हैं, दूसरे लोग उसे तर ही नहीं सकते

---

* जैसे अन्धी आँख; बहरा कान।

दूसरा परिच्छेद

मेघ-स्तुति

१. समय पर न चूकने वाली वर्षा के द्वारा ही धरती अपने को धारण किये हुए है और इसीलिए, मेह को लोग अमृत कहते हैं।

२. जितने भी स्वादिष्ट खाद्य पदार्थ हैं, वे सब वर्षा ही के द्वारा मनुष्य को प्राप्त होते हैं; और वह स्वयं भी भोजन का एक अंश है।

३. अगर पानी न बरसे तो सारी पृथ्वी पर अकाल का प्रकोप छा जाये; यद्यपि वह चारों तरफ़ समुद्र से घिरी हुई है।

४. यदि स्वर्ग के सोते सूख जाँय तो किसान लोग हल जोतना ही छोड़ देंगे।

५. वर्षा ही नष्ट करती है, और फिर यह वर्षा ही है जो नष्ट हुए लोगों को फिर से सर सब्ज़ करती है।

६. अगर आस्मान से पानी की बौछारें आना बन्द हो जायँ तो घासका उगना तक बन्द हो जायगा।

७. खुद शक्तिशाली समुद्र में ही कुत्सित वीभत्सता का दारुण प्रकोप जग उठे; यदि स्वर्गलोक उसके जल को पान करने और फिर उसे वापिस देने से इनकार कर दे।*

८. यदि स्वर्ग का जल सूख जाय, तो न तो देवताओं को प्रसन्न करनेके लिये यज्ञ-याग होंगे और न संसार में भोज ही दिये जायँगे। †

९. यदि स्वर्ग से जल की धारायें आना बन्द हो जायें, तो फिर इस पृथ्वी भर में न कहीं दान रहे, न कहीं तप। ‡

१०. पानी के बिना संसार में कोई काम नहीं चल सकता, इसलिये सदाचार भी अन्ततः वर्षा ही पर आश्रित है।

---

* भावार्थ यह है कि समुद्र जो वर्षा का कारण है उसे भी वर्षा की आवश्यकता है। यदि वर्षा न हो तो समुद्र में गन्दगी पैदा हो जाये, जलचरों को कष्ट हो और मोती पैदा होने बन्द हो जायें।

† समस्त नित्य और नैमित्तिक कार्य बन्द हो जायँगे।

‡ तप सन्यासियों के लिये है और दान गृहस्थियों के लिये।

तीसरा परिच्छेद

संसार-त्यागी पुरुषों की महिमा

१. देखो, जिन लोगों ने सब-कुछ (इन्द्रिय-सुखों को) त्याग दिया है, और जो तापसिक जीवन व्यतीत करते हैं, धर्मशास्त्र उनकी महिमा को और सब बातों से अधिक उत्कृष्ट बताते हैं।

२. तुम तपस्वी लोगों की महिमा को नहीं नाप सकते। यह काम उतना ही मुश्किल है जितना सब मुर्दों की गणना करना।

३. देखो, जिन लोगों ने परलोक के साथ इहलोक का मुक़ाबिला करने के बाद इसे त्याग दिया है; उनकी ही महिमा से यह पृथ्वी जगमगा रही है।

४. देखो, जो पुरुष अपनी सुदृढ़ इच्छा-शक्ति के द्वारा अपनी पाँचों इन्द्रियों को इस तरह वश में रखता है, जिस तरह हाथी अंकुश द्वारा वशीभूत किया जाता है; वास्तव में वही स्वर्ग के खेतों में बोने योग्य बीज है।

५. जितेन्द्रिय पुरुष की शक्ति का साक्षी स्वयं देवराज इन्द्र है।*

---

* गौतम की स्त्री अहल्या और इन्द्र की कथा।

६. महान् पुरुष वही हैं, जो असम्भव * कार्यों का सम्पादन करते हैं और दुर्बल मनुष्य वे हैं, जिन से वह काम हो नहीं सकता।

७. देखो; जो मनुष्य शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, इन पाँच इन्द्रिय-विषयों का यथोचित मूल्य समझता है, वह सारे संसार पर शासन करेगा। †

८. संसार भर के धर्म-ग्रन्थ सत्यवक्ता महात्माओं की महिमा की घोषणा करते हैं।

९. त्याग की चट्टान पर खड़े हुए महात्माओं के क्रोध को एक क्षण भर भी सह लेना असम्भव है।

१०. साधु-प्रकृति पुरुषों ही को ब्राह्मण कहना चाहिये। वही लोग सब प्राणियों पर दया रखते हैं। ‡

---

* इन्द्रिय-दमन।

† अर्थात् जो जानते हैं कि ये सब विषय क्षणिक सुख देने वाले हैं—मनुष्य को धर्म-मार्ग से बहकाते हैं और इस लिये उनके पंजे में नहीं फँसते हैं।

‡ मूल ग्रन्थ में ब्राह्मण वाची जिस शब्द का प्रयोग किया गया, उसका अर्थ ही यह है, सब पर दया करने वाला।

चौथा परिच्छेद

धर्म की महिमा का वर्णन

१. धर्म से मनुष्य को मोक्ष मिलता है, और उससे धर्म की प्राप्ति भी होती है; फिर भला, धर्म से बढ़ कर, लाभदायक वस्तु और क्या है ?

२. धर्म से बढ़ कर दूसरी और कोई नेकी नहीं, और उसे भुला देने से बढ़ कर दूसरी कोई बुराई भी नहीं है।

३. नेक काम करने में तुम लगातार लगे रहो, अपनी पूरी शक्ति और सब प्रकार से पूरे उत्साह के साथ उन्हें करते रहो।

४. अपना मन पवित्र रक्खो; धर्म का समस्त सार बस एक इसी उपदेश में समाया हुआ है। बाक़ी और सब बातें कुछ नहीं, केवल शब्दाडम्बर मात्र हैं।

५. ईर्ष्या, लालच, क्रोध और अप्रिय वचन इन सब से दूर रहो। धर्म-प्राप्ति का यही मार्ग है।

६. यह मत सोचो कि मैं धीरे-धीरे धर्म-मार्ग का अवलम्बन करूँगा। बल्कि अभी, बिना देर लगाये ही, नेक काम करना शुरू कर दो क्योंकि धर्म ही वह वस्तु है जो मौत के दिन, तुम्हारा साथ देने वाला, अमर मित्र होगा।

७. मुझ से यह मत पूछो कि धर्म से क्या लाभ है? बस एक बार पालकी उठाने वाले कहारों की ओर देख लो और फिर उस आदमी को देखो, जो उसमें सवार है।

८. अगर तुम, एक भी दिन व्यर्थ नष्ट किये बिना, समस्त जीवन नेक काम करते हो तो तुम आगामी जन्मों का मार्ग बन्द किये देते हो।

९. केवल धर्म-जनित सुख ही वास्तविक सुख है।* बाकी सब तो पीड़ा और लज्जा मात्र हैं।

१०. जो काम धर्म-सङ्गत है, बस वही कार्य रूप में परिणित करने योग्य है। दूसरी जितनी बातें धर्म-विरुद्ध हैं, उनसे दूर रहना चाहिये।

---

* धर्म, वैभव इत्यादि दूसरी श्रेणी के हैं, यह इस मंत्र का दूसरा अर्थ हो सकता है।

प्रथम भाग

धर्म

प्रथम खण्ड

पाँचवाँ परिच्छेद

पारिवारिक जीवन

१. गृहस्थ आश्रम में रहने वाला मनुष्य अन्य तीनों आश्रमों का प्रमुख आश्रय है।

२. गृहस्थ अनाथों का नाथ, गरीबों का सहायक और निराश्रित मृतकों का मित्र है।

३. मृतकों का श्राद्ध करना, देवताओं को बलि देना, आतिथ्य-सत्कार करना, बन्धु-बान्धवों को सहायता पहुँचाना और आत्मोन्नति करना— ये गृहस्थ के पाँच कर्म हैं।

४. जो पुरुष बुराई करने से डरता है और भोजन करने से पहिले दूसरों को दान देता है; उसका वंश कभी निर्बीज नहीं होता।

५. जिस घर में स्नेह और प्रेम का निवास है, जिसमें धर्म का साम्राज्य है, वह सम्पूर्णतः, सन्तुष्ट रहता है—उसके सब उद्देश्य सफल होते हैं।

६. अगर मनुष्य गृहस्थ के धर्मों का उचित रूप से पालन करे, तब उसे दूसरे धर्मों का आश्रय लेने की क्या जरूरत है ?

७. मुमुक्षुओं में श्रेष्ठ वे लोग हैं, जो धर्मानुकूल गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत करते हैं।

८. देखो; गृहस्थ, जो दूसरे लोगों को कर्त्तव्य-पालन में सहायता देता है और स्वयं भी धार्मिक जीवन व्यतीत करता है, ऋषियों से भी अधिक पवित्र है।

९. सदाचार और धर्म का विशेषतः विवाहित जीवन से सम्बन्ध है, और सुयश उसका आभूषण है *।

१०. जो गृहस्थ उसी तरह आचरण करता है कि जिस तरह उसे करना चाहिये, वह मनुष्यों में देवता समझा जायगा।

---

* दूसरा अर्थ—गार्हस्थ्य जीवन ही वास्तव में धार्मिक जीवन है; तापसिक जीवन भी अच्छा है, यदि कोई ऐसे काम न करें, जिनसे लोग घृणा करें।

छठा परिच्छेद

सहधर्मिणी

१. वही नेक सहधर्मिणी है जिसमें सुपत्नीत्व के सब गुण वर्तमान हों और जो अपने पति के सामर्थ्य से अधिक व्यय नहीं करती *।

२. यदि स्त्री स्त्रीत्व के गुणों से रहित हो तो और सब नियामतों (श्रेष्ठ वस्तुओं) के होते हुए भी गार्हस्थ्य जीवन व्यर्थ है।

३. यदि किसी की स्त्री सुयोग्य है तो फिर ऐसी कौन सी चीज है जो उसके पास मौजूद नहीं ? और यदि स्त्री में योग्यता नहीं तो, फिर उसके पास है ही क्या चीज † ?

४. स्त्री अपने सतीत्व की शक्ति से सुरक्षित हो तो दुनिया में, उससे बढ़कर, शानदार चीज और क्या है ?

---

* सा भार्या या गृहेदक्षा, सा भार्या या प्रजावती।
सा भार्या या पति-प्राणा, सा भार्या या पतिव्रता॥

† यदि स्त्री सुयोग्य हो तो फिर गरीबी कैसी ? और यदि स्त्री में योग्यता नहीं तो फिर अमीरी कहाँ ?

५. देखो, जो स्त्री दूसरे देवताओं की पूजा नहीं करती किन्तु बिछौने से उठते ही अपने पतिदेव को पूजती है; जल से भरे हुए बादल भी उसका कहना मानते हैं।

६. वही उत्तम सहधर्मिणी है जो अपने धर्म और अपने यश की रक्षा करती है और प्रेम-पूर्वक अपने पति की आराधना करती है।

७. चार दिवारी के अन्दर पर्दे के साथ रहने से क्या लाभ ? स्त्री के धर्म का सर्वोत्तम रक्षक उसका इन्द्रिय-निग्रह है।

८. * जो स्त्रियाँ अपने पति की आराधना करती हैं; स्वर्गलोक के देवता उनकी स्तुति करते हैं।

९. जिस मनुष्य के घर से सुयश का विस्तार नहीं होता, वह मनुष्य अपने दुश्मनों के सामने गर्व से माथा ऊँचा करके सिंह-ध्वनि के साथ नहीं चल सकता।

१०. सुसम्मानित पवित्र गृह सर्वश्रेष्ठ वर है और सुयोग्य सन्तति उसके महत्व की पराकाष्ठा।

---

* दूसरा अर्थ—धन्य है वह स्त्री जिसने योग्य पुत्र को जन्म दिया है। देवताओं के लोक में उसका स्थान बहुत ऊँचा है।

सातवाँ परिच्छेद

सन्तति

१. बुद्धिमान सन्तति पैदा होने से बढ़ कर दूसरी नियामत हम नहीं जानते।

२. वह मनुष्य धन्य है जिसके बच्चों का आचरण निष्कलङ्क है—सात जन्म तक उसे कोई बुराई छू न सकेगी।

३. सन्तति मनुष्य की सच्ची सम्पत्ति है; क्योंकि वह अपने सञ्चित पुण्य को अपने कर्मों द्वारा उसके अर्पण कर देती है।

४. निस्सन्देह अमृत से भी अधिक स्वादिष्ट वह साधारण "रसा" है जिसे अपने बच्चे छोटे छोटे हाथ डाल कर घँघोलते हैं।

५. बच्चों का स्पर्श शरीर का सुख है और कानों का सुख है उनकी बोली को सुनना।

६. वंशी की ध्वनि प्यारी और सितार का स्वर मीठा है; ऐसा वे ही लोग कहते हैं जिन्होंने अपने बच्चों की तुतलाती हुई बोली नहीं सुनी है।

६. वे मूर्ख हैं जो कहते हैं कि प्रेम केवल नेक आदमियों ही के लिये है; क्योंकि बुरों के विरुद्ध खड़े होने के लिये भी प्रेम ही मनुष्य का एक मात्र साथी है* ।

७. देखो; अस्थि-हीन कीड़े को सूर्य किस तरह जला देता है ! ठीक इसी तरह नेकी उस मनुष्य को जला डालती है जो प्रेम नहीं करता ।

८. जो मनुष्य प्रेम नहीं करता वह तभी फूले-फलेगा कि जब मरुभूमि के सूखे हुए वृक्ष के ठुण्ठ में कोपलें निकलेंगी ।

९. बाह्य सौन्दर्य किस काम का जब कि प्रेम, जो आत्मा का भूषण है, हृदय में न हो ।

१०. प्रेम जीवन का प्राण है ! जिसमें प्रेम नहीं वह केवल मांस से घिरी हुई हड्डियों का ढेर है । †

---

* 'जा घट प्रेम न संचरे, सो घट जान मसान' ।

† भले लोगों ही के साथ प्रेममय व्यवहार किया जाये, यह सिद्धान्त ठीक नहीं है, बुरे के साथ भी प्रेम का व्यवहार रखना चाहिये क्योंकि बुरे को भला और दुश्मन को दोस्त बनाने के लिये प्रेम से बढ़ कर दूसरी और कोई कीमिया नहीं है ।

नवाँ परिच्छेद

मेहमानदारी

१. बुद्धिमान लोग, इतनी मेहनत करके, गृहस्थी किस लिये बनाते हैं ? अतिथि को भोजन देने और यात्री की सहायता करने के लिये ।

२. जब घर में मेहमान हो तब चाहे अमृत ही क्यों न हो, अकेले नहीं पीना चाहिये ।

३. घर आये हुए अतिथि का आदर-सत्कार करने में जो कभी नहीं चूकता, उस पर कभी कोई आपत्ति नहीं आती ।

४. देखो; जो मनुष्य योग्य अतिथि का प्रसन्नता-पूर्वक स्वागत करता है, उसके घर में निवास करने से लक्ष्मी को आह्लाद होता है !

५. देखो; जो आदमी पहले अपने मेहमान को खिलाता और उसके बाद ही, जो कुछ बचता है, खुद खाता है; क्या उसके खेत को बोने की भी ज़रूरत होगी ?

६. देखो; जो आदमी बाहर जाने वाले अतिथि की सेवा कर चुका है और आने वाले अतिथि की प्रतीक्षा करता है; ऐसा आदमी देवताओं का सुप्रिय अतिथि है ।

७. हम किसी अतिथि-सेवा के महात्म्य का वर्णन नहीं कर सकते—उसमें इतने गुण हैं । अतिथि-यज्ञ का महत्व तो अथिति की योग्यता पर निर्भर है ।

८. देखो; जो मनुष्य अतिथि-यज्ञ नहीं करता, वह एक रोज कहेगा—मैंने मेहनत करके एक बड़ा भारी खजाना जमा किया मगर हाय ! वह सब बेकार हुआ क्योंकि वहाँ मुझे आराम पहुँचाने वाला कोई नहीं है ।

९. धन और वैभव के होते हुए भी जो यात्री का आदर-सत्कार नहीं करता वह मनुष्य नितान्त दरिद्र है; यह बात केवल मूर्खों में ही होती है।

१०. अनीचा का पुष्प सूँघने से मुर्झा जाता है, मगर अतिथि का दिल तोड़ने के लिये एक निगाह ही काफी है ।

दसवाँ परिच्छेद

मृदु-भाषण

१. सत्पुरुषों की वाणी ही वास्तव में सुस्निग्ध होती है क्योंकि वह दयार्द्र, कोमल और बनावट से खाली होती है।

२. औदार्यमय दान से भी बढ़ कर, सुन्दर गुण, वाणी की मधुरता और दृष्टि की स्निग्धता तथा स्नेहार्द्रता में है।

३. हृदय से निकली हुई मधुर वाणी और ममतामयी स्निग्ध दृष्टि के अन्दर ही धर्म का निवासस्थान है।

४. देखो; जो मनुष्य सदा ऐसी वाणी बोलता है कि जो सब के हृदयों को आह्लादित कर दे, उसके पास दुःखों की अभिवृद्धि करने वाली दरिद्रता कभी न आयेगी।

५. नम्रता और स्नेहार्द्र वक्तृता, बस, केवल यही मनुष्य के आभूषण हैं, और कोई नहीं।

६. यदि तुम्हारे विचार शुद्ध और पवित्र हैं और तुम्हारी वाणी में सहृदयता है तो तुम्हारी पाप-वृत्ति का क्षय हो जायगा और धर्मशीलता की अभिवृद्धि होगी।

७. सेवा-भाव को प्रदर्शित करने वाला और विनम्र वचन मित्र बनाता है और बहुत से लाभ पहुँचाता है।

८. वे शब्द जो कि सहृदयता से पूर्ण और क्षुद्रता से रहित होते हैं; इहलोक और परलोक दोनों ही जगह लाभ पहुँचाते हैं।

९. श्रुति-प्रिय शब्दों के अन्दर जो मधुरता है, उसका अनुभव कर लेने के बाद भी मनुष्य क्रूर शब्दों का व्यवहार करना क्यों नहीं छोड़ता ?

१०. मीठे शब्दों के रहते हुए भी जो मनुष्य कड़वे शब्दों का प्रयोग करता है वह मानो पके फल को छोड़कर कच्चा फल खाना पसन्द करता है।*

---

* श्रीयुत् वी० वी० एस अय्यर ने इस पद्य का अर्थ इस प्रकार किया है:—देखो जो आदमी मीठे शब्दों से काम चल जाने पर भी कठोर शब्दों का प्रयोग करता है, वह पक्के फल की अपेक्षा कच्चा फल पसंद करता है।

कहावत है:—

'जो गुड़ दीन्हे ही मरे, क्यों विष दीजे ताहि ।'

ग्यारहवाँ परिच्छेद

कृतज्ञता

१. एहसान करने के विचार से रहित होकर जो दया दिखायी जाती है; स्वर्ग और मर्त्य दोनों मिल कर भी उसका बदला नहीं चुका सकते।

२. जरूरत के वक्त जो मेहरबानी की जाती है वह देखने में छोटी भले ही हो; मगर वह तमाम दुनिया से ज्यादा वजनदार है।

३. बदले के ख्याल को छोड़ कर जो भलाई की जाती है, वह समुद्र से भी अधिक बलवती है।

४. किसी से प्राप्त किया हुआ लाभ, राई की तरह छोटा ही क्यों न हो; किन्तु समझदार आदमी की दृष्टि में वह ताड़ के वृक्ष के बराबर है।

५. कृतज्ञता की सीमा, किये हुये उपकार पर अवलम्बित नहीं है; उसका मूल्य उपकृत व्यक्ति की शराफत पर निर्भर है।

६. महात्माओं की मित्रता की अवहेलना मत करो और उन लोगों का त्याग मत करो, जिन्होंने मुसीबत के वक्त तुम्हारी सहायता की।

७. जो किसी को कष्ट से उबारता है, जन्म जन्मान्तर तक उसका नाम कृतज्ञता के साथ लिया जायेगा।

८. उपकार को भूल जाना नीचता है; लेकिन यदि कोई भलाई के बदले बुराई करे तो उसको फौरन ही भुला देना शराफ़त की निशानी है।*

९. हानि पहुँचाने वाले की यदि कोई मेहरबानी याद आ जाती है तो महा भयङ्कर व्यथा पहुँचाने वाली चोट, उसी दम भूल जाती है।

१०. और सब दोषों से कलङ्कित मनुष्यों का तो उद्धार हो सकता है; किन्तु अभागे अकृतज्ञ मनुष्य का कभी उद्धार न होगा।

---

* अपकारिषु यः साधुः, सः साधुः सद्भिरुच्यते।

बारहवाँ परिच्छेद

ईमान्दारी तथा न्याय-निष्ठा

१. और कुछ नहीं; नेकी का सार इसी में कि मनुष्य निष्पक्ष हो कर, ईमान्दारी के साथ, दूसरे का हक़ अदा कर दे फिर चाहे वह दोस्त हो अथवा दुश्मन।

२. न्याय-निष्ठ की सम्पत्ति कभी कम नहीं होती। वह दूर तक, पीढ़ी दर पीढ़ी चली जाती है।

३. नेकी को छोड़ कर जो धन मिलता है, उसे कभी मत छुओ; भले ही उससे लाभ के अतिरिक्त और किसी बात की सम्भावना न हो।

४. नेक और बद का पता उनकी सन्तान से चलता है।

५. भलाई-बुराई तो सभी को पेश आती है, मगर एक न्यायनिष्ठ दिल बुद्धिमानों के गर्व की चीज है।*

---

* निन्दन्तु नीति निपुणा यदि वा स्तुवन्तु। लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्॥ अद्यैव वा मरण मस्तु युगान्तरे वा। न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥ भर्तृहरि नी. श. ८४.

५. जो पुरुष अपने पड़ोसी की स्त्री को गले लगाता है इसलिये कि वह उस तक पहुँच सकता है; उसका नाम सदा के लिये कलङ्कित हुआ समझो।

६. व्यभिचारी को इन चार चीजों से कभी छुटकारा नहीं मिलता—घृणा, पाप, भ्रम और कलङ्क।

७. सद्गृहस्थ वही है कि जो अपने पड़ोसी की स्त्री के सौन्दर्य और लावण्य की परवा नहीं करता।

८. शाबास है उसकी मर्दानगी को कि जो पराई स्त्री पर नज़र नहीं डालता! वह केवल नेक और धर्मात्मा ही नहीं, सन्त है।

९. पृथ्वी पर की सब नियामतों का हक़दार कौन है? वही कि जो परायी स्त्री को बाहु-पाश में नहीं लेता।

१०. तुम कोई भी अपराध और दूसरा कैसा भी पाप क्यों न करो मगर तुम्हारे हक़ में यही बेहतर है कि तुम अपने पड़ोसी की स्त्री की इच्छा न करो।

सोलहवाँ परिच्छेद

क्षमा

१. धरती* उन लोगों को भी आश्रय देती है कि जो उसे खोदते हैं—इसी तरह तुम भी उन लोगों की बातें सहन करो जो तुम्हें सताते हैं; क्योंकि बड़प्पन इसी में है।

२. दूसरे लोग तुम्हें जो हानि पहुँचायें उसके लिये तुम सदा उन्हें क्षमा कर दो; और अगर तुम उसे भुला दे सको तो यह और भी अच्छा है।

३. अतिथि-सत्कार से इनकार करना ही सब से अधिक ग़रीबी की बात है और मूर्खों की बेहूदगी को सहन करना ही सब से बड़ी बहादुरी है।

४. यदि तुम सदा ही गौरवमय बनना चाहते हो तो सब के प्रति क्षमामय व्यवहार करो।

५. जो लोग बुराई का बदला लेते हैं, बुद्धिमान उन की इज्ज़त नहीं करते; मगर जो अपने

---

* एक हिन्दी कवि ने सन्तों की उपमा फलदार वृक्षों से देते हुए कहा है—

'ये इतते पाहन हने, वे उतते फल देत'।

५. जो पुरुष अपने पड़ोसी की स्त्री को गले लगाता है इसलिये कि वह उस तक पहुँच सकता है; उसका नाम सदा के लिये कलङ्कित हुआ समझो।

६. व्यभिचारी को इन चार चीजों से कभी छुटकारा नहीं मिलता—घृणा, पाप, भ्रम और कलङ्क।

७. सद्गृहस्थ वही है कि जो अपने पड़ोसी की स्त्री के सौन्दर्य और लावण्य की परवा नहीं करता।

८. शाबास है उसकी मर्दानगी को कि जो पराई स्त्री पर नजर नहीं डालता! वह केवल नेक और धर्मात्मा ही नहीं, सन्त है।

९. पृथ्वी पर की सब नियामतों का हकदार कौन है? वही कि जो परायी स्त्री को बाहु-पाश में नहीं लेता।

१०. तुम कोई भी अपराध और दूसरा कैसा भी पाप क्यों न करो मगर तुम्हारे हक में यही बेहतर है कि तुम अपने पड़ोसी की स्त्री की इच्छा न करो।

सोलहवाँ परिच्छेद

क्षमा

१. धरती* उन लोगों को भी आश्रय देती है कि जो उसे खोदते हैं—इसी तरह तुम भी उन लोगों की बातें सहन करो जो तुम्हें सताते हैं; क्योंकि बड़प्पन इसी में है।

२. दूसरे लोग तुम्हें जो हानि पहुँचायें उसके लिये तुम सदा उन्हें क्षमा कर दो; और अगर तुम उसे भुला दे सको तो यह और भी अच्छा है।

३. अतिथि-सत्कार से इनकार करना ही सब से अधिक ग़रीबी की बात है और मूर्खों की बेहूदगी को सहन करना ही सब से बड़ी बहादुरी है।

४. यदि तुम सदा ही गौरवमय बनना चाहते हो तो सब के प्रति क्षमामय व्यवहार करो।

५. जो लोग बुराई का बदला लेते हैं, बुद्धिमान उन की इज्ज़त नहीं करते; मगर जो अपने

---

* एक हिन्दी कवि ने सन्तों की उपमा फलदार वृक्षों से देते हुए कहा है—

'ये इतते पाहन हने, वे उतते फल देन'।

दुश्मनों को माफ़ कर देते हैं वह स्वर्ण की तरह बहुमूल्य समझे जाते हैं ।

६. बदला लेने की खुशी तो सिर्फ एक ही दिन रहती है; मगर जो पुरुष क्षमा कर देता है उसका गौरव सदा स्थिर रहता है ।

७. नुक़सान चाहे कितना ही बड़ा क्यों न उठाना पड़ा हो; मगर खूबी इसी में है कि मनुष्य उसे मन में न लाये और बदला लेने के विचार से दूर रहे ।

८. घमण्ड में चूर हो कर जिन्होंने तुम्हें हानि पहुँचाई है, उन्हें अपनी भलमन्साहत से विजय कर लो ।

९. *संसार-त्यागी पुरुषों से भी बढ़ कर सन्त वह है जो अपनी निन्दा करने वालों की कटु वाणी को सहन कर लेता है ।

१०. भूखे रह कर तपश्चर्या करने वाले निःसन्देह महान हैं, मगर उनका दर्जा उन लोगों के बाद ही है जो अपनी निन्दा करने वालों को क्षमा कर देते हैं ।

---

* कबीर भी यहाँ तक कह गये हैं—
निन्दक नियरे राखिये, आँगन कुटी छवाय ।
बिन पानी साबन बिना, निर्मल करे सुभाय ॥

सत्रहवाँ परिच्छेद

ईर्ष्या न करना

१. ईर्ष्या के विचारों को अपने मन में न आने दो; क्योंकि ईर्ष्या से रहित होना धर्माचरण का एक अङ्ग है।

२. सब प्रकार की ईर्ष्या से रहित स्वभाव के समान दूसरी और कोई बड़ी नियामत नहीं है।

३. जो मनुष्य धन या धर्म की परवाह नहीं करता वही अपने पड़ोसी की समृद्धि पर डाह करता है।

४. बुद्धिमान लोग ईर्ष्या की वजह से दूसरों को हानि नहीं पहुँचाते क्योंकि उससे जो बुराइयाँ पैदा होती हैं, उन्हें वे जानते हैं।

५. ईर्ष्या करने वाले के लिये ईर्ष्या ही काफ़ी बला है; क्योंकि उसके दुश्मन उसे छोड़ भी दें तो भी उसकी ईर्ष्या ही उसका सर्वनाश कर देगी।

६. जो मनुष्य दूसरों को देते हुए नहीं देख सकता उसका कुटुम्ब, रोटी और कपड़ों तक के लिये मारा २ फिरेगा और नष्ट हो जायेगा।

७. लक्ष्मी ईर्ष्या करने वाले के पास नहीं रह सकती, वह उसको अपनी बड़ी बहिन * के हवाले कर के चली जायगी।

८. दुष्टा ईर्ष्या दरिद्रता दानवी को बुलाती है और मनुष्य को नरक के द्वार तक ले जाती है।

९. ईर्ष्या करने वालों की समृद्धि और उदार चेता पुरुषों की कङ्गाली ये दोनों ही एक समान आश्चर्यजनक हैं।

१०. न तो ईर्ष्या से कभी कोई फल फूला और न उदारचेता पुरुष उस अवस्था से कभी वञ्चित ही हुआ।

---

* दरिद्रता।

अठारहवाँ परिच्छेद

निर्लोभता

१. जो पुरुष सन्मार्ग को छोड़ कर दूसरे की सम्पत्ति को लेना चाहता है उसकी दुष्टता बढ़ती जायगी और उसका परिवार क्षीण हो जायगा।

२. जो पुरुष बुराई से विमुख रहते हैं वे लोभ नहीं करते और न दुष्कर्मों की ओर ही प्रवृत्त होते हैं।

३. देखो; जो मनुष्य अन्य प्रकार के सुखों को चाहते हैं, वे छोटे-मोटे सुखों का लोभ नहीं करते और न कोई बुरा काम ही करते हैं।

४. जिन्होंने अपनी इन्द्रियों को वश में कर लिया है और जिनके विचार उदार हैं, वे यह कह कर दूसरों को चीजों की कामना नहीं करते—ओहो, हमें इसकी जरूरत है।

५. वह बुद्धिमान और समझदार मन किस काम का जो लालच में फँस जाता है और वाहियात काम करने को तय्यार होता है।

६. अगर तुम दूसरे की निन्दा करोगे तो वह तुम्हारे दोषों को खोज कर उनमें से बुरे से बुरे दोषों को प्रगट कर देगा।

७. जो मधुर वचन बोलना और मित्रता करना नहीं जानते वे फूट का बीज बोते हैं और मित्रों को एक दूसरे से जुदा कर देते हैं।

८. जो लोग अपने मित्रों के दोषों की खुले आम चर्चा करते हैं वे अपने दुश्मनों के दोषों को भला किस तरह छोड़ेंगे ?

९. पृथ्वी निन्दा करने वाले के पदाघात को, सब्र के साथ, अपनी छाती पर किस तरह सहन करती है ? क्या वही अपना पिण्ड छुड़ाने की गरज से धर्म की ओर बार-बार ताकती है ?

१०. यदि मनुष्य अपने दोषों की विवेचना उसी तरह करे जिस तरह वह अपने दुश्मनों के दोषों की करता है, तो क्या बुराई कभी उसे छू सकती है ?

बीसवाँ परिच्छेद

पाप कर्मों से भय

१. दुष्ट लोग उस मूर्खता से नहीं डरते जिसे पाप कहते हैं, मगर लायक लोग उससे सदा दूर भागते हैं।

२. बुराई से बुराई पैदा होती है, इसलिये आग से भी बढ़कर बुराई से डरना चाहिये।

३. कहते हैं, सब से बड़ी बुद्धिमानी यही है कि दुश्मन को भी नुकसान पहुँचाने से परहेज़ किया जाय।

४. भूल से भी दूसरे के सर्वनाश का विचार न करो क्योंकि न्याय उसके विनाश की युक्ति सोचता है जो दूसरे के साथ बुराई करना चाहता है।

५. मैं ग़रीब हूँ; ऐसा कह कर किसी को पाप-कर्म में लिप्त न होना चाहिये क्योंकि ऐसा करने से वह और भी कङ्गाल हो जायेगा।

६. जो मनुष्य आपत्तियों द्वारा दुःखित होना नहीं चाहता, उसे दूसरों को हानि पहुँचाने से बचना चाहिये।

७. दूसरे सब तरह के दुश्मनों से बचाव हो सकता है मगर पाप कर्मों का कभी विनाश नहीं होता—वे पापी का पीछा करके उसको नष्ट किये बिना नहीं छोड़ते।

८. जिस तरह छाया मनुष्य को कभी नहीं छोड़ती, बल्कि जहाँ २ वह जाता है उसके पीछे २ लगी रहती है; बस, ठीक इसी तरह, पाप कर्म पापी का पीछा करते हैं और अन्त में उसका सर्वनाश कर डालते हैं।

९. यदि किसी को अपने से प्रेम है तो उसे पाप की ओर ज़रा भी न झुकना चाहिये।

१०. उसे आपत्तियों से सदा सुरक्षित समझो जो अनुचित कर्म करने के लिये सन्मार्ग को नहीं छोड़ता।

इक्कीसवाँ परिच्छेद

परोपकार

१. महान् पुरुष जो उपकार करते हैं, उसका बदला नहीं चाहते। भला, संसार जल बरसाने वाले बादलों का बदला किस तरह चुका सकता है ?

२. योग्य पुरुष अपने हाथों मेहनत करके जो धन जमा करते हैं, वह सब दूसरों ही के लिये होता है।

३. हार्दिक उपकार से बढ़कर न तो कोई चीज इस संसार में मिल सकती है और न स्वर्ग में।

४. जिसे उचित-अनुचित का विचार है, वही वास्तव में जीवित है पर, जो योग्य-अयोग्य का खयाल नहीं रखता उसकी गिनती मुर्दों में की जायगी।

५. लबालब भरे हुए गाँव के तालाब को देखो; जो मनुष्य सृष्टि से प्रेम करता है उसकी सम्पत्ति उसी तालाब के समान है।

६. दिलदार आदमी का वैभव गाँव के बीचों बीच उगे हुए और फलों से लदे हुए वृक्ष के समान है।

७. उदार मनुष्य के हाथ का धन उस वृक्ष के समान है जो औषधियों का सामान देता है और सदा हरा बना रहता है।

८. देखो, जिन लोगों को उचित और योग्य बातों का ज्ञान है, वे बुरे दिन आने पर भी दूसरों का उपकार करने से नहीं चूकते।

९. परोपकारी पुरुष उसी समय अपने को ग़रीब समझता है जब कि वह सहायता माँगने वालों की इच्छा पूर्ण करने में असमर्थ होता है।

१०. यदि * परोपकार करने के फल स्वरूप सर्व नाश उपस्थित हो, तो गुलामी में फँसने के लिये आत्म-विक्रय करके भी उसको सम्पादन करना उचित है।

---

* परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः ।
परोपकाराय वहन्ति नद्यः ॥
परोपकाराय दुहन्ति गावः ।
परोपकारार्थमिदं शरीरम् ॥

बाईसवाँ परिच्छेद

दान

१. ग़रीबों को देना ही दान है; और सब तरह का देना उधार देने के समान है।

२. दान लेना बुरा है चाहे उस से स्वर्ग ही क्यों न मिलता हो। और दान देने वाले के लिये चाहे स्वर्ग का द्वार ही क्यों न बन्द हो जाये, फिर भी दान देना धर्म है।

३. हमारे पास नहीं है—ऐसा कहे बिना दान देने वाला पुरुष ही केवल कुलीन होता है।

४. याचक के ओठों पर सन्तोष-जनित हँसी की रेखा देखे बिना दानी का दिल खुश नहीं होता।

५. आत्म-जयी की विजयों में से सर्वश्रेष्ठ जय है भूख को जय करना। मगर उसकी विजय से भी बढ़ कर उस मनुष्य की विजय है जो भूख को शान्त करता है।

६. ग़रीबों के पेट की ज्वाला को शान्त करना यही तरीक़ा है जिससे अमीरों को ख़ास अपने लिये धन जमा कर रखना चाहिये।

७. जो मनुष्य अपनी रोटी दूसरों के साथ बाँट कर खाता है उसको भूख की भयानक बिमारी कभी स्पर्श नहीं करती।

८. वे संग-दिल लोग जो जमा कर-कर के अपने धन की बरबादी करते हैं, क्या उन्होंने कभी दूसरों को दान करने की खुशी का मज़ा नहीं चक्खा है ?

९. भीख माँगने से भी बढ़ कर अप्रिय उस कंजूस का जमा किया हुआ खाना है जो अकेला बैठ कर खाता है।

१०. मौत से बढ़ कर कड़वी चीज़ और कोई नहीं है; मगर मौत भी उस वक्त मीठी लगती है जब किसी को दान करने की सामर्थ्य नहीं रहती।

तेईसवाँ परिच्छेद

कीर्ति

१. गरीबों को दान दो और कीर्ति कमाओ; मनुष्य के लिये इस से बढ़ कर लाभ और किसी में नहीं है।

२. प्रशंसा करने वाले की जबान पर सदा उन लोगों का नाम रहता है कि जो गरीबों को दान देते हैं।

३. दुनियाँ में और सब चीजें तो नष्ट हो जाती हैं; मगर अतुल कीर्ति सदा बनी रहती है।

४. देखो; जिस मनुष्य ने दिगन्तव्यापी स्थायी कीर्ति पायी है, स्वर्ग में देवता लोग उसे साधु-सन्तों से भी बढ़ कर मानते हैं

५. विनाश जिससे कीर्ति में वृद्धि हो और मौत जिस से अलौकिक यश की प्राप्ति हो, ये दोनों महान् आत्माओं ही के मार्ग में आते हैं।

६. यदि मनुष्यों को संसार में अवश्य ही पैदा होना है तो उनको चाहिये कि वे सुयश उपार्जन करें। जो ऐसा नहीं करते उनके लिये तो

यही अच्छा था कि वे बिल्कुल पैदा ही न हुए होते ।

७. जो लोग दोषों से सर्वथा रहित नहीं हैं वे खुद अपने पर तो नहीं बिगड़ते; फिर वे अपनी निन्दा करने वाले से क्यों नाराज होते हैं ?

८. निःसन्देह यह सब मनुष्यों के लिये बेइज्जती की बात है, अगर वे उस स्मृति का सम्पादन नहीं करते कि जिसे कीर्ति कहते हैं ।

९. बदनाम लोगों के बोझ से दबे हुए देश को देखो; उसकी समृद्धि, भूतकाल में चाहे कितनी ही बढ़ी-चढ़ी क्यों न रही हो, धीरे-धीरे नष्ट हो जायगी ।

१०. वही लोग जीते हैं जो निष्कलङ्क जीवन व्यतीत करते हैं और जिनका जीवन कीर्ति-विहीन है, वास्तव में वे ही मुर्दे हैं

द्वितीय खण्ड

तपस्वी का जीवन

चौबीसवाँ परिच्छेद

दया

१. दया से लबालब भरा हुआ दिल ही सब से बड़ी दौलत है क्योंकि दुनियावी दौलत तो नीच मनुष्यों के पास भी देखी जाती है।

२. ठीक पद्धति से सोच-विचार कर हृदय में दया धारण करो और अगर तुम सब धर्मों से इस बारे में पूछ कर देखोगे तो तुम्हें मालूम होगा कि दया ही एक मात्र मुक्ति का साधन है।

३. जिन लोगों का हृदय दया से अभिभूत है वे उस अन्धकारमय अप्रिय लोक में प्रवेश नहीं करते।

४. जो मनुष्य सब जीवों पर मेहरबानी और दया दिखलाता है, उसे उन पाप-परिणामों को भोगना नहीं पड़ता जिन्हें देख कर ही आत्मा काँप उठती है।

५. क्लेश दयालु पुरुष के लिये नहीं है; भरी-पूरी वायु-वेष्टित पृथ्वी इस बात की साक्षी है।

६. अफ़सोस है उस आदमी पर जिसने दया-धर्म को त्याग दिया और पाप कर्म करने लगा है; धर्म का त्याग करने के कारण यद्यपि पिछले जन्मों में उसने भयङ्कर दुःख उठाये हैं मगर उसने जो नसीहत ली थी, उसे भुला दिया है।

७. जिस तरह इहलोक धन-वैभव से शून्य पुरुष के लिये नहीं है; ठीक इसी तरह परलोक उन लोगों के लिये नहीं, जिन के पास दया का अभाव है।

८. ऐहिक वैभव से शून्य ग़रीब लोग तो किसी दिन वृद्धिशाली हो भी सकते हैं, मगर वे, जो दया-ममता से रहित हैं, सचमुच ही ग़रीब-कङ्गाल हैं और उनके दिन कभी नहीं फिरते।

९. विकार-ग्रस्त मनुष्य के लिये सत्य को पा लेना जितना सहज है, कठोर दिलवाले पुरुष के लिये नेकी के काम करना भी उतना ही आसान है।

१०. जब तुम किसी दुर्बल को सताने के लिये उद्यत हो तो सोचो कि अपने से बलवान मनुष्य के आगे भय से जब तुम काँपोगे तब तुम्हें कैसा लगेगा।

पचीसवाँ परिच्छेद

निरामिष

१. भला उसके दिल में तरस कैसे आयेगा जो अपना मांस बढ़ाने की खातिर दूसरों का मांस खाता है।

२. फ़िज़ूल खर्च करने वाले के पास जैसे धन नहीं ठहरता; ठीक इसी तरह मांस खाने वाले के हृदय में दया नहीं रहती।

३. जो मनुष्य माँस चखता है उसका दिल हथियार-बन्द आदमी के दिल की तरह नेकी की ओर राग़िब नहीं होता।

४. जीवों की हत्या करना निःसन्देह क्रूरता है मगर उनका मांस खाना तो एकदम पाप है।*

५. माँस न खाने ही में जीवन है; अगर तुम खाओगे तो नरक का द्वार तुम्हें बाहर निकल जाने देने के लिये अपना मुँह नहीं खोलेगा।

---

* अहिंसा ही दया है और हिंसा करना ही निर्दयता मगर माँस खाना एकदम पाप है।

६. अगर दुनियाँ खाने के लिये माँस की कामना न करे तो उसे बेचने वाला कोई आदमी ही न रहेगा। *

७. अगर मनुष्य दूसरे प्राणियों की पीड़ा और यन्त्रणा को एक बार समझ सके तो फिर वह कभी माँस खाने की इच्छा न करे।

८. जो लोग माया और मूढ़ता के फन्दे से निकल गये हैं, वे उस लाश को नहीं खाते हैं जिसमें से जान निकल गयी है।

९. जानदारों को मारने और खाने से परहेज करना सैकड़ों यज्ञों में बलि अथवा आहुति देने से बढ़कर है।

१०. देखो; जो पुरुष हिंसा नहीं करता और माँस खाने से परहेज करता है, सारा संसार हाथ जोड़ कर उसका सम्मान करता है।

—

* यह पद उन लोगों के लिये है जो कहते हैं–हम खुद हलाल नहीं करते, हमें बना-बनाया माँस मिलता है।

छब्बीसवाँ परिच्छेद

तप

१. शान्तिपूर्वक दुःख सहन करना और जीव-हिंसा न करना; बस इन्हीं में तपस्या का समस्त सार है।

२. तपस्या तेजस्वी लोगों के लिये ही है। दूसरे लोगों का तप करना बेकार है।

३. तपस्वियों को खिलाने-पिलाने और उनकी सेवा-सुश्रूषा करने के लिये कुछ लोग होने चाहियें—क्या इसी विचार से बाकी लोग तप करना भूल गये हैं?

४. यदि तुम अपने शत्रुओं का नाश करना और उन लोगों को उन्नत बनाना चाहते हो जो तुम्हें प्यार करते हैं तो जान रक्खो कि यह शक्ति तप में है।

५. तप समस्त कामनाओं को यथेष्ट रूप से पूर्ण कर देता है। इसीलिये लोग दुनिया में तपस्या के लिये उद्योग करते हैं।

६. जो लोग तपस्या करते हैं वही तो वास्तव में अपना भला करते हैं। बाकी सब तो लालसा के जाल में फँसे हुए हैं और अपने को केवल हानि ही पहुँचाते हैं।

७. सोने को जिस आग में पिघलाते हैं वह जितनी ही ज्यादा तेज होती है सोने का रङ्ग उतना ही ज्यादा तेज निकलता है, ठीक इसी तरह तपस्वी जितनी ही कड़ी मुसीबतें सहता है उसकी प्रकृति उतनी ही अधिक विशुद्ध हो उठती है।

८. देखो; जिसने अपने पर प्रभुत्व प्राप्त कर लिया है उस पुरुषोत्तम को सभी लोग पूजते हैं।

९. देखो; जिन लोगों ने तप करके शक्ति और सिद्धि प्राप्त कर ली है, वे मृत्यु को जीतने में भी सफल हो सकते हैं।

१०. अगर दुनिया में हाजतमन्दों की तादाद अधिक है तो इसका कारण यही है कि वे लोग जो तप करते हैं, थोड़े हैं, और जो तप नहीं करते हैं, उनकी संख्या अधिक है।

सत्ताईसवाँ परिच्छेद

मक्कारी

१. स्वयं उसके ही शरीर के पंचतत्व मन ही मन उस पर हँसते हैं जब कि वे मक्कार की चालबाजी और ऐयारी को देखते हैं।

२. शानदार रोबवाला चेहरा किस काम का, जब कि दिल के अन्दर बुराई भरी है और दिल इस बात को जानता है।

३. वह कापुरुष जो तपस्वी का सी तेजस्वी आकृति बनाये रखता है, उस गधे के समान है जो शेर की खाल पहने हुए घास चरता है।

४. उस मनुष्य को देखो जो धर्मात्मा के भेष में छुपा रहता है और दुष्कर्म करता है। वह उस बहेलिये के समान है जो झाड़ी के पीछे छुप कर चिड़ियों को पकड़ता है।

५. मक्कार आदमी दिखावे के लिये पवित्र बनता है और कहता है—मैंने अपनी इच्छाओं, इन्द्रिय-लालसाओं को जीत लिया है, मगर अन्त में वह दुःख भोगेगा और रो रो कर कहेगा-मैंने क्या किया ? हाय ! मैंने क्या किया ?

६. देखो; जो पुरुष वास्तव में अपने दिल से तो किसी चीज को छोड़ता नहीं मगर बाहर त्याग का आडम्बर रचता है और लोगों को ठगता है, उससे बढ़कर कठोर-हृदय दुनिया में और कोई नहीं है।

७. घुँघची देखने में खूबसूरत होती है मगर उसके दूसरी तरफ काला दाग होता है। कुछ आदमी भी उसी की तरह होते हैं। उनका बाहरी रूप तो खूबसूरत होता है किन्तु उनका अन्तःकरण बिल्कुल कलुषित होता है।

८. ऐसे बहुत हैं कि जिनका दिल तो नापाक है मगर वे तीर्थ स्थानों में स्नान करके घूमते फिरते हैं।

९. तीर सीधा होता है और तम्बूरे में कुछ झुकाव रहता है। इसलिये आदमियों को सूरत से नहीं; बल्कि उनके कामों से पहिचानो।

१०. दुनिया जिसे बुरा कहती है अगर तुम उससे बचे हुए हो तो फिर न तुम्हें जटा रखाने की जरूरत है, न सिर मुँड़ाने की।

अट्ठाईसवां परिच्छेद

सच्चाई

१. सच्चाई क्या है ? जिससे दूसरों को, किसी तरह का, जरा भी नुक़सान न पहुँचे, उस बात को बोलना ही सच्चाई है।

२. उस भूठ में भी सच्चाई की खासियत है जिसके फल स्वरूप सरासर नेकी ही होती हो।

३. जिस बात को तुम्हारा मन जानता है कि वह भूठ है, उसे कभी मत बोलो क्योंकि भूठ बोलने से खुद तुम्हारी अन्तरात्मा ही तुम्हें जलायेगी।

४. देखो, जिस मनुष्य का हृदय भूठ से पाक है, वह सब के दिलों पर हुकूमत करता है।

५. जिसका मन सत्य में निमग्न है वह पुरुष तपस्वी से भी महान् और दानी से भी श्रेष्ठ है।

६. मनुष्य के लिये इससे बढ़ कर सुयश और कोई नहीं है कि लोगों में उसकी प्रसिद्धि हो कि वह भूठ बोलना जानता ही नहीं। ऐसा पुरुष अपने शरीर को कष्ट दिये विना ही सब तरह की नियामतों को पा जाता है।

७. झूठ न बोलना, झूठ न बोलना—यदि मनुष्य इस धर्म का पालन कर सके तो उसे दूसरे धर्मों का पालन करने की ज़रूरत नहीं है।*

८. † शरीर की स्वच्छता का सम्बन्ध तो जल से है, मगर मन की पवित्रता सत्य भाषण से ही सिद्ध होती है।

९. योग्य पुरुष और सब तरह की रोशनी को रोशनी नहीं कहते; केवल सत्य की ज्योति को ही वे सच्चा प्रकाश मानते हैं।

१०, मैंने इस संसार में बहुत सी चीजें देखी हैं; मगर मैंने जो चीजें देखी हैं, उनमें सत्य से बढ़ कर उच्च और कोई चीज नहीं है।

---

* यह मूल का शब्दशः अनुवाद है। जी० यी० पी० एस० आयर ने उसका अर्थ इस तरह किया है—यदि मनुष्य बिना झूठ बोले रह सके तो उसके लिये और सब धर्म अनावश्यक हैं।

† अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यन्तिमनः सत्येन शुद्ध्यति।
मनु।

उन्तीसवाँ परिच्छेद

क्रोध न करना

१. जिस में चोट पहुँचाने की शक्ति है उसीमें सहनशीलता का होना समझा जा सकता है। जिस में शक्ति ही नहीं है वह क्षमा करे या न करे उससे किसी का क्या बनता बिगड़ता है?

२. अगर तुम में हानि पहुँचाने की शक्ति न भी हो तब भी गुस्सा करना बुरा है। मगर जब तुम में शक्ति हो तब तो गुस्से से बढ़ कर खराब बात और कोई नहीं है।

३. तुम्हें नुक़सान पहुँचाने वाला कोई भी हो, गुस्से को दूर कर दो क्योंकि गुस्से से सैंकड़ों बुराइयें पैदा होती हैं।❀

४. क्रोध हँसी की हत्या करता है और खुशी को नष्ट कर देता है। क्या क्रोध से बढ़कर मनुष्य का और भी कोई भयानक शत्रु है?

❀ गीता में क्रोध-जनित, परिमाणों का इस प्रकार वर्णन है—

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृति विभ्रमः।
स्मृति भ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति॥

५. अगर तुम अपना भला चाहते हो तो गुस्से से दूर रहो; क्योंकि यदि तुम उससे दूर न रहोगे तो वह तुम्हें आ दबोचेगा और तुम्हारा सर्वनाश कर डालेगा।

६. अग्नि उसीको जलाती है जो उसके पास जाता है मगर क्रोधाग्नि सारे कुटुम्ब को जला डालती है।

७. जो गुस्से को इस तरह दिल में रखता है मानो वह कोई बहुमूल्य पदार्थ हो, वह उस मनुष्य के समान है जो जोर से जमीन पर अपना हाथ दे मारता है; इस आदमी के हाथ में चोट लगे बिना नहीं रह सकती और पहले आदमी का सर्वनाश अवश्यम्भावी है।

८. तुम्हें जो नुक्सान पहुँचा है वह तुम्हें भड़कते हुए अङ्गारों की तरह जलाता भी हो तब भी बेहतर है कि तुम क्रोध से दूर रहो।

९. मनुष्य की समस्त कामनाएँ तुरन्त ही पूर्ण हो जाया करें यदि वह अपने मन से क्रोध को दूर कर दे।

१०. जो गुस्से के मारे आपे से बाहर है वह मुर्दे के समान है, मगर जिसने क्रोध को त्याग दिया है वह सन्तों के समान है।

तीसवां परिच्छेद

अहिंसा

१. अहिंसा सब धर्मों में श्रेष्ठ है। हिंसा के पीछे हर तरह का का पाप लगा रहता है।*

२. हाजतमन्द के साथ अपनी रोटी बाँट कर खाना और हिंसा से दूर रहना यह सब पैगम्बर में के समस्त उपदेशों में श्रेष्ठतम उपदेश है।

३. अहिंसा सब धर्मों में श्रेष्ठ धर्म है। सचाई का दर्जा उसके बाद है।

---

* पीछे कह चुके हैं:—सत्य से बढ़ कर और कोई चीज़ नहीं है (परि० २८ पद १०) पर यहाँ सत्य का दूसरा दर्जा बताया है। मनुष्य तल्लीन होकर जब किसी बात का ध्यान करता है तब वही बात उसे सब से अधिक प्रिय मालूम पड़ती है। इससे कभी २ इस प्रकार का विरोध भास अवश्य हो जाता है। यह मानव स्वभाव का एक चमत्कार है।

लालाजी ने अपना विचार इस प्रकार प्रकट किया है—

Ahinsa is the highest religion but there is no religion higher than truth. Ahinsa and truth must be reconciled, in fact in essence they are one and the same.

लाला लाजपत राय, सभापति हिन्दू महासभा

६. कल तो एक आदमी था, और आज वह नहीं है। दुनिया में यही बड़े अचरज की बात है।*

७. आदमी को इस बात का तो पता नहीं है कि पल भर के बाद वह जीता भी रहेगा कि नहीं, मगर उसके खयालों को देखो तो वे करोड़ों की संख्या में हैं।

८. पर निकलते ही चिड़िया का बच्चा टूटे हुए अण्डे को छोड़ कर उड़ जाता है। शरीर और आत्मा की पारस्परिक मित्रता का यही नमूना है।

९. मौत नींद के समान है और जिन्दगी उस नींद से जागने के समान है।

१०. क्या आत्मा का अपना कोई खास घर नहीं है जो वह इस वाहियात शरीर में आश्रय लेता है।

---

* 'नासतो विद्यते भावो, नाभावो विद्यते सतः'—गीता का यह मन्तव्य कुछ इसके विरुद्ध सा दिखाई पड़ता है। बात यह है—गीता ने किया है एक सूक्ष्म तत्व का तात्विक निदर्शन और यह है चर्म-चक्षुओं से दीखने वाले स्थूल प्रत्यक्ष का वर्णन।

गीता में मृत्यु को कपड़े बदलने से उपमा दी है और रवीन्द्र बाबू ने इसे बालक को एक स्तन से हटा कर दूसरा स्तन पान कराने के समान कहा है।

बत्तीसवाँ परिच्छेद

त्याग

१. मनुष्य ने जो चीज छोड़ दी है उस से पैदा होने वाले दु:ख से उसने अपने को मुक्त * कर लिया है।

२. त्याग से अनेकों प्रकार के सुख उत्पन्न होते हैं, इसलिये अगर तुम उन्हें अधिक समय तक भोगना चाहो तो शीघ्र त्याग करो।

३. अपनी पाँचों इन्द्रियों का दमन करो और जिन चीजों से तुम्हें सुख मिलता है उन्हें बिल्कुल ही त्याग दो।

---

* वांच्छित वस्तु को प्राप्त करने की चिन्ता, खोजाने की आशंका और न मिलने से निराशा तथा भोगाधिक्य से जो दु:ख होते हैं, उनसे वह बचा हुआ है।

इन्द्रिय-दमन तथा तप और संयम का यही सच्चा मार्ग है। यह एक तरह की कसरत है जिससे मनको साधा जा सकता है। बी अम्मा की चौलाई वाली कहानी इसका सरल सुन्दर उदाहरण है। उन्हें चौलाई का शाक बहुत पसन्द था। एक रोज़ बड़े प्रेम से उन्होंने शाक बनाया किन्तु तैयार हो जाने पर उन्होंने खाने से इन्कार कर दिया, जब कारण पूछा गया तो कहा—आज मेरा मन इस चौलाई की भाजी में बहुत लग गया है। मैं सोचती हूँ, यदि मैं अपने को वासना के वशीभूत हो जाने दूँगी और कल कहीं दूसरे पति की इच्छा हुई तब मैं क्या करूँगी।

भोग भोगकर शान्ति लाभ करनेकी बात कोरी विडम्बना मात्र है। एक तो 'हविषा कृष्ण वर्मेव भूयएवाभिवर्द्धते' इस कथनानुसार तृष्णा बढ़ती ही जाती है। दूसरे, थके हुए वृद्ध घोड़े को निकालने से काम ही क्या? जब इन्द्रियों में बल है और शरीरमें स्फूर्ति है तभी उन्हें संयमसे कसकर सन्मार्ग

४. अपने पास कुछ भी न रखना, यही व्रत-धारी का नियम है। एक चीज को भी अपने पास रखना मानो उन बन्धनों में फिर आ फँसना है जिन्हें मनुष्य एक बार छोड़ चुका है।

५. जो लोग पुनर्जन्मके चक्रको बन्द करना चाहते हैं, उनके लिये यह शरीर भी अनावश्यक है। फिर भला अन्य बन्धन कितने अनावश्यक होंगे? *

६. "मैं" और "मेरे" के जो भाव हैं, वे घमण्ड और खुदनुमाई के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं। जो मनुष्य उनका दमन कर लेता है वह देव-लोक से भी उच्च लोक को प्राप्त होता है।

७. देखो; जो मनुष्य लालच में फँसा हुआ है और उससे निकलना नहीं चाहता, उसे दुःख आ कर घेर लेगा और फिर मुक्त न करेगा।

८. जिन लोगों ने सब कुछ त्याग दिया है, वे मुक्ति के मार्ग में हैं, मगर बाक़ी सब मोह-जाल में फँसे हुए हैं।

९. ज्योंही लोभ-मोह दूर हो जाते हैं, उसी दम पुनर्जन्म बन्द हो जाता है। जो मनुष्य इन बन्धनों को नहीं काटते वे भ्रमजाल में फँसे रहते हैं।

१०. उसी ईश्वर की शरण में जाओ कि जिसने सब मोहों को छिन्न-भिन्न कर दिया है। और उसी का आश्रय लो जिससे सब बन्धन टूट जायँ

में लगाने की आवश्यकता है। यहाँ इन्द्रियों को संयम और अनुशासन द्वारा अधिक सक्षम बनाने ही के लिये या आदेश है, उन्हें सुखा कर मार डालने के लिये नहीं!

* माया, मोह और अविद्या।

तेतीसवाँ परिच्छेद

सत्य का आस्वादन

१. मिथ्या और अनित्य पदार्थों को सत्य समझने के भ्रम से ही मनुष्य को दुःखमय जीवन भोगना पड़ता है।

२. देखो, जो मनुष्य भ्रमात्मक भावों से मुक्त है और जिसकी दृष्टि स्वच्छ है, उसके लिये दुःख और अन्धकार का अन्त हो जाता है और आनन्द उसे प्राप्त होता है।

३. जिसने अनिश्चित बातों से अपने को मुक्त कर लिया है और जिसने सत्य को पा लिया है, उसके लिये स्वर्ग पृथ्वी से भी अधिक समीप है।

४. मनुष्य जैसी उच्च योनि को प्राप्त कर लेने से भी कोई लाभ नहीं, अगर आत्मा ने सत्य का आस्वादन नहीं किया।

५. कोई भी बात हो, उसमें सत्य को झूँठ से पृथक् कर देना ही मेधा का कर्त्तव्य है।

६. वह पुरुष धन्य है जिसने गम्भीरतापूर्वक स्वाध्याय किया है और सत्य को पा लिया है;

वह ऐसे रास्ते से चलेगा जिससे फिर उसे इस दुनिया में आना न पड़ेगा।

७. निःसन्देह जिन लोगों ने ध्यान और धारण के द्वारा सत्य को पा लिया है, उन्हें होने वाले जन्मों का ख़याल करने की जरूरत नहीं है।*

८. जन्मों की जननी अविद्या से छुटकारा पान और सच्चिदानन्द को प्राप्त करने की चेष्टा करन ही बुद्धिमानी है।

९. देखो, जो पुरुष मुक्ति के साधनों को जानत है और सब मोहों के जीतने का प्रयत्न करत है; भविष्य में आने वाले सब दुःख उससे दूर हो जाते हैं।

१०. काम, क्रोध और मोह ज्यों ज्यों मनुष्य को छोड़ते जाते हैं; दुःख भी उनका अनुसरण करके धीरे धीरे नष्ट हो जाते हैं।

---

* अथवा—जिन्होंने चिन्तन और मनन के द्वारा स को पा लिया है उनके लिये पुनर्जन्म नहीं है।

चौंतीसवाँ परिच्छेद

कामना का दमन

१. कामना एक बीज है जो प्रत्येक आत्मा को सर्वदा ही अनवरत—कभी न चूकने वाले—जन्मों की फसल प्रदान करता है।

२. यदि तुम्हें किसी बात की कामना करना ही है तो जन्मों के चक्र से छुटकारा पाने की कामना करो और वह छुटकारा तभी मिलेगा जब तुम कामना को जीतने की इच्छा करोगे।

३. निष्कामना से बढ़ कर यहाँ—मर्त्यलोक में—दूसरी और कोई सम्पत्ति नहीं है और तुम स्वर्ग में भी जाओ तुम्हें ऐसा खजाना न मिल सकेगा जो उसका मुकाबिला करे।

४. कामना से मुक्त होने के सिवाय पवित्रता और कुछ नहीं है। और यह मुक्तिपूर्ण सत्य की इच्छा करने से ही मिलती है।

५. वही लोग मुक्त हैं जिन्होंने अपनी इच्छाओं को जीत लिया है; बाकी लोग देखने में स्वतन्त्र मालूम पड़ते हैं मगर वास्तव में वे बन्धन से जकड़े हुए हैं।

६. यदि तुम नेकी को चाहते हो तो कामना से दूर रहो क्योंकि कामना एक जाल और निराशा मात्र है ।

७. यदि कोई मनुष्य अपनी समस्त वासनाओं को सर्वथा त्याग दे तो जिस राह से आने की वह आशा देता है, मुक्ति उधर ही से आकर उससे मिलती है ।

८. जो किसी बात की कामना नहीं करता, उसको कोई दुःख नहीं होता, मगर जो चीजों को पाने के लिये मारा-मारा फिरता है उस पर आफ़त पर आफ़त पड़ती है ।

९. यहाँ भी मनुष्य को स्थायी सुख प्राप्त हो सकता है बशर्ते कि वह अपनी इच्छा का ध्वंस कर डाले जो कि सब से बड़ी आपत्ति है ।

१०. इच्छा कभी तृप्त नहीं होती किन्तु यदि कोई मनुष्य उसको त्याग दे तो वह उसी दम सम्पूर्णता को प्राप्त कर लेता है ।

पैंतीसवाँ परिच्छेद

भवितव्यता—होनी

१. मनुष्य दृढ़-प्रतिज्ञ हो जाता है जब भाग्य-लक्ष्मी उस पर प्रसन्न होकर कृपा करना चाहती है। मगर मनुष्य में शिथिलता आ जाती है, जब भाग्य-लक्ष्मी उसे छोड़ने को होती है।

२. दुर्भाग्य शक्तियों को मन्द कर देता है, मगर जब भाग्य-लक्ष्मी कृपा दिखाना चाहती है तो वह पहले बुद्धि को विस्फूर्त कर देती है।

३. ज्ञान और सब तरह की चतुरता से क्या लाभ ? अन्दर जो आत्मा है उसका ही प्रभाव सर्वोपरि है।

४. दुनिया में दो चीजें हैं जो एक दूसरे से बिल्कुल नहीं मिलतीं। धन-सम्पत्ति एक चीज है और साधुता तथा पवित्रता बिल्कुल दूसरी चीज *।

५. जब किसी के दिन बुरे होते हैं तो भलाई भी बुराई में बदल जाती है, मगर जब दिन फिरते हैं तो बुरी चीजें भी भली हो जाती हैं।

---

*सुई के नकुए में से ऊँट का निकल जाना तो सरल है पर धनिक पुरुष का स्वर्ग में प्रवेश करना असम्भव है।
—क्राइस्ट

६. भवितव्यता जिस बात को नहीं चाहती, उसे तुम अत्यन्त चेष्टा करने पर भी नहीं रख सकते और जो चीजें तुम्हारी हैं-तुम्हारे भाग्य में बदी हैं—उन्हें तुम इधर उधर फेंक भी दो, फिर भी वे तुम्हारे पास से नहीं जावेंगी।

७. उस महान् शासक की आज्ञा के विपरीत करोड़पति भी अपनी सम्पत्ति का ज़रा भी उपभोग नहीं कर सकता।

८. ग़रीब लोग निःसन्देह अपने दिल को त्याग की ओर झुकाना चाहते हैं किन्तु भवितव्यता उन्हें उन दुःखों के लिये रख छोड़ती है जो उनके भाग्य† में बदे हैं।

९. अपना भला देख कर जो मनुष्य खुश होता है, उसे आपत्ति आने पर क्यों दुखी होना चाहिये ?

१०. होनी से बढ़ कर बलवान और कौन है ? क्योंकि उसका शिकार जिस वक्त उसे पराजित करने की तरकीब सोचता है, उसी वक्त वह पेश कदमी कर के उसे नीचा दिखाती है।

---

† 'मज़े हमने उड़ाये हैं मुसीबत कौन झेलेगा' ? जो सुख मनाता है उसे दुःख भी भोगना ही होगा। सुख-दुःख तो एक दूसरे का पीछा करने वाले द्वन्द्व हैं।

द्वितीय भाग

अर्थ

प्रथम खण्ड

राजा

छत्तीसवाँ परिच्छेद

राजा के गुण

१. जिसके पास सेना, आबादी, धन, मन्त्री, सहायक मित्र और दुर्ग ये छः चीजें यथेष्ट रूप से हैं; वह राजाओं में शेर है।

२. राजा में साहस, उदारता, बुद्धिमानी और कार्य-शक्ति—इन बातों का कभी अभाव नहीं होना चाहिये।

३. जो पुरुष दुनिया में हुकूमत करने के लिये पैदा हुए हैं उन्हें चौकसी, जानकारी और निश्चय-बुद्धि—ये तीनों खूबियें कभी नहीं छोड़तीं।

४. राजा को धर्म करने में कभी न चूकना चाहिये और अधर्म को दूर करना चाहिये। उसे ईर्ष्या पूर्वक अपनी इज्जत की रक्षा करनी चाहिये, मगर वीरता के नियमों के विरुद्ध दुराचरण कभी न करना चाहिये।

५. राजा को इस बात का ज्ञान रखना चाहिये कि अपने राज्य के साधनों की विस्फूर्ति और वृद्धि किस तरह की जाये और खजाने को किस प्रकार पूर्ण किया जाये। धन की रक्षा किस तरह की जाय और किस प्रकार, समुचित रूप से, उसका खर्च किया जाय।

६. यदि समस्त प्रजा की पहुँच राजा तक हो और राजा कभी कठोर वचन न बोले तो उसका राज्य सब से ऊपर रहेगा।

७. देखो, जो राजा खूबी के साथ दान दे सकता है और प्रेम के साथ शासन करता है, उसका नाम सारी दुनियाँ में फैल जायगा।

८. धन्य है वह राजा, जो निष्पक्षपात-पूर्वक न्याय करता है और अपनी प्रजा की रक्षा करता है; वह मनुष्यों में देवता समझा जायेगा।

९. देखो, जिस राजा में कानों को अप्रिय लगने वाले वचनों को सहन करने का गुण है, संसार निरन्तर उसकी छत्र-छाया में रहेगा।

१०. जो राजा उदार, दयालु और न्यायनिष्ठ है, और जो अपनी प्रजा की प्रेम-पूर्वक सेवा करता है, वह राजाओं के मध्य में ज्योतिस्वरूप है।

सैंतीसवाँ परिच्छेद

शिक्षा

१. प्राप्त करने योग्य जो ज्ञान है, उसे सम्पूर्ण रूप से प्राप्त करना चाहिये और उसे प्राप्त करने के पश्चात् उसके अनुसार व्यवहार करना चाहिये।

२. मानव जाति की जीती जागती दो आँखें हैं। एक को अङ्क कहते हैं और दूसरी को अक्षर।

३. शिक्षित लोग ही आँख वाले कहलाये जा सकते हैं, अशिक्षितों के सिर में तो केवल दो गड्ढे होते हैं।

४. विद्वान जहाँ कहीं भी जाता है अपने साथ आनन्द ले जाता है, लेकिन जब वह विदा होता है तो पीछे दुःख छोड़ जाता है।

५. यद्यपि तुम्हें गुरु या शिक्षक के सामने उतना ही अपमानित और नीचा बनना पड़े जितना कि एक भिक्षुक को धनवान् के समक्ष बनना पड़ता है, फिर भी तुम विद्या सीखो; मनुष्यों में अधम वही लोग हैं जो विद्या सीखने से इनकार करते हैं।

५. जो आदमी अचानक आ पड़ने वाली मुसीबत के लिये पहिले ही से तयार नहीं रहता, वह ठीक उसी तरह नष्ट हो जायगा जिस तरह आग के अङ्गारे के सामने फूस का ढेर।

६. राजा यदि पहिले अपने दोषों को सुधार कर तब दूसरों के दोषों को देखे तो फिर कौन सा बुराई उसको छू सकती है ?

७. खेद है उस कञ्जूस पर, जो व्यय करने की जगह व्यय नहीं करता; उसकी दौलत बुरी तरह बरबाद होगी।

८. कञ्जूस, मक्खीचूस होना ऐसा दुर्गुण नहीं है जिसकी गिनती दूसरी बुराइयों के साथ की जा सके; उसका दर्जा ही बिल्कुल अलग है *।

९. किसी वक्त और किसी बात पर फूल कर आपे से बाहर मत हो जाओ; और ऐसे कामों में हाथ न डालो जिनसे तुम्हें कुछ लाभ न हो।

१०. तुम्हें जिन बातों का शौक है, उसका पता अगर तुम दुश्मनों को न चलने दोगे तो तुम्हारे दुश्मनों की साजिशें बेकार साबित होंगी।†

---

* अर्थात् कृपणता साधारण नहीं असाधारण दुर्गुण है।

† दुश्मन को यदि मालूम हो जाय कि राजा में ये दिलचस्पियाँ हैं अथवा उसे इन बातों से प्रेम है तो वह आसानी से राजा को वश में कर ले सकता है।

एकतालीसवां परिच्छेद

योग्य पुरुषों की मित्रता

१. जो लोग धर्म करते २ बुढ्ढे हो गये हैं, उनकी तुम इज्जत करो, उनकी दोस्ती हासिल करने की कोशिश करो।

२. तुम जिन मुश्किलों में फँसे हुए हो, उनको जो लोग दूर कर सकते हैं और आने वाली बुराइयों से जो तुम्हें बचा सकते हैं, उत्साह पूर्वक उनकी मित्रता को प्राप्त करने की चेष्टा करो।

३. अगर किसी को योग्य पुरुषों की प्रीति और भक्ति मिल जाय तो वह महान् से महान् सौभाग्य की बात है।

४. जो लोग तुम से अधिक योग्यता वाले हैं, वे यदि तुम्हारे मित्र बन गये हैं तो तुमने ऐसी शक्ति प्राप्त कर ली है जिसके सामने अन्य सब शक्तियाँ तुच्छ हैं।

५. चूंकि मन्त्री ही राजा की आँखें हैं, इसलिये उनके चुनने में बहुत ही समझदारी और होशियारी से काम लेना चाहिये।

६. जो लोग सुयोग्य पुरुषों के साथ मित्रता का व्यवहार रख सकते हैं; उनके वैरी उनका कुछ बिगाड़ न सकेंगे।

७. जिस आदमी को ऐसे लोगों की मित्रता का गौरव प्राप्त है कि जो उसे डाँट-फटकार सकते हैं, उसे नुक्सान पहुँचाने वाला कौन है?*

८. जो राजा ऐसे पुरुषों की सहायता पर निर्भर नहीं रहता कि जो वक्त पड़ने पर उसको झिड़क सकें; दुश्मनों के न रहने पर भी, उस का नाश होना अवश्यम्भावी है।

९. जिनके पास मूल धन नहीं है, उनको लाभ नहीं मिल सकता; ठीक इसी तरह पायदारी उन लोगों को नसीब नहीं होती कि जो बुद्धिमानों की अविचल सहायता पर निर्भर नहीं रहते।

१०. ढेर के ढेर लोगों को दुश्मन बना लेना मूर्खता है; किन्तु नेक लोगों की दोस्ती को छोड़ना, उससे भी कहीं ज्यादा बुरा है।

---

* लोग प्रायः खुशामदपसन्द होते हैं और शक्ति-शाली मनुष्य के लिये खुशामदियों की कमी भी नहीं रहती ऐसी अवस्था में स्पष्ट बात कह कर सन्मार्ग दिखाने वाला मनुष्य सौभाग्य से ही मिलता है। राजपाल के मंत्री यदि इस पर ध्यान दें तो वह बहुत सी कटुता से बचे रहें।

बयालीसवाँ परिच्छेद

कुसङ्ग से दूर रहना

१. लायक लोग बुरी सोहबत से डरते हैं, मगर छोटी तबियत के आदमी बुरे लोगों से इस तरह मिलते-जुलते हैं, मानो वे उनके ही कुटुम्ब वाले हैं।

२. पानी का गुण बदल जाता है—वह जैसी जमीन पर बहता है वैसा ही गुण, उसका हो जाता है—इसी तरह जैसी सङ्गत होती है, उसी तरह का असर पड़ता है।

३. आदमी की बुद्धि का सम्बन्ध तो दिमाग़ से है, मगर उसकी नेकनामी का दारोमदार उन लोगों पर है जिनकी सोहबत में वह रहता है।

४. मालूम तो ऐसा होता है कि मनुष्य का स्वभाव उसके मन में रहता है, किन्तु वास्तव में उसका निवासस्थान उस गोष्ठी में है कि जिसकी सङ्गत वह करता है।

५. मन की पवित्रता और कर्म की पवित्रता आदमी की सङ्गत की पवित्रता पर निर्भर है।

६. पाकदिल आदमी की औलाद नेक होगी और जिनकी सङ्गत अच्छी है, वे हर तरह से फलते-फूलते हैं।

७. मन की पवित्रता आदमी के लिये खजाना है और अच्छी सङ्गत उसे हर तरह का गौरव प्रदान करती है।

८. बुद्धिमान यद्यपि स्वयमेव सर्व-गुण-सम्पन्न होते हैं, फिर भी वे पवित्र पुरुषों के सुसंग को शक्ति का स्तम्भ समझते हैं।

९. धर्म मनुष्य को स्वर्ग ले जाता है और सत्पुरुषों की सङ्गति मनुष्यों को धर्माचरण में रत करती है।

१०. अच्छी सङ्गत से बढ़कर आदमी का सहायक और कोई नहीं है। और कोई भी चीज इतनी हानि नहीं पहुँचाती जितनी कि बुरी सङ्गत।

तेतालीसवाँ परिच्छेद

काम करने से पहिले सोच-विचार लेना

१. पहले यह देख लो कि इस काम में लागत कितनी लगेगी, कितना माल खराब जायगा और मुनाफ़ा इसमें कितना होगा; फिर तब उस काम में हाथ डालो।

२. देखो, जो राजा सुयोग्य पुरुषों से सलाह करने के बाद ही किसी काम को करने का फ़ैसला करता है; उसके लिये ऐसी कोई बात नहीं है जो असम्भव हो।

३. ऐसे भी उद्योग हैं जो मुनाफ़े का सब्ज़बाग़ दिखाकर अन्त में मूलधन--असल--तक को नष्ट कर देते हैं; बुद्धिमान लोग उनमें हाथ नहीं लगाते।

४. देखो, जो लोग नहीं चाहते कि दूसरे आदमी उन पर हँसें, वे पहिले अच्छी तरह से गौर किये बिना कोई काम शुरू नहीं करते।

५. सब बातों की अच्छी तरह पेशबन्दी किये बिना ही लड़ाई छेड़ देने का अर्थ यह है कि तुम दुश्मन को खूब होशियारी के साथ तय्यार की हुई जमीन पर लाकर खड़ा कर देते हो।

६. कुछ काम ऐसे हैं कि जिन्हें नहीं करना चाहिये और अगर तुम करोगे तो नष्ट हो जाओगे; और कुछ काम ऐसे हैं कि जिन्हें करना ही चाहिये और अगर उन्हें तुम न करोगे तो भी नष्ट हो जाओगे।

७. खूब अच्छी तरह सोचे बिना किसी काम के करने का निश्चय मत करो; वह मूर्ख है जो काम शुरू कर देता है और मन में कहता है कि बाद में सोच लेंगे।

८. देखो, जो आदमी ठीक रास्ते से काम नहीं करता उसकी सारी मेहनत अकारथ जायगी; उसकी मदद करने के लिये चाहे कितने ही आदमी क्यों न आयँ।

९. जिसके साथ तुम उपकार करना चाहते हो, उसके स्वभाव का यदि तुम खयाल न रक्खोगे तो तुम भलाई करने में भी भूल कर सकते हो।

१०. तुम जो काम करना चाहते हो, सर्वथा अनिन्द्य होना चाहिये, क्योंकि दुनिया में उसकी वेकदरी होती है जो अपने अयोग्य काम करने पर उतारू हो जाता है।

चौआलीसवां परिच्छेद

शक्ति का विचार

१. जिस काम को तुम उठाना चाहते हो, उसमें जो मुश्किलें हैं, उन्हें अच्छी तरह देख भाल लो; उसके बाद अपनी शक्ति, अपने विरोधी की शक्ति तथा अपने तथा विरोधी के सहायकों की शक्ति का विचार कर लो और तब तुम उस काम को शुरू करो।

२. जो अपनी शक्ति को जानता है और जो कुछ उसे सीखना चाहिये, वह सीख चुका है और जो अपनी शक्ति और ज्ञान की सीमा के बाहर क़दम नहीं रखता, उसके आक्रमण कभी व्यर्थ नहीं जायँगे।

३. ऐसे बहुत से राजा हुए जिन्होंने जोश में आ कर अपनी शक्ति को अधिक समझा और काम शुरू कर बैठे; पर बीच में ही उनका काम तमाम हो गया।

४. जो आदमी शान्तिपूर्वक रहना नहीं जानते, जो अपने बलाबल का ज्ञान नहीं रखते और जो घमण्ड में चूर रहते हैं, उनका शीघ्र ही अन्त होता है।

६. सावधान! उन लोगों का विश्वास देख-भाल कर करना कि जिन के आगे-पीछे कोई नहीं है; क्योंकि उन लोगों के दिल ममता-हीन और लज्जा-रहित होंगे।

७. यदि तुम किसी मूर्ख को अपना विश्वास पात्र सलाहकार बनाना चाहते हो, सिर्फ इस-लिये कि तुम उसे प्यार करते हो, तो, याद रक्खो कि वह तुम्हें अनन्त मूर्खताओं में ला पटकेगा।

८. देखो, जो आदमी परीक्षा लिये बिना ही दूसरे मनुष्य का विश्वास करता है, वह अपनी सन्तति के लिये अनेक आपत्तियों का बीज बो रहा है।

९. परीक्षा किये बिना किसी का विश्वास न करो; और अपने आदमियों की परीक्षा लेने के बाद हर एक को उसके लायक़ काम दो।

१०. अनजाने मनुष्य पर विश्वास करना और जाने हुए योग्य पुरुष पर सन्देह करना—ये दोनों ही बातें एक समान अनन्त आपत्तियों का कारण होती हैं।

अड़तालीसवाँ परिच्छेद

मनुष्यों की परीक्षा; उनकी नियुक्ति और निगरानी

१. देखो, जो आदमी नेकी को देखता है और बदी को भी देखता है, मगर पसन्द उसी बात को करता है कि जो नेक है; बस उसी आदमी को अपनी नौकरी में लो।

२. जो मनुष्य तुम्हारे राज्य के साधनों को विस्फूर्त कर सके और उस पर जो आपत्ति पड़े, उसे दूर कर सके, ऐसे ही आदमी के हाथ में अपने राज्य का प्रबन्ध सौंपो।

३. उसी आदमी को अपनी नौकरी के लिये चुनो कि जिसमें दया, बुद्धि और द्रुत निश्चय है, अथवा जो लालच से आजाद है।

४. बहुत से आदमी ऐसे हैं जो सब तरह की परीक्षाओं में उत्तीर्ण हो जाते हैं, मगर फिर भी ठीक कर्त्तव्य पालन के वक्त बदल जाते हैं।

५. आदमियों के सुचतुर-ज्ञान और उनकी शान्त कार्य-कारिणी शक्ति का खयाल करके ही उनके हाथों में काम सौंपना चाहिये; इसलिये नहीं कि वे तुम से प्रेम करते हैं।

६. सुचतुर मनुष्य को चुनकर उसे वही काम दो जिसके वह योग्य है; फिर जब काम करने का ठीक मौक़ा आये तो उससे काम शुरू करवा दो।

७. पहिले नौकर की शक्ति और उसके योग्य काम का खूब विचार कर लो और तब उसकी जिम्मेवारी पर वह काम उसके हाथ में सौंप दो।

८. जब तुम निश्चय कर चुको कि यह आदमी इस पद के योग्य है; तब तुम उसे उस पद को सुशोभित करने के क़ाबिल बना दो।

९. देखो, जो उस मनुष्य के मित्रता-सूचक व्यवहार पर रुष्ट होता है कि जो अपने कार्य में दक्ष है; भाग्य-लक्ष्मी उससे फिर जायगी।

१०. राजा को चाहिये कि वह हर रोज़ हर एक काम की देखभाल करता रहे; क्योंकि जब तक किसी देश के अहलकारों में खराबी पैदा न होगी, तब तक उस देश पर कोई आपत्ति न आयेगी।

उनचासवाँ परिच्छेद

न्याय-शासन

१. खूब गौर करो और किसी तरफ़ मत झुको, निष्पक्ष होकर कानूनदाँ लोगों की राय लो—न्याय करने का यही तरीक़ा है।

२. संसार जीवन-दान के लिये बादलों की ओर देखता है; ठीक इसी तरह न्याय के लिये लोग राज-दण्ड की ओर निहारते हैं।

३. राज़-दण्ड ही ब्रह्म-विद्या और धर्म का मुख्य संरक्षक है।

४. देखो, जो राजा अपने राज्य की प्रजा पर प्रेम-पूर्वक शासन करता है, उससे राज्यलक्ष्मी कभी पृथक् न होगी।

५. देखो, जो राजा नियमानुसार राज-दण्ड धारण करता है, उसका देश समयानुकूल वर्षा और शस्य-श्री का घर बन जाता है।

६. राजा की विजय का कारण उसका भाला नहीं होता है; बल्कि यों कहिये कि वह राज-

दण्ड है, जो हमेशा सीधा रहता है और कभी किसी ओर को नहीं झुकता।

७. राजा अपनी समस्त प्रजा का रक्षक है और उसकी रक्षा करेगा उसका राज-दण्ड बशर्ते कि वह उसे कभी किसी ओर न झुकने दे।

८. जिस राजा की प्रजा आसानी से उसके पास तक नहीं पहुँच सकती और जो ध्यान पूर्वक न्याय-विचार नहीं करता, वह राजा अपने पद से भ्रष्ट हो जायगा और दुश्मनों के न होने पर भी वह नष्ट हो जायगा।

९. देखो, जो राजा आन्तरिक और बाह्य शत्रुओं से अपनी प्रजा की रक्षा करता है, वह यदि अपराध करने पर उन्हें दण्ड दे तो यह उसका दोष नहीं है—यह उसका कर्त्तव्य है।

१०. दुष्टों को मृत्यु-दण्ड देना अनाज के खेत से घास को बाहर निकालने के समान है।

पचासवां परिच्छेद

जुल्म-अत्याचार

१. देखो, जो राजा अपनी प्रजा को सताता और उन पर जुल्म करता है; वह हत्यारे से भी बदतर है।

२. जो राजदण्ड धारण करता है, उसकी प्रार्थना ही हाथ में तलवार लिये हुए डाकू के इन शब्दों के समान है—"खड़े रहो, और जो कुछ है रख दो।"

३. देखो, जो राजा प्रतिदिन राज्य-सञ्चालन की देख-रेख नहीं रखता और उसमें जो त्रुटियाँ हों, उन्हें दूर नहीं करता, उसका राजत्व दिन २ क्षीण होता जायगा।

४. शोक है उस विचारहीन राजा पर, जो न्याय-मार्ग से चल-विचल हो जाता है; वह अपना राज्य और धन सब कुछ खो बैठेगा।

५. निस्सन्देह ये अत्याचार-दलित दुःख से कराहते हुये लोगों के आँसू ही हैं जो राजा की समृद्धि को धीरे धीरे बहा ले जाते हैं।

६. न्याय-शासन द्वारा ही राजा को यश मिलता है और अन्याय-शासन उसकी कीर्ति को कलङ्कित करता है ।

७. वर्षा-हीन, आकाश के तले पृथ्वी की जो दशा होती है, ठीक वही दशा निर्दयी राजा के राज्य में प्रजा की होती है ।

८. अत्याचारी राजा के शासन में गरीबों से ज्यादा दुर्गति अमीरों की होती है ।

९. अगर राजा न्याय और धर्म के मार्ग से बहक जायेगा तो स्वर्ग से ठीक समय पर वर्षा की बौछारें आना बन्द हो जायँगी ।

१०. यदि राजा न्याय-पूर्वक शासन नहीं करेगा तो गाय के थन सूख जायँगे और ब्राह्मण * अपनी विद्या को भूल जायँगे ।

---

* षट्कर्मा शब्द का प्रयोग मूल ग्रन्थ में है ।

एक्यावनवां परिच्छेद

गुप्तचर

१. राजा को यह ध्यान में रखना चाहिये कि राजनीति-विद्या और गुप्त-चर—ये दो आँखें हैं, जिनसे वह देखता है।

२. राजा का काम है कि कभी कभी प्रत्येक मनुष्य की, प्रत्येक बात की हर रोज खबर रक्खे।

३. 'जो राजा गुप्तचरों और दूतों के द्वारा अपने चारों तरफ होने वाली घटनाओं की खबर नहीं रखता है—उसके लिये दिग्विजय नहीं है।

४. राजा को चाहिये कि अपने राज्य के कर्मचारियों, अपने बन्धु-बान्धवों और शत्रुओं की गति-मति को देखने के लिये दूत नियत कर रक्खे।

५. जो आदमी अपने चेहरे का ऐसा भाव बना सके कि जिससे किसी को सन्देह न हो, जो किसी भी आदमी के सामने गड़बड़ाये नहीं और जो अपने गुप्त भेदों को किसी तरह प्रकट

न होने दे—भेदिया का काम करने के लिये वही ठीक आदमी है।

६. गुप्तचरों और दूतों को चाहिये कि वे संन्यासियों और साधु-सन्तों का भेष धारण करें और खोज कर सच्चा भेद निकालें और चाहे कुछ भी हो जाय, वे अपना भेद न बतायें।

७. जो मनुष्य दूसरों के पेट से भेद की बातें निकाल सकता है, और जिसकी गवेषणा सदा शुद्ध और निस्सन्दिग्ध होती है; वही भेद लगाने का काम करने लायक है।

८. एक दूत के द्वारा जो सूचना मिलती है, उसको दूसरे दूत की सूचना से मिला कर जाँचना चाहिए

९. इस बात का ध्यान रक्खो कि कोई दूत उसी काम में लगे हुए दूसरे दूतों को न जानने पाये और जब तीन दूतों की सूचनाएँ एक दूसरे से मिलती हों, तब उन्हें सच्चा मान सकते हो।

१०. अपने खुफ़िया पुलिस के अफ़सरों को खुले आम इनाम मत दो, क्योंकि यदि तुम ऐसा करोगे तो अपने ही राज को फ़ाश कर दोगे।

बावनवाँ परिच्छेद

क्रिया—शीलता

१. जिनमें काम करने की शक्ति है, बस, वही सच्चे अमीर हैं और जिनके अन्दर वह शक्ति नहीं है क्या वे सचमुच ही अपनी चीजों के मालिक हैं ?

२. काम करने की शक्ति ही मनुष्य का वास्तविक धन है क्योंकि दौलत हमेशा नहीं रहती, एक न एक दिन चली जायेगी।

३. धन्य है वह पुरुष जो काम करने से कभी पीछे नहीं हटता ! भाग्य-लक्ष्मी उसके घर की राह पूछती हुई जाती है।

४. पौधे को सींचने के लिये जो पानी डाला जाता है, उसीसे उसके फूल के सौन्दर्य का पता लग जाता है; ठीक इसी तरह आदमी का उत्साह, उसकी भाग्य-शीलता का पैमाना है।

५. जोशीले आदमी शिकस्त खाकर कभी पीछे नहीं हटते, हाथी के जिस्म में जब दूर तक तीर घुस जाता है, तब वह और भी मजबूती के साथ जमीन पर अपने पैरों को जमाता है।

६. अनन्त उत्साह—बस यही तो शक्ति है; जिनमें उत्साह नहीं है, वे और कुछ नहीं, केवल काठ के पुतले हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि उनका शरीर मनुष्यों का सा है।

७. आलस्य में दरिद्रता का वास है, मगर जो आलस्य नहीं करता, उसके परिश्रम में कमला बसती है।

८. टालमटूल, विस्मृति, सुस्ती और निद्रा—ये चार उन लोगों के खुशी मनाने के वजड़े हैं कि जिनके भाग्य में नष्ट होना बदा है।

९. अगर भाग्य किसी को धोखा दे जाय तो इसमें कोई लज्जा नहीं, लेकिन वह अगर जान-बूझ कर, काम से जी चुराकर, हाथ पर हाथ रखकर बैठा रहे तो यह बड़े ही शर्म की बात है।

१०. जो राजा आलस्य को नहीं जानता, वह त्रिविक्रम—वामन के पैरों से नापी हुई समस्त पृथ्वी को अपनी छत्रछाया के नीचे ले आयेगा।

तिरपनवाँ परिच्छेद

मुसीबत के वक़्त बेखौफ़ी

१. जब तुम पर कोई मुसीबत आ पड़े तो तुम हँसते हुए उसका मुक़ाबला करो। क्योंकि मनुष्य को आपत्ति का सामना करने के लिये, सहायता देने में मुस्क्यान से बढ़कर और कोई चीज़ नहीं है।

२. अनिश्चितमना पुरुष भी मन को एकाग्र करके जब सामना करने को खड़ा होता है तो आपत्तियों का लहराता हुआ सागर भी दब कर बैठ जाता है।

३. आपत्तियों को जो आपत्ति नहीं समझते, वे आपत्तियों को ही आपत्ति में डालकर वापस भेज देते हैं।

४. भैंसे की तरह हर एक मुसीबत का सामना करने के लिये जो जी तोड़कर कोशिश करने को तय्यार है; उसके सामने विघ्न-बाधा आयेंगे, मगर निराश होकर, अपना सा मुँह लेकर, वापस चले जायँगे।

५. आपत्तियों की एक समस्त सेना को अपने विरुद्ध सुसज्जित खड़ा देखकर भी, जिसका मन बैठ नहीं जाता, बाधाओं को उसके पास आने में खुद बाधा होती है।

६. सौभाग्य के समय जो खुशी नहीं मनाते क्या वे कभी इस किस्म की शिकायत करते फिरेंगे कि हाय, हम नष्ट हो गये!

७. बुद्धिमान लोग जानते हैं कि यह जिस्म तो मुसीबतों का निशाना है–तख्त-ए-मश्क है; और इसलिये जब उन पर कोई आफत आ पड़ती है तो वे उसकी कुछ पर्वाह नहीं करते।

८. देखो, जो आदमी ऐशो-आराम को पसन्द नहीं करता और जो जानता है कि आपत्तियाँ भी सृष्टि-नियम के अन्तर्गत हैं; वह बाधा पड़ने पर, कभी परेशान नहीं होता।

९ सफलता के समय जो हर्ष में मग्न नहीं होता, असफलता के समय उसे दुःख नहीं भोगना पड़ता।

१०. देखो, जो मनुष्य परिश्रम के दुःख, दबाव और आवेग को सच्चा सुख समझता है, उसके दुश्मन भी उसकी प्रशंसा करते हैं।

द्वितीय खण्ड

राज-तन्त्र

चौपनवाँ परिच्छेद

मन्त्री

१. देखो, जो मनुष्य महत्वपूर्ण उद्योगों को सफलतापूर्वक सम्पादन करने के मार्गों और साधनों को जानता है और उनको आरम्भ करने के समुचित समय को पहिचानता है, सलाह देने के लिये के वही योग्य पुरुष है।

२. स्वाध्याय, दृढ़-निश्चय, पौरुष, कुलीनता और प्रजा की भलाई के निमित्त सप्रेम चेष्टा—ये मन्त्री के पाँच गुण हैं।

३. जिसमें दुश्मनों के अन्दर फूट डालने की शक्ति है, जो वर्तमान मित्रता के सम्बन्धों को बनाये रख सकता है और जो लोग दुश्मन बन गये हैं उनको फिर से मिलाने की सामर्थ्य जिसमें है—बस वही योग्य मंत्री है।

४. उचित उद्योगों को पसन्द करने और उनको कार्यरूप में परिणत करने के साधनों को चुनने की लियाक़त तथा सम्मति देते समय निश्चयात्मक स्पष्टता—ये परामर्शदाता के आवश्यक गुण हैं।

५. देखो, जो नियमों को जानता है और जो ज्ञान में भरपूर है, जो समझ-बूझ कर बात करता है और जो मौक़े-महल को पहिचानता है—बस-वही मन्त्री तुम्हारे लायक़ है।

६. जो पुस्तकों के ज्ञान द्वारा अपनी स्वाभाविक बुद्धि की अभिवृद्धि कर लेते हैं, उनके लिये कौनसी बात इतनी मुश्किल है जो उनकी समझ में न आ सके।

७. पुस्तक-ज्ञान में यद्यपि तुम सुदक्ष हो फिर भी तुम्हें चाहिये कि तुम अनुभव-जन्य ज्ञान प्राप्त करो और उसके अनुसार व्यवहार करो।

८. सम्भव है कि राजा मूर्ख हो और पग २ पर उसके काम में अड़चनें डाले, मगर फिर भी मन्त्री का कर्त्तव्य है कि वह सदा वही राह उसे दिखावे कि जो फ़ायदेमन्द, ठीक और मुनासिब हो।

९. देखो, जो मन्त्री, मंत्रणा-गृह में बैठ कर, अपने राजा का सर्वनाश करने की युक्ति सोचता है, वह सात करोड़ दुश्मनों से भी अधिक भयङ्कर है।

१०. अनिश्चयी पुरुष सोच कर ठीक तरक़ीब निकाल भी लें, मगर उस पर अमल करते समय वे डगमगायेंगे और अपने मन्सूबों को कभी पूरा न कर सकेंगे।

पचपनवाँ परिच्छेद

वाक्-पटुता

१. वाक्-शक्ति निःसन्देह एक नियामत है; क्योंकि यह अन्य नियामतों का अंश नहीं बल्कि स्वयमेव एक निराली नियामत है।

२. जीवन * और मृत्यु जिह्वा के वश में हैं; इसलिये ध्यान रक्खो कि तुम्हारे मुँह से कोई अनुचित बात न निकले।

३. देखो, जो वक्तृता मित्रों को और भी घनिष्ठता के सूत्र में आबद्ध करती और दुश्मनों को भी अपनी ओर आकर्षित करती है, बस वही यथार्थ वक्तृता है।

४. हर एक बात को ठीक तरह से तौल कर देखो और फिर जो उचित हो वही बोलो; धर्म की वृद्धि और लाभ की दृष्टि से इससे बढ़कर उपयोगी बात तुम्हारे हक़ में और कोई नहीं है।

५. तुम ऐसी वक्तृता दो कि जिसे दूसरी कोई वक्तृता चुप न कर सके।

---

* भलाई—बुराई; सम्पत्ति–विपत्ति।

६. ऐसी वक्तृता देना कि जो श्रोताओं के दिलों को तस्खीर कर ले और दूसरों की वक्तृता के अर्थ को फौरन ही समझ जाना—यह पक्के राज-नीतिज्ञ का कर्त्तव्य है।

७. देखो, जो आदमी सुवक्ता है और जो गड़-बड़ाना या डरना नहीं जानता, विवाद में उसको हरा देना किसी के लिये सम्भव नहीं है।

८. जिसकी वक्तृता परिमार्जित और विश्वासो-त्पादक भाषा से सुसज्जित होती है—सारा संसार उसके इशारे पर नाचेगा।

९. जो लोग अपने मन की बात थोड़े से, चुने हुए, शब्दों में कहना नहीं जानते, वास्तव में उन्हीं को अधिक बोलने की लत होती है।

१०. देखो, जो लोग अपने प्राप्त किये हुए ज्ञान को समझा कर दूसरों को नहीं बता सकते, वे उस फूल के समान हैं जो खिलता है मगर सुगन्ध नहीं देता।

छप्पनवाँ परिच्छेद ।

शुभाचरण

१. मित्रता द्वारा मनुष्य को सफलता मिलती है; किन्तु आचरण की पवित्रता उसकी प्रत्येक इच्छा को पूर्ण कर देती है।

२. उन कामों से सदा विमुख रहो कि जिनसे न तो सुकीर्ति मिलती है, न लाभ होता है।

३. जो लोग संसार में रह कर उन्नति करना चाहते हैं उन्हें ऐसे कार्यों से सदा दूर रहना चाहिये जिनसे कीर्ति में बट्टा लगने की सम्भावना हो।

४. भले आदमी जिन बातों को बुरा बतलाते हैं, मनुष्यों को चाहिये अपने को जन्म देने वाली माता को बचाने के लिये भी वे उन कामों को न करें।

५. अधर्म द्वारा एकत्र की हुई सम्पत्ति की अपेक्षा तो सदाचारी पुरुष की दरिद्रता कहीं अच्छी है।

६. जिन कामों में असफलता अवश्यम्भावी है, उन सब से दूर रहना और बाधा-विघ्नों से डर

कर अपने कर्त्तव्य से विचलित न होना—ये दो बुद्धिमानों के मुख्य पथ-प्रदर्शक सिद्धान्त समझे जाते हैं।

७. मनुष्य जिस बात को चाहता है उसको वह प्राप्त कर सकता है और वह भी उसी तरह से जिस तरह कि वह चाहता है बशर्ते कि वह अपनी पूरी शक्ति और पूरे दिल से उसको चाहता हो।

८. सूरत देख कर किसी आदमी को हेय मत समझो क्योंकि दुनिया में ऐसे भी आदमी हैं जो एक बड़े भारी दौड़ते हुए रथ की धुरी की कीली के समान हैं।

९. लोगों को रुला कर जो सम्पत्ति इकट्ठी की जाती है, वह क्रन्दन-ध्वनि के साथ ही विदा हो जाती है; मगर जो धर्म द्वारा सञ्चित की जाती है, वह बीच में क्षीण हो जाने पर भी अन्त में खूब फलती-फूलती है।

१०. धोखा देकर दगाबाज़ी के साथ धन जमा करना बस ऐसा ही है जैसा कि मिट्टी के बने हुए कच्चे घड़े में पानी भर कर रखना।

सत्तावनवाँ परिच्छेद

कार्य-सञ्चालन

१. किसी निश्चय पर पहुँचना यही विचार का उद्देश्य है; और जब किसी बात का निश्चय हो गया तब उसको कार्य में परिणित करने में देर करना भूल है।

२, जिन बातों को आराम के साथ फुर्सत से करना चाहिये उनको तो तुम खूब सोच विचार कर करो; लेकिन जिन बातों पर फौरन ही अमल करने की ज़रूरत है, उनको एक क्षण भर के लिये भी न उठा रक्खो।

३. यदि परिस्थिति अनुकूल हो तो सीधे अपने लक्ष्य की ओर चलो; किन्तु यदि परिस्थति अनुकूल न हो तो उस मार्ग का अनुसरण करो जिसमें सबसे कम बाधा आने की सम्भावना हो।

४. अधूरा काम और अपराजित शत्रु ये दोनों बिना बुझी आग की चिनगारियों के समान हैं; वे मौका पा कर बढ़ जायेंगे और उस ला-पर्वाह आदमी को आ दबोचेंगे।

५. प्रत्येक कार्य को करते समय पाँच बातों का खूब ध्यान रक्खो, अर्थात्—उपस्थित साधन, औजार, कार्य का स्वरूप, समुचित समय और कार्य करने के उपयुक्त स्थान ।

६. काम करने में कितना परिश्रम पड़ेगा, मार्ग में कितनी बाधाएँ आयेंगी और फिर कितने लाभ की आशा है इन बातों को पहले सोच कर तब किसी काम को हाथ में लो ।

७. किसी भी काम में सफलता प्राप्त करने का यही मार्ग है कि जो मनुष्य उस काम में दक्ष है उससे उस काम का रहस्य मालूम कर लेना चाहिये ।

८. लोग एक हाथी के द्वारा दूसरे हाथी को फँसाते हैं; ठीक इसी तरह एक काम को दूसरे काम के सम्पादन करने का ज़रिया बना लेना चाहिये ।

९. मित्रों को पारितोषिक देने से भी अधिक शीघ्रता के साथ दुश्मनों को शान्त करना चाहिये ।

१०. दुर्बलों को सदा खतरे की हालत में नहीं रहना चाहिये, बल्कि जब मौका मिले तब उन्हें बलवान के साथ मित्रता कर लेनी चाहिये ।

अठावनवाँ परिच्छेद

राज-दूत

१. एक मेहरबान दिल, आला खान्दान और राजाओं को खुश करने वाले तरीक़े—यह सब राजपूतों की खूबियाँ हैं ।

२. प्रेम-मय प्रकृति, सुतीक्ष्ण बुद्धि और वाक्पटुता—ये तीनों बातें राजदूत के लिये अनिवार्य हैं।

३. जो मनुष्य राजाओं के समक्ष अपने स्वामी को लाभ पहुँचाने वाले शब्दों को बोलने का भार अपने सिर लेता है, उसे विद्वानों में विद्वान्—सर्वश्रेष्ठ विद्वान होना चाहिये ।

४. जिसमें बुद्धि और ज्ञान है और जिसका चेहरा शान्दार और रोबीला है, उसी को राजदूतत्व के काम पर जाना चाहिये ।

५. संक्षिप्त वक्तृता, वाणी की मधुरता और चतुरतापूर्वक हर तरह की अप्रिय भाषा का निराकरण करना; ये ही साधन हैं जिनके द्वारा राज-दूत अपने स्वामी को लाभ पहुँचायेगा ।

६. विद्वत्ता, प्रभावोत्पादक वक्तृता और निर्भीकता और किस मौके पर क्या करना चाहिये

यह बताने वाली सुसंयत प्रत्युत्पन्नमति (हाज़िर जवाबी)—ये सब राजदूत के आवश्यक गुण हैं।

७. वही सब से योग्य राजदूत है कि जिसके पास समुचित स्थान और समय को पहचानने वाली आँख है, जो अपने कर्त्तव्य को जानता है और जो बोलने से पहिले अपने शब्दों को जाँच लेता है।

८. जो मनुष्य दूतत्व के काम पर भेजा जाय वह दृढ़-प्रतिज्ञ, पवित्र-हृदय और चित्ताकर्षक स्वभाव वाला होना चाहिये।*

९. देखो, जो दृढ़-प्रतिज्ञ पुरुष अपने मुख से हीन और अयोग्य वचन कभी नहीं निकलने देता; विदेशी दरबारों में राजाओं के पैग़ाम सुनाने के लिये वही योग्य पुरुष है।

१०. मौत का सामना होने पर भी सच्चा राजदूत अपने कर्त्तव्य से विचलित नहीं होगा बल्कि अपने मालिक का काम बनाने की पूरी कोशिश करेगा।

---

* पहिले सात पदों में ऐसे राजदूतों का वर्णन है, जिनको अपनी ज़िम्मेवारी पर काम करने का अधिकार है। आख़िरी तीन पदों में उन दूतों का वर्णन है जो राजाओं के पैग़ाम ले जाने वाले होते हैं।

उनसठवाँ परिच्छेद

राजाओं के समक्ष कैसा बर्ताव होना चाहिये

१. जो कोई राजाओं के साथ रहना चाहता है उसको चाहिये कि वह उस आदमी के समान व्यवहार करे जो आग के सामने बैठ कर तापता है; उसको न तो अति समीप जाना चाहिये न अति दूर।

२. राजा जिन चीज़ों को चाहता है उनकी लालसा न रखना—यही उसकी स्थायी कृपा प्राप्त करने और उसके द्वारा समृद्धिशाली बनने का मूल-मन्त्र है।

३. यदि तुम राजा की नाराज़ी में पड़ना नहीं चाहते तो तुमको चाहिये कि हर तरह के गम्भीर दोषों से सदा पाक साफ़ रहो, क्योंकि यदि एकबार सन्देह पैदा हो गया तो फिर उसे दूर करना असम्भव हो जाता है।

४. बड़े लोगों के सामने काना-फूसी न करो और न किसी दूसरे के साथ हँसो या मुस्कुराओ जब कि वे नजदीक हों।

५. छिप कर कोई बात सुनने की कोशिश न करो और जो बात तुम्हें नहीं बताई गई है उसका पता लगाने की चेष्टा भी न करो; जब तुम्हें बताया जाय तभी उस भेद को जानो।

६. राजा का मिजाज इस वक्त कैसा है, इस बात को समझ लो और क्यां मौका है इस बात को भी देख लो, तब ऐसे शब्द बोलो जिनसे वह प्रसन्न हो।

७. राजा के सामने उन्हीं बातों का ज़िक्र करो जिनसे वह प्रसन्न हो; मगर जिन बातों से कुछ लाभ नहीं है—जो बातें बेकार हैं—राजा के पूछने पर भी उनका ज़िक्र न करो *।

८. चूंकि वह नवयुवक है और तुम्हारा सम्बन्धी अथवा रिश्तेदार है इसलिये तुम उसको तुच्छ मत समझो, बल्कि उसके अन्दर जो ज्योति † विराजमान है, उसके सामने भय मानकर रहो।

९. देखो, जिनकी दृष्टि निर्मल और निर्द्वन्द्व है, वे यह समझ कर कि हम राजा के कृपा-पात्र हैं कभी कोई ऐसा काम नहीं करते जिससे राजा असन्तुष्ट हो।

१०. जो मनुष्य राजा की घनिष्ठता और मित्रता पर भरोसा रख कर अयोग्य काम कर बैठते हैं, वे नष्ट हो जाते हैं।

---

* परिमेल अदहर कहता है कि उन्हीं बातों का ज़िक्र करो जो लाभदायक हों और जिनसे राजा प्रसन्न हो।

† मूल ग्रन्थ में जिसका प्रयोग है, उसका यह भी अर्थ हो सकता है—वह दिव्य ज्योति जो राजा के सो जाने पर भी प्रजा की रक्षा करती है।

साठवां परिच्छेद

मुखाकृति से मनोभाव समझना

१. देखो, जो आदमी जुबान से कहने से पहले ही दिल की बात जान लेता है वह सारे संसार के लिये भूषण स्वरुप है।

२. दिल में जो बात है, उसको यक़ीनी तौर पर मालूम कर लेने वाले मनुष्य को देवता समझो।

३. जो लोग किसी आदमी की सूरत देख कर ही उसकी बात भाँप जाते हैं, चाहे जिस तरह हो उनको तुम जरूर अपना सलाहकार बनाओ।

४. जो लोग बिना कहे ही मन की बात समझ लेते हैं, उनकी सूरत शक्ल भी वैसी ही हो सकती है जैसी कि न समझ सकने वाले लोगों की होती है; मगर उन लोगों का दर्जा ही अलहदा है।

५. ज्ञानेन्द्रियों के मध्य आँख का क्या स्थान हो सकता है अगर वह एक ही नजार में दिल में जो बात है उसको जान नहीं सकती ?

६. बुद्धिमान लोगों के सामने उपदेश पूर्ण व्याख्यान देना जीवित पौदों को पानी देने के समान है।

७. ऐ अपनी वक्तृता से विद्वानों को प्रसन्न करने की इच्छा रखने वाले लोगो! देखो, कभी भूल कर भी मूर्खों के सामने व्याख्यान न देना*

८. रणक्षेत्र में खड़े हो कर बहादुरी के साथ मौत का सामना करने वाले लोग तो बहुत हैं, मगर ऐसे लोग बहुत ही थोड़े हैं जो बिना काँपे हुए जनता के सामने, रङ्गमञ्च पर खड़े हो सकें।

९. तुमने जो ज्ञान प्राप्त किया है, उसको विद्वानों के सामने खोल कर रक्खो और जो बात तुम्हें मालूम नहीं है, वह उन लोगों से सीख लो जो उसमें दक्ष हों।

१०. देखो, जो लोग विद्वानों की सभा में अपनी बात को लोगों के दिल में नहीं बिठा सकते वे हर तरह का ज्ञान रखने पर भी बिल्कुल निकम्मे हैं।

---

* क्योंकि अयोग्यों को उपदेश देना कीचड़ में अमृत फेंकने के समान है।

बासठवाँ परिच्छेद

देश

१. वह महान् देश है जो फ़सल की पैदावार में कभी नहीं चूकता और जो ऋषि-मुनियों तथा धार्मिक धनिकों का निवास स्थान हो।

२. वही महान् देश है जो धन की अधिकता से लोगों को अपनी ओर आकर्षित करता है और जिसमें खूब पैदावार होती है फिर भी हर तरह की वबाई—बीमारी से पाक रहता है।

३. उस महान् जाति की ओर देखो; उस पर कितने ही बोझ के ऊपर बोझ पड़ें, वह उन्हें दिलेरी के साथ बर्दाश्त करेगी और साथ ही साथ अपने सारे कर अदा कर देगी।

४. वही देश महान् है जो अकाल और महामारी से आजाद है और जो शत्रुओं के आक्रमणों से सुरक्षित है।

५. वही महान् जाति है जो परस्पर युद्ध करने वाले दलों में विभक्त नहीं है, जो हत्यारे क्रान्तिकारियों से पाक है और जिसके अन्दर जाति का सर्वनाश करने वाला कोई देश-द्रोही नहीं है।

६. वही सच्चा क़िला है, जिसमें हर तरह का सामान पर्याप्त परिमाण में मौजूद है। और जो ऐसे लोगों की संरक्षकता में हो कि जो क़िले को बचाने के लिए वीरता पूर्वक लड़ें।

७. बेशक वह सच्चा क़िला है कि जिसे न तो कोई घेरा डाल कर जीत सके, और न अचानक हमला करके, और न कोई जिसे सुरङ्ग लगा कर ही तोड़ सके।

८. निःसन्देह वह वास्तविक दुर्ग है जो क़िले की सेना को, घेरा डालने वाले शत्रुओं को हराने के योग्य बना देता है। यद्यपि वह उसको लेने की चाहे कितनी ही कोशिश क्यों न करें।

९. निःसन्देह वह दुर्ग है जो नाना प्रकार के साधनों द्वारा अजेय बन गया है और जो अपने संरक्षकों को इस योग्य बनता है कि वे दुश्मनों को किले की सुदूर सीमा पर ही मार कर गिरा सकें।

१०. मगर क़िला चाहे कितना ही मजबूत क्यों न हो, वह किसी काम का नहीं, अगर संरक्षक लोग वक्त पर फुर्ती से काम न लें।

चौसठवाँ परिच्छेद

धनोपार्जन

१. अप्रसिद्ध और वेक़द्रोक़ीमत लोगों को प्रतिष्ठित बनाने में जितना धन समर्थ है, उतना और कोई पदार्थ नहीं।

२. ग़रीवों का सभी अपमान करते हैं, मगर धन-धान्य-पूर्ण मनुष्य की सभी जगह अभ्यर्थना होती है।

३. वह अविश्रान्त ज्योति जिसे लोग धन कहते हैं; अपने स्वामी के लिये सभी अन्धकार मय * स्थानों को ज्योत्स्नापूर्ण वना देती है।

४. देखो, जो धन-पाप-रहित निष्कलङ्क रूप से प्राप्त किया जाता है, उससे धर्म और आनन्द का स्रोत वह निकलता है।

५. जो धन, दया और ममता से रहित है, उसकी तुम कभी इच्छा मत करो और उसको कभी अपने हाथ से छुओ भी मत।

---

* अन्धकार के लिए जो शब्द मूल में है, उसके अर्थ बुराई और दुश्मनी के भी हो सकते हैं।

६. जब्तशुदा और मतरुक जायदादें, लगान और मालगुजारी और युद्ध में प्राप्त किया हुआ माल—ये सब चीजें राजा के कोप में वृद्धि करती हैं।

७. *दयार्द्रता, जो प्रेम की सन्तति है, उसका पालन-पोषण करने के लिए सम्पत्ति-रूपिणी दयालु-हृदया धाय की आवश्यकता है।

८. देखो, धनवान आदमी जब अपने हाथ में काम लेता है तो वह उस मनुष्य के समान मालूम होता है कि जो एक पहाड़ की चोटी पर से हाथियों की लड़ाई देखता है।†

९. धन इकट्ठा करो; क्योंकि शत्रु का गर्व चूर करने के लिये, उससे बढ़ कर दूसरा हथियार नहीं है।

१०. देखो, जिसने बहुत सा धन जमा कर लिया है, शेष दो पुरुषार्थ—धर्म और काम—उसके करतल-गत हैं।

---

* हृदय में दया के भाव का विकास करने के लिये सम्पत्ति की आवश्यकता है। सम्पत्ति द्वारा दूसरों की सेवा की जा सकती है।

† क्योंकि बिना किसी भय और चिन्ता के वह अपना काम कर सकता है।

पैंसठवाँ परिच्छेद

सेना के लक्षण

१. एक सुसङ्गठित और बलवती सेना जो खतरे से भयभीत नहीं होती है, राजा के वश-वर्ती पदार्थों में सर्व-श्रेष्ठ है।

२. बेहिसाब आक्रमणों के होते हुए, भयङ्कर निराशा-जनक स्थिति की रक्षा, मँजे हुए बहादुर सिपाही ही अपने अटल निश्चय के द्वारा कर सकते हैं।

३. यदि वे समुद्र की तरह गरजते भी हैं तो ,इससे क्या हुआ? काले नाग की एक ही फुफकार में चूहों का सारा झुण्ड का झुण्ड विलीन हो जायगा।

४. जो सेना हारना जानती ही नहीं और जो कभी भ्रष्ट नहीं की जा सकती और जिसने बहुत से अवसरों पर बहादुरी दिखाई है—वास्तव में वही सेना नाम की अधिकारिणी है।

५. वास्तव में सेना का नाम उसी को शोभा देता है कि जो बहादुरी के साथ यमराज का भी मुक़ाबिला कर सके जब कि वह अपनी पूर्ण प्रचण्डता के साथ सामने आवे।

६. वहादुरी, प्रतिष्ठा, एक साफ़ दिमाग़ और पिछले जमाने की लड़ाइयों का इतिहास—ये चार बातें सेना की रक्षा करने के लिये कवच स्वरूप हैं।

७. जो सच्ची सेना है वह सदा दुश्मन की तलाश में रहती है क्योंकि उसको पूर्ण विश्वास है कि जब कोई दुश्मन लड़ाई करेगा तो वह उसे अवश्य जीत लेगी।

८. सेना में जब मुस्तैदी और एकाएक प्रचण्ड आक्रमण करने की शक्ति नहीं होती तब शानो शौक़त और जाहोजलाल उस कमजोरी को केवल पूरा भर कर देते हैं।

९. जो सेना संख्या में कम नहीं है और जिस को तनख्वाह न पाने के कारण भूखों नहीं मरना पड़ता, वह सेना विजयी होगी।

१०. सिपाहियों की कमी न होने पर भी कोई फौज नहीं बन सकती जब तक कि उसका सञ्चालन करने के लिये सरदार न हो।

छाछटवाँ परिच्छेद

वीर योद्धा का आत्म-गौरव

१. अरे ऐ दुश्मनो ! मेरे मालिक के सामने, युद्ध में, खड़े न होओ क्योंकि बहुत से आदमियों ने उसे युद्ध के लिये ललकारा था मगर आज वे सब पत्थर* की कब्रों के नीचे पड़े हुए हैं।

२. हाथी के ऊपर चलाया गया भाला अगर चूक भी जाये तब भी उसमें अधिक गौरव † है बनिस्बत उस तीर के जो खरगोश पर चलाया जाये और उसके लग भी जाये।

३. वह प्रचण्ड साहस जो प्रबल आक्रमण करता है, उसी को लोग वीरता कहते हैं, लेकिन उसकी शान उस दिलेराना फैयाज़ी में है कि जो अधःपतित शत्रु के प्रति दिखायी जाती है।

४. सिपाही ने अपना भाला हाथी के ऊपर चला दिया और वह दूसरे भाले की तलाश में जा रहा था, इतने ही में उसने एक भाला

---

* तामिल देश में बहादुरों की चिताओं और क़ब्रों के ऊपर कीर्ति स्तंभ के रूप में एक पत्थर गाड़ दिया जाता था।

† Higher aims are in themselves more valuable even if unfulfilled than lower ones quite attained—Goethe.

६. हँसी-दिल्लगी करने वाली गोष्ठी का नाम मित्रता नहीं है; मित्रता तो वास्तव में वह प्रेम है जो हृदय को आल्हादित करता है।

७. जो मनुष्य तुम्हें बुराई से बचाता है, नेक राह पर चलाता है और जो मुसीबत के वक्त तुम्हारा साथ देता है, बस वही मित्र है।

८. देखो, उस आदमी का हाथ कि जिसके कपड़े हवा से उड़ गये हैं, कितनी तेजी के साथ फिर से अपने वदन को ढंकने के लिये दौड़ता है! वही सच्चे मित्र का आदर्श है जो मुसीबत में पड़े हुए आदमी की सहायता के लिये दौड़ कर जाता है।

९. मित्रता का दरबार कहाँ पर लगता है? बस वहाँ पर कि जहाँ दो दिलों के बीच में अनन्य प्रेम और पूर्ण एकता है और जहाँ दोनों मिल कर हर एक तरह से एक दूसरे को उच्च और उन्नत बनाने की चेष्टा करें।

१०. जिस दोस्ती का हिसाब लगाया जा सकता है उसमें एक तरह का कँगलापन होता है। वह चाहे कितने ही गर्वपूर्वक कहे—मैं उसको इतना प्यार करता हूँ और वह मुझे इतना चाहता है।

अड़सठवाँ परिच्छेद

मित्रता के लिये योग्यता की परीक्षा

१. इससे बढ़ कर बुरी बात और कोई नहीं है कि बिना परीक्षा किये किसी के साथ दोस्ती कर ली जाय क्योंकि एक बार मित्रता हो जाने पर सहृदय पुरुष फिर उसे छोड़ नहीं सकता।

२. देखो, जो पुरुष पहिले आदमियों की जाँच किये बिना ही उनको मित्र बना लेता है वह अपने सर पर ऐसी आपत्तियों को बुलाता है कि जो सिर्फ उसकी मौत के साथ ही समाप्त होंगी।

३. जिस मनुष्य को तुम अपना दोस्त बनाना चाहते हो उसके कुल का, उसके गुण-दोषों का, कौन २ लोग उसके साथी हैं और किन किन के साथ उसका सम्बन्ध है इन सब बातों का अच्छी तरह से विचार करलो और उसके बाद यदि वह योग्य हो तो उसे दोस्त बना लो।

४. देखो, जिस पुरुष का जन्म उच्च कुल में हुआ है और जो बेइज्जती से डरता है उसके साथ आवश्यकता पड़े तो मूल्य देकर भी दोस्ती करनी चाहिये।

वातें करते हैं मगर बाहर आम मजलिस में निन्दा करते हैं।

६. जो लोग ऊपर से तो दोस्ती दिखाते हैं मगर दिल में दुश्मनी रखते हैं उनकी मित्रता औरत के दिल की तरह जरासी देर में बदल जायगी।

७. उन मक्कार बदमाशों से डरते रहो कि जो आदमी के सामने ऊपरी दिल से हँसते हैं मगर अन्दर ही अन्दर दिल में जानी दुश्मनी रखते हैं।

८. दुश्मन अगर नम्रता-पूर्वक झुककर बात-चीत करे तो भी उसका विश्वास न करो, क्योंकि कमान जब झुकती है तो वह और कुछ नहीं, (खराबी की ही पेशीनगोई करती है) अनिष्ट की ही भविष्यवाणी करती है।

९. दुश्मन अगर हाथ जोड़े तब भी उसका विश्वास न करो। मुमकिन है कि उसके हाथों में कोई हथियार छुपा हो, और न तुम उसके आँसू बहाने पर ही कुछ यकीन लाओ।

१०. अगर दुश्मन तुमसे दोस्ती करना चाहे और यदि तुम अपने दुश्मन से अभी खुला वैर नहीं कर सकते हो तो उसके सामने जाहिरी दोस्ती का वर्ताव करो मगर दिल से उसे सदा दूर रक्खो।

सत्तरवाँ परिच्छेद

मूर्खता

१. क्या तुम जानना चाहते हो कि मूर्खता किसे कहते हैं ? जो चीज लाभदायक है, उस को फेंक देना और हानिकारक पदार्थ को पकड़ रखना—बस यही मूर्खता है।

२. मूर्ख मनुष्य अपने कर्त्तव्य को भूल जाता है, जुबान से वाहियात और सख्त बातें निकालता है, उसे किसी तरह की शर्म और हया का खयाल नहीं होता और न किसी नेक वात को पसन्द करता है।

३. एक आदमी खूब पढ़ा-लिखा और चतुर है और दूसरों का गुरु है; मगर फिर भी वह इन्द्रिय-लिप्सा का दास बना रहता है—उससे बढ़ कर मूर्ख और कोई नहीं है।

४. अगर मूर्ख को इत्तफाक से बहुत सी दौलत मिल जाय तो ऐरे ग़ैरे अजनबी लोग ही मजे उड़ायेंगे मगर उसके बन्धु-बान्धव तो विचारे भूखों ही मरेंगे।

५. योग्य पुरुषों की सभा में किसी मूर्ख मनुष्य का जाना ठीक वैसा ही है जैसा कि साफ़-सुथरे पलङ्ग के ऊपर मैला पैर रख देना।

६. अक़्ल की ग़रीबी ही वास्तविक ग़रीबी है। और तरह की ग़रीबी को दुनियाँ ग़रीबी ही नहीं समझती।

७. मूर्ख आदमी खुद अपने सर पर जो मुसीबतें लाता है, उसके दुश्मनों के लिये भी उसको वैसी मुसीबतें पहुँचाना मुश्किल होगा।

८. क्या तुम यह जानना चाहते हो कि मन्दबुद्धि किसे कहते हैं? बस, उसी अहङ्कारी को जो अपने मन में कहता है कि मैं अक़्लमन्द हूँ।

९. मूर्ख आदमी अगर अपने नङ्गे बदन को ढकता है तो इससे क्या फ़ायदा, जब कि उसके मन के ऐब ढँके हुए नहीं हैं?

१०. देखो, जो आदमी न तो खुद भला-बुरा पहचानता है और न दूसरों की सलाह मानता है, वह अपनी जिन्दगी भर अपने साथियों के लिये दुःखदायी बना रहता है।

इकहत्तरवाँ परिच्छेद

शत्रुओं के साथ व्यवहार

१. उस हत्यारी चीज़ को कि जिसे लोग दुश्मनी कहते हैं, जान-बूझ कर कभी न छेड़ना चाहिये; चाहे वह मज़ाक ही के लिये क्यों न हो।

२. तुम उन लोगों को भले ही शत्रु बना लो कि जिनका हथियार तीर-कमान है, मगर उन लोगों को कभी मत छेड़ना जिनका हथियार ज़ुबान है।

३. देखो, जिस राजा के पास सहायक तो कोई भी नहीं है, मगर जो ढेर के ढेर दुश्मनों को युद्ध के लिये ललकारता है, वह पागल से भी बढ़ कर पागल है।

४. जिस राजा में शत्रुओं को मित्र बना लेने की कुशलता है उसकी शक्ति सदा स्थिर रहेगी।

५. यदि तुमको बिना किसी सहायक के अकेले, दो शत्रुओं से लड़ना पड़े तो उन दो में से किसी एक को अपनी ओर मिला लेने की चेष्टा करो।

६. तुमने अपने पड़ोसी को दोस्त या दुश्मन बनाने का कुछ भी निश्चय कर रक्खा हो, बाह्य आक्रमण होने पर उसे कुछ भी न बनाओ; बस यों ही छोड़ दो।

७. अपनी मुश्किलों का हाल उन लोगों पर जाहिर न करो कि जो अभी तक अनजान हैं और न अपनी कमजोरियाँ अपने दुश्मनों को मालूम होने दो।

८. एक चतुरता-पूर्ण युक्ति सोचो, अपने साधनों को सुदृढ़ और सुसंगठित बनाओ और अपनी रक्षा का पूर्ण प्रबन्ध कर लो; यदि तुम यह सब कर लोगे तो तुम्हारे शत्रुओं का गर्व चूर्ण हो कर धूल में मिलते कुछ देर न लगेगी।

९. काँटेदार वृक्षों को छोटेपन में ही गिरा देना चाहिये क्योंकि जब वे बड़े हो जाँयगे तो स्वयं ही उस हाथ को जख्मी बना डालेंगे कि जो उन्हें काटने की कोशिश करेगा।

१०. जो लोग अपना अपमान करने वालों का गर्व चूर्ण नहीं करते वे बहुत समय तक नहीं रहेंगे।

बहत्तरवाँ परिच्छेद

घर का भेदी

१. कुञ्ज-वन और पानी के फ़व्वारे भी कुछ आनन्द नहीं देते, अगर उनसे बीमारी पैदा होती है; इसी तरह अपने रिश्तेदार भी जघन्य हो उठते हैं जब कि वे उसका सर्वनाश करना चाहते हैं।

२. उस शत्रु से डरने की जरुरत नहीं है कि जो नङ्गी तलवार की तरह है मगर उस शत्रु से सावधान रहो कि जो मित्र बन कर तुम्हारे पास आता है।

३. अपने गुप्त शत्रु से सदा होशियार रहो; क्योंकि मुसीबत के वक्त वह तुम्हें कुम्हार की डोर की तरह, बड़ी सफ़ाई से, काट डालेगा।

४. अगर तुम्हारा कोई ऐसा शत्रु है कि जो मित्र के रुप में घूमता-फिरता है तो वह शीघ्र ही तुम्हारे साथियों में फूट के बीज बो देगा और तुम्हारे सिर पर सैकड़ों बलाएँ ला डालेगा।

५. जब कोई भाई-बिरादर तुम्हारे प्रतिकूल विद्रोह करे तो वह तुम पर ढेर की ढेर आपत्तियाँ ला सकता है, यहाँ तक कि उससे खुद तुम्हारी जान के लाले पड़ जायेंगे।

६. जलती हुई आग में पड़े हुए लोग चाहे भले ही बच जायँ, मगर उन लोगों की रक्षा का कोई उपाय नहीं है कि जो शक्ति-शाली लोगों के प्रति दुर्व्यवहार करते हैं।

७. यदि आत्मिक-शक्ति से परिपूर्ण ऋषिगण तुम पर क्रुद्ध हैं, तो विविध प्रकार के आनन्दोच्छ्वास से उल्लसित तुम्हारा जीवन और समस्त ऐश्वर्य से पूर्ण तुम्हारा धन कहाँ होगा ?

८. देखो, जिन राजाओं का अस्तित्व अनन्त रूप से स्थायी भित्ति पर स्थापित है, वे भी अपने समस्त बन्धु-बान्धवों सहित नष्ट हो जायँगे, यदि पर्वत के समान शक्ति-शाली महर्षिगण उनके सर्वनाश की कामना भर करें।

९. और तो और देवेन्द्र भी अपने स्थान से भ्रष्ट हो जाय और अपना प्रभुत्व गंवा बैठे यदि पवित्र प्रतिज्ञा वाले सन्त लोग क्रोध भरी दृष्टि से उसकी ओर देखें।*

१०. यदि महान् आत्मिक-शक्ति रखने वाले लोग रुष्ट हो जायँ तो वे मनुष्य भी नहीं बच सकते कि जो मजबूत से मजबूत आश्रय के ऊपर निर्भर हैं।

---

* नहुष की कथा।

चौहत्तरवाँ परिच्छेद

स्त्री का शासन

१. जो लोग अपनी स्त्रियों के श्री चरणों की अर्चना में ही लगे रहते हैं वे कभी महत्व प्राप्त नहीं कर सकते हैं और जो महान् कार्य करने की उच्चाशा रखते हैं वे ऐसे वाहियात प्रेम के फन्दे में नहीं फँसते।

२. जो आदमी वेतरह अपनी स्त्री के मोह के फेर में पड़ा हुआ है, वह अपनी समृद्धिशाली अवस्था में भी लोगों में वदनाम हो जायगा और शर्म से उसे अपना मुँह छिपाना पड़ेगा।

३. वह नामर्द जो अपनी स्त्री के सामने झुक कर चलता है, लायक लोगों के सामने अपना मुँह दिखाने में हमेशा शरमावेगा।

४. शोक है उस मुक्ति-विहीन अभागे पर जो अपनी स्त्री के सामने काँपता है। उसके गुणों की कभी कोई कद्र न करेगा।

५. जो आदमी अपनी स्त्री से डरता है वह लायक लोगों की सेवा करने का भी साहस नहीं कर सकता।

६. देखो, जो लोग हर रोज़ उस ज़हर को पीते हैं कि जिसे ताड़ी या शराब कहते हैं, वे मानो महा निद्रा में अभिभूत हैं। उनमें और मुर्दों में कोई फ़र्क नहीं है।

७. देखो, जो लोग खुफ़िया तौर पर नशा पीते हैं और अपने समय को बदहवासी और बेहोशी की दशा में गुज़ारते हैं, उनके पड़ोसी जल्दी ही इस बात को जान जायेंगे और उनसे सख्त नफ़रत करेंगे।

८. शराबी आदमी बेकार यह कह कर बहाना-साज़ी न करे कि मैं तो जानता ही नहीं, नशा किसे कहते हैं; क्योंकि ऐसा करने से वह सिर्फ़ अपनी उस बदकारी के साथ झूँठ बोलने के पाप को शामिल करने का भागी होगा।

९. जो शख्स नशे में मस्त हुए आदमी को नसीहत करता है, वह उस आदमी की तरह है जो पानी में डूबे हुए आदमी को मशाल लेकर ढूँढता है।

१०. जो आदमी होशोहवास की हालत में किसी शराबी की दुर्गति देखता है तो क्या वह खुद उससे कुछ अन्दाज़ा नहीं लगा सकता है कि जब वह [illegible] है तो उसकी हालत कैसी होती [illegible]

छिहत्तरवाँ परिच्छेद

वेश्या

१. देखो, जो स्त्रियाँ प्रेम के लिये नहीं बल्कि धन के लोभ से किसी पुरुष की कामना करती हैं, उनकी चापलूसी की बातें सुनने से दुःख ही दुःख होता है।

२. देखो, जो दुष्ट स्त्रियाँ मधु-मयी वाणी बोलती हैं मगर जिनका ध्यान अपने मुनाफ़े पर रहता है, उनकी चाल-ढाल को ख़याल में रख कर उनसे सदा दूर रहो।

३. वेश्या जब अपने प्रेमी को छाती से लगाती है तो वह जाहिरा यह दिखाती है कि वह उससे प्रेम करती है; मगर दिल में तो उसे ऐसा अनुभव होता है जैसे कोई बेगारी अन्धेरे कमरे में किसी अजनबी के मुर्दा जिस्म को छूने से अनुभव करता है।*

४. देखो, जिन लोगों के मन का झुकाव पवित्र कार्यों की ओर है, वे असती स्त्रियों के स्पर्श से अपने शरीर को कलङ्कित नहीं करते।

---

* पैसा देकर किसी मनुष्य से लाश उठवाई जाये तो वह मनुष्य उस लाश को अन्धेरे में छूकर बीभत्स घृणा का अनुभव करेगा।

५. जिन लोगों की बुद्धि निर्मल है और जिनमें अगाध ज्ञान है वे उन औरतों के स्पर्श से अपने को अपवित्र नहीं करते कि जिनका सौन्दर्य और लावण्य सब लोगों के लिये खुला है।

६. जिनको अपनी भलाई का खयाल है, वे उन शोख़ और आवारा औरतों का हाथ नहीं छूवे कि जो अपनी नापाक खूबसूरती को बेचती फिरती हैं।

७. जो ओछी तबियत के आदमी हैं, वही उन स्त्रियों को खोजेंगे कि जो सिर्फ शरीर से आलिङ्गन करती हैं जब कि उनका दिल दूसरी जगह रहता है।

८. जिनमें सोचने-समझने की बुद्धि नहीं है, उनके लिये चालाक कामिनियों का आलिङ्गन ही अप्सराओं की मोहिनी के समान है।

९. खूब साज-सिंगार किये और बनी-ठनी फ़ाहिशा औरत के नाज़ुक बाज़ू एक तरह की गन्दी—दोज़ख़ी—नाली है जिसमें घृणित मूर्ख लोग जाकर अपने को डुबा देते हैं।

१०. दो दिलोंवाली औरत, शराब और जुआ, ये उन लोगों की खुशी के सामान हैं कि जिन्हें भाग्य-लक्ष्मी छोड़ देती है।

सतहत्तरवां परिच्छेद

औषधि

१. वात से शुरू करके जिन तीन गुणों * का वर्णन ऋषियों ने किया है, उनमें से कोई भी यदि अपनी सीमा से घट या बढ़ जायगा तो वह बीमारी का कारण होगा।

२. शरीर के लिये औषधि की कोई जरूरत ही न हो यदि खाया हुआ खाना हज़म हो जाने बाद नया खाना खाया जाय।

३. खाना हमेशा एतदाल के साथ खाओ और खाये हुए खाने के अच्छी तरह से पच जाने के बाद भोजन करो—अपनी दीर्घायु होने का बस यही मार्ग है।

४. जब तक तुम्हारा खाना हज़म न हो जाय और तुम्हें खूब तेज़ भूख न लगे तब तक ठहरे रहो और उसके बाद एतदाल के साथ वह खाना खाओ जो तुम्हारी प्रकृति के अनुकूल है।

---

* वात, पित्त, कफ।

५. अगर तुम एतदाल के साथ ऐसा खाना खाओ कि जो तुम्हारी रुचि के अनुकूल है तो तुम्हारे जिस्म में किसी किस्म की तकलीफ़ पैदा न होगी।

६. जिस तरह तन्दुरुस्ती उस आदमी को ढूँढती है जो पेट खाली होने पर ही खाना खाता है; ठीक इसी तरह बीमारी उसको ढूँढती फिरती है जो हद से ज्यादा खाता है।

७. देखो, जो आदमी बेवक़ूफ़ी करके अपनी जठराग्नि से परे खूब ठूँस ठूँस कर खाना खाता है, उसकी बीमारियों की कोई सीमा न रहेगी।

८. रोग, उसकी उत्पत्ति और उसके निदान का पहले विचार करलो और तब होशियारी के साथ उसको दूर करने में लग जाओ।

९. वैद्य को चाहिये कि वह बीमार, बीमारी और मौसम के बाबत गौर कर ले और तब उसके बाद दवा शुरू करे।

१०. रोगी, वैद्य, औषधि और अत्तार—इन चार पर सारे इलाज का दारोमदार है और उनमें से हर एक के फिर चार चार गुण हैं।

तृतीय खण्ड

विविध बातें

अठहत्तरवाँ परिच्छेद

कुलीनता

१. रास्तबाजी और हयादारी स्वभावतः उन्हीं लोगों में होती है, जो अच्छे कुल में जन्म लेते हैं।

२. सदाचार, सत्य-प्रियता और सलज्जता इन तीन चीजों से कुलीन पुरुष कभी पद-स्खलित नहीं होते।

३. सच्चे कुलीन सज्जन में ये चार गुण पाये जाते हैं—हँस-मुख चेहरा, उदार हाथ, मृदु-भाषण और स्निग्ध निरभिमान।

४. कुलीन पुरुष को करोड़ों रुपये मिलें तब भी वह अपने नाम को कलङ्कित न होने देगा।

५. उन प्राचीन कुलों के वंशजों की ओर देखो! अपने ऐश्वर्य के क्षीण हो जाने पर भी वे अपनी उदारता को नहीं छोड़ते।

६. देखो, जो लोग अपने कुल के प्रतिष्ठित आचारों को पवित्र रखना चाहते हैं, वे न तो कभी धोखेबाजी से काम लेंगे और न कुकर्म करने पर उतारू होंगे।

७. प्रतिष्ठित कुल में उत्पन्न हुए मनुष्य के दोष पर चन्द्रमा के कलङ्क की तरह विशेष रूप से सब की नजर पड़ती है।

८. अच्छे कुल में उत्पन्न हुए मनुष्य की जुबान से यदि फूहड़ और वाहियात बातें निकलेंगी तो लोग उसके जन्म के विषय तक में शङ्का करने लगेंगे।

९. जमीन की खासियत का पता उसमें उगने वाले पौधे से लगता है; ठीक इसी तरह, मनुष्य के मुख से जो शब्द निकलते हैं उनसे उसके कुल का हाल मालूम हो जाता है।

१०. अगर तुम नेकी और सद्गुणों के इच्छुक हो तो तुम को चाहिये कि सलज्जता के भाव का उपार्जन करो। अगर तुम अपने वंश को सम्मानित बनाना चाहते हो तो तुम सब लोगों के साथ इज्जत से पेश आओ।

उन्नासिवाँ परिच्छेद

प्रतिष्ठा

१. उन बातों से सदा दूर रहो कि जो तुम्हें नीचे गिरा देंगी; चाहे वे प्राण-रक्षा के लिये अनिवार्य रूप ही से, आवश्यक क्यों न हों।

२. देखो, जो लोग अपने पीछे यशस्वी नाम छोड़ जाना चाहते हैं, वे अपनी शान बढ़ाने के लिये भी वह काम न करेंगे कि जो उचित नहीं है।

३. समृद्ध अवस्था में तो नम्रता और विनय की विस्फूर्ति करो; लेकिन हीन स्थिति के समय मान-मर्यादा का पूरा ख़याल रक्खो।

४. देखो, जिन लोगों ने अपने प्रतिष्ठित नाम को दूषित बना डाला है, वे बालों की उन लटों के समान हैं कि जो काट कर फेंक दी गयी हों।

५. पर्वत के समान शानदार लोग भी बहुत ही क्षुद्र दिखायी पड़ने लगेंगे, अगर वे कोई दुष्कर्म करेंगे; फिर चाहे वह कर्म घुंघची के समान ही छोटा क्यों न हो।

६. न तो इससे यशोवृद्धि ही होती है और न स्वर्ग-प्राप्ति; फिर मनुष्य ऐसे आदमियों की खुशामद करके क्यों जीना चाहता है कि जो उससे घृणा करते हैं।

७. यह कहीं बेहतर है कि मनुष्य बिना किसी हीला-हुज्जत के फ़ौरन् ही अपनी किस्मत के लिखे को भोगने के लिये तय्यार हो जाय बनिस्बत इसके कि वह अपने से घृणा करने वाले लोगों के पाँव पड़ कर अपना जीवन व्यतीत करे।

८. अरे! यह खाल क्या ऐसी चीज़ है कि लोग अपनी इज्जत बेंच कर भी उसे बचाये रखना चाहते हैं।

९. चमरी-मृग अपने प्राण त्याग देता है जब कि उसके बाल काट लिये जाते हैं; कुछ मनुष्य भी ऐसे ही मानी होते हैं और वे जब अपनी आबरू नहीं रख सकते तो अपनी जीवन-लीला का अन्त कर डालते हैं।

१०. जो आबरूदार आदमी अपनी नेकनामी के चले जाने के बाद जीवित रहना नहीं चाहता, सारा संसार हाथ जोड़ कर उसकी सुयश-मयी वेदी पर भक्ति की भेंट चढ़ाता है।

अस्सीवाँ परिच्छेद

महत्व

१. महान् कार्यों के सम्पादन करने की आकांक्षा को ही लोग महत्व के नाम से पुकारते हैं और ओछापन उस भावना का नाम है जो कहती है कि मैं उसके बिना ही रहूँगी।

२. पैदाइश तो सब लोगों की एक ही तरह की होती है मगर उनकी प्रसिद्धि में विभिन्नता होती है क्योंकि उनका जीवन दूसरी ही तरह का होता है।

३. शरीफ़ज़ादे होने पर भी वे अगर शरीफ़ नहीं हैं तो शरीफ़ नहीं कहला सकते और जन्म से नीच होने पर भी जो नीच नहीं हैं वे नीच नहीं हो सकते।

४. रमणी के सतीत्व की तरह महत्व की रक्षा भी केवल आत्म-शुद्धि—आत्मा के प्रति सरल, निष्कपट व्यवहार—द्वारा ही की जा सकती है।

५. महान् पुरुषों में समुचित साधनों को उपयोग में लाने और ऐसे कार्यों के सम्पादन करने

की शक्ति होती है कि जो दूसरों के लिये असाध्य होते हैं।

६. छोटे आदमियों के खमीर में ही यह बात नहीं होती है कि वे महान् पुरुषों की प्रतिष्ठा करें और उनकी कृपा दृष्टि और अनुग्रह को प्राप्त करने की चेष्टा करें।

७. ओछी तबियत के आदमियों के हाथ यदि कहीं कोई सम्पत्ति लग जाय तो फिर उनके इतराने की कोई सीमा ही न रहेगी।

८. महत्ता सर्वदा ही विनयशील होती है और दिखावा पसन्द नहीं करती मगर क्षुद्रता सारे संसार में अपने गुणों का ढिंढोरा पीटती फिरती है।

९. महत्ता सर्वथा ही अपने छोटों के साथ ही नर्मी और मेहरबानी से पेश आती है, मगर क्षुद्रता को तो बस घमण्ड की पुतली ही समझो।

१०. बड़प्पन हमेशा ही दूसरों की कमजोरियों पर पर्दा डालना चाहता है; मगर ओछापन दूसरों की ऐबजोई के सिवा और कुछ करना ही नहीं जानता।

इक्यासिवाँ परिच्छेद

योग्यता

१. देखो; जो लोग अपने कर्त्तव्य को जानते हैं और अपने अन्दर योग्यता पैदा करनी चाहते हैं, उनकी दृष्टि में सभी नेक काम कर्त्तव्य स्वरूप हैं

२. लायक़ लोगों के आचरण की सुन्दरता ही उनकी वास्तविक सुन्दरता है; शारीरिक सुन्दरता उनकी सुन्दरता में किसी तरह की अभिवृद्धि नहीं करती है।

३. सार्वजनिक प्रेम, सलज्जता का भाव, सब के प्रति सद्व्यवहार, दूसरे के दोषों की पर्दादारी और सत्य-प्रियता—ये पाँच स्तम्भ हैं जिन पर शुभ आचरण की इमारत का अस्तित्व होता है।

४. सन्त लोगों का धर्म है अहिंसा; मगर योग्य पुरुषों का धर्म इस बात में है कि वे दूसरों की निन्दा करने से परहेज़ करें।

५. ख़ाकसारी—नम्रता-बलवानों की शक्ति है और वह दुश्मनों के मुक़ाबिले में लायक़ लोगों के लिये कवच का काम भी देती है।

६. योग्यता की कसौटी क्या है? यही कि दूसरों के अन्दर जो बुज़ुर्गी और फ़ज़ीलत है उसका इक़बाल कर लिया जाय; फिर चाहे वह फ़ज़ीलत ऐसे ही लोगों में क्यों न हो कि जो और सब बातों में हर तरह अपने से कम दर्जे के हों। *

७. लायक़ आदमी की बुज़ुर्गी किस काम की अगर वह अपने को नुक़सान पहुँचाने वालों के साथ भी नेकी का सलूक नहीं करता है।

८. निर्धनता, मनुष्य के लिये बेइज़्ज़ती का कारण नहीं हो सकती अगर उस के पास वह सम्पत्ति मौजूद हो कि जिसे लोग सदाचार कहते हैं।

९. देखो, जो लोग कभी सन्मार्ग से विचलित नहीं होते चाहे प्रलय-काल में और सब कुछ बदल कर इधर की दुनिया उधर हो जाय; वे तो मानों योग्यता के समुद्र की सीमा ही हैं।

१०. निःसन्देह खुद धरती भी मनुष्यों के जीवन का बोझ न सम्हाल सकेगी अगर लायक़ लोग अपनी लायक़ी छोड़ कर पतित हो जायँगे।

---

* अपने से कम दर्जे के लोगों से हार हो जाने पर उसे मान लेना, यह योग्यता की कसौटी है

बयासिवाँ परिच्छेद

खुश इख़्लाकी

१. कहते हैं, मिलनसारी प्रायः उन लोगों में पायी जाती है कि जो खुले दिल से सब लोगों का स्वागत करते हैं।

२ खुश इख़्लाकी, मेहरबानी और नेक तरबियत इन दो सिफ़तों के मजमुए से पैदा होती है।

३. शारीरिक आकृति और सूरत शक्ल से आदमियों में सादृश्य नहीं होता है; बल्कि सच्चा सादृश्य तो आचार-विचार की अभिन्नता पर निर्भर है।

४. देखो, जो लोग न्याय-निष्ठा और धर्म-पालन के द्वारा अपना और दूसरों का—सबका—भला करते हैं, दुनियाँ उनके इख़्लाक़ की बड़ी क़द्र करती है।

५. हंसी मजाक में भी कड़वे वचन आदमी के दिल में चुभ जाते हैं, इसलिये शरीफ़ लोग अपने दुश्मनों के साथ भी बद इख़्लाकी से पेश नहीं आते हैं।

६. सुसंस्कृत मनुष्यों के अस्तित्व के कारण ही दुनिया का कारोबार निर्द्वन्द्व रूप से चल रहा है; इस में कोई शक नहीं कि यदि ये लोग न होते तो यह अक्षुण्ण साम्य और स्वास्थ्य मृतप्राय हो कर धूल में मिल जाता।

७. जिन लोगों के आचार ठीक नहीं हैं, वे अगर रेती की तरह तेज़ हों तब भी काठ के हथियारों से बेहतर नहीं हैं।

८. अविनय मनुष्य को शोभा नहीं देता है, चाहे अन्यायी और विपक्षी पुरुष के प्रति ही उसका व्यवहार क्यों न हो।

९. देखो, जो लोग मुस्कुरा नहीं सकते, उन्हें इस विशाल लम्बे चौड़े संसार में, दिन के समय भी, अन्धकार के सिवा और कुछ दिखायी न देगा।

१० देखो, बद मिजाज़ आदमी के हाथ में जो दौलत होती है वह उस दूध के समान है जो अशुद्ध, मैले बर्तन में रखने से खराब हो गया हो।

निरासिवां परिच्छेद

निरूपयोगी धन

१. देखो, जिस आदमी ने अपने घर में ढेर की ढेर दौलत जमा कर रक्खी है मगर उसे उपयोग में नहीं लाता; उस में और मुर्दे में कोई फ़र्क नहीं है क्योंकि वह उस से कोई लाभ नहीं उठाता है।

२. वह कञ्जूस आदमी जो समझता है कि धन ही दुनियाँ में सब कुछ है और इसलिये बिना किसी को कुछ दिये ही उसे जमा करता है; वह अगले जन्म में राक्षस होगा।

३. देखो, जो लोग सदा ही धन के लिये हाय-हाय करते फिरते हैं; मगर यशोपार्जन करने की पर्वा नहीं करते, उनका अस्तित्व पृथ्वी के लिये केवल भार-स्वरूप है।

४. जो मनुष्य अपने पड़ौसियों के प्रेम को प्राप्त करने की चेष्टा नहीं करता, वह मरने के पश्चात् अपने पीछे क्या चीज़ छोड़ जाने की आशा रखता है ?

५. देखो, जो लोग न तो दूसरों को देते हैं और न स्वयं ही अपने धन का उपभोग करते हैं वे

५. देखो, जो लोग दूसरों की बेइज्जती देख कर भी उतने ही लज्जित होते हैं जितने कि खुद अपनी बेइज्जती से, उन्हें तो लोग लज्जा और सङ्कोच की मूर्ति ही समझेंगे।

६. ऐसे साधनों के अलावा कि जिनसे उन्हें लज्जित न होना पड़े अन्य साधनों के द्वारा, लायक़ लोग, राज्य पाने से भी इन्कार कर देंगे।

७. देखो, जिन लोगों में लज्जा की सुकोमल भावना है, वे अपने को बेइज्जती से बचाने के लिये अपनी जान तक दे देंगे, और प्राणों पर आ बनने पर भी लज्जा को नहीं त्यागेंगे।

८. अगर कोई आदमी उन बातों से लज्जित नहीं होता है कि जिनसे दूसरों को लज्जा आती है तो उसे देखकर नेकी को भी शरमाना पड़ेगा।

९. कुलाचार को भूल जाने से मनुष्य केवल अपने कुल से ही भ्रष्ट हो जाता है लेकिन जब वह लज्जा को भूल कर बेशर्म हो जाता है, तब सब तरह की नेकियाँ उसे छोड़ देती हैं।

१०. जिन लोगों की आँख का पानी मर गया है, वे मुर्दा हैं; डोरी के द्वारा चलने वाली कठपुतलियों की तरह उनमें भी सिर्फ नुमायशी जिन्दगी होती है।

पचासीवां परिच्छेद

कुलोन्नति

१. मनुष्य की यह प्रतिज्ञा कि अपने हाथों से मेहनत करने में मैं कभी न थकूंगा, उस के परिवार की उन्नति करने में जितनी सहायक होती है, उतनी और कोई चीज़ नहीं हो सकती।

२. मर्दाना मशक्कत और सही व सालिम अक़्ल— इन दोनों की परिपक्व पूर्णता ही परिवार को ऊँचा उठाती है।

३. जब कोई मनुष्य यह कह कर काम करने पर उतारु होता है कि मैं अपने कुल की उन्नति करूँगा तो खुद देवता लोग अपनी अपनी कमर कस कर उस के आगे आगे चलते हैं।

४. देखो, जो लोग अपने खानदान को ऊँचा बनाने में कुछ उठा नहीं रखते, वे इस के लिये यदि कोई सुविस्तृत युक्ति न भी निकालें तब भी उन के हाथ से किये हुए काम में बरकत होगी।

५. देखो; जो आदमी बिना किसी किस्म के अनाचार के अपने कुल को उन्नत बनाता है; सारी दुनिया उस को अपना दोस्त समझेगी।

६. सच्ची मर्दानगी तो इसी में है कि मनुष्य अपने वंश को, जिस में उसने जन्म लिया है, उच्च अवस्था में लाये।

७. जिस तरह युद्ध-क्षेत्र में आक्रमण का प्रकोप दिलेर आदमी के सर पर पड़ता है, ठीक इसी तरह परिवार के पालन-पोषण का भार उन्हीं कन्धों पर पड़ता है कि जो उस के बोझ को सम्भाल सकते हैं।

८. जो लोग अपने कुल की उन्नति करना चाहते हैं, उनके लिये कोई मौसम, बे मौसम नहीं है; लेकिन अगर वे लापरवाही से काम लेंगे और अपनी झूठी शान पर अड़े रहेंगे तो उनके कुटुम्ब को नीचा देखना पड़ेगा।

९. क्या सचमुच उस आदमी का शरीर कि जो अपने परिवार को हर तरह की बला से महफ़ूज़ रखना चाहता है, महज़ मेहनत और मुसीबत के लिये ही बना है? *

१०. देखो; जिस घर में कोई नेक आदमी उसे सम्भालने वाला नहीं है, आपत्तियाँ उसकी जड़ को काट डालेंगी और वह गिर कर ज़मीन में मिट जायगा।

---

* ऐसे आदमी पर तरह तरह की आपत्तियाँ आती हैं और वह उन्हें प्रसन्नता पूर्वक झेलता है।

छिआसीवाँ परिच्छेद

खेती

१. आदमी जहाँ चाहें, घूमें; मगर आखिरकार अपने भोजन के लिये उन्हें हल का सहारा लेना ही पड़ेगा; इसलिये हर तरह की सख्ती होने पर भी कृषि सर्वोत्तम उद्यम है।

२. किसान लोग समाज के लिये धुरी के समान हैं; क्योंकि जोतने-खोदने की शक्ति न होने के कारण जो लोग दूसरे काम करने लगते हैं, उन को रोज़ी देने वाले वे ही लोग हैं।

३. जो लोग हल के सहारे जीते हैं, वास्तव में वे ही जीते हैं; और सब लोग तो दूसरों की कमाई हुई रोटी खाते हैं।

४. देखो, जिन लोगों के खेत लहलहाती हुई शस्य की श्यामल छाया के नीचे सोया करते हैं, वे दूसरे राजाओं के छत्रों को अपने राजा के राज-छत्र के सामने झुकता हुआ देखेंगे।

५. देखो, जो लोग खेती कर के रोज़ी कमाते हैं, वे सिर्फ यही नहीं कि खुद कभी भीख न मांगेंगे, बल्कि वे दूसरे लोगों को, कि जो भीख माँगते हैं, बग़ैर कभी इन्कार किये, दान भी दे सकेंगे।

६. किसान आदमी अगर हाथ पर हाथ रख कर चुपचाप बैठा रहे तो उन लोगों को भी कष्ट हुए बिना न रहेगा कि जिन्होंने समस्त वासनाओं का परित्याग कर दिया है।

७. अगर तुम अपने खेत की जमीन को इतना सुखाओ कि एक सेर मिट्टी सूख कर चौथाई औंस रह जाय तो एक मुट्ठी भर खाद की भी जरूरत न होगी और फ़सल की पैदावार खूब होगी।

८. जोतने की बनिस्बत खाद डालने से अधिक फ़ायदा होता है और जब नराई हो जाती है तो आबपाशी की अपेक्षा खेत की रखवाली अधिक लाभदायक होती है। *

९. अगर कोई भला आदमी खेत देखने नहीं जाता है और अपने घर पर ही बैठा रहता है तो नेक बीबी की तरह उसकी ज़मीन भी उस से खफ़ा हो जायगी।

१०. वह सुन्दरी कि जिसे लोग धरिणी बोलते हैं, अपने मन ही मन हँसा करती है जब कि वह किसी काहिल को यह कह कर रोते हुए देखती है—हाय, मेरे पास खाने को कुछ भी नहीं है!

---

* इसके अर्थ ये हैं कि जोतना, खाद देना, नराना, सींचना और रखाना—ये पाँचों ही बातें अत्यन्त आवश्यक हैं।

सत्तासीवां परिच्छेद

मुफ़लिसी

१. क्या तुम यह जानना चाहते हो कि कङ्गाली से बढ़ कर दुःखदायी चीज और क्या है ? तो सुनो, कङ्गाली ही कङ्गाली से बढ़ कर दुःख दायी है।

२. कमबख्त मुफ़लिसी इस जन्म के सुखों की तो दुश्मन है ही, मगर साथ ही साथ दूसरे जन्म के सुखोपभोग की भी घातक है।

३. ललचाती हुई कङ्गाली खान्दानी शान और ज़ुबान की नफ़ासत तक की हत्या कर डालती है।

४. ज़रूरत ऊँचे कुल के आदमियों तक की आन छुड़ा कर उन्हें अत्यन्त निकृष्ट और हीन दासता की भाषा बोलने पर मजबूर करती है।

५. उस एक अभिशाप के नीचे कि जिसे लोग दरिद्रता कहते हैं, हज़ार तरह की आपत्तियें और बलायें छिपी हुई हैं।

६. ग़रीब आदमी के शब्दों की कोई क़द्रो क़ीमत नहीं होती, चाहे वह कमाल उस्तादी और अचूक ज्ञान के साथ अगाध सत्य की ही विवेचना क्यों न करे।

७. एक तो कङ्गाल हो और फिर धर्म से खाली—ऐसे अभागे मरदूद से तो खुद उसकी माँ का दिल फिर जायेगा कि जिसने उसे नौ महीने पेट में रक्खा।

८. क्या नादारी आज भी मेरा साथ न छोड़ेगी? कल ही तो उसने मुझे अधमरा कर डाला था।*

९. जलते हुए शोलों के बीच में सो जाना भले ही सम्भव हो, मगर ग़रीबी की हालत में आँख का झपकना भी असम्भव है।

१०. † ग़रीब लोग जो अपने जीवन का उत्सर्ग नहीं कर देते हैं तो इस से और कुछ नहीं, सिर्फ दूसरों के नमक और चावलों के पानी ‡ की मृत्यु ही होती है।

---

* यह किसी दीन-दुखिया के दुखार्त शब्द हैं।

† इस पद के अर्थ के विषय में मतभेद हैं। कुछ टीकाकार कहते हैं कि कंगाल आदमी को संसार त्याग देना चाहिये और दूसरों का मत है, उन्हें प्राण त्याग देना चाहिये। मूल में "त्यरयामपि" शब्द है, जिसके अर्थ मृत्यु और त्याग दोनों होते हैं। भावार्थ यह है कि ग़रीब लोगों का जीवन नितान्त निःसार और व्यर्थ है। वह जो कुछ खाते-पीते हैं वह वृथा नष्ट हो जाता है।

‡ मद्रास प्रान्त में यह प्रथा है कि रात में लोग भात को पानी में रख देते हैं। सुबह को उस ठंडे भात और पानी को नमक के साथ खाते हैं। उनका कहना है—यह बड़ा गुणकारी है।

अट्ठासीवां परिच्छेद

भीख माँगने की भीति

१. जो आदमी भीख नहीं माँगता, वह भीख माँगने वाले से करोड़ गुना बेहतर है; फिर वह माँगने वाला चाहे ऐसे ही आदमियों से क्यों न माँगे कि जो बड़े शौक़ और प्रेम से दान देते हैं।

२. जिसने इस दुनिया को पैदा किया है, अगर उसने यह निश्चय किया था कि मनुष्य भीख माँग कर भी जीवन-निर्वाह करे तो वह दुनिया भर में मारा २ फिरे और नष्ट हो जाये।

३. उस निर्लज्जता से बढ़ कर निर्लज्जता की बात और कोई नहीं है कि जो यह कहती है कि मैं माँग २ कर अपनी दरिद्रता का अन्त कर डालूँगी।

४. बलिहारी है उस आन की कि, जो नितान्त कङ्गाली की हालत में भी किसी के सामने हाथ फैलाने की रवादार नहीं होती। अखिल विश्व उस के रहने के लिये बहुत ही छोटा और नाकाफ़ी है।

५. जो खाना अपने हाथों से मेहनत करके कमाया जाता है, वह पानी की तरह पतला हो,

तब भी उस से बढ़ कर मजेदार और कोई चीज नहीं हो सकती।

६. तुम चाहे गाय के लिये पानी ही माँगो, फिर भी जिह्वा के लिये याचना-सूचक शब्दों को उच्चारण करने से बढ़ कर अपमान-जनक बात और कोई नहीं।

७. जो लोग मांगते हैं, उन सब से मैं बस एक भिक्षा मांगता हूँ—अगर तुमको मांगना ही है तो उन लोगों से न मांगो कि जो हीला-हवाला करते हैं।

८. याचना का बदनसीब जहाज उसी समय टूट कर टुकड़े-टुकड़े हो जायगा कि जिस दम वह हीलासाजी की चट्टान से टकरायेगा।

९. भिखारी के भाग्य का खयाल करकेही दिल कांप उठता है मगर जब वह उन भिड़कियों पर गौर करता है कि जो भिखारी को सहनी पड़ती हैं, तब तो बस वह मर ही जाता है।

१०. मना करने वाले की जान उस वक्त कहाँ जाकर छिप जाती है कि जब वह "नहीं" कहता है ? भिखारी की जान तो भिड़की की आवाज सुनते ही तन से निकल जाती है।*

---

* इस विषय पर रहीम का दोहा है—
रहिमन वे नर मर चुके, जे कहुँ माँगन जाहिं।
उन ते पहिले वे मुए, जिन मुख निकसत नाहिं॥

नवासीवाँ परिच्छेद

भ्रष्ट जीवन

१. ये भ्रष्ट और पतित जीव मनुष्यों से कितने मिलते-जुलते हैं, हमने ऐसा पूर्ण सादृश्य कभी नहीं देखा।*

२. शुद्ध अन्तःकरण वाले लोगों से यह हेय जीव कहीं अधिक सुखी हैं, क्योंकि उन्हें अन्तरात्मा की चुटकियों की वेदना नहीं सहनी पड़ती।

३. मर्त्यलोक में रहने वाले नीच लोग भी देवताओं के समान हैं, क्योंकि वे भी सिर्फ अपनी ही मर्जी के पावन्द होते हैं।

४. जव कोई दुष्ट मनुष्य ऐसे आदमी से मिलता है जो दुष्टता में उससे कम है तो वह अपनी बढ़ी हुई वदकरदारियों का बड़े फ़ख्र के साथ जिक्र करता है।

५. दुष्ट लोग केवल भय के मारे ही सन्मार्ग पर चलते हैं और या फिर इसलिये कि ऐसा करने से उन्हें कुछ लाभ की आशा होगी।

---

* कवि इन भ्रष्ट लोगों को मनुष्य ही नहीं समझता, इसीलिये इतना सादृश्य देख कर उसे आश्चर्य होता है।

६. नीच लोग तो ढिंढोरे वाले ढोल की तरह होते हैं, क्योंकि उनको जो राज की बातें बताई जाती हैं, उनको दूसरे लोगों पर जाहिर किये बिना, उन्हें चैन ही नहीं पड़ता।

७. नीच प्रकृति के आदमी उन लोगों के सिवा कि जो घूँसा मार कर उसका जबड़ा तोड़ सकते हैं, और किसी के आगे भोजन से सने हुए हाथ झटक देने में भी आना-कानी करेंगे।

८. लायक़ लोगों के लिये तो सिर्फ़ एक शब्द ही काफ़ी है, मगर नीच लोग गन्ने की तरह खूब कुटने-पिटने पर ही देने पर राज़ी होते हैं।

९. दुष्ट मनुष्य ने अपने पड़ोसी को ज़रा खुश-हाल और खाते-पीते देखा नहीं कि बस वह फ़ौरन् ही उसके चाल-चलन में दोष निकालने लगता है।

१०. दुष्ट मनुष्य पर जब कोई आपत्ति आती है तो बस उसके लिये एक ही मार्ग खुला होता है, और वह यह कि जितनी जल्द मुमकिन हो, वह अपने को बेच डाले।

लागत मूल्य पर हिन्दी पुस्तकें प्रकाशित करनेवाली

एक मात्र सार्वजनिक संस्था

सस्ता-साहित्य-प्रकाशक मण्डल, अजमेर

उद्देश्य—हिंदी-साहित्य-संसार में उच्च और शुद्ध साहित्य के प्रचार के उद्देश्य से इस मण्डल का जन्म हुआ है। विविध विषयों पर सर्वसाधारण और शिक्षित-समुदाय, स्त्री और बालक सबके लिए उपयोगी, अच्छी और सस्ती पुस्तकें इस मण्डल के द्वारा प्रकाशित होंगी।

विषय—धर्म (रामायण, महाभारत, दर्शन, वेदान्तादि) राजनीति, विज्ञान, कलाकौशल, शिल्प, स्वास्थ्य, समाजशास्त्र, इतिहास, शिक्षाप्रद उपन्यास, नाटक, जीवनचरित्र, स्त्रियोपयोगी और बालोपयोगी आदि विषयों की पुस्तकें तथा स्वामी रामतीर्थ, विवेकानन्द, टाल्सटाय, तुलसीदास, सूरदास, कबीर, बिहारी, भूषण आदि की रचनाएँ प्रकाशित होंगी।

इस मण्डल के सदुद्देश्य, महत्व और भविष्य का अन्दाज़ पाठकों को होने के लिए हम सिर्फ़ उसके संस्थापकों के नाम यहाँ दे देते हैं—

मंडल के संस्थापक—(१) सेठ जमनालालजी बजाज, वर्धा (२) सेठ घनश्यामदासजी बिड़ला कलकत्ता (सभापति) (३) स्वामी आनन्दानंदजी (४) बाबू महावीर प्रसादजी पोद्दार (५) डा० अम्बालालजी दधीच (६) पं० हरिभाऊ उपाध्याय (७) श्री जीतमल लूणिया, अजमेर (मन्त्री)

पुस्तकों का मूल्य—लगभग लागतमात्र रहेगा। अर्थात् बाजार में जिन पुस्तकों का मूल्य व्यापाराना ढंग से १) रखा जाता है उनका मूल्य हमारे यहाँ केवल ।=) या ।≡) रहेगा। इस तरह से हमारे यहाँ १) में ५०० से ६०० पृष्ठ तक की पुस्तकें तो अवश्य ही दी जायँगी। सचित्र पुस्तकों में खर्च अधिक होने से मूल्य अधिक रहेगा। यह मूल्य स्थायी ग्राहकों के लिए है। सर्व साधारण के लिये थोड़ा सा मूल्य अधिक रहेगा।

हिन्दी-प्रेमियों का स्पष्ट कर्तव्य

यदि आप चाहते हैं कि हिंदी का—यह 'सस्ता मण्डल' फले-फूले तो आपका कर्तव्य है कि आजही न केवल आपही इसके ग्राहक बनें, बल्कि अपने परिचित मित्रों को भी बनाकर इसकी सहायता करें।

हमारे यहाँ से निकलनेवाली दो मालाएँ और
स्थायी ग्राहक होने के दो नियम

खूब ध्यान से सब नियमों को पढ़ लीजिये

(१) हमारे यहाँ से 'सस्ती विविध पुस्तक-माला' नामक माला निकलती है जिसमें वर्ष भर में ३२०० पृष्ठों की कोई अठारह बीस पुस्तकें निकलती हैं और वार्षिक मूल्य पोस्ट खर्च सहित केवल ८) है। अर्थात् छः रुपया ३२०० पृष्ठों का मूल्य और २) डाकखर्च। इस विविध पुस्तक-माला के दो विभाग हैं। एक 'सस्ती-साहित्य-माला' और दूसरी 'सस्ती-प्रकीर्ण पुस्तकमाला'। दो विभाग इसलिये कर दिये गये हैं कि जो सज्जन वर्ष भर में आठ रुपया खर्च न कर सकें, वे एक ही माला के ग्राहक बन जावें। प्रत्येक माला में कम से कम १६०० पृष्ठों की पुस्तकें निकलती हैं और पोस्ट खर्च सहित ४) वार्षिक मूल्य है। माला से ज्यों ज्यों पुस्तकें निकलती जावेंगी, वैसे वैसे पुस्तकें वार्षिक ग्राहकों के पास मण्डल अपना पोस्टेज लगाकर पहुँचाता जायगा। जब १६०० या ३२०० पृष्ठों की पुस्तकें ग्राहकों के पास पहुँच जावेंगी, तब उनका वार्षिक मूल्य समाप्त हो जायगा।

(२) वार्षिक ग्राहकों को उस वर्ष की-जिस वर्ष में वे ग्राहक बनें-सब पुस्तकें लेनी होती हैं। यदि उन्होंने उस वर्ष की कुछ पुस्तकें पहले से ले रखी हों तो अगले वर्ष की ग्राहक-श्रेणी का पूरा रुपया याने ४) या ८) दे देने पर या कम से कम १) या २) जमा करा देने तथा अगला वर्ष शुरू होने पर शेष मूल्य भेज देने का वचन देने पर, पिछले वर्षों की पुस्तकें जो वे चाहें, एक एक कापी लागत मूल्य पर ले सकते हैं।

(३) दूसरा नियम—प्रत्येक माला की आठ आना प्रवेश फीस या दोनों मालाओं की १) प्रवेश फीस देकर भी आप ग्राहक बन सकते हैं। इस तरह जैसे जैसे पुस्तकें निकलती जावेंगी, उनका लागत मूल्य और पोस्ट खर्च जोड़ कर वी. पी. से भेज दी जाया करेंगी। प्रत्येक वी. पी. में =) रजिस्ट्री खर्च व =) वी. पी. खर्च तथा पोस्टेज खर्च अलग लगता है। इस तरह वर्ष भर में प्रवेश फीसवाले ग्राहकों को प्रति माला पीछे करीब ढाई रुपया पोस्टेज पड़ जाता है। वार्षिक ग्राहकों को केवल १) ही पोस्ट खर्च लगता है।

हमारी सलाह है कि आप वार्षिक ग्राहक ही बनें

क्योंकि इससे आपको पोस्ट खर्च में भी किफायत रहेगी और प्रवेश फीस के ॥) या १) भी आपसे नहीं लिये जावेंगे।

(४) दोनों तरह के ग्राहकों को—एक एक कापी ही लागत मूल्य पर मिलती है। अधिक प्रतियाँ मँगाने पर सर्वसाधारण के मूल्य पर दो आना रुपया कमीशन काट कर भेजी जाती हैं। हाँ, बीस रुपये से ऊपर की पुस्तकें मँगाने पर २५) सैंकड़ा कमीशन काट कर भेजी जा सकती हैं। किसी एक माला के ग्राहक होने पर यदि वे दूसरी माला की पुस्तकें या मंडल से निकलने वाली फुटकर पुस्तकें मँगावेंगे तो दो आना रुपया कमीशन काट कर भेजी जावेंगी। पर अपना ग्राहक नंबर ज़रूर लिखना चाहिये।

(५) दोनों मालाओं का वर्ष—सस्ता साहित्य-माला का वर्ष जनवरी मास से शुरू होकर दिसम्बर मास में समाप्त होता है और प्रकीर्ण-माला का वर्ष अप्रेल मास से शुरू होकर दूसरे वर्ष के अप्रेल मास में समाप्त होता है। मालाओं की पुस्तकें दूसरे तीसरे महीने इकट्ठी निकलती हैं और तब ग्राहकों के पास भेज दी जाती हैं। इस तरह वर्ष भर में कुल १६०० या ३२०० पृष्ठों की पुस्तकें ग्राहकों के पास पहुँचा दी जाती हैं।

(६) जो वार्षिक ग्राहक माला की सब पुस्तकें सजिल्द मँगाना चाहें, उन्हें प्रत्येक माला के पीछे तीन रुपया अधिक भेजना चाहिये, अर्थात् साहित्य माला के ७) वार्षिक और इसी तरह प्रकीर्ण माला के ७) वार्षिक भेजना चाहिये।

हमारे यहाँ से निकलनेवाली फुटकर पुस्तकें

उपरोक्त दोनों मालाओं के अतिरिक्त अन्य पुस्तकें भी हमारे यहाँ से निकलती हैं। परन्तु जैसे दोनों मालाओं में वर्ष भर में ३२०० पृष्ठों की पुस्तकें निकालने का निश्चित नियम है वैसा इनका कोई खास नियम नहीं है। सुविधा और आवश्यकतानुसार पुस्तकें निकलती हैं।

स्थाई ग्राहकों के जानने योग्य बातें

(१) जो ग्राहक जिस माला के ग्राहक बनते हैं, उन्हें उसी माला की एक एक पुस्तक लागत मूल्य पर मिल सकती है। अन्य पुस्तकें मँगाने के लिये उन्हें आर्डर भेजना चाहिये। जिन पर उपरोक्त नियमानुसार कमीशन काट कर वी० पी० द्वारा पुस्तकें भेज दी जावेंगी।

इतिहास से, विज्ञान से तथा अनेक विदेशी उदाहरणों द्वारा सिद्ध की गई है। पृष्ठ सं० १२४, मूल्य ।-) स्थायी ग्राहकों से ≡)॥

(३) कन्या-शिक्षा—सास, ससुर आदि कुटुंबी के साथ किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिये, घर की व्यवस्था कैसी करनी चाहिये आदि बातें, कथा-रूप में बतलाई गई हैं। पृष्ठ सं० ९४, मूल्य केवल ।) स्थायी ग्राहकों से ≡)

(४) यथार्थ आदर्श जीवन—हमारा प्राचीन जीवन कैसा उच्च था, पर अब पाश्चात्य आडम्बरमय जीवन की नकल कर हमारी अवस्था कैसी सोचनीय हो गई है। अब हम फिर किस प्रकार उच्च बन सकते हैं-आदि बातें इस पुस्तक में बताई गई हैं। पृष्ठ सं० २६४, मूल्य केवल ॥-) स्थायी ग्राहकों से ।≤)॥

(५) स्वाधीनता के सिद्धान्त—प्रसिद्ध आयरिश वीर टेरेंस मेक्स-वीनीकी Principles of Freedom का अनुवाद—प्रत्येक स्वतंत्रता-प्रेमी को इसे पढ़ना चाहिये। पृष्ठ सं० २०८ मूल्य ॥), स्थायी ग्राहकों से।-)॥

(६) तरंगित हृदय—(ले० पं० देवशर्मा विद्यालंकार) भू० ले० पद्मसिंहजी शर्मा—इसमें अनेक ग्रन्थों को मनन करके एकांत हृदय के सामाजिक, आध्यात्मिक और राजनैतिक विषयों पर बड़े ही सुन्दर, हृदयस्पर्शी मौलिक विचार लिखे गये हैं। किसी का अनुवाद नहीं है। पृष्ठ सं० १०६, मूल्य ।≡) स्थायी ग्राहकों से ।-)

(७) गंगा गोविंदसिंह—(ले० बंगाल के प्रसिद्ध लेखक श्री चण्डीचरण सेन) इस उपन्यास में ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन-काल में भारत के लोगों पर अँग्रेज़ों ने कैसे कैसे भीषण अत्याचार किये और यहाँ का व्यापार नष्ट किया उसका रोमांचकारी वर्णन तथा कुछ देश-भक्तों ने किस प्रकार मुसीबतें सहकर इनका मुकाबला किया उसका गौरव-पूर्ण इतिहास वर्णित है। रोचक इतना है कि शुरू करने पर समाप्त किये बिना नहीं रहा जा सकता। पृष्ठ २९६ मूल्य केवल ॥≤) स्थायी ग्राहकों से ।≥)॥

(८) यूरोप का इतिहास—(प्रथम भाग) छप रहा है। पृष्ठ लगभग ३५० मार्च सन् १९२७ तक छप जायगा। इस माला में एकाध पुस्तक और निकलेगी तब वर्ष समाप्त हो जायगा।

हमारे यहाँ हिंदी की सब प्रकार की उत्तम पुस्तकें भी मिलती हैं—बड़ा सूचीपत्र मँगाकर देखिये।

पता—सस्ता-साहित्य-प्रकाशक मण्डल, अजमेर।

यह प्रार्थना उन्हीं से है जिन्हें अपनी मातृभाषा से प्रेम हो

हिन्दी भाषा की अपील

भारतवर्ष की राष्ट्र-भाषा हिन्दी के प्रचार के लिये एक ऐसी सार्वजनिक संस्था की परमावश्यकता थी जो शुद्ध सेवा भाव से बिना किसी प्रकार के लाभ की इच्छा रखते हुए हिन्दी में उत्तमोत्तम पुस्तकें बहुत ही स्वल्प मूल्य में निकाले। इसी उद्देश्य को पूरा करने के लिये यह सस्ता मंडल स्थापित हुआ है। अभी तक जो पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं वे कितनी उत्तम और साथ ही कितनी सस्ती हैं यह साथवाले नोटिस से आपको मालूम हो जायगा।

मंडल का आदर्श

अभी हमने १) में ५०० से ६०० पृष्ठों तक की पुस्तकें स्थाई ग्राहकों को देना निश्चय किया है। पर हमारा आदर्श है कि १) में ८००) से १००० पृष्ठों तक की पुस्तकें हम निकाल सकें। यदि यह दिन आगया जो कि अवश्य आवेगा तो हिन्दी भाषा की बड़ी सेवा हो सकेगी।

मण्डल के लाभ और हानि का सवाल

मण्डल सिर्फ इतना ही चाहता है कि उसके काम करनेवाले कार्यकर्ताओं का वेतन निकल आवे और वह इस तरह स्वावलम्बी होकर चिरकाल तक हिन्दी की सेवा कर सके, बस यही उसका स्वार्थ है। अभी जो १) में ५०० से ६०० पृष्ठों तक की पुस्तकें देने का निश्चय किया है उसमें जबतक **चार हजार ग्राहक न बन जावें तबतक मण्डल को बरावर हानि होती रहेगी।** इतने ग्राहक हो जाने पर १) में उपरोक्त पृष्ठों की पुस्तकें देने से मण्डल को हानि न उठानी पड़ेगी। **ज्योंही चार हजार से ऊपर ग्राहक बढ़ने लगे वैसे ही पृष्ठ संख्या भी बढ़ने लगेगी।**

मण्डल के जीवन का आधार

उसके स्थाई ग्राहक हैं—गुजरात जैसे छोटे से प्रांत में वहां के सस्तुं-साहित्य कार्यालय के सात हजार स्थाई ग्राहक हैं। इसीलिये आज उस संस्था से कई उत्तम ग्रन्थ स्वल्प मूल्य में निकल गये हैं। उस हिसाब से हिन्दी में तो बीसियों हजार ग्राहक हो जाना चाहिये।

(पीछे देखिये)

आपसे विनीत प्रार्थना

जब कि हम स्थाई ग्राहकों को लागत मूल्य में पुस्तकें दे रहे हैं ऐसी अवस्था में क्या हम यह आशा नहीं कर सकते कि आप इसके स्थाई ग्राहक बनकर इस सेवा के कार्य्य में हमारा हाथ बटावेंगे। आपको तो यह लाभ होगा कि कुछ वर्षों में ही आपके घर में उत्तम चुनी हुई सब विषयों की पुस्तकों का बहुत ही कम कीमत में पुस्तकालय हो जायगा और हमें आपके ग्राहक बनने से बड़ी मदद मिलेगी। **दोनों मालाओं का पोस्टेज सहित कुल ८) वार्षिक है** जिसमें कि ३२०० पृष्ठों की कोई अठारह बीस पुस्तकें घर बैठे आपको मिल जावेंगी। आशा है आप हमारी इस उचित प्रार्थना को योंही नहीं टाल देंगे।

अन्तिम निवेदन

(१) यदि किसी कारण से आप ग्राहक न बन सकें तो कम से कम एक दो ग्राहक बनाकर ही आप हमारी सहायता कर सकते हैं। आपके मित्रों या सम्बन्धियों आदि में एक दो को तो आग्रह करके आप जरूर ही ग्राहक बना सकेंगे। यह ही निश्चय बात है। सिर्फ आपके हृदय में हिन्दी के लिये सच्चा प्रेम होना चाहिये।

लोगों की उदासीन वृत्ति

जब हम, लोगों के पास अपने विज्ञापन भेजते हैं तो बहुत कम लोग उन पर ध्यान देकर ग्राहक बनते हैं पर जब हम उनके घर पर सामने चले जाते हैं तो वे जरूर ग्राहक बन जाते हैं यह हमारा खुद का अनुभव है। इसका कारण केवल उनका आलस्य या उदासीन वृत्ति है। घर घर जाने में कितना रुपया और कितनी शक्ति खर्च होती है यह आप अनुमान कर सकते हैं। आप यदि इस ओर ध्यान दें और सहायता के भाव से प्रेरित हों तो मण्डल की यह शक्ति और द्रव्य बच कर हिन्दी की अधिक सेवा में लग सकता है।

आशा है आप हमारी अपील को व्यर्थ न फेंक देंगे और ऐसा समझ कर कि हम आपके सामने ही अपील कर रहे हैं, कम से कम एक वर्ष के लिये जरूर ग्राहक बनेंगे।

विनीत—जीतमल लूणिया, मन्त्री,
सस्ता-साहित्य-प्रकाशक मंडल, अजमेर।